अनुक्रमणिका/Index

01. अनुक्रमणिका /Index 01

02. क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल/सम्पादकीय सलाहकार मण्डल 06/07

03. निर्णायक मण्डल 08

04. प्रवक्ता साथी 10

(Science / विज्ञान)

05. Color Change Mechanism In Vertebrates (Meena Swamy, Ankita Ghatkare) 12

06. Camphor - A Miracle Plant Of Multiple Use (Dr Renu Rajesh) 15

07. Floristic Studies In Govt. P. G. College Alirajpur Campus, Madhya Pradesh, (India) (Jeetendra Pachaya, Jeetendra Sainkhediya) 18

08. Study Of Locally Available Wild Edible Plants Usage By Tribals Of Balaghat District (M.P.) (Dr. B.K. Bramhe, Dr. Arvind Wasnik, Praveen Koushley) 22

09. वैदिक गणित सें मिश्रित सरल पद्धति का एक अध्ययन (संतोषी अलावा) 25

10. भारतीय संस्कृति के पर्व-त्यौहार और पारिस्थितिकी पर्यावरण संरक्षण : एक विवेचन (डॉ. प्रमोद पंडित) 28

(Home Science / गृह विज्ञान)

11. Nutritional Status of Adolescent Girls Receiving Food Form Hostel and Tiffin Centres (Dr. Jyoti Kulkarni) 31

12. An Empirical Study on Elderly Perception of Loneliness and Ways of resolving it through Positive Aging (Chandra Kumari) 34

13. Parental Differential Treatment And Its Link With Adolescent's Personal Qualities (Dr. Nandini Rekhade) 37

14. Non-Wovens - A Range Of Application In Interior Furnishing (Dr. Kirti Tewari) 39

15. आदिवासी समुदाय की छात्राओं पर बदलते परिवेश के प्रभाव का अध्ययन (डॉ. अनुराधा अवस्थी, डॉ. प्रगति देसाई) 41

16. संयुक्त परिवार के अपराधी बालकों एवं बालिकाओं का सांवेगिक परिपक्वता स्तर का अध्ययन (पार्वती मोदी) 44

17. उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं में व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता (डॉ. नंदिनी रेखड़े) 47

18. शराब कारखाने मे कार्यरत महिला श्रमिको की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन(डॉ. मीना सिसोदिया) 49

19. पर्यावरण और विकास (डॉ. भावना रमैया) 51

20. किशोरावस्था में मूल्यों के विकास में अभिभावक,शिक्षक एवं सिनेमा की भूमिका(डॉ. मीना सिसोदिया) 53

21. उपभोक्ता संरक्षण में उपभोक्ता फोरम का योगदान (डॉ. मीना सिसोदिया) 54

(Commerce & Management / वाणिज्य एवं प्रबंध)

22. The Impact Of Change Management Strategies In Organizational Commitment & Business Efficacy In Rajasthan (Dr. Anita Sukhwal, Harshita Paliwal) 55

23. A Study Of Creativity & Innovation In Small And Medium Entrepreneurships (Dr. Anita Sukhwal, Harshita Paliwal) 61

24. Corporate Social Responsibilty In Management Education (Richa P.Shah) 66

25. A Study Of E-Accounting In India (Dr. Vandana K. Mishra) 69

26. Sampling in Qualitative and Quantitative Research (Dr. Vivek Kumar Patel, Rakesh Kumar Garg) 72

27. Perfromance Appraisal: Past And Future Oriented Methods (Meenu Kumari, Chinar Malik) 74

28. "Women Entrepreneurship" With Reference to Indian women (Dr. A. C. Jain) 76

29. India & World Trade Organization (WTO) (Dr. Satish Maheshwari ,Trapti Maheshwari) 78

30. Women Empowerment of India (Dr. R.C. Gupta) 81

31. स्वयं सहायता समूह से लाभान्वित ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक विकास - एक अध्ययन (धार जिले के विशेष सन्दर्भ में) (डॉ. मालसिंह चौहान) 82

32. भारत में ई–कॉमर्स का प्रादुर्भाव एवं विकास (डॉ. मधुकर ठोमरे) 85

33. भारत में ग्रामीण विकास कार्यक्रम - एक सामान्य अध्ययन (डॉ. जे.पी. पाण्डया) 87

34. आर्थिक नीतियों में उदारीकरण - एक मूल्यांकन (डॉ. आनंद तिवारी) 89

35. परम्परागत खुदरा व्यापार का भविष्य(आधुनिक संगठित बहुराष्ट्रीय खुदरा कम्पनियों के संदर्भ में) (डॉ. राकेश माथुर, गौरव राठौर) 91

36. उद्यमिता विकास (डॉ. रामजी गर्ग, डॉ. विवेक पटेल) 93

37. मण्डियों का प्रशासन, प्रबन्धन, संगठन एवं अधिनियम की भूमिका (डॉ. सतीश माहेश्वरी, प्रो. मोहन सिंह वास्केल) 96

38. खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का समीक्षात्मक मूल्यांकन (डॉ. संदीप माथुर) 99

39. कृषि उपज विपणन की सैद्धांतिक विवेचना (डॉ. सतीश माहेश्वरी, प्रो. मोहन सिंह वास्केल) 102

40. भारत में मध्यप्रदेश संपूर्ण विकास की दशा में अग्रसर (डॉ. आर. सी. गुप्ता) 104

(Economics / अर्थशास्त्र)

41. Indian Rupee is depreciating against dollar (Dr. Sapna Soni, Dr. Mohan, Singh Dawar, Smita Patidar) 106

42. भारत में खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश एवं क्रियान्वयन (प्रो. उर्मिला वर्मा, डॉ. आशा साखी गुप्ता) 108

43. ब्रिक्स विकास बैंक और भारत के लिए इसका महत्व (डॉ. सचिन दास, अतुल मध्दव) 111

44. लिंग संरचना स्थिति का विश्लेषण - मध्यप्रदेश के देवास जिले के संदर्भ में (डॉ. मंजू राजोरिया) 114

45. कुटीर एवं लघु उद्योगों में रोजगार की संभावनायें (डॉ. मीना जैन) 116

46. भवन निर्माण श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का अध्ययन (इन्दौर शहर में कार्यरत् श्रमिकों के विशेष संदर्भ में) 119
(मिसर नरगावें , डॉ. आशा साखी गुप्ता)

47. लिंग असमानता - कारण और निवारण (डॉ. सरोजनी टोपनो) 122

48. आदिवासी विकास परियोजनाओं का खेतिहर महिला श्रमिकों पर प्रभाव 124
(बड़वानी जिले के विशेष सन्दर्भ में) (डॉ. अरूणा कुसुमाकर)

49. उद्यमियों के लिए भुगतान प्रणाली की जानकारी एवं महत्व (डॉ. प्रीति श्रीवास्तव) 126

50. औद्योगिकरण, रोजगार एवं आर्थिक विकास (डॉ. अनीता कौशल, डॉ. मुकेश कौशल) 128

51. महिला उद्यमिता एवं भारत (डॉ. कृष्णा अग्रवाल) 130

(Political Seience / राजनीति विज्ञान)

52. शोध प्रविधि की वैज्ञानिक पद्धति और राजनीति विज्ञान (डॉ. अनिल कुमार जैन) 131

53. गांधीवादी दर्शन के परिपेक्ष्य में भारतीय प्रजातंत्र (डॉ. रजनी दुबे) 133

54. भारतीय शिक्षा व महिलाओं की स्थिति (डॉ. सिंधु लाहोरिया) 135

55. भारत में नारी सशक्तिकरण का यथार्थ तथा महिला आन्दोलनों की भूमिका (डॉ. अनिल कुमार जैन) 137

56. लोकसभा-अध्यक्ष के गौरवशाली पद का महत्व - भारतीय संसदीय शासन प्रणाली के संदर्भ में 140
(डॉ. सीताराम गोले)

57. आदिवासी क्षेत्रो में पंचायत राज व्यवस्था की भूमिका (बालाघाट जिले के बैहर तहसील के विशेष संदर्भ में) 142
(तरूण कुमार शेण्डे , विनोद कुमार शेण्डे)

(Sociology / समाजशास्त्र)

58. महिला नेतृत्व और सशक्तिकरण : समाजशास्त्रीय विश्लेषण (डॉ. बसंत नाग) 143

59. महिला सशक्तिकरण बाधक सामाजिक कुप्रथाऐं (डॉ. निशा जैन) 147

60. वृद्धावस्था एक नजर : समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण (डॉ. उमा लवानिया) 149

61. अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की पंचायती राज में भागीदारी एवं उनका सामाजिक, आर्थिक सशक्तिकरण 151
(डॉ. अरविन्द पाल, चमका गहलोत)

62. उच्च शिक्षा चुनौतियाँ एवं संभावनाऐं (डॉ. ज्योति मेहता) 154

63. कानून के दायरे में महिलाऐं (डॉ. राजश्री शाह) 157

64. समर्पण के अभाव में बिखरते भारतीय परिवार (डॉ. निशा जैन) 159

65. महिला सुरक्षा - सरकार के लिये बड़ी चुनौती (बलात्कार के विशेष संदर्भ में) (डॉ. रश्मि दुबे) 161

66. भिलाला जनजातिय विवाह और वधू पक्ष का प्रभुत्व(डॉ. के. एस. बघेल) 163

(Psychology / मनोविज्ञान)

67. पर्यावरण प्रतिबल - समस्याएँ एवं प्रबंधन (श्रीमती सुधा शाक्य) 164

68. जेट्रोफा : ऊर्जा का नवीन विकल्प (प्रो. अर्चना भार्गव) 168

(History / इतिहास)

69. Freedom Movement in Seoni District (Dr. Madhumita Bhattacharya) 170
70. Ground Water Conservation And Artificial Recharge (Dr. Malika Khan) 172
71. मथवाड़ रियासत का इतिहास (डॉ. बलराम बघेल) 174
72. हिन्दुओं के आस्था का पर्व - कुम्भ (डॉ. जगमोहन सिंह पूषाम) 176

(Music / संगीत)

73. पुष्टिमार्गीय संगीत में समय- सिद्धांत (डॉ. स्नेहा पंडित) 180
74. शास्त्रीय संगीत की बंदिशों में रस निष्पत्ति (डॉ. बी.वर्षा) 183
75. संगीत चिकित्सा - एक परिचयात्मक अध्ययन (डॉ. श्रीपाद आरोणकर) 185
76. चित्रपट संगीत के गीतों में शास्त्रीय रागों की भूमिका (डॉ. बी.वर्षा) 187

(Philosophy / दर्शनशास्त्र)

77. भारतीय दर्शन में दुःख निवृत्ति (डॉ. पुष्पा कपूर) 188

(Hindi Literature / हिन्दी साहित्य)

78. अज्ञेय के उपन्यासों का परिचय विशेष- शेखर : एक जीवनी के संदर्भ में (डॉ. कामना श्रीवास्तव) 190
79. व्यंग्य लेखन में भाषा का शास्त्र (डॉ. विजय कलमधार) 193
80. सूरसागर में लोकोक्तियाँ (डॉ. गायत्री वाजपेयी) 195
81. सामाजिक आर्थिक परिदृश्य और हिन्दी कहानी (डॉ. मंजुला जोशी) 197
82. लोक साहित्य में सामाजिक जीवन मूल्य (डॉ. एस.एस. राठौर) 199
83. सन् 1857 की क्रांति और हिन्दी लोकगीत (डॉ. रश्मि जैन) 201
84. अस्मिता की तलाश : अल्मा कबूतरी (डॉ. संध्या टिकेकर) 203
85. मानव जीवन में धर्म और दर्शन का महत्त्व (डॉ. सरोज खरे) 205
86. सूर साहित्य में बाल – काव्य (डॉ. डी. एस. कनेल) 207
87. विजयी बसंत : परंपरागत् संस्कारों की बेड़ियाँ (डॉ. संध्या खरे) 209
88. मानवीय संवेदनाओं के मौन शिल्पी : अज्ञेय (डॉ. सरोज जैन) 211
89. नारी विमर्श का हिन्दी साहित्य व समाज पर प्रभाव (डॉ. मिथिलेश अग्निहोत्री) 213

(English Literature / अंग्रेजी साहित्य)

90. A Comparative Study of the Landscape and Autobiographical Elements in Wordsworth's "Tintern Abbey" And Sumitranandan Pant's "Paravt Pradesh Mein Pavas" (Dr. A.K. Saxena, Dr. Manju Saxena) 215

91. Psycho-analysis in Criticism (Dr. Supriya Paithankar) 218

(Education / शिक्षा)

92. Teaching Attitude Of Effective And Ineffective Teachers (Dheeraj Verma) 220

93. Analysis Of Researchers Based On Advanced Organizer Model 222
(Dr. Archana Shrivastava, Sonali Surye)

94. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में 'वैज्ञानिक अभिवृत्ति' का तुलनात्मक अध्ययन। (डॉ. आरती आर्य) 226

95. डी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की सृजनात्मकता का अध्ययन (राखी शर्मा, डॉ. अर्चना श्रीवास्तव) 228

96. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी की अर्थशास्त्र के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन (प्रो. सरोज सिंह हाड़ा) 230

97. प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण एवं प्रवेश से परिणाम तक का परिदृश्य (प्रो. सरोज सिंह हाड़ा) 232

(Others / अन्य)

98. प्राचीन भारत में खगोल विज्ञान (डॉ. नितिन सहारिया, डॉ. उमा शंकर पटले) 234

99. मध्यप्रदेश गरीब के घर वरदान होती बेटियाँ (नेहा चौरसिया) 237

100. Emblica Officinalis Medicinal plant and use (Prof. Narpat Singh Dawar, Dr. V.S. Singh) 239

101. उपभोक्ताओं पर सांस्कृतिक प्रभाव का अध्ययन (डॉ. आलोक कुमार यादव) 241

102. ICT and Education in India (DurgeshLata) 243

103. Determinants of Migration : A Case of Maharashtra(Dr. Rajendra P. Shinde) 246

104. India : A Global Destination for Tourism (Dr. Pushpanjali Arya) 249

105. Sacred and Ritual Plants of Shekhawati Region of Rajasthan, India (Manju Chaudhary) 251

106. Climate Change: Causes and Effect (Dr. Ashok Kumar, Dr. Aradhna Sharma) 255

107. Novel approaches for pectin extraction: By-product utilisation (Dr. Mahendra Singh Panwar) 257

–: नवीन शोध संसार की ओर से नवाचार कार्यशाला हेतु बधाई :–

म. प्र. उच्च शिक्षा में नवाचार – "अपना पैसा अपना विकास"

मध्यप्रदेश उच्च शिक्षा में गुणवत्ता एवं सामाजिक परिवर्तन प्रबंध कार्यशाला – राजमाता सिंधिया शासकीय कन्या महाविद्यालय छिन्दवाड़ा (म.प्र.) दिनांक 05.12.2014 – 11.12.2014
कार्यशाला के समन्वयक – डॉ. दिनेश कुमार चौधरी एवं सह समन्वयक – श्री अजय सिंह ठाकुर, डॉ. अर्चना गौर, कार्यशाला संरक्षक एवं प्राचार्य – डॉ. कामना वर्मा

क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय (Regional Editor Board- International & National) मानद्

(01) श्री अशोककुमार ..... एम्प्लॉयब्लिटी ऑपरेशन्स मैनेजर, एक्शन ट्रेनिंग सेन्टर लि. लन्दन, यूनाईटेड किंगडम
(02) श्री खगेन्द्रप्रसाद सुबेदी ..... सीनियर सॉयकोलॉजिस्ट, पब्लिक सर्विस कमीशन, सेन्ट्रल ऑफिस, अनामनगर, काठमाँडू, नेपाल
(03) डॉ. मनीषा ठाकुर ..... फुल्टन कॉलेज, एरिजोना स्टेट यूनिवर्सिटी, अमेरिका
(04) प्रो. डॉ. ज्ञानचंद खिमेसरा ..... प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.) भारत
(05) प्रो. डॉ. प्रमोद कुमार राघव ..... शोध निदेशक, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्व विद्यालय, जयपुर (राज.) भारत
(06) प्रो. डॉ. एन.एस.राव. ..... संचालक, जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत
(07) प्रो. डॉ. अनूप व्यास. ..... (पूर्व) संकायाध्यक्ष, वाणिज्य, देवी अहिल्या विश्व विद्यालय, इंदौर (म.प्र.) भारत
(08) प्रो. डॉ. पी.पी. पाण्डे ..... संकायाध्यक्ष, वाणिज्य (डीन), अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) भारत
(09) प्रो. डॉ. संजय भयानी. ..... अध्यक्ष, व्यवसाय प्रबंध विभाग, सौराष्ट्र विश्व विद्यालय, राजकोट (गुजरात) भारत
(10) प्रो. डॉ. प्रताप राव कदम ..... अध्यक्ष, वाणिज्य, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.) भारत
(11) प्रो. डॉ. बी.एस. झरे . ..... प्राध्यापक वाणिज्य विभाग, श्री शिवाजी महाविद्यालय, आकोला (महाराष्ट्र) भारत
(12) प्रो. डॉ. राकेश शर्मा ..... अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुड़गांव (हरियाणा) भारत
(13) प्रो. डॉ. संजय खरे ..... प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शास. स्वशासी कन्या स्नात. उत्कृष्टता महा., सागर (म.प्र.) भारत
(14) प्रो. डॉ. आर.पी. उपाध्याय ..... परीक्षा नियंत्रक, शासकीय कमलाराजे कन्या स्वशासी स्नातकोत्तर महा., ग्वालियर (म.प्र.) भारत
(15) प्रो. डॉ. प्रदीप कुमार शर्मा ..... प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य महा., भोपाल (म.प्र.) भारत
(16) प्रो. अखिलेश जाधव ..... प्राध्यापक, भौतिकी, शासकीय जे. योगानन्दम् छत्तीसगढ़ महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़) भारत
(17) प्रो. डॉ. कमल जैन ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.) भारत
(18) प्रो. डॉ.डी.एन. खड़से ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, धनवते नेशनल कॉलेज, नागपुर (महाराष्ट्र) भारत
(19) प्रो.डॉ. वन्दना जैन ..... प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
(20) प्रो. डॉ. शिव कुमार दुबे ..... प्राध्यापक, भूगोल, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र.) भारत
(21) प्रो. डॉ. शारदा त्रिवेदी ..... सेवानिवृत्त प्राध्यापक, गृहविज्ञान, इंदौर (म.प्र.) भारत
(22) प्रो. डॉ. उषा श्रीवास्तव ..... अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेच्यूट स्टडी. सोलदेवानली, बैंगलुरू (कर्ना.) भारत
(23) प्रो. डॉ. गणेशप्रसाद दावरे ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय, बड़वाह (म.प्र.) भारत
(24) प्रो. डॉ. एच.के. चौरसिया ..... प्राध्यापक, वनस्पति, टी.एन.वी. महाविद्यालय, भागलपुर (बिहार) भारत
(25) प्रो. डॉ. विवेक पटेल ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय, कोतमा, जिला अनूपपुर (म.प्र.) भारत
(26) प्रो. डॉ. दिनेशकुमार चौधरी .... प्राध्यापक, वाणिज्य, राजमाता सिन्धिया शासकीय कन्या महविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत
(27) प्रो. डॉ. पी.के. मिश्रा ..... प्राध्यापक ,प्राणी शास्त्र, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैतूल (म.प्र.) भारत
(28) प्रो. डॉ. जितेन्द्र के. शर्मा ..... प्राध्यापक, वाणिज्य एवं प्रबंध, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय केन्द्र, पालवाल (हरियाणा) भारत
(29) प्रो. डॉ. आर.पी. सहारिया ..... प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शासकीय जे.एम.पी. महाविद्यालय तख्तपुर जिला,बिलासपुर (छ.ग.) भारत
(30) प्रो. डॉ. गायत्री वाजपेयी ..... प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय महाराजा स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.) भारत
(31) प्रो. डॉ. अविनाश शेन्द्रे ..... विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र, प्रगति कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, डोम्बीवली, मुम्बई (महाराष्ट्र) भारत
(32) प्रो. डॉ. जी.सी. मेहता ..... अध्यक्ष, अध्ययन मण्डल वाणिज्य, देवी अहिल्या विश्वविद्याय, इंदौर (म.प्र.) भारत
(33) प्रो.डॉ. बी.एस. मक्कड़ ..... अध्यक्ष, अध्ययन मण्डल वाणिज्य, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
(34) प्रो.डॉ. पी.पी. मिश्रा ..... विभागाध्यक्ष, गणित, छत्रसाल शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पन्ना, (म.प्र.) भारत
(35) प्रो.डॉ. सुनील कुमार सिकरवार .... प्राध्यापक, रसायन, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ (म.प्र.) भारत
(36) प्रो.डॉ. के.एल. साहू ..... प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत
(37) प्रो.डॉ. मालिनी जॉनसन ..... प्राध्यापक, वनस्पति, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू (म.प्र.) भारत

****

सम्पादकीय सलाहकार मण्डल (Editorial Advisory Board, INDIA) मानद्

(01) प्रो. डॉ. नरेन्द्र श्रीवास्तव .....प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'इसरो' बैंगलुरू (कर्नाटक) भारत
(02) प्रो. डॉ. आदित्य लूनावत .....निदेशक, स्वामी विवेकानंद कॅरियर मार्गदर्शन प्रकोष्ठ उच्च शिक्षा विभाग, म.प्र. शासन, इंदौर (म.प्र.) भारत
(03) प्रो. डॉ. संजय जैन .....सहायक नियंत्रक, म.प्र. व्यावसायिक परीक्षा मंडल भोपाल (म.प्र.) भारत
(04) प्रो. डॉ.एस.के. जोशी .....प्राचार्य, शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय रतलाम (म.प्र.) भारत
(05) प्रो. डॉ. जे.पी.एन. पाण्डेय .....प्राचार्य, शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टा महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत
(06) प्रो. डॉ. अशोका श्रीवास्तव .....प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत
(07) प्रो. डॉ. सुमित्रा वास्केल .....प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.) भारत
(08) प्रो. डॉ. पी.आर. चन्देलकर ....प्राचार्य, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत
(09) प्रो. डॉ. मंगल मिश्र .....प्राचार्य, श्री क्लॉथ मार्केट, कन्या वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत
(10) प्रो. डॉ.आर.के. भट्ट .....प्राचार्य, शासकीय महिला महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत
(11) प्रो. डॉ. अशोक वर्मा .....प्राचार्य एवं संकायाध्यक्ष, वाणिज्य (डीन) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सेंधवा (म.प्र.) भारत
(12) प्रो. डॉ. राकेश ढण्ड .....संकायाध्यक्ष, विद्यार्थी कल्याण विभाग विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
(13) प्रो. डॉ. अनिल शिवानी.....अध्यक्ष, वाणिज्य एवं प्रबंध विभाग श्री अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय भोपाल (म.प्र.) भारत
(14) प्रो. डॉ. बी.के. मेहता.....अध्यक्ष, रसायन एवं जैविक रसायन अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन (म.प्र.) भारत
(15) प्रो. डॉ. पद्मसिंह पटेल .....अध्यक्ष, वाणिज्य विभाग शासकीय महाविद्यालय महिदपुर (म.प्र.) भारत
(16) प्रो. डॉ. मंजु दुबे.....संकायाध्यक्ष (डीन), गृह विज्ञान संकाय, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.) भारत
(17) प्रो. डॉ.ए.के. चौधरी .....प्राध्यापक, मनोविज्ञान, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत
(18) प्रो. डॉ. के.एल. जाट.....प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, भौतिकी विभाग शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत
(19) प्रो. डॉ. प्रदीप सिंह राव .....प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, राजनीति विभाग शासकीय महाविद्यालय, सैलाना, जिला-रतलाम (म.प्र.) भारत
(20) प्रो. डॉ. नटवर लाल गुप्ता .....प्राचार्य, शहीद भीमा नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

नवीन शोध संसार के बढ़ते कदम

मध्यप्रदेश उच्च शिक्षा के नये आयाम–विशेषांक का विमोचन करते हुए
माननीय श्री दीपक जोशी (उच्च शिक्षा राज्य मंत्री) म.प्र. शासन, माननीय श्री ओमप्रकाश सकलेचा (विधायक) जावद, (म.प्र.) आशीष शर्मा (सम्पादक) नवीन शोध संसार, नीमच (म.प्र.)

निर्णायक मण्डल (Referee Board) मानद्

****** विज्ञान संकाय ******

गणित:- .... (1) **प्रो. डॉ.वी.के. गुप्ता,** संचालक वैदिक गणित एवं शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

भौतिकी:- .... (1) **प्रो. डॉ. एन.के. डबकरा**, शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(2) **प्रो.डॉ. रवि कटारे,** शासकीय आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

कम्प्यूटर विज्ञान:- .... (1) **प्रो. डॉ. उमेश कुमार सिंह** अध्यक्ष कम्प्यूटर अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

रसायन:- .... (1) **प्रो. डॉ. बी.के. दानगढ़,** समन्वयक राष्ट्रीय इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, केन्द्र नीमच (म.प्र.)

वनस्पति:- .... (1) **प्रो. डॉ. सुचिता जैन,** राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा (राज.)
(2) **प्रो.डॉ. अखिलेश आयाची,** शासकीय आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

प्राणिकी:- .... (1) **प्रो.डॉ. मंजुलता शर्मा,** एम.एस.जे., राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर (राज.)
(2) **प्रो. डॉ. अमृता खत्री,** माता जीजाबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.)

सांख्यिकी:- .... (1) **प्रो. डॉ. रमेश पण्ड्या,** शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

सैन्य विज्ञान:- .... (1) **प्रो. डॉ. कैलाश त्यागी,** शासकीय मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

जीव रसायन:- .... (1) **डॉ. कंचन डींगरा,** शासकीय एम.एच. गृह विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

भूगर्भ शास्त्र:- .... (1) **प्रो. डॉ. आर.एस. रघुवंशी,** शासकीय मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. सुयश कुमार,** शासकीय आदर्श महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

चिकित्सा विज्ञान:- .... (1) **डॉ. एच.जी. वरूधकर,** आर.डी. गारड़ी मेडिकल महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

****** वाणिज्य संकाय ******

वाणिज्य :- .... (1) **प्रो. डॉ. पी.के. जैन,** शासकीय हमीदिया महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. शैलेन्द्र भारल ,** शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(3) **प्रो. डॉ. लक्ष्मण परवाल,** शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

****** प्रबंध संकाय ******

प्रबंध :- .... (1) **प्रो. डॉ. रामेश्वर सोनी** , अध्यक्ष अध्ययन शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. आनन्द तिवारी ,** शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर कन्या उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

मानव संसाधन:- .... (1) **प्रो. डॉ. हरविन्दर सोनी** , पैसेफिक बिजनेस स्कूल, उदयपुर (राज.)

****** व्यवसाय प्रशासन संकाय ******

व्यवसाय प्रशासन:- .... (1) **प्रो. डॉ. कपिलदेव शर्मा ,** राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा (राज.)

****** विधि संकाय ******

विधि:- .... (1) **प्रो. डॉ. एस.एन. शर्मा,** प्राचार्य, शासकीय माधव विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन,** प्राचार्य श्री जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर विधि महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)

****** कला संकाय ******

अर्थशास्त्र:- .... (1) **प्रो. डॉ. पी.सी. रांका,** श्री सीताराम जाजू शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. जे.पी. मिश्रा,** शासकीय महाराजा स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)
(3) **प्रो. डॉ. कमलेश श्रीवास्तव,** विजयाराजे शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय मुरार, ग्वालियर (म.प्र.)

राजनीति:- .... (1) **प्रो. डॉ. रवींद्र सोहोनी,** शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(2) **प्रो. डॉ. अनिल जैन,** शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

दर्शनशास्त्र:- .... (1) **प्रो. डॉ. हेमन्त नामदेव,** शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

समाजशास्त्र:- ..... **(1) प्रो. डॉ. आशुतोष व्यास,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चित्तौड़गढ़ (राज.)
(2) प्रो. डॉ. एच.एल. फुलवरे, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.)
(3) प्रो. डॉ. इन्दिरा बर्मन , शासकीय गृह विज्ञान महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)

हिन्दी:- ..... **(1) प्रो. डॉ. चन्दा तलेरा जैन,** अध्यक्ष अध्ययन मण्डल, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र)
(2) प्रो. डॉ. जया प्रियदर्शनी शुक्ला, वनस्थली विद्यापीठ (राज.)
(3) प्रो. डॉ. कला जोशी, श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

अंग्रेजी:- ..... **(1) प्रो. डॉ. प्रशांत मिश्रा**, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. अजय भार्गव, शासकीय महाविद्यालय, बड़नगर (म.प्र.)
(3) प्रो. डॉ. मंजरी अग्निहोत्री, शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

संस्कृत:- ..... **(1) प्रो. डॉ. भावना श्रीवास्तव,** शासकीय स्वशासी महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. बालकृष्ण प्रजापति, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गंजबासौदा जिला विदिशा (म.प्र.)

इतिहास:- ..... **(1) प्रो. डॉ. नवीन गिडियन,** शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

भूगोल:- ..... **(1) प्रो. डॉ. राजेन्द्र श्रीवास्तव** शासकीय महाविद्यालय, पिपलियामण्डी, जिला मंदसौर (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. अर्चना भार्गव, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

मनोविज्ञान:- ..... **(1) प्रो. डॉ. कामना वर्मा,** प्राचार्य, शासकीय राजमाता सिंधिया कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. सरोज कोठारी, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

चित्रकला:- ..... **(1) प्रो. डॉ. अल्पना उपाध्याय,** शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय उज्जैन (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. रेखा श्रीवास्तव, महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

संगीत:- ..... **(1) प्रो. डॉ. भावना ग्रोवर (कथक),** सुभारती विश्व विद्यालय मेरठ (उ.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. श्रीपाद अरोणकर, राजमाता सिन्धिया शासकीय कन्या महाविद्यालय, छिन्दवाडा (म.प्र.)

**** गृह विज्ञान संकाय ****

आहार एवं पोषण विज्ञान:- .... **(1) प्रो.डॉ. प्रगति देसाई,** शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(2) डॉ. मधु गोयल, स्वामी केशवानन्द गृह विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
(3) डॉ. संध्या वर्मा, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

मानव विकास:- ..... **(1) प्रो.डॉ. मीनाक्षी माथुर,** अध्यक्ष, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)
(2) प्रो.डॉ. आभा तिवारी, अध्यक्ष अध्ययन मण्डल रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

पारिवारिक संसाधन प्रबंध:- ... **(1) प्रो.डॉ. मंजु शर्मा,** माता जीजाबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इंदौर (म.प्र.)
(2) प्रो.डॉ. नम्रता अरोरा, वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

**** शिक्षा संकाय ****

शिक्षा ..... **(1) प्रो. डॉ. मनोरमा माथुर,** प्राचार्य, अरावली शिक्षा महाविद्यालय, फरीदाबाद (हरियाणा)
(2) प्रो. डॉ. एन.एम.जी. माथुर, प्राचार्य एवं डीन पेसेफिक शिक्षा महाविद्यालय, उदयपुर (राज.)
(3) प्रो. डॉ. अर्चना श्रीवास्तव, बी.सी.जी. शिक्षा महाविद्यालय, देवास (म.प्र.)

**** शारीरिक शिक्षा संकाय ****

शारीरिक शिक्षा ..... **(1) प्रो. डॉ. अक्षयकुमार शुक्ला,** अध्यक्ष शारीरिक शिक्षा पेसेफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

**** ग्रन्थालय विज्ञान संकाय ****

ग्रन्थालय विज्ञान ..... **(1) डॉ. अनिल सिरौठिया,** शासकीय महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

प्रवक्ता साथी (मानद्)

(01) प्रो. डॉ. आर.के. गुजेटिया .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(02) प्रो. श्रीमती विजया वधवा .....शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(03) डॉ. सुरेंद्र शक्तावत .....ज्ञानोदय इंस्टीट्यूट ऑफ मेनेजमेंट एंड टेक्नोलॉजी, नीमच (म.प्र.)
(04) प्रो. डॉ. देवीलाल अहीर .....शासकीय महाविद्यालय, जावद, जिला नीमच (म.प्र.)
(05) श्री आशीष द्विवेदी .....शासकीय महाविद्यालय, मनासा, जिला नीमच (म.प्र.)
(06) प्रो. डी.एस. फिरोजिया .....शासकीय महाविद्यालय, रामपुरा, जिला नीमच (म.प्र.)
(07) श्री उमेश शर्मा .....कृष्णा शिक्षा महाविद्यालय, जावी, जिला- नीमच (म.प्र.)
(08) प्रो. डॉ. एस.पी. पंवार .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(09) प्रो. डॉ. पूरालाल पाटीदार .....शासकीय कन्या महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(10) प्रो. डॉ. क्षितिज पुरोहित .....जैन कला-वाणिज्य-विज्ञान महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(11) प्रो. डॉ.एन.के. पाटीदार .....शासकीय महाविद्यालय, पिपलियामंडी, जिला मन्दसौर (म.प्र.)
(12) प्रो. डॉ. वाय.के. मिश्रा .....शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(13) प्रो. डॉ. सुरेश कटारिया .....शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(14) प्रो. डॉ. अभय पाठक .....शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(15) प्रो. डॉ. मालसिंह चौहान .....शासकीय महाविद्यालय, सैलाना, जिला रतलाम (म.प्र.)
(16) प्रो. डॉ.गेंदालाल चौहान .....शासकीय विक्रम महाविद्यालय, खाचरौद, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(17) प्रो. डॉ. प्रभाकर मिश्र .....शासकीय महाविद्यालय, महिदपुर, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(18) प्रो. डॉ. प्रकाश कुमार जैन .....शासकीय माधव कला वाणिज्य विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(19) प्रो. डॉ. कमला चौहान .....शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(20) प्रो. आभा दीक्षित .....शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(21) प्रो. डॉ. पंकज माहेश्वरी .....शासकीय महाविद्यालय, तराना, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(22) प्रो. डॉ. डी.सी. राठी .....स्वामी विवेकानंद कॅरियर मार्गदर्शन प्रकोष्ठ, उच्च शिक्षा विभाग, म.प्र. शासन, इंदौर
(23) प्रो. डॉ. आर.सी. दीक्षित .....शासकीय होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(24) प्रो. डॉ. संजय पंडित .....शासकीय एम.जे.बी. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.)
(25) प्रो. डॉ. रामबाबू गुप्ता .....शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(26) प्रो. डॉ. कहकशा खान .....शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(27) प्रो. डॉ. सोनाली नरगुन्दे .....पत्रकारिता एवं जनसंचार अध्ययनशाला देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(28) डॉ. भारती जोशी .....अजीवन शिक्षण विभाग देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(29) प्रो. डॉ. एम.डी. सोमानी .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू, जिला इन्दौर (म.प्र.)
(30) प्रो. डॉ. प्रीति भट्ट .....शासकीस एन.एस.पी. विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(31) प्रो. डॉ. संजय प्रसाद .....शासकीय महाविद्यालय, सांवेर, जिला इन्दौर (म.प्र.)
(32) प्रो. डॉ. मीना मटकर .....सुगनीदेवी कन्या महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(33) प्रो. मोहन वास्केल .....शासकीय महाविद्यालय, थांदला, जिला - झाबुआ (म.प्र.)
(34) प्रो. डॉ. नितिन सहारिया .....शासकीय महाविद्यालय, कोतमा, जिला अनूपपुर (म.प्र.)
(35) प्रो. डॉ. मंजु राजोरिया .....शासकीय कन्या महाविद्यालय, देवास (म.प्र.)
(36) प्रो. डॉ. शहजाद कुरैशी .....शासकीय नवीन कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, मूंदी, जिला खण्डवा (म.प्र.)
(37) प्रो. डॉ. शैल वाला गाँधी .....महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(38) प्रो. डॉ. प्रवीण ओझा .....श्री भगवत सहाय शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(39) प्रो. डॉ.ओमप्रकाश शर्मा .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, श्योपुर (म.प्र.)
(40) प्रो. डॉ. एस.के. श्रीवास्तव .....शासकीय विजया राजे कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(41) प्रो. डॉ. अनूप मोघे .....शासकीय कमलाराजे कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(42) प्रो. डॉ. हेमलता चौहान .....शासकीय महाविद्यालय, बड़नगर (म.प्र.)
(43) प्रो. डॉ. महेशचन्द्र गुप्ता .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.)
(44) प्रो. डॉ. मंगला ठाकुर .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वाह, जिला खरगोन (म.प्र.)
(45) प्रो. डॉ. के.आर. कुम्हेकर .....शासकीय महाविद्यालय, सनावद, जिला खरगोन (म.प्र.)
(46) प्रो. डॉ. आर.के. यादव .....शासकीय कन्या महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.)
(47) प्रो. डॉ. आशा साखी गुप्ता .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.)

(48) प्रो. डॉ. हेमसिंह मण्डलोई .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.)
(49) प्रो. डॉ. प्रभा पाण्डेय .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मैहर, जिला- सतना (म.प्र.)
(50) डॉ. राजेश कुमार .....शासकीय महाविद्यालय अमरपाटन, जिला-सतना (म.प्र.)
(51) प्रो. डॉ. रावेन्द्रसिंह पटेल .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)
(52) प्रो. डॉ. मनोहरलाल गुप्ता .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़ ब्यावरा (म.प्र.)
(53) प्रो. डॉ. मधुसुदन प्रकाश .....शासकीय महाविद्यालय, गंजबासोदा, जिला-विदिशा (म.प्र.)
(54) प्रो. श्रीमती भारती खरे .....एस.एस.एल. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, विदिशा (म.प्र.)
(55) प्रो. डॉ. सुनील वाजपेयी .....शासकीय तिलक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कटनी (म.प्र.)
(56) प्रो. डॉ. ए.के. पाण्डे .....शासकीय कन्या महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)
(57) प्रो. डॉ. यतीन्द्र महोबे .....शासकीय महिला महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.)
(58) प्रो. डॉ. शशि प्रभा जैन .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आगर-मालवा (म.प्र.)
(59) प्रो. डॉ. नियाज अंसारी .....शासकीय महाविद्यालय,सिंहावल, जिला सीधी (म.प्र.)
(60) प्रो. डॉ. अर्जुनसिंह बघेल .....शासकीय महाविद्यालय, हरदा (म.प्र.)
(61) डॉ. सुरेश कुमार विमल .....शासकीय महाविद्यालय, भैंसादेही, जिला बैतूल (म.प्र.)
(62) प्रो. डॉ. अमरकुमार जैन .....शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)
(63) प्रो. डॉ. रश्मि दुबे .....शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)
(64) प्रो. डॉ. ए.के. जैन .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीना, जिला- सागर (म.प्र.)
(65) प्रो. डॉ. संध्या टिकेकर .....शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला- सागर (म.प्र.)
(66) प्रो. डॉ. राजीव शर्मा .....शासकीय नर्मदा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(67) प्रो. डॉ. रश्मि श्रीवास्तव .....शासकीय गृह विज्ञान महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(68) प्रो. डॉ. लक्ष्मीकांत चंदेला .....शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
(69) प्रो. डॉ. बलराम सिंगोतिया .....शासकीय महाविद्यालय सौंसर, जिला-छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
(70) प्रो.डॉ. विम्मी बहल .....शासकीय महाविद्यालय, काला पीपल, जिला - शाजापुर (म.प्र.)
(71) प्रो. डॉ. अमित शुक्ल .....शासकीय ठाकुर रणमतसिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
(72) प्रो. डॉ. मीनू गजाला खान .....शासकीय महाविद्यालय, मक्सी, जिला-शाजापुर (म.प्र.)
(73) प्रो. डॉ. पल्लवी मिश्रा .....शासकीय महाविद्यालय, नई गढ़ी, जिला- रीवा (म.प्र.)
(74) प्रो. डॉ. एम.पी. शर्मा .....शासकीय महाविद्यालय, दतिया (म.प्र.)
(75) प्रो. डॉ. जया शर्मा .....शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)
(76) प्रो. डॉ. सुशील सोमवंशी .....शासकीय महाविद्यालय, नेपानगर, जिला बुरहानपुर (म.प्र.)
(77) प्रो. डॉ. इशरत खान .....शासकीय महाविद्यालय, रायसेन (म.प्र.)
(78) प्रो. डॉ. कमलेशसिंह नेगी .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)
(79) प्रो. डॉ. भावना ठाकुर .....शासकीय महाविद्यालय रेहटी, जिला सीहोर (म.प्र.)
(80) प्रो. डॉ. रामचन्द्र चौहान .....पंडित बालकृष्ण शर्मा नवीन शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शाजापुर (म.प्र.)
(81) प्रो. डॉ. रेणु राजेश .....शासकीय नेहरु अग्रणी महाविद्यालय, अशोक नगर (म.प्र.)
(82) प्रो. डॉ. अविनाश दुबे .....शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.)
(83) प्रो. डॉ. वी.के. दीक्षित .....छत्रसाल शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पन्ना (म.प्र.)
(84) प्रो. डॉ. राम अवेधश शर्मा .....एम.जे.एस. शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिण्ड (म.प्र.)
(85) प्रो. डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री .....सरोजिनी नायडू शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(86) प्रो. डॉ. समीर कुमार शुक्ला .....शासकीय चन्द्र विजय महाविद्यालय, डिण्डोरी (म.प्र.)
(87) प्रो. डॉ. आर.सी. पान्टेल .....शासकीय महाविद्यालय, धामनोद, जिला-धार (म.प्र.)
(88) प्रो. डॉ. अनूप परसाई .....शासकीय छत्तीसगढ़ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)
(89) प्रो. डॉ. अनिलकुमार जैन .....इन्दिरा गाँधी खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)
(90) प्रो. डॉ. अर्चना वशिष्ठ .....राजकीय राजऋषि महाविद्यालय अलवर (राज.)
(91) प्रो. डॉ. कल्पना पारीख .....एस.एस.जी. पारीख पी.जी. कॉलेज, जयपुर (राज.)
(92) प्रो. डॉ. गजेन्द्र सिरोहा .....पेसिफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)
(93) प्रो. डॉ. कृष्णा पैन्सिया .....हरिश आंजना महाविद्यालय, छोटीसादड़ी, जिला- प्रतापगढ़ (राज.)
(94) प्रो. डॉ. प्रदीप सिंह .....केंद्रीय विश्व विद्यालय हरियाणा, महेंद्रगढ़ (हरियाणा)
(95) प्रो. डॉ. स्मृति अग्रवाल .....शोध सलाहकार, नई दिल्ली

Color Change Mechanism In Vertebrates

Meena Swamy * Ankita Ghatkare **

Abstract - The process of colour change is mainly arises from pigmentation, anatomical structure, nervous control, hormomal regulation and phormacological regulation. Colouration in animals is produced by reflection and scattering of light by cells and tissues, and by absorption of light by chemical pigments within cells of the skin. In fishes, there are six kinds of chromic each recognized by its color. The light absorbing chromatophores are the melanophores (black & brown), erythrophores (red), cyanophores (blue) and xanthophores (yellow) colored chromatophores. Most fish, reptiles and amphibians undergo a limited physiological colour change in response to a change in environment. This type of camouflage, known as *background adaptation*, most commonly appears as a slight darkening or lightening of skin tone to approximately mimic the hue of the immediate environment. In fishes melanin pigment is aggregated within the centre of the cell, the skin appears very pale, whereas when it is dispersed through the arms of the melanophores towards the skin's surface, the animal appears dark while in chameleons, colour change occurs due to the movement of pigments within chromatophores. Hormones also cause color change by affecting these special pigment-bearing cells in the skin. In the case of amphibians color chang was also determined by specialized cells called chromatophores, which was in direct control of peripheral nerves system.

Keywords - Aggrigation, Colouration, Cyanophores, Erythrophores, Melanophores, Pigmentation, Scattering, Xanthophores.

Introduction - Many species of vertebrate such as fishes, Amphibians, Reptiles has the ability to change color. Animals change colour rapidly, either to hide or sneak up on prey or to signal to a mate / rival etc, this is known as physiological color change. The process of colour change is mainly arises from pigmentation, anatomical structure, nervous control, hormomal regulation and phormacological regulation. Colouration in animals is produced by reflection and scattering of light by cells and tissues, and by absorption of light by chemical pigments within cells of the skin. These pigments containing cells are called **chromatophores** and are largely responsible for generating skin and eye colour. The patterns and colors seen in fishes are produced by different layers of cells stacked together. These Pigment cells enable to change their coloration. It has been recognized that fish color changes can be divided into two categories; one is a physiological color change, which is attributed to rapid motile responses of chromatophores, and the other is a morphological color change, which results from changes in the morphology and density of chromatophores.

Chromatophores - Chromatophores are groups of cells containing pigment and light-reflecting organelles found in a wide range of animals including amphibians, fish, reptiles, crustaceans and cephalopods. Chromatophores are largely responsible for generating skin and eye colour in cold-blooded animals and are generated in the neural crest during embryonic development.These pigment cells found in a variety of animals. In non mammalian vertebrates, chromatophores are found in the dermis; in responses to various stimuli, the pigment in these cells is transported to or for the center of the cell change in the distribution of the pigment permit the animal to display variation birds, melanocytes producing melanin are the sole pigment cells responsible for their coloration

In vertebrate there are three main types of chromatophore:

- **Xanthophores,** which contain yellow-red pigments
- **Iridophores** containing colourless stacks of crystals or platelets that reflect and scatter light to generate hues such as blues, white and ultra-violet.
- **Melanophores**, which contain black melanin pigment. The melanophores play a very important role in colour change. They are large, star-like cells with long "arms" (dendrites) that extend towards the skin's surface.

Color Change Mechanism - Fish and amphibians possess specialized cells, called melanophores, which contain hundreds of melanin filled pigment granules, termed melanosomes. Melanosomes or melanocytes are cells located in the bottom layer, the basal lamina, of the skin's epidermis and in the middle layer of the eye. Melanophores transport their pigment in response to extracellular cause, neurotransmitters in the case of fish and hormonal stimuli in the case of frogs. It has been demonstrated that the background adaptation process is vision-dependent and that melanin translocation in melanophores is the major factor in colour change.

Color change mechanism in Fishes - It has been widely accepted that vertebrate melanocytes are controlled by either

* **Asst. Professor (Zoology) Govt. Auto. P.G. College, Chhindwara (M.P.) INDIA**
** **Guest Lecturer (Biotechnology) Govt. Auto. P.G. College, Chhindwara (M.P.) INDIA**

nerves alone or by a combination of nervous and endocrine system. (Bagnara and Hadley 1973; Fuji and Oshima 1994; Fuji 2000). In fishes, there are several kinds of chromatic cells each recognized by its color.Colour change occurs due to the movement of melanosomes within the melanophores. Melanophores are large flat cells that possess thousands of pigment granules; membrane bound organelles, which contain melanin, a black or dark brown pigment. The pigment granules are transported along microtubules at rates of about 1 mμ per sec. either towards or away from the cell center, most of the cell is unpigmented and an animal bearing such cell would appear lightly colored. When melanin pigment is aggregated within the centre of the cell, the skin appears very pale, whereas when it is dispersed through the arms of the melanophores towards the skin's surface, the animal appears dark. Because the arms of the melanophores extend between and over the other types of chromatophore (generating yellows, reds, blues, etc.), varying the degree of dispersion of the melanin can conceal or reveal those chromatophores, thereby varying the animal's colour.

When pigment granules are dispersed throughout the cell, the cell is uniformly pigmented and an animal bearing such cells would appear darkly colored. Movement of pigment granules in melanophores is easily visible by bright field microscopy (Haimo 1998).

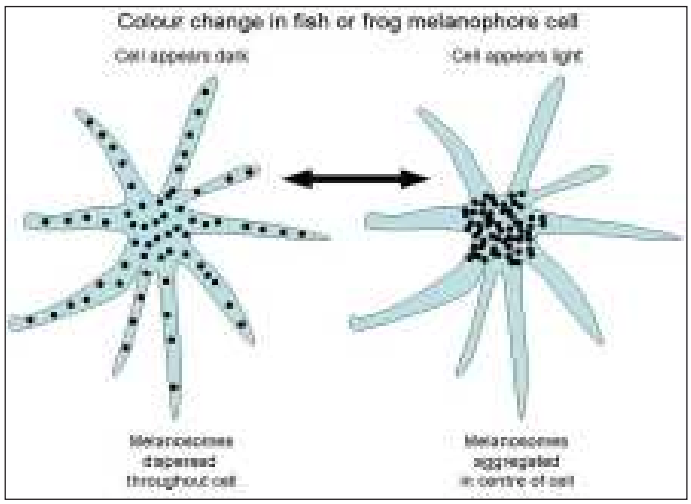

Color change mechanism in Amphibians - Amphibians may use their color to blend in with their environment to escape from predators, or brightly colored amphibians may avoid their predators by informing others that they are poisonous. Amphibians obtain their color during development and some change colors depending on which environment they are live in.

Study shows that amphibians (frog) color chang was also determined by specialized cells called chromatophores, which was in direct control of peripheral nerves system.The three types of chromatophores that are important in the coloration of amphibians are: melanophores, xanthophores and iridophores. The three types of chromatophores are localized such that the xanthophores are located uppermost, iridophores situated under that, and then the melanophores are located at the very bottom (Yasutomi and Yamada 1998). This special localization was termed as the Dermal Chromatophore Unit (DCU) (Bagnara et al., 1968). The DCU was found to form during metamorphosis. The DCU is located under the basal lamina,

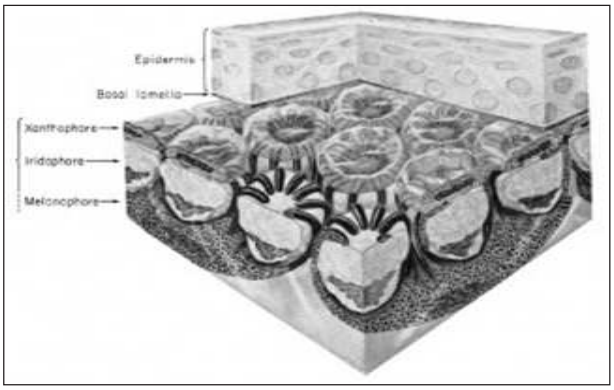

Many amphibians can change their dorsal color depending on the environment they are placed in.

Color change mechanism in Reptiles - Chameleons have a highly developed background adaptation response capable of generating a number of different colours very rapidly. They have adapted the capability to change colour when they are frightened and in response to temperature, mood, stress levels, and other environmental changes.

In chameleons, colour change occurs due to the movement of pigments within chromatophores. Hormones also cause color change by affecting these special pigment-bearing cells in the skin.

Chromatophores contain pigments in their cytoplasm, in three layers below their transparent outer skin:

1. The chromatophores present in the upper layer are xanthophores and erythrophores. This layer contains yellow and red pigments respectively.
2. Below the upper layer is a second layer of chromat ophores called iridophores or guanophores; these contain guanine which appears blue or white. This layer also contains tiny particles, much smaller than any of the wavelengths in visible light. When light having a mixture of colors strikes these cells, the bluer part of the light is scattered over a wide range of directions, while the redder part of the light is hardly scattered at all and mostly continues on in its original direction.
3. The deepest layer of chromatophores, called melanophores, contains the dark pigment melanin, which controls how much light is reflected. This layer is unusual because the granules of melanin can be moved around within the cell. The chameleon's hormones cause the granules of melanin to be either distributed widely throughout the cell or to be gathered together into one small clump near the center of the cell.

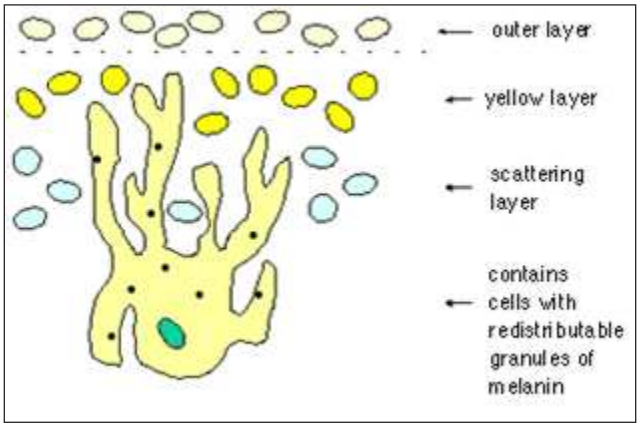

Dispersion of the pigment granules in the chromatophores sets the intensity of each color. When the pigment is equally distributed in a chromatophore, the whole cell is intensively colored. When the pigment is located only in the center of the cell, the cell appears mainly transparent. Chromatophores can rapidly relocate their particles of pigment, thereby influencing the animal's color.

Conclusion - In vertebrate colour change is a very useful ability. Rapid colour change may occur due to various "triggers" including temperature or light that is a reflexive response via light-sensitive receptors in skin. Most importantly, animals change colour in response to their surroundings including variations in background colour, presence of predators, mates or rivals.They need to assess their surroundings so that they know what colour to change to.Information about an animal's surroundings (from the senses) is processed by the brain and the brain sends signals directly, or via hormones, to chromatophores.

It was also found that colour-changing animals cannot generate their own body heat; colour change can help animals to regulate their body temperature. But perhaps the two most important functions of colour change are camouflage and communication.

References :-

1. **Bagnara, J.T. and Hadley, M.E. (1973)** Chromatophores and colour change. Prentice Hall, Englewood, Cliffs, New Jersey.
2. **Bhattacharya, S.K., Parikh, A.K. and Das, P.K., (1976).** Effects of catechol amines on the melanophores of *Rana tigerina.* Ind. J. Expt. Biol. Vol. 14: 486-488.
3. **Christopher V. Anderson** Historic and Contemporary Theories on Chameleon Color Change
4. **Fujii R (2000)** The regulation of motile activity in fish chromatophores. Pigment Cell Res 13:300-319.
5. **Fuji R., Oshima N. (1994)** Factors influencing motile activities of fish melanophores. Adv. in Comp.and Env. Physio. 20: 1-52.
6. **Haimo, L.T. (1998).** Reactivation of vesicle transport in teleost melanophores. Methods in enzymology. Academic press, San Deigo 298 : 389-399.
7. **Kasukawa H, Sugimoto M, Oshima N, Fujii R (1985)** Control of chromatophore movements in dermal chromatic units of blue damselfish melanophores. Comp Biochem. Physiol. 81C:253-257.
8. **Wikipedia**, the free encyclopedia Color change mechanism in ampfibians and Chemalion.

****

Camphor - A Miracle Plant Of Multiple Use

Dr Renu Rajesh *

Abstract - Plants are as old as the life on earth. Plants served the mankind always in almost all the areas of need. One such important plant is **CAMPHOR**, a member of family Lauraceae Its botanical name is ***Cinnamomum camphora***. Camphor has been in use as a culinary spice, a component of religious rituals and as a medicine for many centuries. It has its importance in astrology, folklore and myths. In Hindu mythology Lord Shiva is mentioned to be as white as camphor. In Sanskrit literature two varieties of camphor, on the basis of its preparation are mentioned. As native, camphor comes from China, Japan, Korea, Taiwan and adjacent parts of East Asia. Later on, however, it has become widely naturalized in many other countries. Camphor has six different chemotypes. It is a white crystalline substance. Every part of the tree and its volatile oil are important. Camphor is used to treat ailments ranging from parasitic infections to toothache; for all types of arthritic and rheumatic pains; as antihelminthic, antispasmodic, antiseptic, antiviral, antibacterial and expectorant. Its wood/veneer is important. As medicine camphor can be used internally or externally. Its oil has a dual action of hot and cold. Besides mant other uses it was also used as an important ingredient in the production of smokeless gunpowder and celluloid.

Key Words – Camphor, Karpur, Medicine, Camphor Oil, Dishes, Wood.

Introduction - Plants are as old as the life on earth. Plants served the mankind always in almost all the areas of need. Since the dawn of civilization plants are being used as medicines. There are different schools of herbal medicines. Two important ones are Traditional Herbal Medicine of India (Ayurveda) and Traditional Chinese Herbal Medicine (TCHM). In the 19th century, chemistry advanced and extraction of active ingredients started. A long list of plants is there, active principles of which are used and are effective as herbal medicines. One such important plant is **CAMPHOR** or **KAPUR** or **KARPUR**. It is a member of family Lauraceae and its botanical name is ***Cinnamomum camphora*** (L) Bercht. & Presl.

Scientific Classification of the plant

Kingdom	-	Plantae
Division	-	Magnoliophyta
Class	-	Magnoliopsida
Order	-	Laurales
Family	-	Lauraceae
Genus	-	***Cinnamomum***
Species	-	***camphora***

Common names of the plant are Camphor tree, Camphor wood, Camphor laurel etc. **Camphor plant is a long lived large evergreen tree** that grows up to 20-30m tall with a trunk up to 4.6m in diameter. The largest and oldest tree in Japan is said to be having a trunk length of 31m. The bright green, oval to elliptical alternate leaves have glossy, waxy appearance. Each leaf has three distinct yellowish veins. New foliage is rusty burgundy in color but older leaves are dark green on upper side and pale green underneath. When crushed the leaves smell of camphor. The plant produces masses of small, white fragrant flowers born on panicles in spring. Clusters (cup like little green cones) of black berry like fruits around 1cm in diameter are produced. Tree has very rough and vertically fissured pale bark. Camphor is easily identified by crushing the leaves, peeling a twig or bark which will release oils and scent of camphor. Camphor plant is propagated by seeds as soon as they get ripe. A large Camphor laurel tree may produce over 100,000 seeds every year which are readily spread by fruit eating birds. To grow it needs full sun to partial shade. Camphor tree tolerates clay, loam, sand, slightly alkaline to acidic soils and drought (established trees). Hardened off Camphor trees can survive temperature down to 10-15^{0}F. The plants need to be well drained or they may suffer root rot. A disease called Laura wilt is caused in Camphor plant by Ambrosia Beatle. Mistletoe also causes great damage to camphor tree. Still disease and insect pest problem are minimal and plant protection measures are seldom employed.

Camphor has been **in use as a culinary spice, a component of religious rituals, incense and as a medicine for many centuries**. It has its importance **in astrology, folklore and myths**. In Hindu mythology Lord Shiva is mentioned to be as white as camphor (**Karpur Gauram**). Camphor is a white crystalline substance. In Sanskrit literature **two varieties** of camphor, on the basis of its preparation, are mentioned. One is **Pakva** (prepared with the aid of heat) and **Apakva** (prepared without the aid of heat). Apakva is considered superior to the Pakva. In Chinese Pakva karpur is called as Zhangshu.

As native, camphor comes from China, Japan, Korea, Taiwan and adjacent parts of East Asia. Later on, however, it has become **widely naturalized in many other countries**. It can be cultivated successfully in subtropical countries such as India and Ceylon. Camphor was used as fragrant wood and incense resin in Egypt and Babylon. Much later it spread to Greece and Rome. One of the oldest uses of Camphor in its natural state was as a preservative for embalming the dead by ancient Chinese. During the era of Black Plague in Europe, a lump of Camphor worn around the neck was said to ward off disease. Camphor was particularly valued as a fumigant during Black Death (1350).

* **Professor (Botany) Govt Nehru Lead College, Ashoknagar (M.P.) INDIA**

Records of camphor marketed in China and India are traced back to 6th century. Camphor trees were harvested as building timber in China for at least a thousand year before that. From China, the market continued into the Arab trade routes, reaching Europe in the early middle ages. By the 1600, the Dutch East India Company was the principal European camphor trader. Earlier records also show that camphor was occasionally given as gifts or bribes among Chinese officials. In 1890s, Salve, a product of many plant ingredients with active camphor was the best selling product of a North Carolina pharmacist. Prior to and during the Japanese colonial era (1895-1945), in Taiwan, Camphor was used medicinally, as timber and as an important ingredient in the production of smokeless gunpowder and celluloid. It was one of the most lucrative articles of several important government monopolies under the Japanese. Before 1st world war, Taiwan (Formosa) was the major producer and exporter of Camphor. Camphor was a popular ingredient in candies in Medieval Europe in its edible forms. It was used to flavor some of the earliest ice creams during the Tang Dynasty in China.

In 1882, Camphor tree was introduced to Australia as an ornamental tree. Throughout Queensland and central to northern New South Wales due to wet subtropical climate it has spread itself and has been declared a noxious weed. Its root system disrupts drainage and sewerage systems and degrades river banks. Very high carbon contents of its leaves damage water quality. The Camphor content of leaf litter prevents seeds of other plants from germinating. By year 2000, Camphor plant had displaced native plants to become dominant species. **In around 1875, Camphor plant was introduced in the US**. In portions of many states of US, viz, Albama, California, Florida and many more it has become naturalized. In Florida, it has been declared a category 1 invasive species. **In India Camphor was introduced and cultivated** as an ornamental and as a source of Camphor in South India and also in Dehradun, Saharanpur and Calcutta at an elevation of 1500-2000m. **The word Camphor has its origin** from the French word **Camphre**, itself from Medieval Latin **Camfora**; from Arabic **Kafur** and from Malay **Kapur Barus** meaning "Barus Chalk" because of its white color. Barus was the port on the western coast of the Indonesian island Sumatra where foreign traders used to buy Camphor. **Camphor was first synthesized** by Gustaf Komppa in 1903. Komppa began industrial production in Tainionkoski, Finland, in 1907.

Six chemotypes i.e. chemical variants of Camphor laurel are Camphor, Linalool, 1, 8- Cineole, Nerolidol, Safrol and borneol. These Chemotypes are generally identified by country and by their odour. They seem dependent upon the country of origin of the tree.

Country	-	**Chemotype**
Taiwan and Japan	-	High in Linalool (80-85%)
India and Sri Lanka	-	High in Camphor (Dominant)
Madagascar	-	High in 1, 8- Cineole (40-50%)

Ravintsara is the commercial name given to Madagascar tree of *C. camphora.* The Cineole fraction is used to manufacture fake 'Eucalyptus Oil' in China. When trees are grown for leaf oil the chemotype of the planting material is checked by farmers.

Camphor is a bicyclic, saturated terpene ketone which exists in the optically active dextro (principal form) and levo forms and also recemic mixture of the two forms. It is a white, transparent, crystalline, solid substance with a strong pungent penetrating aromatic odour. It crystallizes in thin plates and sublime readily at ordinary temperature. Its chemical formula is $C_{10}H_{16}O$; melting point is 179.75^0C (452.9K) and boiling point is 204^0C (477K). It is highly soluble in organic solvent. Norcamphor is a Camphor derivative with the three methyl groups replaced by hydrogen atoms. Camphor can undergo various reactions like bromination, oxidation with nitric acid, conversion to isonitrosocamphor. Camphor can also be reduced to isoborneol using sodium borohydride. **Camphor is present in every part of the tree**, but is usually taken from the wood of mature trees by steam distillation. Trees are not touched until they are at least 40-50 years old. In Japan and Taiwan the drug comes from the root, trunk and branches of the old tree by sublimation. In America and India, it is taken from the leaves and twigs of the oldest trees. In India leaves are harvested 3-4 times a year. Synthetically camphor is produced from oil of turpentine. Camphor has a strong, penetrating, fragrant odour and a bitter, pungent taste.

Camphor oil (residual liquid left after crystallization of Camphor) is quite valuable product from Camphor tree, as it contains most of the volatile aromatic compounds. **Chemical constituents of Camphor oil** are 1, 8- cineole, alpha – terpinene, borneol, camphor, caivacrol, caryophyllene, citronellol, eugenol, geraniol, kaempferol, limonene, p – cymene, safrole and vanillin. **Camphor oil has a duel action** of hot and cold. It has a balancing effect on the yin and yang energies. When first applied camphor oil numbs and cools the peripheral sensory nerve endings. Then it warms the painful area as it stimulates circulation to cold, stiff muscles and limbs. Due to its effect on motor tract of the brain it may cause convulsions. In body it combines with glucoronic acid. It also relieves irritation of sexual organs. Due to its **analgesic effect** camphor is a favorite oil to relieve pain of muscles, low back and arthritic pain. Camphor also acts as an **expectorant**. It **cools fever** and helps clear lung congestion. **Camphor oil is readily absorbed by skin** not by the mucous membrane but easily absorbed by the subcutaneous tissue. It produces a feeling of cooling as is done by menthol. It acts as slight **local anesthetic**. Camphor oil is very useful in complaints of stomach and **spasmodic cholera**. Camphor **prevents infectious diseases.** It **stimulates the intellectual centers** and prevents narcotic drugs taking effect. **Camphor is used internally** for its calming influence in hysteria, nervousness and neuralgia. **Externally it is used** as a counter irritant in rheumatism, sprains and in inflammatory conditions. It is used **hypodermically for heart failure** with menthol and phenol. Thus Camphor has been used **to treat ailments ranging from parasitic infections to toothache; for all types of arthritic and rheumatic pains; as antihelminthic, antispasmodic, antiseptic, antiviral, antibacterial and expectorant**. Blended with lavender or tea tree, camphor acts as **astringent to combat oily skin** and acne. As medicine camphor, thus, can be used internally or externally.

Camphor is widely planted as a **shade tree, screen or wind break**. Since it is hard to burn the tree, it is highly valuable as a **shade tree in areas prone to wild fires**. **Camphor wood/veneer is important**. Camphor wood is prized for its attractive red and yellow striping, amenability to wood working and insect repelling properties. It is light to medium in weight and soft to medium in hardness. Wood from the camphor tree is not especially strong but it takes polishing well. Natural history cabinets for entomologists are made from the wood. It is commonly used for chests, coffins, instruments and sculptures. Camphor veneer is used in fine cabinets. It is **also used in photographic film and as a plasticizer** in the manufacturing of plastics. **To cure perspiring feet** it is put in shoes. Camphor is **used in perfumes**. The dried old leaves are **used as spice**. **As per astro reports** tree Camphor is under the influence of Mars. As **a protection against infectious disease**, a lump of Camphor is **worn around the neck**. In Hindu ceremonies, Camphor is burned in a ceremonial spoon **to perform arti**. It burns completely without leaving an ash residue which **symbolizes consciousness**. The traditional **forehead marking, the Tilak** is made from camphor and saffron to promote cool thinking and meditation. The twigs and leaves of the plant are used in smoking. Camphor oil is also **used in aroma lamps, steam inhalations and household cleaning** products. It is also an **insect repellent and flea killing** substance. It is **used as a component of fireworks**. It is added as a **plasticizer for nitrocellulose**. Solid camphor releases fumes that form a **rust preventive coating** and is therefore kept in tool chests to protect them from rust. Its crystals are **used to prevent damage to insect collections** by other small insects. Recently **carbon nanotubes** were successfully synthesized using camphor by a chemical vapor deposition process.

The Arabs used **Camphor to flavor both deserts and meat** dishes. In the 13th century an Andelusian Cookery book showed a recipe for meat with apples, flavored with Camphor and musk. Another recipe was Honeyed Dates flavored with Camphor. In some parts of Asia the **old leaves of the Camphor tree are dried and used as a spice** and condiments. Young shoots and leaves are cooked **as vegetables**. The roots of the young shoots are used **to make tea**. In India Camphor is widely used in cooking, mainly for **dessert dishes**. In South India Pachha Karpooram i.e. Green or Raw Camphor is used.

Because **Camphor is somewhat toxic** even at low concentration, it should not be used on broken skin, in the nostrils. If ingested in relatively large quantities it is poisonous and may lead to even death. Camphor **can break the placental barrier** and can damage the liver and nervous system of the fetus to induce abortion. In Chinese medicine Camphor is forbidden for pregnant women and for those with a deficiency of vital energy or yin. The **invasiveness trait of the tree** has damaging effects on wild life and natural communities. This tree should be grown and appreciated in its native range but not planted in other regions where species and environment have not adapted to aggressiveness and toxicity of this plant. The Plant Conservation Alliance lists this species as an Alien Invader and it is listed as a category I invasive exotic species by the Florida Exotic Pest Plant Council i.e. invading and disrupting native plant Communities in Florida.

The Camphor tree is one of the few trees which **survived the atomic bombing of August 6th, 1945, on Hiroshima**. In 1973 Hiroshima declared Camphor tree as Hiroshima's City Tree. **Camphor, the Miracle Plant, has been deeply embedded within human culture from ancient times and is still an important part of our life.**

References :-

1. Camphor, Camphor oil, Medicinal uses/mhtml doc/ Anniesremedy.com
2. Camphor Oil, Its history/eHow.com
3. Kumar M, Ando Y (2007). "Carbon Nanotubes from Camphor: An Environment-Friendly Nanotechnology". J Phys Conf Ser. 61: 643–6
4. Pandey B. P., 1988, Economic Botany, S. Chand and Company, New Delhi
5. Ravindran, P N, NirmalBabu, K, Shylaja M, 2004, Cinnamon & Cassia, ed, CRC Press
6. Schulz V, Hansel R, Tayler v, Rational Phytotherapy: A Physician's Guide to Herbal Medicine, Berlin and Heidelberg:Springer, 1998
7. Singh and Jain, 1990, Taxonomy of Angiosperms, Rastogi Puplications, Meerut, India
8. www.eattheweed.com/camphor-tree-cinnamon's-smelly-cousin by Green Deane
9. Zodiac Signs Astrology and Plants/Humanwelfare/ mhtml:file/findyourfate.com

FIGURE - ***Cinnamomum camphora*** **tree (A), wood (B) and seeds (C)**

SOURCE - www.mdpi.com/journal/molecules, Camphor—A Fumigant during the Black Death and a Coveted Fragrant Wood in Ancient Egypt and Babylon—A Review Weiyang Chen, Ilze

Floristic Studies In Govt. P. G. College Alirajpur Campus (Madhya Pradesh) India

Jeetendra Pachaya * **Jeetendra Sainkhediya** **

Abstract - Alirajpur is situated in the south west corner of Madhya Pradesh. Alirajpur is declared as a new district on 17th May 2008. It is declared as tribal district due presence of thick population of tribals in the region. Dry deciduous forest is found in the area. Major part of the area is covered by the Deccan trap. Floristic studies were carried out in The Govt. PG College Alirajpur, Madhya Pradesh. College campus is extended over 14.5 acres of land. The campus area are the representative of climax vegetation and exhibit the diversity of species such as trees, climbers, epiphyte and other shade loving herbs. Botanical gardens are the storehouses of valuable medicinal and other plants having high economic value and serve as a refuge to threatened species. The present study was conducted to study the campus vegetation floristic point of view in Alirajpur district, Madhya Pradesh. In all 191species of angiospermic plants were identified out of which 96 species belong to 114 genera and 40 families of dicotyledons and 29 species, 25 genera and 7 families of monocotyledons.

Keyword - Alirajpur, Floristic studies, vegetation, Botanical garden, Dry deciduous forest.

Introduction - In these days living beings are the "Islands in the sea of death." In our history showed that mankind has been benefited from plants in many ways, fundamentally for food and shelter and other purposes including clothing, medicines and cosmetics to name the few. Botanical gardens of Government college campuses of the state are forest fragments of varying sizes, which are communally protected and which usually have a significant religious connotation for the protecting community. Harvesting of the plants is usually prohibited within the campus. Each and every member protects these areas. In some cases even today members of the community take turns to protect the area. All around the globe, different cultures have made use of plants that grew around them. The plant diversity at any site is influenced by species distribution and abundance patterns (Reddy et al.2014). The richness of flowering plants makes India one of the mega diversity countries in the world with four biodiversity hotspots and three mega centers of endemism. India ranked seventh among 17 mega diversity countries of the world and more than 17,000 species of higher plants are reported to India (Anonymous 1993, Shiva 1996). Biodiversity keeps the ecological processes in a balanced state, which is necessary for human survival (Kaur & Sharma 2014).In the present work is designed with an objective to study the floristic diversity and documentation of campus flora.

Study Area - Alirajpur District was carved out of Jhabua District on 17th May 2008. The distance of Alirajpur from Indore is 220 km. whereas Vadodara is only 150 km. away. Dahod is the nearest railway station, which is connected by road by 70km. A village called Amkhut is considered as Switzerland of M.P. and another village named "Kathiwada" is called 'Cherapunji' of M.P. In 18th century the ruler of this town known as Rajpur had the capital at "Aali ", nearby village but unfortunately the capital was destroyed by fire and hence transferred to this town and was renamed as 'Alirajpur'. Alirajpur district lying between $22^0$18'N latitude and $74^0$20'E longitude, covers an area of 3182 square kilometers. Mahee and Narmada rivers make its Eastern and Southern border. According to census 2011, Alirajpur population is 728,999. Alirajpur District average Rainfall is 850 mm. Alirajpur District temperatures ranges between 23^0- 30^0C. Bhagoriya is a special cultural public festival of Alirajpur district.

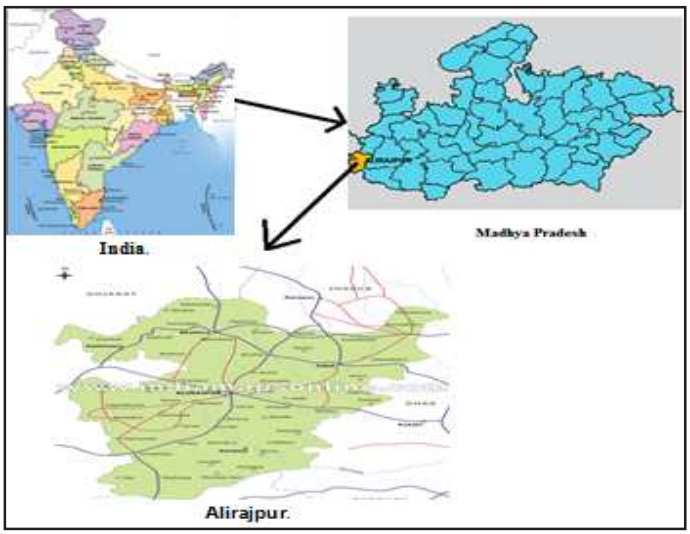

Fig. -1 map showing study area

Methodology - Floristic studies were carried out in the Govt. P. G. College, Alirajpur campus during 2014-2015.Collecting the plant species and data in different seasons. All habitats

* Asst. Prof. (Botany) Govt. P. G. College, Alirajpur (M.P.) INDIA
** Research Scholar (Botany) Govt. P. G. College, Alirajpur (M.P.) INDIA

of the study area surveyed carefully. Plant collection carried out by standard method (Jain and Rao,1977). Plant specimens were preserved by dipping the whole specimens in saturated solution of Mercuric chloride and alcohol. Dry and preserved plants mounted on herbarium sheets by adhesive glue and fevicols. Identification of plants done with the help of flora (Verma et.al., 1993; Sing et al.,2001; Mudgal et al,.1997; Khanna et al., 2001; Oommachan, 1977; Shah, 1978; Duthi, 1960; Gamble, 1915; Hains,1921-1924; Cook, 1903; Hooker, 1872-1897; Naik, 1998) and other taxonomic literature.

Result & Disccusion - An extensive plant survey was carried out in the Govt. P. G. College, Alirajpur campus during 2014-2015.During the survey more than 300 plants were collected from Govt. P. G. College, Alirajpur campus. Among them 191 plant have been identified. Out of 191 angiospermic plants, 162 species, 114 genera, 40 families are belonging to dicotyledonous while 29 species 25 genera and 7 families belonging to monocotyledons (Table-1).Due to various factors such as changing environmental conditions, biotic factors, destruction of habitat etc. biotic factors, destruction of habitat some plant species facing threats for their existence. Conservation of the campus flora is one of the vital segments in the natural resource management. The Govt. PG College Alirajpur; Madhya Pradesh, India shows rich Floristic diversity in respect to the distribution of species, genera and families of both dicotyledons and monocotyledons.Table-2 indicates a list of flowering plants which are found in campus. Before few decades, Govt. P.G. College Alirajpur campus has floristically very rich with diverse habitats. But due to various factors the vegetation of the campus has caused rapid destructions of habitats of the plants.

Table-1: Distribution of angiospermic plants in Govt. P. G. College, Alirajpur campus

Angiosperm		Species	Genera	Families
	Polypetalae	96	63	22
Dicotyledons	Gamopetalae	54	42	13
	Monochla--mydeae	12	09	05
	Total	162	114	40
Monocotyledons		29	25	07
	Grand total	191	139	47

Table-2: List of flowering plants of Govt. P. G. College, Alirajpur campus

1.	*Annonaceae*	*Annona reticulata L.*
2.		*Annona squamosa L.*
3.	*Menispermaceae*	*Cissampelos pareira L.*
4.		*Cocculus hirsutus (L.) Theob.*
5.		*Tinospora sinensis (Lour.) Merr.*
6.	*Papaveraceae*	*Argemone Mexicana L.*
7.	*Capparaceae*	*Capparis decidua (Forssk.) Edgew.*
8.		*Capparis grandis L.f.*
9.		*Capparis sepiaria L.*
10.	*Cleomaceae*	*Cleome gynandra L.*
11.	*Polygalaceae*	*Polygala arvensis Willd.*
12.		*Polygala erioptera DC*
13.	*Dipterocarpaceae*	*Shorea robusta Gaerth f.*
14.		*Abutilon hirtum (Lam.) Sweet.*
15.		*Abutilon indicum (L.) Sweet*
16.		*Adansonia digitata L.*
17.		*Bombax ceiba L.*
18.		*Corchorus aestuans L.*
19.		*Corchorus fascicularis Lam.*
20.		*Corchorus olitorius L.*
21.		*Grewia flavescens Juss.*
22.		*Grewia hirsuta Vahl.*
23.		*Grewia sapida Roxb. ex DC.*
24.		*Sida acuta Burm. F.*
25.		*Sida cordata (Burm.f.) Borss.Waalk.*
26.		*Sida cordifolia L.*
27.		*Triumfetta malebarica J.Koenig ex Rottb.*
28.	*Malpighiaceae*	*Hiptage benghalensis (L.) Kurz*
29.	*Zygophyllaceae*	*Tribulus terrestris L.*
30.	*Oxalidaceae*	*Biophytum reinwardtii (Zucc.) Klotzsch.*
31.		*Biophytum sensitivum (L.) DC.*
32.		*Oxalis corniculata L.*
33.	*Rutaceae*	*Aegle marmelos (L.) Correa*
34.		*Murraya paniculata (L.) Jack*
35.	*Simaroubaceae*	*Ailanthus excelsa Roxb.*
36.	*Meliaceae*	*Azadirachta indica A.Juss.*
37.		*Melia azedarach L.*
38.	*Rhamnaceae*	*Ventilago denticulata Willd.*
39.		*Ziziphus mauritiana Lam. (Ziziphus jujuba Mill)*
40.		*Ziziphus nummularia (Burm.f.) Wight & Arn.*
41.	*Vitaceae*	*Ampelocissus latifolia (Roxb.) Planch.*
42.	*Sapindaceae*	*Cardiospermum halicacabum L.*
43.	*Anacardiaceae*	*Mangifera indica L.*
44.	*Leguminosae*	*Abrus precatorius L.*
45.		*Aeschynomene aspera L.*
46.		*Aeschynomene indica L*
47.		*Alysicarpus bupleurifolius (L.) DC.*
48.		*Alysicarpus tetragonolobus Edgew.*
49.		*Butea monosperma (Lam.) Taub.*
50.		*Cajanus platycarpus (Benth.) Maesen*
51.		*Cajanus scarabaeoides (L.) Thouars*
52.		*Clitoria annua J.Graham*
53.		*Clitoria ternatea L.*
54.		*Crotalaria albida Roth .*
55.		*Cullen corylifolium (L.) Medik.*
56.		*Dalbergia latifolia Roxb.*
57.		*Dalbergia sissoo DC.*
58.		*Desmodium dichotomum (Willd.) DC.*

59.		Desmodium scorpiurus (Sw.) Desv.
60.		Indigofera trifoliata var. duthiei (Naik) Sanjappa
61.		Indigofera linifolia (L.f.) Retz.
62.		Indigofera linnaei Ali
63.		Indigofera tinctoria L.
64.		Lathyrus aphaca L.
65.		Pongamia pinnata (L.) Pierre
66.		Rhynchosia minima (L.) DC.
67.		Rhynchosia bracteata Baker
68.		Tephrosia pumila (Lam.) Pers.
69.		Tephrosia purpurea (L.) Pers.
70.		Zornia gibbosa Span.
71.		Bauhinia purpurea L.
72.		Bauhinia racemosa Lam.
73.		Caesalpinia bonduc (L.) Roxb.
74.		Cassia fistula L.
75.		Cassia javanica L.
76.		Senna alata (L.) Roxb.
77.		Senna alexandrina Mill.
78.		Senna hirsuta var. puberula H.S.Irwin & Barneby
79.		Senna occidentalis (L.) Link
80.		Tamarindus indica L.
81.		Acacia auriculiformis Benth.
82.		Acacia leucophloea (Roxb.) Willd.
83.		Acacia nilotica (L.) Delile ssp. indica (Benth.) Brenon
84.		Albizia amara (Roxb.) B.Boivin
85.		Albizia lebbeck (L.) Benth.
86.		Mimosa rubicaulis Lam.
87.		Pithecellobium dulce (Roxb.) Benth.
88.		Prosopis cineraria (L.) Druce
89.	Myrtaceae	Syzygium cumini (L.) Skeels
90.	Onagraceae	Ludwigia octovalvis (Jacq.) P.H.Raven
91.	Cucurbitaceae	Citrullus colocynthis (L.) Schrad.
92.		Coccinia grandis (L.) Voigt
93.		Ctenolepis garcini (L.) C.B.Clarke
94.		Luffa echinata Roxb.
95.		Luffa tuberosa Roxb.
96.	Apiaceae	Centella asiatica (L.) Urb.
97.	Rubiaceae	Catunaregam spinosa (Thunb.) Tirveng.
98.		Spermacoce articularis L.f.
99.		Spermadictyon suaveolens Roxb.
100.	Compositae	Ageratum conyzoides (L.) L.
101.		Blumea eriantha DC.
102.		Blumea fistulosa (Roxb.) Kurz
103.		Conyza japonica (Thunb.) Less. ex Less.
104.		Cyathocline purpurea (Buch.-Ham. ex D.Don) Kuntze
105.		Eclipta prostrata (L.) L.
106.		Sonchus asper (L.) Hill
107.		Sonchus brachyotus DC.
108.		Tridax procumbens (L.) L.
109.		Xanthium strumarium L.
110.	Sapotaceae	Madhuca longifolia var. latifolia (Roxb.) A.Chev.
111.	Oleaceae	Nyctanthes arbor-tristis L.
112.	Apocynaceae	Nerium oleander L.
113.		Tabernaemontana divericata (L.)
		R.Br. ex Roem. & Schult.
114.		Hemidesmus indicus (L.) R. Br. ex Schult.
115.		Calotropis gigantea (L.) Dryand.
116.		Calotropis procera (Aiton) Dryand.
117.		Pergularia daemia (Forssk.) Chiov.
118.		Telosma cordata (Burm. f.) Merr.
119.		Dregea volubilis (L.f.) Benth. ex Hook.f.
120.	Gentianaceae	Canscora diffusa (Vahl) R.Br. ex
		Roem. & Schult.
121.		Enicostema axillare (Poir. ex Lam.) A.Raynal
122.		Exacum tetragonum Roxb.
123.		Exacum pedunculatum L.
124.		Hoppea dichotoma Willd.
125.	Boraginaceae	Bothriospermum tenellum (Hornem.) Fisch. & C.A.Mey.
126.		Cynoglossum zeylanicum (Vahl) Brand
127.	Convolvulaceae	Argyreia bella Raizada
128.		Ipomoea hederifolia L.
129.	Solanaceae	Datura stramonium L.
130.		Physalis minima L.
131.		Solanum anguivi Lam.
132.		Solanum incanum L.
133.		Withania somnifera (L.) Dunal
134.	Acanthaceae	Barleria cristata L.
135.		Gantelbua urens (B.Heyne ex Roxb.) Bremek.
136.		Haplanthodes tentaculatus (L.)
		R.B.Majumdar
137.		Haplanthodes verticillatus (Roxb.) R.B.Majumdar
138.		Hemigraphis hirta (Vahl) T.Anderson
139.		Rungia pectinata (L.) Nees
140.		Rungia repens (L.) Nees
141.		Thunbergia fragrans Roxb.
142.	Verbenaceae	Lantana aculeata L.
143.	Lamiaceae	Hyptis suaveolens (L.) Poit.
144.		Leucas aspera (Willd.) Link
145.		Leucas biflora (Vahl) Sm.
146.		Ocimum basilicum L.
147.		Ocimum americanum L.
148.	Nyctaginaceae	Boerhavia diffusa L.
149.		Boerhavia repens L.
150.	Amaranthaceae	Achyranthes aspera L.

151.		*Achyranthes aspera var. porphyristachya (Wall. ex Moq.) Hook.f.*
152.		*Aerva lanata (L.) Juss.*
153.		*Amaranthus viridis L.*
154.		*Celosia argentea L.*
155.	*Aristolochiaceae*	*Aristolochia bracteolata Lam.*
156.	*Euphorbiaceae*	*Acalypha indica L.*
157.		*Euphorbia caducifolia Haines*
158.		*Euphorbia chamaesyce L.*
159.		*Euphorbia hirta L.*
160.		*Jatropha curcas L.*
161.		*Jatropha gossypiifolia L.*
162.	*Phyllanthaceae*	*Phyllanthus emblica L.*
163.	*Moraceae*	*Ficus hispida L.f.*
164.		*Ficus religiosa L.*
165.	*Hypoxidaceae*	*Curculigo orchioides Gaertn.*
166.	*Asparagaceae*	*Asparagus racemosus Willd.*
167.	*Commelinaceae*	*Commelina benghalensis L.*
168.		*Commelina diffusa Burm.f.*
169.	*Arecaceae*	*Phoenix sylvestris (L.) Roxb.*
170.	*Araceae*	*Amorphophallus bulbifer (Roxb.) Blume*
171.	*Cyperaceae*	*Bulbostylis barbata (Rottb.) C.B.Clarke*
172.		*Cyperus alopecuroides Rottb.*
173.		*Cyperus rotundus L.*
174.	*Poaceae*	*Alloteropsis cimicina (L.) Stapf*
175.		*Andropogon pumilus Roxb.*
176.		*Apluda mutica L.*
177.		*Arundo donax L.*
178.		*Bambusa bambos (L.) Voss*
179.		*Cymbopogon martini (Roxb.) W.Watson*
180.		*Cynodon barberi Rang. & Tadul.*
181.		*Cynodon dactylon (L.) Pers.*
182.		*Dactyloctenium aegyptium (L.) Willd.*
183.		*Digitaria ciliaris (Retz.) Koeler*
184.		*Dinebra retroflexa (Vahl) Panz.*
185.		*Echinochloa colona (L.) Link*
186.		*Eragrostis ciliaris (L.) R.Br.*
187.		*Heteropogon contortus (L.) P.Beauv. ex Roem. & Schult.*
188.		*Isachne globosa (Thunb.) Kuntze*
189.		*Polytrias indica (Houtt.) Veldkamp)*
190.		*Sorghum halepense (L.) Pers.*
191.		*Tripogon jacquemontii Stapf*

Acknowledgement - Our sincere thanks to Dr. M. L. Nath Principal Govt. P. G. College, Alirajpur for providing research and library facilities. Help and co-operation during plant survey rendered by local people of Govt. P. G. College, Alirajpur campus is highly acknowledged.

References :-

1. Anonymous, 1993.Conservation on Biological diversity. Mexico
2. Baleeshwar Reddy, V. Hanumantha Rao, A. Vijaya Bhasker Redy and V. Vasudeva Rao, 2014. Diversity and richness of herb species in peddagattu, the proposed site for uranium mining, nalgonda district, telangana state, india. Global Journal of Multidisciplinary Studies. 11:(3).197-204.
3. Cook T, 1903.Flora of the presidency of Bombay.BSI Publications Calcutta, India.1-3
4. Duthi JF, 1960.Flora of the upper Gangetic plains.BSI Publications Calcutta, India.2
5. Gamble JS, 1915.Flora of the presidency of Madras.1-3
6. Hains HH, 1921-1924.The Botany of Bihar and Orissa.BSI Reprint, Calcutta, India.1-3
7. Hooker JD,1892-1897.Flora of British India.BSI Publication, Calcutta, India.1-7
8. Jain SK and Rao RR, 1976.A Handbook of Herbarium methods. Today and tomorrow publ. New Dehli.
9. Kaur & Sharma 2014. Diversity and Phytosociological Analysis of Tree Species in Sacred Groves of Vijaypur Block, Samba (J&K). International Journal of Science and Research. Volume 6:(3).859-862.
10. Khanna KK, Kumar A, Dixit RD and Singh NP, 2001. Supplementary flora of Madhya Pradesh. BSI Publications, Calcutta, India.
11. Mudgal V,Khanna KK and Hajara P K, 1997. Flora of Madhaya Pradesh.2.
12. Naik VN, 1998. Flora of Marathwada. Amrut prakashan, Aurangabad, India.1-2
13. Oommachan M 1997.Flora of Bhopal J. K. Jain brothers Bhopal, India.
14. Shah GL, 1978.Flora of Gujarat state. University press, S. P. University, Vallabh Vidhyanagar, Gujarat, India.1-2
15. Shiva MP,1996. Inventory of forest resources for sustainable management and biodiversity conservation. Indus publishing company, New Delhi.
16. Verma DM, Balakrishnan, NP and Dixit RD, 1993. Flora of Madhya Pradesh. BSI Publication, Calcutta, India.1

****

Study Of Locally Available Wild Edible Plants Usage By Tribals Of Balaghat District (M.P.)

Dr. B.K. Bramhe * Dr. Arvind Wasnik ** Praveen Koushley ***

Abstract - The forest of the Balaghat provide a large number of plants whose fruits, seeds, tubers shoots, leaves etc. make important contribution to the diet of tribals. These plants not only provide inexpensive food but several other useful products like medicine, fiber, fodder, dyes etc. they also provide useful genus for crop improvement. The study of wild edible plants is important not only to identify the potential sources which could be utilized as alternative food or in time of scarcity but to select promising types for domestication.

Introduction - Balaghat district is mainly tribal dominated areas and most part of its cover with forest. Balaghat district forms a part of Satpura hills. Its lies between the latitude $21^0$19' and $22^0$24' north and longitude $79^0$31' to $81^0$3' east. The tribal people here are mainly dependent on agriculture and forest resources for their socio-economic requirements. Recently the role of ethno botanical studies in trapping the old traditional folk knowledge as well in searching new plant sources of food drug etc. In India, studies on wild food plants have been carried out by several workers. (See Jain 1991). The author, while working on the medicinal plants of Balaghat, collected information on the subject.

The study indicated the presence of a large number of wild edible plants in the district; however the paper enumerates only those species which are used as food by the people of this region.

Materials and Methods - The method adopted for the ethno botanical survey was the one adopted by Schulte's (1962) and Jain (1981). Extensive survey was carried out in different seasons. Several field trips were made to different localities of the district during 2008-2011.

The detailed information regarding of edible plants from local people, Gunia (Medicine man). Effectiveness of the usage was also verified by local peoples of that area. The detailed information of plants, regarding species, its local name, family and food values are described.

Results and Discussion- The present study records 52 wild plants which are eaten whole or in part by the local people. A list of these plants along with their family, local name, habit, extant of use, parts used and mode of usage have been provided.

The plant species have been arranged alphabetically with their family, application and mode of administration in a table (see in next page)-

Conclusions - The present study records 52 wild growing plants which are eaten whole or in part by the local people. During present observation and interaction with Baiga and Gond tribes 52 wild plants has been enumerated with their edible value. From the survey conducted, it is seen that the tribals are utilizing the resources in a sustainable manner by maintaining them as a renewable resource. The tribals by their natural instinct have perfected this technique without compromising the welfare of future generations.

Acknowledgement - The author is indebted to Dr. A. A. Khan, Ret. Prof. A. P. S. University Rewa, and Dr. S. K. Chile Professor, Govt. P. G.College Seoni, (M.P.) for their supervision and valuable suggestion throughout the course of the study.Author also thankful to tribals and local peoples and forest authorities for their cooperation and sharing their knowledge during study period.

References: -

1. Bramhe B. K. 2013 Social Change and Development in India Gayatri Publication Rewa Page No.- 452-454.
2. Khan A. A. ; Verma A. K. and Sing, M. P. (2003) Certainethnobotanical informations on food and medicinal plants from Rewa Division of Madhya Pradesh with special reference to rare and endengerd species J. Econ. Taxon. Bot, 27 (2) : 249-54.
3. Jain, S.K. 1981 (Ed.) Glimpses of Indian Ethno botany. Oxford & I.B.H. Publishing Co. New Delhi.
4. Jain S. K. 1991. Dictionary of Indian Folk Medicine and Ethnobotany.Deep Publisher, New Delhi.
5. Jain S. K. 1963A. Wild Plantfoods of Tribals of Bastar. Proc. Nation. Instt. India 30B : 56-80.
6. Sing, H. B. & Arora, R. K. 1978, wild edible plants of India, ICAR, New Delhi.

* Asst.Professor (Botany) Govt. P.G.College, Balaghat (M.P.) INDIA
** Asst. Professor (Botany) Govt. P.G.College, Balaghat (M.P.) INDIA
*** Asst. Professor (Botany) Govt. P.G.College, Balaghat (M.P.) INDIA

The plant species have been arranged alphabetically with their family, application and mode of administration in a table given below-

SN	Name of Taxa and family	Vernacular name	Habit	Locality	Part use as food
1	Amorphallus campanulantus L. (Araceae)	Jangali suran	Herb	Lougoor Baihar	Boiled petiole and corm.
2	Amaranthus spinosus (L.) (Amaranthaceae)	Choulai	Herb	Bithali,Gadhi ,Mukki	Leaves as vegetable
3	Bauhinia Vahlii Benth. Caesalpiniaceae	Maur patta, Chatodi patta	Lina	Bithali, Bithali, Mukki	Unripe Pods are used as vegetable.
4	Cassia tora (L.) (Caesalpiniaceae)	Chakauda, Chirotha	Herb	Baihar, Gidori	Cooked leaves as vegetable.
5	Chenopodium album Amaranthaceae	Bathua	Herb	Katangi, Baihar	Cooked leaves as vegetable.
6	Curcuma angustifolia Roxb. (Zingiberaceae)	Tikhur	Herb	Gidori, Logoor, Mukki	Boild or roasted rhizome used as vegetable.
7	Discoria hispida (Dennst.)	Baichandi kanda	Herb	Bithli, Songudda	Treated tuber eaten, made in to chips.
8	Dendrocalamus StrictusPoaceae	Bans	Shrub	Bithli, Logur, Kanha	Young green shoots are eaten & seeds also eaten
9	Ipomoeia aquatic (Forsk) Convolvulaceae	Karma bhaji	Herb	Katangi , Bithli	Leaves as vegetable.
10	Phonix sylvestris (L.)Arecaceae	Chhind	Tree	Baihar, Ukwa	Ripe fruits
11	Momordica dioica Roxb. Cucarbitaceae	Katwal	Herb	Baihar, Katangi, Lanji	Unripe Fruits are used as vegetable.
12	Madhuca latifolia Roxb. (Sapotaceae)	Mahua	Herb	Bithli, Baihar	Seed oil is used to cooked vegetable and flower also eaten.
13	Nelumbo nucifera (Gaertn.) Nymphaeaceae	Kamal		Baihar, Supkhar,	Rhizome as vegetable.
14	Ophioglossum reticulatum L. Ophioglossaceae	Fern	Herb	Bithli	Leaves as vegetable.
15	Solanum xanthocarpum (Solanaceae)	Bhata kateri	Herb	Baihar, Damoh	Unripe Fruits are used as vegetable.
16	Celosia argentea L. Amrenthaceae	Safed Murga	Herb	Tirodi, Katangi, Baihar, Lanji	Leaves are used as vegetable
17	Syzygium cumini L.Myrtaceae	Jamun	Tree	Tirodi, Katangi, Baihar, Lanji	Ripe fruits
18	Holorrhina antidisentrica Apocynaceae	Kudo	Herb	Tirodi, Katangi, Baihar, Lanji	Flower are used as vegetable.
19	Cassia fistulaCesalpiniaceae	Amaltas	Tree	Tirodi, Katangi Baihar, Lanji	Flower are used as vegetable.
20	Momordica carrentia Cucarbitaceae	Karela	Herb	Tirodi, Katangi, Baihar, Lanji	Fruit and Young Shoots are used as vegetable.
21	Chorcorus olitorius L.Tiliaceae	Chech Bhaji	Herb	Tirodi, Katangi, Baihar	Leaves are used as vegetable.
22	Basella alba L.Basellaceae	Poi bhaji	Herb		Leaves are used as vegetable.
23	Dolichos biflorusPapillionaceae	Kulthi	Herb	Baihar	Seeds are used as Dall
24	Paspalum scrobiculatum L. Poaceae	Kodo	Herb	Baihar	Coocked Seeds are used as Daliya or Bhat
25	Echinochola frumentaceaPoaceae	Kutki	Herb	Baihar	Coocked Seeds are used as Daliya or Bhat
26	Eleusine coracanaPoaceae	Mandiya	Herb	Baihar	Coocked Seeds are used as Daliya or Bhat
27	Diospyros Montana Roxb.Ebnaceae	Tendu	Herb	Katangi, Baihar	Ripe fruits are eatten

28	Buchanania Lanzan Spreng. Anacardiaceae	Achar	Tree	Katangi, Baihar	Ripe fruits are eatten
29	Centella asiatica L.Apiaceae	Bramhi	Herb	Baihar, Bithli	Leaves as vegitable
30	Asparagus racemosus L.Liliaceae	Satawar	Herb	Baihar	Roots are eatten
31	Chlorophytum tubrosumLiliaceae	Safed Musli	Herb	Baihar	Roots are eatten
32	Portulaca oleracea L.Portulaceae	Nonia bhaji	Herb	Katangi,Baihar	Leaves as vegetable.
33	Cordia dichotoma Forst. Boraginaceae	Selwat	Tree	Baihar ,Lanji, Katangi	Unripe Fruits are used as vegetable.
34	Annona squamosa Linn. Annonaceae	Sitafal	Small Tree	Baihar, Katangi, Lanji, Lalburra	Unripe And Ripe fruits are eatten
35	Schleichera oleosa Lour. Sapindaceae	Kosum	Tree	Baihar, Katangi	Ripe fruits
36	Ziziphus oenopila L.Rhamnaceae	Aeroni	Shrub	Baihar, Katangi,	Ripe fruits
37	Aegle marmelos Correa.Rutaceae	Bel	Tree	Baihar, Katangi, Lanji	Ripe fruits
38	Bridelia crenulata Roxb Euphorbiaceae.	Kasai	Tree	Lalburra, Baihar	Ripe fruits
39	Cucumis callosus Rottl. Cucurbitaceae	Bodela	Herb	Baihar, Katangi, Lanji	Unripe Fruits are used as vegetable.
40	Theriophonum minutum (Willd.) BaillonAraceae	Undir kaan	Herb	Baihar	Leaves are used as vegetable.
41	Nymphaea nouchali Burm.F. Nymphaeaceae	Kamal	Herb	Baihar, Supkhar,	Rhizome as vegetable.
42	Brassica campestris LBrassicaceae	Sarson	Herb	Baihar, Supkhar,	Oil from seeds
43	Grewia hirsute Vahi.Tiliaceae	Gursakri	Herb	Baihar, Katangi, Lanji	Ripe fruits
44	Oxalis corniculata Linn.Oxlidaceae	Khatti buti	Herb	Baihar,Supkhar	Leaves are used as vegetable.
45	Mangifera indica L.Anacardiaceae	Aam	Tree	Baihar, Katangi, Lanji	Unripe Fruits are used as vegetable.
46	Semecarpus anacardium L.Anacardiaceae	Bhilawa	Tree	Baihar, Katangi, Lanji	Thallamus are eatten
47	Morenga oleifera L.Moringaceae	Munga	Tree	Baihar, Katangi, Lanji	Thallamus
48	Tamarindus indica L. Caesalpiniaceae	Imli	Tree	Baihar, Katangi, Lanji	Ripe fruits
49	Cordia dichotoma Forst. Boraginaceae	Lasora	Tree	Baihar, Supkhar	Unripe Fruits are used as vegetable.
50	Lycopersin lycopersicum L. Solanaceae	Bhedri	Herb	Baihar, Supkhar,	Ripe fruits
51	Dioscorea esculenta (Lour.) Burkill	Mataru	Herb	Baihar, Katangi, Lanji	Stem Tuber are used as vegetable.
52	Euphorbia heterophylla L. Euphorbiaceae	Duddhi	Herb	Kanha, Katangi, Lanji	Leaves are used as vegetable.

वैदिक गणित सें मिश्रित सरल पद्धति का एक अध्ययन

संतोषी अलावा *

प्रस्तावना – वैदिक गणित जगद्‌गुरू स्वामी श्री भारती कृष्णा तीर्थजी महाराज द्धारा खोजे गये 16 गणितीय फॉर्मुलों के सैत को दिया गया सामूहिक नाम हैं। फॉर्मुला गणित की अलग शाखा के बारे में हैं। ये 16 फॉमुले अंकगणित से बीजगणित और ज्योमिति से कोनिक्स तथा केलकुलास तक के प्रश्नों को हल करने में इस्तमाल किये जा सकते हैं। एक बार फॉर्मुला (जिसे वैदिक गणित में 'सुत्र'कहतें हैं।) सीख लिया जाये, तो उसे कुछ विशेष वर्ग के प्रश्नों पर लागू किया जा सकता हैं। जैसे गुणा,भाग,अंश आदि पर।

वैदिक गणित के संख्थापक जगद्धरू स्वामी भारती कृष्ण महाराज का जन्म 1884 में हुआ था। वे बचपन से ही बहुत प्रतिभाशाली छात्र थें और अपनी पूरी शिक्षा के दौरान अपनी सभी कक्षाओं मे हमेशा प्रथम आयें। संस्कृत,अंग्रेजी,गणित और अन्य विषयों पर उनका असाधारण अधिकार था।

यह जानना महत्वनपुर्ण हैं कि 'वैदिक' शब्द का प्रयोग वेदों के बारे में एक विशेषण के रूप में किया जाता हैं। हम सभी जानते हैं कि चार वेद हैं ऋग्वेद,अर्थर्वविद,यजुवर्वेद और सामवेद। इनमें से प्रत्येक विषयों के एक विषेष समूह के बारे में हैं। इनमें से अर्थववेद वास्तुकला,इंजीनियर्रिंग और सामान्य गणित के बारे में हैं। लेकिन इतिहिसकारो के अनुसार, स्वामी जी के खोज के अनुसार हम जिसे वैदिकक गणित कहते हैं। वह वेदों में नहीं हैं। अथर्ववेद में भी नही, जो गणित के विषयों के बारे में हैं। इससे स्पष्ट प्रश्न डरता हैं। अस खोज के लिए 'वैदिक' शब्द का इस्तेमाल क्यो किया गया हैं जब इसका वेदों से कोई सीधा संबंध नहीं हैं।

वास्तव में स्वामीजी की पद्धतियों में 'वैदिक'विशेषण के प्रयोग ने कुछ विवाद पैदा किया पर स्वामीजी के अनुयार्ंि के अनुसार 'वेद'शब्द का अर्थ हैं उद्गत स्रोत और समान ज्ञान का अक्षीय भंडार।

1957 में स्वामी जी ने 16 सुत्रों के लिए एक प्रस्तावना लिखीं। उन्होने और खंड लिखने योजना बनायी पर समय के साथ अनका स्वास्थ्य गिरता चला गया। और 1960 में उन्होने 'महासमाधि'ले ली।

मिश्रित सरल पद्धति– वैदिक गणित में दो तरह की तकनीक होती हैं। विशेष तकनीक तेज और प्रभावी होती हैं। पर केवल संख्याओं के कुछ खास सेट पर ft लागु की जा सकती हैं। उदाहरण के लिए अंत में 5 अंक वाजी संख्याओं का वर्ग करना विशेष तकनीक हैं क्योंकि यह के अंत में 5 अंक वाली संख्याओं का वर्ग करने इस्तेमाल की जा सकती हैं। इसे किसी और प्रकार की संख्या का वर्ग करने में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता।

मिश्रित सरल पद्धति में भिन्न तकनीक का अध्ययन करेंगे।

1. अंत में 5 वाली संख्याओं के वर्ग करना
2. 50 से 60 के बीच की संख्याओं के वर्ग करना।
3. 9 की श्रृंखला वाली संख्याओं को गुणा करना।
4. 1 की श्रृंखला वाली संख्याओं को गुणा करना।
5. गुणें में एक से अधिक अंको वाली संख्याओं को गुणा करना।
6. 'सभी 9 में से और अंतिम 10 में सें' नियम का इस्तेमाल कर के घटाना।

(1) टंत में '5' वाजी संख्याओं का वर्ग करना:

वर्ग करना किसी संख्या को खुद उसी से गुण करना होता हैं। अंत में 5 वाली संख्याओं का वर्ग कैसे निकालते हैं।

(प्र.) 65 का वर्ग बताईये।

```
  65
* 65
----
4225
```

65 में 5 के अलावा दुसरा अंक 6 हैं।

6 के वाद 7 आता हैं। इसलिए हम 6 को 7 सें गुणा करके उत्तर 42 लिखते हैं।

फिर हम अंतिम अंकों को गुणा करते हैं, जैसे (5'5) और 25 को 42 के दार्यी और लिख दे।

हमारा उत्तर 4225 हैं।

(प्र.) 95 का वर्ग बताईये।

5 के अलावा दुसरा अंक 9 हैं 19 के बाद आता हैं। 9 को 10 गुणा करके उत्तर 90 आता हैं। अंत में हम दार्यी ओर के अंको का गुणा करते है (5'5)

और उसके दार्यी ओर इसका उत्तर 25 लिखते हैं। इस तरह 95 का वर्ग 9025 हैं।

अत: 5 वाजी संख्याओं का वर्ग करना कितना आसान हैं। वास्तव में आप अंत में 5 वाली संख्याओं क वर्ग की गणना अपने मन में भी कर सकतें हैं। केवल 5 के अलावा अन्य को उससे अगले अंक से गुणा करके (5'5) या 25 लिख दे।

(2) 50 और 60 के बीच की संख्याओं का वर्ग।

(प्र.) 57 का वर्ग बताईये?

```
  57
* 57
----
3249
```

57 का वर्ग करना हैं। इसमें हम इकाई अंक यानी 7 में 25 जोड़ते हैं और उत्तर आता हैं 32, जो हमारे उत्तर में बायीं और हैं।

(इस स्तर पर उत्तर हुआ 32—)

अब हम इकाई के अंक 7 का वर्ग कर हैं और 49 पाते हैं। इस 49 को हम

* सहायक प्राध्यापक (गणित) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेंधवा जिला-बड़वानी (म.प्र) भारत

अपने उत्तर के दायीं और रखते हैं। पुरा उत्तर 3249 हैं।

(प्र.) 56 का वर्ग बताईयें?

```
   56
✻ 56
 3136
```

इस उदाहरण में 6 में 25 जोड़ते हैं और हमें बाया भाग 31 मिलता हैं।

अब 6 का वर्ग करते हैं और उत्तर 36 पाते हैं। और इसे हम दायी और रखते हैं। पूरा उत्तर 3136 हैं।

(3) 9 की श्रृखला की संख्याओं से गुणा करना:

यह तकनीक तीन केसो में विभाजित की गयी हैं। पहले केस में हम किसी संख्या को उतने ही 8 वाली संख्या को उससे ज्यादा 9 वाली संख्या से गुणा करेंगे।

केस 1

(किसी संख्या को उतने 9 वाली संख्या से गुणा करना।)

(प्र.) 654 को 999 से गुणा करों?

```
   654
✻ 999
 353346
```

हम 654 मे से 1 घटातें है और आधा उत्तर 653 के रूप में लिखते हैं। इस स्तर पर उत्तर 653— हैं।

अब हम 653 पर काम करेंगे। इसके हर अंक 6,5 और 3 को 9 में सें घटाकर उत्तर एक-एक करके लिखें।

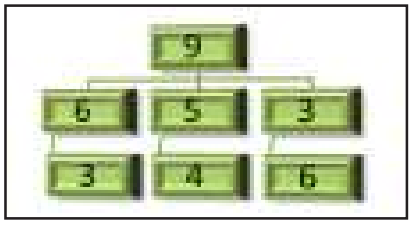

9 में से 6 घटाने पर 3,9 में से 5 घटाने पर 4 और 9 में से 3 घटाने पर 6 आता हैं। इसके आगे अंक उत्तर 653 आ और अब हम इसके आगे अंक 3,4, व 6 रखते हैं पुरा उत्तर 653346 हैं।

(प्र.) 456789 को 999999 से गुणा करों।

```
   456789
✻ 999999
 456788543211
```

हम 456788 में से 1 घटाकर उत्तर 45678' पाते हैं। इसे हम बायीं और लिखते हैं। फिर हम 456788 (बाया भाग) के हर की को 9 में से घटाते हैं और 543211 पाते यह हमारे उत्तर का दाया भाग बन जाता हैं। पुरा उत्तर 456788543211 हैं।

केस:-2

(किसी संख्या को उससे ज्यादा 9वाली संख्या से गुणा करना)

(प्र') 45 को 999 से गुणा करों।

```
   654        045
✻ 999       ✻999
            044955
```

गुणक में तीन 9 हैं। लेकिन शून्य 45 में केपल 2 अंक हैं। इसलिये हम एक 0 लगाकर 45 को तीन अंक की संख्या 045 में बदल देते हैं। हम पहले केस की प्रक्रिया को जीरो कर सकते हैं।

(प्र.) 123 को 99999 से गुणा करों।

```
   123          00123
✻ 99999       ✻ 99999
               00122199877
```

मुख्य तीन अंको की संख्या है और गुणक पाँच अंको की संख्या। इसलिये हम गुख्य दो 0 लगाते हैं ताकि मुख्य और गुणक में अंको की संख्या समान हो जायें।

अब हम 00123 में से 1 घटाकर उत्तर का बायां भाग 00122 लिखते हैं फिर हम उत्तर के बायें भाग का हर अंक 9 में से घटाकर उत्तर का दायां भाग 99877 लिखते हैं। पुरा उत्तर 12299877 हैं।

केस-

(कम 9 वाली संख्या से गुणा करना)

(प्र.) 654 को 99 से गुणा करो ।

इस केस में, शुन्य में अंको की संख्या गुणक में 9 की संख्या से ज्यादा हैं। संख्या 654 को 99 से गुणा करने के बजाय हम इसें (100 -1) से गुणा करेंगे। पहले हम 654 करे 100 से गुणा करेंगे और फिर हम इसमें से 654 करे 1 से गुणा करने के बाद घटा देते हैं।

```
⟶   654'99      65400
              - 654
              = 64746
```

(प्र.) 8000 को 999 से गुणा करो ।

80020 को (1000 -1) से गुणा करेंगे।

```
  80020000
- 80020
=79939980
```

(4) 1 की श्रृंखला वाली संख्याओ से गुणा :-

इस तकनीक में हम देखेंगे संख्याओं को 1 की श्रृंखला वाली संख्याओ से कैसे गुणा किया जाता हैं।

(प्र.) 32 को 11 से गुणा करों।

```
   32
-  11
=352
```

पहले हम दायीं ओर के अंक को 2 ऐसे लिख लेते हैं (उत्तर त्र2)

फिर हम बायीं ओर के अंक में 3 जोड़ते हैं और 5लिखते हैं (उत्तर =52) अतं में, हम बायीं ओर के अंक 3 को ही लिख लेते हैं। इस तरह उत्तर 352 हैं।

(प्र.)

```
   64
-  11
=704
```

इस उदाहरण में हम अंतिम अंक 4 को ऐसे ही लिखते हैं। फिर 4 को 6 में जोड़कर उत्तर 10 पाते हैं। चुँकि 10 दों अंक की संख्या हैं, हम 0 लिखकर 1 शेष रखते हैं। अंत में 6 1 जोड़कर ऐसे 7 करते हैं। पूरा उत्तर 704 हैं।

(प्र.) 210432 को 1111 से गुणा करों।

210432
- 1111
= 233789952

हम अंतिम अंक 2 ऐसे ही लिखते हैं।

जोडे (2+3)	=	5	-2
जोडे (2+3+4)	=	9	-52
जोडे (2+3+4+0)	=	9	-952
जोडे (3+4+0+1)	=	8	-9952
जोडे (4+0+1+2)	=	7	-89952
जोडे (0+1+2)	=	3	-789952
जोडे (1+2)	=	2	-3789952
जोडे (2)	=	2	-33789952
जोडे (2+3)	=	5	-233789952

इस तरह (2104321111) का उत्तर = 233789952

अत: वैदिक गणित की 4 सरल, पर तेज तकनीक देखी हैं। जो तकनीक आजमायी, वे पूरी तरह अलग रूख का इस्तेमाल करके उत्तर प्राप्त कियें। जो पद्धितियों से बहुत प्रभावी हैं,और शानदार परिणाम प्राप्त किये हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. जगद गुरू स्वामी श्री भारती कृष्ण तीर्थजी महाराज की वैदिक मेथेमेटिक्स
2. बिल हेनली की स्पीड मेथेमेटिक
3. एन फटलर व रूडोल्फ मेकषेन की 'द ट्रेक हेनबर्ग स्पीड सिस्टम आफ बेसिक अर्थमेटिक'
4. जेम्स ग्लोवर की वैदिक मेथेमेटिक्स फॉर स्कूल्स (भाग 1,2, व 3)

****

भारतीय संस्कृति के पर्व-त्यौहार और पारिस्थितिकी पर्यावरण संरक्षण : एक विवेचन

डॉ. प्रमोद पंडित *

शोध सारांश – हमारे वेदों (अथर्ववेद) में कहा गया है – 'माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या:'। अर्थात भूमि हमारी माता है, मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ। हमारे वैदिक ऋषि मनीषी पर्यावरण एवं परिस्थितिकी रक्षण के प्रति बहुत ही जागरूक व सावधान रहे हैं। पर्यावरण की रक्षा का अभिप्राय ही है स्वयं की रक्षा। अत: स्वकीय रक्षा हेतु यह पर्यावरण रक्षणीय है, इस दृष्टि से हमारे धर्म-अध्यात्म में प्रकृति की दैवत भाव से उपासना की गयी है, पंचतत्वों के संतुलन को ही पारिस्थितकीय संतुलन कहा गया है। सहज रूप से कल्याणकारी वरदायिनी यह प्रकृति पूजा के योग्य है, परंतु आज का भौतिकवादी मानव इस गर्व में चूर है कि उसने प्रकृति को जीत लिया है, नियंत्रित कर वश में कर लिया है। परन्तु प्रकृति का प्रति उत्तर उसे प्राकृतिक आपदाओं के रूप में, विनाशलीलाओं के रूप में मिलना प्रारंभ हो गया है – कहीं भूकंप, बाढ़, सूखा तो कहीं समुद्री तूफान। हमारे पूर्वज मानवीय संवेदनाओं, मानव व प्रकृति के अटूट संबंधों के परमज्ञाता थे। उन्होंने अपनी दैनिक जीवनचर्या, सामाजिक मान्यताओं, धार्मिक परंपराओं में पर्व-त्यौहार, रीति-रिवाजों के माध्यम से प्रकृति संरक्षण व संवर्धन के उपायों को अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया है जिससे धार्मिक आस्थाओं के माध्यम से स्वमेव पारिस्थितिक-प्राकृतिक संरक्षण हो सके।

हिन्दू धार्मिक-मान्यताओं में ऐसे ही पर्व-त्यौहारों में संक्रांति, वैशाखी, गंगा-दशहरा, वट सावित्री पूर्णिमा, हरियाली अमावस्या, नागपंचमी, सूर्यषष्ठि, गोवर्धन पूजा, छठ पूजा, आँवला नवमी, तुलसी विवाह, लोहड़ी, पोंगल, ओणम इत्यादि को व्यापक महत्व दिया गया है, जो सीधे-सीधे प्राकृतिक पर्यावरण व पारिस्थितिकीय संतुलन से जुड़े पर्व है।

प्रस्तावना – आज संपूर्ण विश्व प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त-त्रस्त है। ये विपत्तियाँ बेकाबू होती जा रही है। कहीं भूकंप, कहीं भूस्खलन, कहीं बाढ़, कहीं सूखा तो कहीं समुद्री तूफान।

दरअसल, ये सारी प्राकृतिक आपदाएं प्राकृतिक न होकर मानव निर्मित है, यह मानव का प्रकृति के प्रति निष्ठुरतापूर्वक किये जा रहे छल का नतीजा है। आज के भौतिकवादी मानव की पाषाण प्रवृतियों ने समूची धरती को ही पाषाण बना दिया है। मानव इस गर्व में चूर है कि उसने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है। इस विजयोल्लास में उसने प्रकृति का इतना दोहन कर लिया है कि प्रकृति की विनाशलीला प्रारंभ हो चुकी है। परंतु कहा गया है –'जब जागो तब सबेरा है', वेदो में कहा गया है – 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अर्थात हम अंधकार से प्रकाश की ओर चलें, जहाँ ज्ञान है, चेतना है, वहाँ प्रकाश है, उजियारा है। वेदों की अधोलिखित पंक्तियों को भी आत्मसात करें माता पृथ्वी पुत्रों अहं पृथिव्या – पृथ्वी माता है, मैं पुत्र हूँ, उसकी रक्षा करना सबका परम कर्तव्य है। हमने भौतिक-वैज्ञानिक उन्नति तो कर ली है, परन्तु हमारे पूर्वज मानवीय संवेदनाओं के परमज्ञाता थे। वे किसी भी धर्म, जाति, समुदाय, स्थान या लिंग के हो उन्होंने अपनी दैनिक जीवनचर्या में प्रकृति को सदैव ही सर्वोच्च सम्मान देकर विराजित किया है। किसी भी धर्म-अध्यात्म का साहित्य या पद्धति देखें, तो ज्ञात होता है कि प्रत्येक में प्रकृति के प्रति संवेदना, प्रेम और सम्मान के साथ-साथ संरक्षण और संवर्धन का संदेश निहित है। हमारे व्यवहारिक-ज्ञानी पूर्वजों ने मानव मात्र को प्रकृति के संरक्षण और सम्मानजनक संवर्धन के कर्तव्य निर्वहन हेतु इसे धार्मिक-आध्यात्मिक मान्यताओं एवं सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं से सम्बद्ध कर दिया है। हमारा देश विभिन्न धर्मो, जाति-समाजा एवें, वर्णो का सुंदर गुलदस्ता है, यहाँ के लोग अपनी सोच-विचार, भाषा-वेशभूषा में भले ही अलग-अलग हो परन्तु पर्यावरण एवं प्रकृति संरक्षण के उपायों को विभिन्न रूपों एवं मान्यताओं के रूप में समान रूप से अपनाते हुए पर्याप्त स्थान दिया गया है। इन परंपराओं के जनक यह भली भांति जानते थे कि 'पर्यावरण' मात्र एक शब्द नहीं है बल्कि एक अलौकिक अनुभूति भी हैं। व्यष्टि से समष्टि तथा द्वैत से अद्वैत की ओर ले जाने वाला वह सत्य है, जहाँ उस विराट से साक्षात्कार होता है, जिसके हम अंश है, जिससे परमानंद की सृष्टि होती है। हमारे पूर्वजों ने सारी सृष्टि (प्रकृति)की मंगल कामना इन मंत्रों से की है –

ॐ वनस्पतय: शान्ति:
ॐ औषधय: शान्ति:
ॐ पृथ्वी: शान्ति:
ॐ वाय: शान्ति:
ॐ सर्वे शान्ति शान्ति:

पारिस्थितिकीय रक्षण एवं पर्व त्यौहार –विधि विवरण – यह शाश्वत सत्य एवं वैज्ञानिक तथ्यों से प्रमाणित है कि हमारे देश में वर्षभर के प्रमाण के रूप में हमारे देश में मनाये जाने वाले विभिन्न पर्व-त्यौहारों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से पृथ्वी ,वायु ,जल,आकाश ,अग्नि, वन, पहाड़, वन्य प्राणी आदि की आराधना द्वारा उनके संरक्षण एवं संवर्धन के प्रति मानव समाज को प्रेरित किया जाता है। ऐसे ही पर्वो/त्यौहारों का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है जो पर्यावरण से संबंधित होकर देश के विभिन्न राज्यों एवं अंचलों मे अलग अलग ऋतुओं मनाये जाते है –

1. **लोहड़ी/मकर संक्रांति/पोंगल –** जनवरी (पौष) माह की 14 या 15 तारीख को मनाये जाने वाला यह त्यौहार हमारे देश के पूर्वोत्तर राज्यों में पोंगल के नाम से मनाया जाता है जबकि यह पर्व उत्तर पश्चिम राज्यो में यह मकर सक्रांति के नाम से मनाते है। यह पर्व वास्तव में प्राकृतिक खगोलीय परिवर्तन से संबंधित है जिसमें सूर्य मकर राशि पर होता है। अत: ऊर्जा के एक मात्र स्त्रोत सूर्य की पूजा-उपासना के साथ-साथ फसलों की पकायी एवं

* सहायक प्राध्यापक (रसायन शास्त्र) शहीद भीमानायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म. प्र.)भारत

कटाई का उत्सव मनाते है तथा पशुधन की भी पूजा की जाती हैं। आपसी भाई-चारे को समृद्ध करने के लिए दान एवं सामूहिक मिलन के आयोजन रखे जाते हैं। पंजाब राज्य में यही त्यौहार तिलगुड़ के पारंपरिक आदान-प्रदान द्वारा अग्नि की पूजा करके लोहड़ी नाम से मनाया जाता है।ठंड के मौसम में तिलगुड का सेवनकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया जाता है।

2. **वसंत पंचमी –** फरवरी(माघ) माह में प्रकृति की उपासना का यह पर्व वसंत ऋतु के सुहाने मौसम के स्वागत के रूप में मनाया जाता है। जब प्रकृति अपनी ऋतु परिवर्तन का संदेश पतझड़ के रूप में देती है एवं पेड़-पौधों पर फूल-पत्तियों का नव श्रृँगार होता है। संगीत व ज्ञान की देवी माँ सरस्वती के पूजन का भी इस दिन विशिष्ट महत्व हैं।पेड - पौधों के सरंक्षण का यह पर्व सम्पूर्ण समाज द्वारा मनाया जाता है।

3. **होली –** मार्च(फाल्गुन) माह की पूर्णिमा को समूचे उत्तर भारत में मनाया जाने वाला यह पर्व आपसी बैर भाव को मिटाकर नये संबंधो को भाई-चारे के साथ साथ विश्वास को दृढ़ करता है।सभी धर्म संप्रक्षय के लोग आपसी भाईचारे का संदेश रगो के आदान प्रदान से देते है।

होलिका दहन के रूप में प्राकृतिक वातावरण की शुद्धि एवं गंदगी के दहन का यह पर्व ग्रीष्म ऋतु के आगमन का प्रवेश द्वार है । पलाश (टेसू) जैसे प्राकृतिक फूलों के रंग से मानव मात्र अपने को सरोबार रंगकर प्रकृति के साथ अपनी निकटता का प्रमाण देता है। दु:ख दर्द को भूलाकर सुख - समृध्दि् की कामना का यह त्यौहार संपूर्ण भारतवर्ष में मनाया जाता है।

4. **गुड़ी पड़वा/चेती चांद –** हिन्दु पंचांग के अनुसार अप्रैल (चैत्र) माह की इस तिथि से नव वर्ष का प्रारंभ माना गया है। अत: इस दिन प्रकृति के पंचतत्वों (पृथ्वी ,वायु ,जल ,अग्नि ,आकाश) की पूजा अर्चना का विशेष महत्व है। समूचे उत्तर भारत में यह पर्व नववर्ष रूप में धूमधाम से मनाया जाता है। सिंधी समाज में यह पर्व चेती चांद के नाम से इष्ट आराधना के रूप में मनाया जाता है।

5. **वैशाखी –** माह मई (वैशाख)में फसलों के पकने (रबी) के उपलक्ष्य में मौज-मस्ती का यह त्यौहार विशेषकर उत्तर-भारत के पंजाब व हरियाणा राज्य में मनाया जाता है। इसमें प्रकृति के प्रति अपनी कृतज्ञता सामूहिक गीत, संगीत व नाच-गान के द्वारा व्यक्त की जाती है।प्रकृति ही जीवन का पोषण ,करती है, इसका संदेश यह पर्व देता है ।

6. **निर्जला एकादशी –** मई(ज्येष्ठ) माह की एकादशी को मनाये जाने वाला यह पर्व समूचे उत्तर भारत में विशेषकर महिलाओं के द्वारा मनाया जाता है। इस दिन जल को ग्रहण न करके उसके सरंक्षण ,संवर्धन एवं महत्ता की उपासना की जाती है।

7. **गंगा दशहरा –** जून(आषाढ़) माह के शुक्ल पक्ष की दसवीं तिथि को मनाये जाने वाला यह पर्व यूं तो गंगा नदी के किनारे बसे नगरों और गाँवों में ज्यादा प्रचलित है परन्तु कमोबेश इसे सारे उत्तर भारत में नदी की पूजा के उत्सव के रूप में मनाया जाता है। इस दिन पुरूष स्थानीय नदी में स्नान कर सूर्य को जल अर्पित करते है तथा रात्रि में स्त्रियाँ समारोह पूर्वक सामूहिक रूप से दीपदान करती हैं तथा जल की पूजा-अर्चना करती है।नदी जल संरक्षण का संदेश देने वाला यह त्यौहार संपूर्ण भारत मे महोत्सव के रूप में मनाया जाता है।

8. **वट सावित्री –** हिन्दु धर्म की मान्यताओं में बरगद के वृक्ष का उच्च स्थान इसे अमर माना गया है। बट सावित्री का त्यौहार जून (आषाढ) महीने की अमावस्या को मनाया जाता है। आषाढ़ माह की भीषण गर्मी में बरगद की छाँव तले विवाहित स्त्रियाँ वटवृक्ष की पूजा करती हैं तथा एक दूसरे के आँचल को अंकुरित अनाज, मौसमी फल (आम वगैरह) आदि भेंट से भर देती है, और वटवृक्ष के समान ही अपने वंश की वृद्धि, सुख और समृद्धि की मनोकामनाएं करती है।वृक्षों की सुरक्षा एवं संरक्षण मानव जीवन के लिए कितना आवश्यक है इसका गूढार्थ इसमें छुपा है।

9. **हरियाली अमावस्या –** अगस्त(श्रावन) महीने की अमावस्या को हरियाली अमावस्या पर्व के रूप में मनाया जाता है। छत्तीसगढ़ में यह पर्व होली तथा गुजरात एवं म.प्र. के मालवा अंचल में दिवासा के नाम से यह पर्व लोकप्रिय है। मूलत: यह पर्व वर्षा ऋतु के कारण प्रकृति में आये सौन्दर्यपूर्ण बदलाव का स्वागत है। इस दिन कृषक अपने पशुओं की तथा कृषि कार्य में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों की पूजा करते हैं। मालवा क्षेत्र में यह पर्व सभी जाति और सम्प्रदायों द्वारा मनाया जाता है। इस दिन महिलाएं परम्परागत गीत गाते हुए गेरू और चूने से दीवारों पर भित्ती चित्र बनती है जिनमें मुख्यत: प्रकृति का चित्रण होता है। देश व प्रदेश में इस पर्व को वृक्षारोपण हेतु हरियाली महोत्सव के रूप में मनाया जाता है।

10. **नाग पंचमी –** अगस्त (श्रावण) महीने की पंचमी को मनाया जाने वाला यह एक अनुठा त्यौहार है। इस दिन स्त्री-पुरूष सुबह से नाग(सर्प) की पूजा इष्ट देवता के रूप में करते है तथा उन्हें दूध पिलाने का उपक्रम करते है। सपेरों को वस्त्रों का दान दिया जाता है। इस त्यौहार में भी नाग की पूजा के माध्यम से वंश वृद्धि तथा समृद्धि की आकांक्षा का भाव निहित है। कई स्थानों पर जहाँ परोक्ष रूप से नाग की पूजा वर्जित है वहाँ लोग दीवारों पर गेरू से नाग की आकृति बनाकर उसकी पूजा करते है।

पारिस्थितिकीय तंत्र में प्राणियों एवं सरिसृपों के महत्व एवं प्राणी संरक्षण का यह पर्व समूचे उत्तर भारत में मनाया जाता है।

11. **हरतालिका तीज –** अगस्त (भादों) महीने में महिलाओं द्वारा व्रत रख कर मनाया जाने वाला यह पर्व शिव-पार्वती के पार्थिव स्वरूप का पूजन करके बिल्वपत्र से पूजन - सेवन कर मनाया जाता है। इस पर्व के द्वारा मिट्टी-पेड पौधो के महत्व व सरंक्षण का संदेश निहित है।

12. **ऋषि पंचमी –** अगस्त (भाद्र) महीने के शुक्ल पक्ष को यह पर्व मनाया जाता है। मूलत: यह त्यौहार महिलाओं का है। इस दिन महिलाएं व्रत रखती है तथा फूँली हुई कांस की पूजा कर इसे अपने घर लाती है। कुछ क्षेत्रों में इस दिन महिलायें सिर्फ मोरधन/कुटकी (एक प्रकार का मोटा अनाज) का सेवन करती है।

13. **हल षष्ठि/सूर्य षष्ठि –** कृषि की प्राचीन पद्धतियों का सम्मान करके हाथों से बोये हुए अनाज/सब्जियों का सेवन करने का यह त्यौहार अगस्त (भद्र) महीने के शुक्ल पक्ष की षष्ठि को महिलाओं के द्वारा वंश वृद्धि एवं पुत्र की दीर्घायु की कामना हेतु मनाया जाता है।

14. **ओणम –** विशेषकर दक्षिणी राज्यों- केरल एवं आन्ध्र प्रदेश में सिंतबर (भाद) महीने के शुक्ल पक्ष की द्वादशी को फसल कटाई एवं उसकी उत्पादकता व सुरक्षा के उल्लास के रूप में मनाया जाता है।यह पर्व प्रकृति के करीब जाने का संदेश देता है।

15. **कोजागरी/शरद पूर्णिमा –** अक्टूबर (आश्विन) माह की पूर्णिमा को समस्त उत्तर भारत में मनाया जाने वाला यह पर्व मनुष्य द्वारा प्रकृति के अनिवार्य अंग ,ग्रहों विशेषकर चन्द्रमा की महत्ता एवं उपासना का पर्व है। इस दिन चन्द्रमा की शीतल रोशनी में पके दूध एवं इससे बने अन्य व्यंजनों का सामूहिक सेवन किया जाता है। चन्द्र रोशनी को अमृत तुल्य माना जाता है।

16. **करवा चौथ –** अक्टूबर (कार्तिक) माह की कृष्ण पक्ष की चतुर्थी के दिन महिलाओं के द्वारा अपने पति की कामना एवं दीर्घायु के लिए किया

जाने वाला यह पर्व समूचे उत्तर भारत में मनाया जाता है। चन्द्रमा को साक्षी बनाकर महिलाएं उसके दर्शन के पश्चात ही अपना व्रत तोड़ती है। अन्न, जल, अग्नि, की पूजा के से प्रकृति के संरक्षण का संदेश दिया जाता है।

17. गोवत्स द्वादशी – अक्टूबर (कार्तिक) माह की द्वादशी को मनाये जाने वाला यह पर्व गाय व उसके बछड़े के माध्यम से पशु संरक्षण एवं उनकी वंशवृद्धि के प्रतीक के रूप में उनकी पूजा करके महिलाओं द्वारा मनाया जाता है। गाय के संपूर्ण शरीर व उसके उत्पादों को हिन्दु धर्म मान्यताओं में अत्यधिक पवित्र एवं रोग निवारक, शक्तिवर्धक माना गया है अत: इनके सेवन का महत्व दर्शाया जाता है।

18. गोवर्धन पूजा – अक्टूबर – नंवबर माह की (कार्तिक) शुक्ल पक्ष की पहली तिथि अर्थात् दीपावली के दूसरे दिन गोवर्धन पूजा का त्यौहार मनाया जाता हैं। इस दिन गाय तथा बैलों को स्नान करवा कर उनकी पूजा की जाती है। बड़े शौक से तथा जतन से उन्हें मेंहदी व अन्य रंगों से सजाया जाता है कई क्षेत्रों में पूरे गाँव व शहर से सजे हुए पशुओं का एक भव्य जुलूस भी निकाला जाता है। पशु संवर्धन एवं मानव के लिए उनकी उपयोगिता एवं महत्व को यह पर्व प्रतिपादित करता है।पर्वतों ,खेतो एवं पशुधान की सुरक्षा एवं संवर्धन का यह पर्व कृषकों द्वारा मनाया जाता है।

19. छठ पूजा – अक्टूबर – नंवबर माह की (कार्तिक) माह की शुक्ल पक्ष की षष्ठि को सूर्योपासना का यह पर्व व्यापक रूप से बिहार व उत्तर प्रदेश में मनाया जाता है। ऊर्जा एवं शक्ति के स्त्रोत सूर्य की उपासना एवं महत्ता का यह पर्व प्रकृति के प्रति हमारे कर्तव्य को दर्शाता है।

20. आँवला नवमी – अक्टूबर – नंवबर माह की (कार्तिक) शुक्ल पक्ष की नौवीं तिथि को मनाया जाने वाला यह पर्व मुख्यत: महिलाओं का त्यौहार है। इस दिन महिलाएं सामूहिक रूप से आंवले के वृक्ष की पूजा करती है, तथा वृक्ष की स्तुति में गीत गाये जाते है। तत्पश्चात् इस वृक्ष के तले ही सामूहिक भोजन किया जाता है। यह त्यौहार उत्तर भारत में ज्यादा प्रचलित हैं। औषधीय गुणों से भरपूर आँवला के संवर्धन एवं संरक्षण के प्रति चेतना का यह संदेश देता है।

21. तुलसी विवाह – अक्टूबर – नंवबर माह की (कार्तिक) माह के शुक्ल पक्ष की ग्यारहवीं तिथि को यह त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन महिलाएँ–पुरूष तथा बच्चे सामूहिक रूप से तुलसी के पौधे का विवाह रचाते है तथा दिन भर उपवास रखने के पश्चात् शाम को भोजन करते है। धार्मिक दृष्टि से पवित्र एवं औषधीय गुणों से भरपूर तुलसी के प्रति हमारी कृतज्ञता को यह त्यौहार प्रकट करता है।

इसी प्रकार से नर्मदा जयंती (फरवरी माह),गणगौर पूजा (अप्रैल माह), नवरात्र(अक्टूबर माह) इत्यादि त्यौहार भी प्रकृति एवं पंचतत्वों की उपासनो के रूप में मनाये जाते है।

उपसंहार एवं संस्तुति – 'जियो और जीने दो' के सिद्धांत का पालन करनें वाली भारतीय संस्कृति में ही **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** का विचार समाहित है। यहाँ धरती को माता, आकाश को पिता, वायु को प्राणदायिनी एवं जल व अग्नि को देवता का स्वरूप मानकर प्रतिष्ठित किया गया है। हमारे यहाँ पर्वत, पत्थर, वृक्ष से लेकर माटी तक को पूजा जाता है।

भारतीय संस्कृति में पशुओं को आदिकाल से पशुधन के रूप में धार्मिक–सामाजिक मान्यता दी गई है। जिसमें गाय का स्थान सर्वोच्च है। धार्मिक–सामाजिक रूप में ही सही चूहे, साँप, कौआ, कुत्ता, गाय, हाथी, मोर,हसं, मगरमच्छ, उल्लू आदि पशु–पक्षियों को पर्यावरण तंत्र की अनिवार्य कड़ी के रूप में संरक्षण हो रहा है।

हमारी संस्कृति अतिविकसित होकर पूर्ण रूपेण विज्ञान सम्मत है। जहाँ आज भी गाँवों में घरों की बनावट में मिट्टी और पत्थरों की रचनाओं का लेप के रूप में गोबर (पशु मल) एवं लाल– पीली मिट्टी का उपयोग किया जाता है। चाक मिट्टी से बने बर्तन व पेड़ों के पत्तों से बनी उपयोगी वस्तुओं का उपभोग पर्यावरण मित्रता का जीवन्त प्रतीक है।

पूजा अर्चना में प्राकृतिक रंगों तथा फूलों का एवं रूप सज्जा पदार्थों में मेंहदी, नींबू, शिकाकाई, आँवला, रीठा, नीम, हल्दी, इमली, रोशा, मुलतानी मिट्टी का प्रयोग इसी कड़ी के अंग है।

छिति ,जल, पावक ,गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा।।

महान कवि तुलसीदासजी के 'राम चरित मानस' के यह बोल कहते हैं कि – मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँच तत्वों (घटकों) से इस नाशवान शरीर की रचना हुई है। मानव सहित सभी जीवों का जीवन पोषित होता है, वह परम महत्व के इन आधारभूत घटकों की ही देन है। इसीलिए भारतीय दर्शन में इन पंच तत्वों को सृष्टि का विनायक कहा गया है।

पर्यावरण संरक्षण पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से प्राणी जगत एवं उनके पर्यावरण के अंतर्संबंधों का विज्ञान है। वास्तव में प्राकृतिक पर्यावरण पूजा–उपासना के योग्य है, इसको नियंत्रित, वश में करने का दु:साहस नहीं करना चाहिए। इसके संतुलन को बाधित नहीं करना चाहिए। मानव समाज को प्रकृति /पर्यावरण का उपयोग इस प्रकार से करना चाहिए कि न सिर्फ वर्तमान पीढ़ी बल्कि आने वाली संततियाँ भी इससे सतत् लाभान्वित होती रहे।

पर्यावरण व पारिस्थितिकीय संतुलन हेतु जन–जागरूकता अत्यावश्यक है। शासन –प्रशासन द्वारा पोषित संवैधानिक एवं कानूनी व्यवस्थाएं इसके सहायक तत्व हैं। वास्तविकता यह है कि विश्व भर में पारिस्थितिकी संरक्षण एवं पर्यावरण संकलन से जुड़े सर्वाधिक पर्व त्यौहार भारतवर्ष मे ही मनाये जाते हैं। अत: यदि सम्पूर्ण विश्व भारतीय संस्कृति का अनुसरण करे तो पर्यावरण प्रदुषण की काली छाया से सहज ही मुक्ति पाई जा सकती है। भौतिक सामाजिक वैज्ञानिक को ,समाजसेनियो को ,गैर शासनिक संगठनो को, धार्मिक –आध्यात्मिक संगठनो को भी इस दिशा में अधिक सकारात्मक कदम उठाना चाहिए। इन पर्वो के महत्व को पाठयक्रम में सम्मिलित किया जाना भी उचित होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति ,द्वितीय संस्करण ,2004 द्वारा, डॉ.कपिलदेव द्विवेदी विश्वभारती अनुसंधान परिषद् ज्ञानपुर (भदोही)उ.प्र.।
2. वेदो में पर्यावरण चेतना ,प्रदीप शुक्ल ,वेदविद्या अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका Vol XVIII; जुलाई –.दिसंवर 2011, पृष्ठ क्र.105–119.महर्वि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान ,उज्जैन (म.प्र.)।
3. वैदिक वाड्.मय में पर्यावरण संरक्षण शिक्षा – ,डॉ. सदानन्द त्रिपाठी , वेदविद्या अर्न्तराष्ट्रीय शोध पत्रिका Vol XVIII; जुलाई .दिसंवर 2011, पृष्ठ क्र.146–160, महर्वि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान , उज्जैन (म.प्र.)।
4 लाल रामस्वरूप का आर सी. पंचाग –लाला रामस्वरूप आर सी.एण्ड संस वर्ष 2014।

आभार – उन सभी सज्जनों ,संस्थाओं ,संगठनो के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे इस लेखन कार्य हेतु सैद्धांतिक व व्यवहारिक रूप से प्रेरित किया।

Nutritional Status of Adolescent Girls Receiving Food Form Hostel and Tiffin Centres

Dr. Jyoti Kulkarni *

Introduction - The word 'adolescence' comes from a Latin word – 'adolescere' meaning 'to grow in maturity'. By definition as given by World Health Organization (WHO) "the period of adolescence ranges from 10-19 of age. It is a phase of rapid physical growth and development along with physiological and behavioural maturity.

There are many bodily changes which result due to influence of hormones. The growth spurt of boys is slower than that of girls. The period of adolescence is one of, considerable stress in terms of physical growth hormonal changes and emotional strain.

Adolescence is a crucial phase of growth since it offers the second and last chance for the catch up growth in life cycle of girls. In India on the basis of available growth data, it is estimated that 14% adult women in the reproductive period have body weight less than 38 kg and 16% have height less than 145 cm.

Poor or inappropriate dietary habits increases the risk of chronic disease among adolescents of greatest concern is the increasing rate of obesity and obesity related health risk such as diabetes and cardiovascular disease.

Inadequate iron intake increases the incidence of iron deficiency anaemia especially among those adolescents at highest risk pregnant teens vegetarians.

Calcium and iron are particularly needed during adolescence. Bone growth demands calcium. About 150 mg of calcium must be retained each day to allow for the increase in bone mass. Deficient intake of calcium and riboflavin in adolescent diets are usually associated with a lower level of milk consumption. The skeleton accounts for at least 99% of body stones of calcium and gain in skeleton weight are most rapid during adolescent growth spurt.

Now a day's girls reside in hostel or rented rooms for higher studies, most of the girls resided in rental rooms get food from tiffin centers. So this was interesting to study the nutritional status of adolescent's girls receiving food from hostel and tiffin centers.

Objective - The aim of the study is to assess nutritional status of adolescent Girls Receiving Hostel Food (GRHF), Girls Receiving Tiffin Food (GRTF).

Materials and Methods - Purposive random sampling techniques were used in the selection of samples for the present study. 40 girls receiving hostel food & 40 girls receiving food from tiffin centers in the age group of 18-20 years were selected. The study was conducted at Indore. 24 hours dietary recall methods were used to assess the dietary intake.

Analysis of Data – For statistical analysis mean, standard deviation & "t" test were used

Table No.1 (see in next page)

Result obtained from the study no significant difference in the average height of GRHF & GRTF. The GRHF & GRTF has mean height equal to the standard height proposed by ICMR.

The weight of GRHF & GRTF categories of girls is lower than their standard value. The statistically obtained t value 2.66 at D.F. 38 the table value 2.02 which shows significant difference in the average weight of both the groups.

Table No. 2 -(see in last page)

table no. 2 shows that there is a significant difference in intake of calories. The mean calories intake of GRHF group is 1340 ± 203.46 Kcal / d and GRTF group is 1725 ± 325 Kcal / d.

This shows that calorie intake of GRTF is more than the GRHF. But when compared to RDA both groups are below than the standard.

Likewise significant difference in intake of proteins of both groups is prominent. The protein intake of the group GRHF is 87.5% of RDA and GRTF is 96% of RDA. The table shows that protein intake if GRTF is more than GRHF but when compared to RDA both are not reaching to the standard.

Significance difference in intake of fat and carbohydrate of both groups is seen. The fat and carbohydrate mean intake of the GRHF & GRTF group is 22 ± 8.97 gm/d, 225 ± 43.30

*Asst. Professor (Foods & Nutrition) Govt. M.L.B. Girls P.G. College, Kila Bhavan, Indore (M.P.) INDIA

gm/d and 43 ± 19.13 gm/d, 260 ± 76.81 gm/d. This picture shows that fat and carbohydrate intake of GRTF is more than GRHF & fat intake of both group is more than to the standard but compared to carbohydrate intake from RDA GRHF group is not reaching to the standard

This study further shows that there is significant difference in intake of calcium and iron of both groups. The calcium & iron mean intake of GRHF & GRTF group is 350 ± 134 mg/d, 14.75 ± 0.16 mg/d and 560 ± 214 mg/d, 19.25 ± 6.75 mg /d.

There is no significant difference in intake of thiamine of both groups is observed. The mean intake of thiamine of GRHF * GRTF group is 1.2 ± 0.16 mg/d and 1.15 ± 0.42 mg/d. Intake of thiamine of both groups are higher than the standard.

But significant difference in intake of riboflavin & niacin of both the groups is evident. The mean intake of riboflavin & niacin of GRHF & GRTF group is 0.68 ± 0.13 mg/d, 10.75 ± 2.38 mg/d and 1.8 ± 1 mg/d and 12.4 ± 3.84 mg/d. This study shows that intake of niacin of GRHF group is below than the standard and niacin of GRTF group is equal to RDA.

Nutritional status of adolscents girls receiving food from hostel and tiffin center shall differ – accecpted. Thus the study shows that GRTF are in a both nutritional intake and Hb status sound condition as compared to GRHF group.

Table No. 3 (see in last page)

Table No. 4 -(see in last page)

table 3 and 4 shows that mean haemoglobin level pg GRHF group, is 10.9 ± 1.52 gm/dl and of GRTF is 11.7 ± 1.45 gm/dl. There is no significant difference in the average haemoglobin level of GRHF and GRTF as observe value is 1.66 at 38 D.F. and table value is 2.02.

From the table it is obvious that more no. Of Anaemic girls are prevailing in GRHF category than the GRTF one. Hence it is interesting to know the degree of Anaemia in both the categories because no. Of anaemic girls doesn't show the accurate picture of Anaemia.

It is emendate from the table that 77.8% girls of GRHF are having mild degree anaemia while 80% of GRTF are in the range of 10.5 gm. In case of moderate anaemia 11.1% GRFH and 20% GRTF are found while in case of severe anaemia 11.1% girls of GRHF are found with no case in GRTF category. Thus the said table shows that GRHF group is more anaemic as compared to the girls receiving food from tiffin center.

References :-

1. Devi Usha C and Nath Komal G "A comparative study on nutritional profile of rural and urban adolscents girls" National Congress Journal 2003, XI National Congress Pub. Vol. 34 Pp 233.
2. Kaur S. Deshmukh P.R. Garg B.S. "Epibemilogical correlates of nutritional Aneamia in adolescent girls of rural wardha" Indian Journal of Community medicine 2006 community medicine Pub Vol 34 pp 10-12
3. Khalil J K "Nutritional status and breakfast practices of adolescent university girls, IX national congress journal 2013, IX National congress Pub. Vol 34 pp 245
4. Indian Dietetic Association
5. www.ado./nutrition/org./content/2013
6. www.healthassist .net/foodsideeffects/sideeffects/html

Table No.1 - Anthropometry of Studied Samples

Criteria	Girls Receiving Hostel Food(n-40) %		Girls Receiving Tiffin Food(n-40) %		Total %		Observed Value	Table Value	D.F.
Heigth(cm)									
References(155 cm)	28	70	20	50	48	60.0			
>References	08	20	14	35	22	27.5			
<References	04	10	06	15	10	12.5	0.31*	2.02	38
Total	40	100	40	100	80	100			
Mean ± SD	155.7 ± 4.54		155.2 ± 5.12						
Weight(kg)									
References (50 kg)	02	05	06	15	08	10			
>References	04	10	10	25	14	18			
<References	34	85	24	60	58	72	2.66*	2.02	38
Total	40	100	40	100	80	100			
Mean ± I SD	43 ± 5.6		48.75 ± 7.56						

Table No. 2 - Nutrients Intake of GRHF and GRTF

S. No.	Nutrients	R.D.A.	GRFH Mean ± SD	Mean Difference	Nutrient Intake in % of R.D.A	GRTF Mean ± S.D.	Mean Differe -nce	Nutrient Intake in % of R.D.A.	t Value	Table Value	DF
1	Claorie (Kcal)	1900	1340 ± 203.46	-560	71.46%	1725 ±325	-175	92%	7.43**	2.02	38
2	Protein (Kcal)	55	43.75 ±16.57	-11.25	87.5%	48 ±8.42	-7	96%	2.99**	2.02	38
3	Fat (gm)	20	22 ±8.97	2	110%	43 ±19.13	23	215%	5.45**	2.02	38
4	Carbo-hydrate	228	225 ±43.30	-3	98.68%	260 ±76.81	32	114.03%	2.72**	2.02	38
5	Calcium (mg)	600	350 ±134	-250	87.5%	560 ± 21.42	-40	146%	4.72**	2.02	38
6	Iron (mg)	21	14.75 ±0.16	-6.25	49.16%	19.25 ±6.75	-0.75	64.16%	3.90**	2.02	38
7	Thiamine (mg)	1.0	1.2 ±0.16	0.2	133.33%	1.15 ±0.42	0.15	127.27%	0.47*	2.02	38
8	Riboflavin (mg)	1.1	0.68 ±0.13	-0.43	61.81%	1.8 ±1	0.7	163.63%	4.43**	2.02	38
9	Niacin (mg)	12	10.75 ±238	-1.25	89.58%	12.4 ± 3.84	0.4	103.33%	3.03**	2.02	38

*Not Significant ** Significant

Table No. 3 - Blood Haemoglobin Levels of Studied samples

Haemoglobin level (gm/dl)	GRHF(n-40) %		GRTF(n-40) %		Total(n-80) %		Observed Value	Table Value	D.F.
References 11-13 gm/dl	22	55	30	75	52	65	1.66	2.02	38
Reference <11 gm/dl	18	45	10	25	28	35			
Total	40	100	40	100	80	100			
Mean ± S.D.	10.9 ± 1.52		11.7 ± 1.45						

Table No. 4 - Anaemia Status of Adolscents Girls

Anaemia Status	GRHF(n-18)%		Range gm/dl	Mean	GRTF(n-10) %		Range gm/dl	Mean
Mild anaemia (9-11 gm/dl)	14	77.8	10.80-9.20	9.97 gm/dl	8	80	10.80-9.60	10.5 gm/d
Moderate anaemia (7-9 gm/dl)	2	11.1	7.90	7.90 gm/dl	2	20	7.70	7.70 gm/dl
Severe anaemia (<7 gm/dl)	2	11.1	6.80	6.80 gm/dl	-	-	-	-
Total	18	100			10	100		

An Empirical Study on Elderly Perception of Loneliness and Ways of resolving it through Positive Aging

Chandra Kumari *

Abstract - The aim of the study is to assess the perception of elderly towards loneliness; their socio-demographic factors and the major activities to ward off loneliness among elderly. The study was conducted at Kota. The total sample of present study were found 129 respondents, 100 respondent selected by convenience sampling. The study was conducted on elderly respondent and for the selection of the samples information blank was filled by students of 9th - 12th class to know the addresses of elderly. Tool used for data collection was "**Perceived loneliness Scale**" adapted for Indians. Results show that there is no significant difference in perceived loneliness between male and female respondents also. The ways for elderly to live life in a healthy and positive way has been exploredss

Keywords - Loneliness, socio-demographic profile, activities to ward off loneliness, positive aging, elderly.

Introduction - A combination of social, economic and demographic factors has led to the neglect of the elderly, thus making this 'one of the greatest challenges of the 21st century.' In particular, these changes have characterized the lifetime of the current generation of elderly which are in turn impacting the relations of the elderly with their children, relatives and communities.

Loneliness is a concept that has been interpreted in a variety of ways. It can be seen as an important part of an understanding of both quality of life and subjective well being. Loneliness is described in various studies as; perceived deprivation of social contact, the lack of people available or willing to share social and emotional experiences; a state where an individual has the potential to interact with others but is not doing so and a discrepancy between the actual and desired interaction with others.

Loneliness has a wide range of negative effects on both physical and mental health. Some of the health risks associated with loneliness include depression and suicide; cardiovascular disease and stroke; increased stress level; decrease memory or learning; antisocial behavior; poor decision making; alcoholism and drug abuse; the progression of Alzheimer's disease; and altered brain function.

The concept of "Positive Aging" embraces a number of factors, including health, financial security, independence, self-fulfillment, community attitudes, personal safety and security, and the physical environment. The underpinning premise is that the years of "older age" should be both viewed and experienced positively. Positive Aging will strengthen recognition of these roles. and wellbeing; government services and communities which are responsive to their particular needs and interests and which recognize the increasing diversity of our community.

The objectives of this study are:

- To study the perception of elderly towards loneliness
- To study socio-demographic factors of loneliness
- To study major ways to ward off loneliness and promote positive ageing among elderly

Methodology - The study was conducted at Kota. Two schools were selected from Kota city which were situated in Shrinath puram Kota. In these schools information blank was distributed to students of 9th-12th class. Information blank was collected after being filled up. On the basis of information all those elderly were contracted for data collection who were either staying with their grand children or staying in the same city. The total elderly traced were 129. Out of 129, hundred respondents were selected by convenient sampling technique. Data was collected using Perceived loneliness scale;

Hypothesis

H_o: loneliness amongst elderly is independent of socio-demographic characteristics.

Analysis and Interpretation of data

The data were analysed under following sub heads:

A. Perception of elderly towards loneliness
B. Socio-demographic factors of loneliness
C. Major activities to ward off loneliness

A. Table 1 (see in last page)

Table 1 shows that one (1.8867 per cent) male perceived low loneliness, forty seven (88.679 per cent) male perceived medium loneliness and five (9.4339 per cent) perceived high loneliness. One (2.127 per cent) female perceived low loneliness, forty three (91.489 per cent) females perceived medium loneliness and three (6.382 per cent) female perceived high loneliness.

Table 2 (see in last page)

Table 2 shows the mean score, standard deviation and t-value of elderly perception of loneliness. The mean score of elderly perception of loneliness among male and female were 113.0189 and 107.7021 respectively. The standard deviation of elderly perception of loneliness among male and female were 17.86218 and 16.4926. t-value calculated is found to

* Associate Professor (Home Science) Banasthali University (Rajasthan) INDIA

be 1.540 which is not significant at 0.05 level of significant. It could be concluded that there is no significant difference in perceived loneliness between male and female.

B. Socio-demographic factors of loneliness

Table 3 (see in last page)

Table 3 shows that calculated chi-square is found to be significant only between loneliness scores and age of respondents at 0.05 level of significance. Rest of the chi-square are found to be non-significant at 0.05 level of significance It could be concluded that as age increases perceived loneliness increased. The reason might be death of spouse, decreasing social network, losing contact with friends, health problem and isolation.

C. Major activities to ward off loneliness

Table 4: Frequency and percentage distribution of respondents on daily activities

S.N.	Daily activities	Frequency and percentage
1	Play with children	39
2	Paid bill	5
3	Leave school to children	34
4	Home work	7
5	Shopping	17

Table 4 shows that 39 per cent respondents played with children, five per cent respondents paid bill, thirty four per cent respondents leave children to school, seven per cent respondents help children in home work and 17 per cent respondents help in shopping.

Table 5: Engagement in leisure time activities of their choice and interest

S.N.	Engagement in leisure time activities	Frequency & percentage
1	Reading news paper	33
2	Reading books	2
3	Writing poetries	6
4	Gardening	17
5	Weaving	23
6	Write novel	4
7	Go to temple	64
8	Listening songs	4
9	Listening radio	8
10	Watching T.V.	32
11	Reading religious books	13
12	Go to satsang	32
13	Play chess	5
14	Play carom	-
15	Play cards	2
16	Take exercise	5
17	Care pet animals	5

Table 5 shows that elder people engaged in leisure time activities. Thirty three per cent read news paper, two per cent read books, six per cent write poetries, seventeen per cent grading, twenty three per cent knitting and weaving, four per cent write novel, sixty four per cent go to temple, four per cent listening songs, eight per cent listening radio, thirty two per cent watching T.V., thirteen per cent read holy books, thirty two per cent go to satsang, five per cent play chess, two per cent play cards, five per cent do exercise and five per cent care pet animals.

Table 6: Frequency and percentage distribution of respondents on conversation with friends on various topics

S.N.	Various topics	Frequency and percentage
1	Financial	7
2	Social	76
3	Political	5
4	Educational	4
5	Others	4

Table 6 shows that elder people talk with their friends on various topics- seven per cent economic, seventy six per cent social, five per cent political, four per cent educational and four per cent on other topics.

Table 7: Frequency and percentage distribution of respondents on watching programmes on T.V. /listening to radio

S.N.	Programme watched /listened on T.V./radio	Frequency & percentage
1	**Social**	**5**
2	**Religion**	**66**
3	**Bhajan keertan**	**7**
4	**Others (T.V. serials)**	**2**

Table 7 shows that five per cent respondents like listening and watching social programmes on T.V. and radio, 66 per cent prefer religious activities, seven per cent bajan-keertan, two per cent respondents watched programmes like listening and watching on radio and T.V. related to serials.

Table 8 (see in last page)

Table 8 shows that 40 per cent respondents meet with their friends daily where as 60 per cent respondents do not meet with their friends daily. Eighteen per cent respondents spend more time with their friends where as 82 per cent respondents do not spend more time with their friends. Twenty five per cent respondents participate in “kavi sammelan” and singing competition whereas 75 per cent respondents do not participate in any competitions.

As far as social services are concerned 32 per cent respondents participate in social welfare and 68 per cent respondents do not connect with any social welfare services. Thirty two per cent respondents spend more time in social welfare where as 68 per cent respondents do not do so. Thirty two per cent respondents do not enjoy this.Seventy per cent respondents like to go to holy places like mandir, church and gurudwara where as 19 per cent do not like it. Seventy one per cent respondents like to go to picnic with their friends where as 48 per cent do not like it. Eighty per cent respondents like to see natural beauty and go to natural places where as 20 per cent respondents do not like it. Eighty per cent respondents enjoy traveling with their family where as 22 per cent respondents do not like it. Seventy per cent respondents talk about their memories with their friends

but 30 per cent respondents do not like it. Eleven per cent respondents are a member of a club, give attention to club facilitation and arrangements, think about other club member problems, participate in all games and activities, go to club and experience mental peace.

Conclusion - This study examined that as age increases perceived loneliness increases. The reasons might be death of spouse, decreasing social network, losing contact with friends, loss of mobility due to health problems and isolations.

Suggestions -Feeling of loneliness could be reduced in elderly by providing them a protective, enriched environment and increased secured experience. Family can help their elderly to maintain a harmonious relationship with others, within home and outside and promote positive aging.

References :-

1. Schultz, Jr. and Moore, D. (1984). Loneliness correlates attributes and coping and the older adults. Personality and Social Psycho Bulletin. Co. 67-77.
2. Dalziel, H.L. (2001). The positive Aging Strategy. Ministry of Social Policy. Wellington, New Zealand. 9-10.
3. www.seniors.vic.gov.au

A. Table 1: Perceived loneliness among elderly

Loneliness scores	Category	Male N1=53		Female N2=47		Total respondents N=100
		F	Percentage %	F	Percentage %	
35-82	Low	1	1.8867	1	2.127	2
82-129	Medium	47	88.679	43	91.489	90
129-176	High	5	9.4339	3	6.382	8

Table 2: Mean score, standard deviation and t-value of elderly perception of loneliness

S.N.	Category	N	Mean	Standard Deviation	t-value
1	Male	53	113.0189	17.8621	1.540(NS)
2	Female	47	107.7021	16.4926	

NS; (Non significant)

Table 3: Chi-square value between socio-demographic factors and extent of loneliness

S.No.	Socio-demographic factors and extent of loneliness	Chi-square value		Degree of freedom
		Calculated value	Tabulated value	
1	Elderly staying with family and alone	0.472(NS)	5.99	2
2	Age	11.573*	9.49	4
3	Social network	3.203(NS)	9.49	4
4	Income	2.1126(NS)	9.49	4
5	Marital status	2.31(NS)	9.49	4
6	Family status	1.564(NS)	5.99	2

NS; * $p<0.05$

Table 8: Frequency and percentage distribution of respondents on social activities, social services, travelling and club related information to ward off loneliness

A.	Social activities	Yes	No
1	Meeting Friends	40 %	60 %
2	Spending time with friends	18 %	82 %
3	Participation in competition	25 %	75 %
B	**Social services**		
1	Association with different social skills	32 %	68 %
2	Spending more time in social welfare	32 %	68 %
3	Enjoyment and peace in social welfare	32 %	68 %
C	**Travelling**		
1	Like to go to holy places	70 %	30 %
2	Like to go picnic with their friends	71 %	29 %
3	Like to see natural beauty and go to natural places	80 %	20 %
4	Enjoy to traveling with family	80 %	20 %
5	Talk about their memories with friends	70 %	30 %
D	**Club related information**		
1	Club member	11	89 %
2	Attention to club facilities and arrangements	11	89 %
3	Think about club members problems	11	89 %
4	Participation in all games and activities	11	89 %
5	Experience mental peace in club	11	89 %

Parental Differential Treatment And Its Link With Adolescent's Personal Qualities

Dr. Nandini Rekhade *

Abstract - Adolescent is the most critical period in the life of any individual. This period of life is stressful, because the individual is marching in the direction of adult responsibilities (Levin 1939). It is an important period in the span of human life. It constitutes about 1/5th of female population. Therefore the roles they play in their life and how they socialised is an important part of their social, emotional, intellectual and personality development.

Main objective of the study to find out reaction of parents towards social qualitiy share with their offsprings. Equal treatment was the model parameter hypothesised in this study.

243 Girls from Government Higher Secondary School, Bhopal, M.P. were selected as sample. Sample selection was based on the basis of at least one brother in the family. 60 school dropout respondents were selected from Ankur Nagar Slum of Bhopal city. Every third of fourth house was selected in which female children left school at very early stage. Questionnaire method was used for collection of data and for statistical analysis Mean, SD and Chi square test were applied. Several important parameters related to social qualities of adolescents girls like courage, cooperativeness submissiveness, looking after guest, caring for the sick and decision making, result shows that all the qualities expected from girls except decision making as compared to their brothers, whether they are school going or school dropout respondents.

Introduction - Adolescents is the most critical formative period in the life of any individual. Adolescents is rightly described as a period of strain and stress (Herlock, Hall 1972) and widely accepted as problem age. This period of life is stressful, because the individual is marching in the direction of adult responsibilities (Levin 1939).

Biological changes during this period, characterised by puberty makes adolescent feel to be a different individual what he of she was before. Psychologically adolescence is an age when the individual becomes integrated with the society of adults. It also includes very profound intellectual changes. These intellectual transformations enable him to achieve his integration in to the social relationship of adults, which is the most general characteristics of this period of development (Piagel, 1969). It is an important period in the span of human life. It constitutes about 1/5th of female population. Therefore the roles they play in their life and how they socialised is an important part of their social, emotional, intellectual and personality development. Their roles are equally important in the society as the roles played by the boys, but unfortunately they are socialised in a passive environment, blind obedience and total dependence. This condition begins at home and reinforced by the society. Education system and media promote the image.

Objectives – This study has been conducted to find out differential treatment to their adolescent offsprings in different social qualities, and how these qualities affect their personal development. Main objective of the study is to find out reaction of parents towards social qualities share with their offsprings. Equal treatment was the model parameters hypothesized in this study.

Sample – 243 Girls from Government Higher Secondary School, Bhopal, M.P. were selected as sample. Sample selection was based on the basis of at least one brother in the family. 60 school dropout respondents were selected from Ankur Nagar Slum of Bhopal city. Every third of fourth house was selected in which female children left school at very early level.

Tools – The collection of data, questionnaire was prepared on the basis of existing proforma of NCERT New Delhi, Existing proforma of Reeta Sood in her study 'Changing Status and Adjustment of Women' (1991) and self made questions were used for the data collection. For statistical analysis Mean, SD and Chi square test were applied.

Results & Discussion - Socialization and education of girls in Indian society is male dominated. In that girls are prepared to take care of men's need and educated in gender biased ways and values. Role behaviour is learned through socialization. To find out reaction of parents towards social quality, several important parameters related to social qualities of adolescent girls and boys which were studied are shown in table No. 1.

Table No. - 1 (See in next page)

Regarding social quality courage equal responses were found in favour of school going girls & their brother (52.26% Girls and 47.74% Boys). Parents thought that boys and girls should be equally courageous, while in the case of school dropouts 86.67% attributed that courage is the quality of boys. The main reason may be the lack of education and therefore power to think in the right perspective.

Regarding cooperationess 69.97% school going and 78.33% school dropout respondents are cooperative as

* **Prof. (Home Science) Govt. Maharani Laxmibai, Girls P.G. College, Indore (M.P.) INDIA**

against 30.03% & 21.67% of their counterparts. It indicates that cooperativeness is expected from girls more than boys. In terms of social trait submissiveness is favoured. 69.97% school going are submissive as compared to their brother, because parents expect submissiveness more from their daughters. With little variance it was found that girls are expected to look after the guest and care for the sick in the family more than boys. In the school going respondents 64.20% girls against 35.80% boys were found to look after guest. In the case of school dropouts 75% against 25% boys. 97.53% girls take responsibility of sick person in the family as against 2.47% boys and in the case of school dropouts 80% girls against 20% boys. Study also support the discriminatory treatment as girls are socialised in to dolicity, blind obedience and total dependence. This condition begins at home and reinforced by the society. The educational system and media promote the image. Socialising the girls from their childhood to accept their situation and the ideology of male supremacy assures continuance of the discriminatory treatment (Cormac – 1961-62)

Result regarding decision making reveal that 36.62% school going and 21.66% school dropouts take their decision own as compared to their brothers 63.38% and 78.34%. Parents also felt that boys are more able to take decision independently. It shows that family environment, education and cultural baground are a strong variable in making decisions on their own. Study indicate that parents are also equally responsible for brought up of their children. Chi square value for all above qualities show that there is a significant difference between girls and boys regarding social parameters on qualities and parents do not use equal parameters to socialise girls and boys, although it is hypothesised. It shows that women have no individuality in our society. Her identity is wholly determined by male supremacy. which affects her personal & social development Kakar (1982). As Ruble (1984) observed that boys are encouraged in risk taking, freedom, independence and are left unsupervised in younger ages, while the girls are encouraged for cultural conformity & dependency.

References :-

1. Cormac – 1961 - Women in manu & his seven commentators. Varnasi Kanchan Publication.
2. Devi Renuka & Raju G 1986 - Status of women in Karnataka – A social anthropometrical perspective Indian dissertation abstracts 15(1)
3. Haul, Herlock 1972 - Adolescent development 5th edition, page 7
4. Levin 1939 - "Field theory & experiment in social psychology." American Journal of Sociology, P-44, 867-868
5. Kakar Sudhir 1982 - Psychological metrics of infancy : "Feminine identity in India." Mothers & Infant: "The inner world" Oxford, 1982, P.P.- 56
6. Piaget – 1969 - "The intellectual development of the adolescent". In C Gopalan & S Labovicy (edn) Adolescence psychological perspectives New York. Basic books -1969, PP 22-26
7. Sood Reeta 1991 - Changing status & adjustment of women, Manik Publication Pvt. Ltd., Delhi PP - 73

Table No. - 1

Social Parameters of Quality		School going respondents		Schooldropout respondents	
		No.	%	No.	%
Courage	Girls	127	52.26	08	13.13
	Boys	116	47.74	52	86.67
Total		**243**	**100**	**60**	**100**
Cooperativeness	Girls	170	69.97	47	78.33
	Boys	73	30.03	13	21.67
Total		**243**	**100**	**60**	**100**
Submissiveness	Girls	170	69.97	44	73.34
	Boys	73	30.03	16	26.66
Total		**243**	**100**	**60**	**100**
Looking for the guest	Girls	156	64.2	45	75.0
	Boys	87	35.8	15	25.0
Total		**243**	**100**	**60**	**100**
Caring for sick	Girls	237	97.53	48	80.00
	Boys	06	2.47	12	20.00
Total		**243**	**100**	**60**	**100**
Decision making	Girls	89	36.62	13	21.66
	Boys	154	63.38	47	78.34
Total		**243**	**100**	**60**	**100**

Chi square calculates - 255.30
Table value - 11.07
Level of significance - 0.05

****

Non-Wovens - A Range Of Application In Interior Furnishing

Dr. Kirti Tewari *

Abstract - The technical textiles are a major growth area in the world textile industry. Non wovens are engineered textiles produce to serve as durables and non durables. Furnishing for interiors are under going drastic experimentation whereas non-woven are fast replacing the orthodox textiles. The present paper provides an overview of acceptance and satisfaction levels of interior decorators for such upcoming furnishings.

Introduction - Innovative developments and highly advanced technology are now being combined in the laboratory to create exciting new textiles whose aesthetic quality is as important as their performance. Directly affected by advances in technology, the non-woven segment is a hugely growing area for textiles.

There is some debate about what can be correctly termed a non-woven. The ISO considers it to include manufactured sheet, web or bat consisting of directionally or randomly oriented fibers. They can be bonded by friction, cohesion or adhesion. This definition appears narrow because felts, stitch bonded materials are commonly regarded as non wovens. The end use of the fabric decides the manufacturing process. There are a number of standard techniques used. The addition of resins, bonding and finishing techniques ensure that the material can be tailored to specific functions. A dry laid non woven can be produced by air laying to create a web. The web formation may be of parallel; cross day or random laid one recent development in this area uses randomly oriented fibers which allow a lighter material to be produced. The techniques of air-laying is especially suitable for very short staple fibers. The technique of spun laid or spun bounded, non-wovens combines the fiber laying with the bounding process.

Non wovens can be classified by the bonding method used. A common bound is a chemical or adhesion bound. This impregnates the web with a bounding agent such as polymer resin in solution, powder or foam form. Thermonal or cohesion bounding works by applying heat to a web which contains some thermoplastic fibers. Mechanical or friction bounding entangles the fibers and strengthens the web through a system such as needle-punching. Hydro-entanglement, or spun lacing uses fine jets of water of high pressure to entangle the fiber.

Suitability of Non Wovens - Materials and products which are multi functional are undoubtedly less damaging to the environment, they have also resulted in some very innovative designs. Luminous and reflective finishes are most associated with decorative qualities. There is a sublte but striking interplay of materials which combine transparency with reflective and textured areas. Such fabries are intended for large scale use in interiors.

Majority of non wovens are thermoplastic, so they can be shaped to create many complex forms with the synthetic fibers, a successfully way of achieving a permanent bound is by the application of heat and pressure either over the entire fabric or a in specific places.

The new non wovens are durable, washable and resistant to most chemicals. The don't fray, so they can be perforated or subjected to complex cutting. Because these non-woven thextiles are cheap to make, money can be spent on finishing treatments to produce a wide range of different looks.

The soft textural effects of some of these materials works well in an interior setting and is both decorative and functional. They can be further engineered to give a wide variety of other properties such as handle, drape and appearance. The great advantage in manufacturing non woven fabrics is the speed with which the final fabric can be produced.

Relative Rate of Fabric Production

Fabric manufacturing method	Typical rate of fabric production
Weaving	1 m/min
Knitting	2 m/min
Non Wovene	100 m/min

Not only are production rates higher for non wovens, but the process is more automated, requiring less labour. The non woven process is also efficient in it's use of energy.

The are good sound and shock absorbents. They can be given special purpose finishes. Three dimensional effects can be created. The match well with woven or knitted fabrics. For wall coverings, flour loverings upholes try, screens, partitions and table tops they are excellent in combination as well as alone when used.

A preliminary survey of 45 interior decorators was made to assess the awareness use and satisfaction level in regard to non-woven in Indore city. The results were striking as it was seem that through 34 of them were using non woven

*Professor (Home Science) Govt. Maharani Laxmibai, Girls P.G. College,Kila Bhavan, Indore (M.P.) INDIA

textures, they were not aware of the inherent properties of 28% of them admitted that they were not aware of difference between woven and non woven. Only 12% were aware of the fiver content. The properties such as strength, softness, ease to clean and colour fastness to day light was of great concern to them. When enquired whether they conveyed these properties to their customers, hindered percent of them answered in positive. It was seen that these fabrics were mostly used in office and home interiors in many places and for hotel and restaurants for wall coverings, non wovens we used. For acquiring these fabrics, the depended on retail, wholesale markets E-shopping was also an important made of buying specific fabrics special from France and U.S.

More than 50% of the interior decorators found these fabrics more economical. When asked about states of feedback from customers, none was very sure as they did not contact their customers. No complaint was received. They all agreed that since it was a new concept, they has difficulty in persuading their customers for using in their individual projects.

A through testing of these fabrics needs to be done further and research constantly done to further improve the applicability. Non wovens are versatile cheap, functional yet they are difficulty to acquire. Consumers are not aware of their inherent properties awaited for its multivariate use.

References :-

1. Sarah E B and mary O' MANONY "Techno Textiles"
2. ANNE F and JENNIFER C "Consumer Textiles" Oxford
3. DV Port http://www.duport.com
4. www.clevertex.net
5. Virtual technologies Inc. http://www.virtex.com/-virtex

****

आदिवासी समुदाय की छात्राओं पर बदलते परिवेश के प्रभाव का अध्ययन

डॉ. अनुराधा अवस्थी * डॉ. प्रगति देसाई * *

प्रस्तावना – आदिवासी समुदाय भारतीय समाज के प्रमुख अंग के रूप में अपनी विशिष्ट संस्कृति, समाज व्यवस्था और रीति रिवाजों के साथ विकसित हो रहे है। लगभग चार करोड़ चालीस लाख आदिवासी चार सौ समूहों में भारत में निवास करते है। मध्यप्रदेश अपनी जनजातीय जनसंख्या के आधार पर संपूर्ण राष्ट्र में प्रथम स्थान पर है। यहां की मुख्य जनजातियों में भील, गोंड, बेगा, कोरकू, भारिया, हलषा, कोल, मोरिया, सहारिया आदि प्रमुख है। मध्यप्रदेश के धार, झाबुआ एवं मंडला जिले में सम्पूर्ण राज्य की जनजातीय जनसंख्या का लगभग 50% निवास करता है। शेष जनसंख्या सिवनी, सीधी शहडोल एवं खंडवा जिले में है। 2011 की जनगणना के अनुसार मध्यप्रदेश में सर्वाधिक भील जनजाति पाई जाती है जिनकी संख्या 4618068 है जो कि कुल जनजातीय जनसंख्या का 37.7 प्रतिशत है। द्वितीय स्थान पर गोंड जनजाति पाई जाती है जिनकी संख्या 4357918 है, जो कि सम्पूर्ण जनजातीय संख्या का 35.6% है। आंकड़ो से स्पष्ट है कि राज्य की कुल जनसंख्या का एक बड़ा भाग आदिवासी समुदाय का है जिन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ने की आवश्यकता है।

संविधान में भौतिक अधिकारों एवं समानता देने वाली अनेक धाराएं है। जिनमें खण्ड–4 की धारा 46 में राज्य सरकारों को समाज के कमजोर वर्गो के शैक्षणिक एंव आर्थिक हितों पर विशेष ध्यान देने के निर्देश दिए गए है, ताकि उन्हें सामाजिक अन्याय व शोषण से बचाया जा सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु सरकार द्वारा विभिन्न योजनाऐं एवं विकास कार्यक्रम चलाये जा रहे है, किन्तु आदिवासियों की सामाजिक आर्थिक दशा इस प्रकार की है कि वे इन कार्यक्रमो, नवीन निर्देशों और विधियों के तर्क को समझ नहीं पाते है न ही अपना पाते हैं। वे अन्तर्मुखी होते हैं नए लोगों के संपर्क में आना व नवीन विधाओं को सीखना उनके लिए कठिन होता है परिणाम स्वरूप इन विकास कार्यक्रमों एंव योजनाओं का अपेक्षित लाभ वे नहीं उठा पाते हैं, साथ ही ये शारीरिक श्रम तो कर सकते है परन्तु उद्यमी के रूप में जोखिम उठाने की क्षमता इनमें कम होती है इन्हें मानसिक सहारे और दिशा निर्देश की आवश्यकता होती है जो हमारी वर्तमान क्रियान्वयन प्रणाली में पूर्ण रूप से नहीं मिल पाता इस कारण पूँजी की व्यवस्था और प्रशासनिक प्रबंध के विस्तार के उपरांत भी इनका सामाजिक आर्थिक विकास का स्तर अपेक्षाकृत निम्न है।

आदिवासी समुदाय अपनी सीमित आवश्यकताओं के लिये मुख्यत: प्रकृति पर निर्भर रहा है वन इनके निवास स्थान के साथ–साथ आजीविका के भी स्त्रोत रहे है परन्तु सिमटते हुए बनो और उन पर बढ़ते सरकारी प्रतिबंधो तथा दबाव के कारण आदिवासी कृषि पशुपालन तथा उनसे जुड़े उद्योगों की ओर उन्मुख हो रहे है। आधुनिक कार्य व्यवस्था में वन राज्य की संपदा है तथा राजस्व का प्रमुख स्त्रोत है फलस्वरूप व्यापारियों और सरकारों ने वन्य संसाधनों का व्यापारिक स्तर पर दोहन प्रारंभ कर दिया जिससे जीविकोपार्जन के लिये आदिवासियों को शहरों की ओर रूख करना पड़ रहा है जहाँ इनकी उत्खनन, निर्माण कार्य परिवहन व्यापार और अन्य सेवाओं में उल्लेखनीय भागीदारी होने लगी है।

शहरी वातावरण के प्रभाव से इनके रहन सहन में परिर्वतन स्पष्ट देखा जा सकता है जैसे आवास के नाम पर आज भी इनके पास अस्थायी कच्ची झोपड़ी होती है परन्तु टी.वी., रेडियो और मोबाईल इनकी व्यक्तिगत दिनचर्या के अभिन्न अंग बन चुके है परंपरागत वेशभूषा का स्थान आधुनिक शहरी परिधानों ने ले लिया है। आदिवासियों के सामाजिक आर्थिक स्तर में दिखाई दे रहे परिवर्तनों के लिये सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं के साथ–साथ संचार क्रान्ति का भी महत्वपूर्ण योगदान है।

आदिवासियों को प्रदेश के विकास की मुख्य धारा से जोड़ने के लिये लागू की गई योजनाओं के क्रियान्वयन में यदि हम सफल हो सके तो मध्यप्रदेश के सर्वांगिंण विकास में इनकी भागीदारी महत्वपूर्ण हो सकती है।

अध्ययन पद्धति – इस अध्ययन हेतु इन्दौर के महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय में अध्ययन करने वाली पचास छात्राओं का चयन दैव निर्दशन पद्धति के द्वारा किया गया। जो आदिवासी हैं तथा महाविद्यालय के छात्रावास में रहकर अध्ययन कर रही है इनके परिवार गांवों में निवास कर रहे हैं छात्राओं से प्रश्नावली के द्वारा आवश्यक जानकारी प्राप्त की गई।

परिणाम एवं विश्लेषण – प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से निम्न परिणाम प्राप्त हुये

तालिका क्रमांक –1 पारिवारिक आय (प्रति माह)

क्र.	आय समूह	आवृति	प्रतिशत
1.	5,000– 10,000	18	36
2.	11,000–15,000	10	20
3.	16,000–20,000	09	18
4.	21,000 से अधिक	13	26

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 36 प्रतिशत परिवारों की मासिक आय 10,000 तक थी, 26 प्रतिशत परिवारों की मासिक आय 20,000 से 25,000 के बीच एवं 10 प्रतिशत परिवारों की आय 11000/– से 15000– के बीच थी।

अधिकतर परिवार कृषि से जुड़े है।

व्यवसाय – परिवार के मुखिया के व्यवसाय पर परिवार का आर्थिक स्तर निर्भर करता है कृषि आधारित व्यवसायों में प्राय: आय अपेक्षाकृत कम होती है

* सहायक प्राध्यापक (गृहविज्ञान) महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय,किला मैदान, इन्दौर (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (गृहविज्ञान) महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय,किला मैदान, इन्दौर (म.प्र.) भारत

क्र.	व्यवसाय	आवृति	प्रतिशत
1.	स्वयं की भूमि पर कृषि	9	18%
2.	कृषि कार्य में मजदूरी	18	36%
3.	शहरों में मजदूरी	16	32%
4.	गांव में नौकरी	7	14%

अध्ययन में सम्मिलित परिवारों में से सबसे अधिक 36 प्रतिशत परिवार कृषि कार्य में मजदूरी को व्यवसाय के रूप में अपनाये हुऐ है जबकि 18 प्रतिशत परिवारों में स्वयं की भूमि पर कृषि की जाती है 32 प्रतिशत परिवार शहरों में मजदूरी कार्य करते है जबकि केवल 14 प्रतिशत परिवार गांवों में नौकरी करते है।

तालिका क्रमांक–2 आवास का स्वामित्व एवं स्थिति

क्र.	आवास	आवृति	प्रतिशत
1.	स्वयं का	35	70%
2.	किराये का	15	30%
	कुल	**50**	

क्र.	स्थिति	आवृति	प्रतिशत
1.	कच्चे	23	46%
2.	पक्के	15	30%
3.	मिश्रित	12	24%

सर्वेक्षण में सम्मिलित परिवारों में से 70 प्रतिशत के पास स्वयं के मकान है जबकि 30 प्रतिशत परिवार किराये के मकान में निवास करते है। कृषक परिवारों के पास स्वयं के मकान है जबकि मजदूरी व नौकरी करने वाले परिवार किराये के मकानों में रहते है। 46 प्रतिशत कच्चे आवास में जीवन यापन करते है अर्थात लकड़ी, ईट, मिट्टी के बने हुये है 30 प्रतिशत मकान चूने, ईट सीमेंन्ट से बने पाये गये। जबकि 24 प्रतिशत मकान मिश्रित (कुछ कमरे कच्चे व कुछ कमरे पक्के) पाये गये।

तालिका क्रमांक–3 आवास में शौचालय की उपलब्धता

क्र.		आवृति	प्रतिशत
1.	उपलब्ध	24	48
2.	अनुपलब्ध	26	52

48 प्रतिशत मकानों में शौचालय की सुविधा उपलब्ध है किन्तु 52 प्रतिशत आवास शौचालय रहित है। इन परिवारों के सदस्य खुले मैदान, जंगल व खेतों का उपयोग शौच हेतु करते है।

तालिका क्रमांक–4 पीने के पानी की उपलब्धता

क्र.		आवृति	प्रतिशत
1.	उपलब्ध	22	44
2.	अनुपलब्ध	28	56

उपरोक्त तालिका दर्शाती है कि 56 प्रतिशत परिवार अभी भी ऐसे है जिनमें पीने का पानी अनुपलब्ध है। इन्हें सुदूर के नदियों तालाबों से पानी लाना पड़ता है।

तालिका क्रमांक 5 टी.वी. की उपलब्धता एवं प्रकार

	आवृति	प्रतिशत
उपलब्ध	30	60%
अनुपलब्ध	20	40%
रंगीन	16	53.33%
श्वेत श्याम	14	47.66%

सर्वेक्षण में सम्मिलित परिवारों में से 60प्रतिशत के पास टी.वी. है जिसमें वे अनेक चैनल दखते है और इस प्रकार देश दुनिया के समाचार उन्हें मिलते रहते है 40प्रतिशत परिवारों के पास टी.वी. उपलब्ध नहीं है। जिन परिवारों के पास टी.वी. है उनमें 53 प्रतिशत के पास रंगीन टी.वी. है तथा 47 प्रतिशत के पास श्वेत श्याम टी.वी. है।

तालिका क्रमांक 6 कम्प्यूटर की उपलब्धता

क्र.	उपलब्धता	आवृति	प्रतिशत
1.	हैं	8	16%
2.	नहीं	42	84%

1.	कम्प्यूटर का ज्ञान हैं	28	56%
2.	ज्ञान नहीं है	22	44%

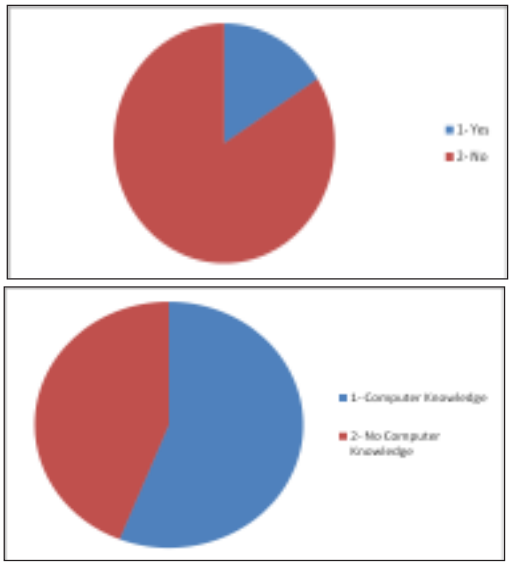

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि कम्प्यूटर की उपयोगिता ग्रामीण समाज को समझ में आने लगी है इसलिए कुछ शिक्षित तथा मध्यम आय वर्गीय परिवारो में कम्प्यूटर खरीदा जाने लगा है प्रस्तुत अध्ययन में सम्मिलित परिवारों में से 16 प्रतिशत परिवारों में कम्प्यूटर पाया गया जबकि 84 प्रतिशत परिवारों में कम्प्यूटर नहीं है। इससे स्पष्ट है कि कम्प्यूटर का उपयोग गॉवों के सम्पन्न परिवार भी करने लगे है।

कम्प्यूटर का ज्ञान महाविद्यालय में अध्ययनरत छात्राओं के पाठ्यक्रम में सम्मिलित है इसलिए सम्पर्क में आने वाली 56 प्रतिशत छात्राओं को कम्प्यूटर को उपयोग में लाने का ज्ञान है जबकि उन सब के परिवारों में कम्प्यूटर उपलब्ध नहीं है परन्तु वे महाविद्यालय की प्रयोगशाला तथा साइबर कैफे में उसका उपयोग करती है फिर भी 44 प्रतिशत छात्राऐं ऐसी है जिन्हें कम्प्यूटर पर कार्य करना नहीं आता हैं। यह महाविद्यालय में सिखाये जाने के उपरांत भी वे उसका उपयोग ठीक से नहीं कर पाती।

कम्प्यूटर का उपयोग वे अपने विषय से संबंधित जानकारी नेट से प्राप्त करने के लिये ई–मेंल भेजने तथा अलग–अलग प्रकार के फार्म ऑन लाइन भरने के लिये करती है।

मोबाईल की उपलब्धता – संचार क्रान्ति के इस युग के प्रभाव से आदिवासी समाज भी अछूता नहीं है अध्ययन में सम्मिलित निम्न आय वर्गीय परिवारों में बड़ी संख्या में घरों में शौचालय एवं पीने को पानी जैसी मूलभूत सुविधाऐं उपलब्ध नहीं है तथापि मोबाइल एवं दूरदर्शन का उपयोग किया जा रहा है

कुछ घरों में कम्प्यूटर है तथा अधिकांश छात्राओं को कम्प्यूटर का ज्ञान भी है क्योंकि यह उनके पाठ्यक्रम में सिखाया जा रहा है अत: स्पष्ट है कि बदलते परिवेश में आदिवासी समुदाय की आवश्यकताओं के अनुरूप व्यवस्थाओं में परिर्वतन लाकर तथा अन्य शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक सुधारों को प्रति स्थापित कर म.प्र. की जन संख्या के इस बड़े भाग को प्रदेश के सर्वांगिक विकास में भागीदारी बनाया जा सकता है।

आधुनिक युग में संचार का सबसे प्रचलित माध्यम मोबाइल बन गया है प्रस्तुत अध्ययन द्वारा हमें ज्ञात हुआ कि जिन छात्राओं के परिवार में पक्का घर नहीं है तथा घर में शौचालय तक नहीं है ऐसे परिवारों के सदस्यों के पास भी मोबाईल है अध्ययन में सम्मिलित 74 प्रतिशत छात्राओं के पास मोबाइल उपलब्ध है, 26 प्रतिशत छात्राओं के पास मोबाइल नहीं है।

जिन छात्राओं के पास मोबाइल है उन छात्राओं ने बताया कि परिवार से लगातार सम्पर्क बनाये रखने में मोबाइल सहायक होता है।

छात्राओं को कम्प्यूटर का ज्ञान है तथा उन्हें ई-मेंल और इन्टरनेट का उपयोग करना होता है इसलिए वे स्मार्ट मोबाइल का उपयोग करती है परन्तु स्मार्ट फोन मंहगा होने से बहुत कम छात्राऐं उसे खरीद पाती है।

तालिका क्रमांक - 7 मोबाइल की उपलब्धता

क्र.	मोबाइल उपलब्धता	आवृति	प्रतिशत
1.	उपलब्ध	37	74%
2.	अनुपलब्ध	13	26%
	मोबाइल का प्रकार		
1.	सादा	22	59.46%
2.	स्मार्ट	15	41.44%

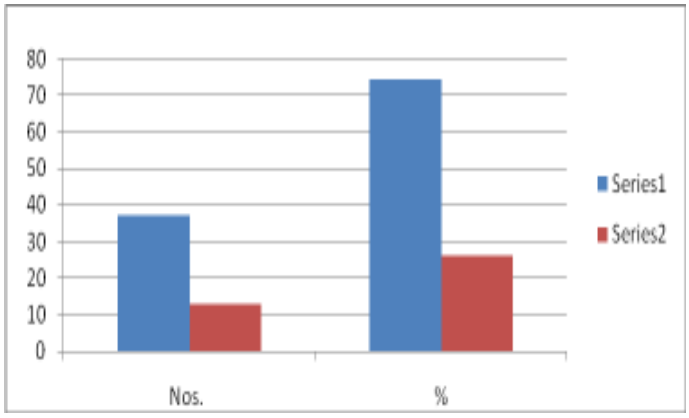

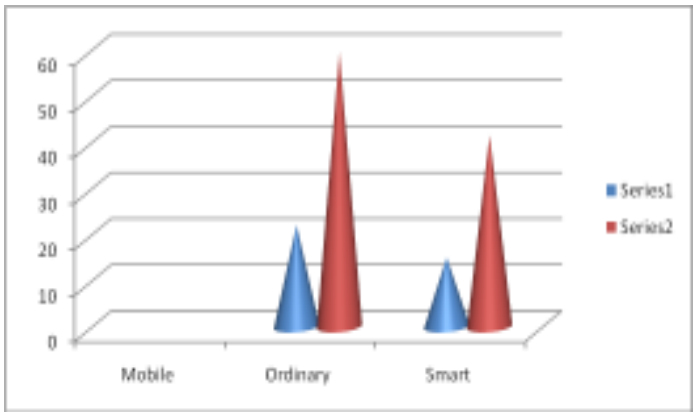

वर्तमान समय में मोबइल एक अनिवार्यता बनती जा रही है उसके सूचनाओं के आदान प्रदान में महत्वपूर्ण योगदान के कारण सभी इसका उपयोग करते है।

निष्कर्ष - उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि संचार क्रान्ति के इस युग के प्रभाव से आदिवासी समाज भी अछूता नहीं है अध्ययन में सम्मिलित निम्न आय वर्गीय परिवारों में बड़ी संख्या में घरों में शौचालय एवं पीने को पानी जैसी मूलभूत सुविधाऐं उपलब्ध नहीं है तथापि मोबाइल एवं दूरदर्शन का उपयोग किया जा रहा है कुछ घरों में कम्प्यूटर है तथा अधिकांश छात्राओं को कम्प्यूटर का ज्ञान भी है क्योंकि यह उनके पाठ्यक्रम में सिखाया जा रहा है अत: स्पष्ट है कि बदलते परिवेश में आदिवासी समुदाय की आवश्यकताओं के अनुरूप व्यवस्थाओं में परिर्वतन लाकर तथा अन्य शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक सुधारों को प्रति स्थापित कर म.प्र. की जन संख्या के इस बड़े भाग को प्रदेश के सर्वांगिक विकास में भागीदारी बनाया जा सकता है।

सुझाव - जनजातीय समाज के रहन-सहन में स्पष्ट परिर्वतन दिखाई देने लगा है परन्तु शिक्षा एवं स्वास्थ्य के स्तर में आशा के अनुरूप विकास नहीं हो पाया है। अत: इस संबंध में कुछ सुझाव इस प्रकार है -

1. व्यक्तित्व विकास के अवसर प्रदान करना -छात्रवृतिया एवं आर्थिक सहायता देकर आदिवासियों को वित्तीय सहायता तो दी जाती है परन्तु उनके व्यक्तित्व का विकास न हो पाने से निर्णय क्षमता और सृजनात्मक प्रवृत्तियों का विकास नहीं हो पाता और वे स्व रोजगार नहीं कर पाते अत: उनके व्यक्तित्व विकास के अवसर दिये जाने चाहिए।
2. वन और गांव में रहकर ही उन्हें शिक्षा और रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जाने चाहिए ताकि वे अपने परिवेश में रहकर ही अपना विकास कर सके।
3. संचार माध्यमों के द्वारा नशे के दूष्परिणामों का प्रचार किया जाना चाहिए ताकि वे उससे दूर रह सके।
4. अनुत्पादक ऋण दिये जाने पर प्रतिबंध लगाये जाने चाहिए, जिससे उनका आर्थिक विकास हो सके।
5. आदिवासियों को स्वास्थ्य और शिक्षा की सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए जिससे उनका स्वस्थ्य विकसित हो सके और वे कूपोषण से बच सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Desai R.A. Rular Sociology in India, Pg. No. 267-290 The Indian Society of Agricultural Economics Bombay.
2. Gore M.S., Urbanization and family change pg.No. 174-197 Popular prakashan Bombay.
3. Pati R.N. Jagatdeb Lilitendu-tribal demography in India, Pg. No. 243-253 Ashish Publishing House, New Delhi.
4. Sing Yogendra Modernization of Indian Tradition Pg. No. 161-190 Thomson Press (India) Ltd. Faridabad.
5. तिवारी डॉ. शिवकुमार शर्मा, डॉ.श्री कमल - मध्यप्रदेश की जनजातिया समाज एवं व्यवस्था पृ - 220-240 मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल
6. यादव मारकण्डेयसिंह, आदिवासी समुदाय में स्वास्थ्य के कुछ पक्ष प्र-162-190 रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली

****

संयुक्त परिवार के अपराधी बालकों एवं बालिकाओं का सांवेगिक परिपक्वता स्तर का अध्ययन

पार्वती मोदी *

प्रस्तावना – बालकों में अपराधी प्रवृत्ति को एक गम्भीर समस्या के रूप में देखा जाता है। बाल अपराध के बारे में सामान्यत: व्यक्तियों और कुछ सामाजिक विद्वानों के विचार अपर्याप्त दोषपूर्ण और भ्रामक है। कई कारणों में से एक यह है कि वे यह मानते है कि बाल अपराधी केवल अल्प आयु के अपराधी होते है, अर्थात् गैर वयस्क को अपराधी माना जाता है, जो देश के कानून द्वारा निर्धारित 16 या 18 वर्ष की उम्र के है। **बाल न्यायालय अधिनियम** (1986) के अनुसार आज बाल अपराधियों की अधिकतम आयु लड़कों के लिए 16 वर्ष और लड़कियों के लिए 18 वर्ष है, इससे पहले **बाल अधिनियम** (1960) के अनुसार विभिन्न राज्यों में आयु सीमा भिन्न-भिन्न उत्तर प्रदेश, गुजरात, केरल, महाराष्ट्र, पंजाब और मध्यप्रदेश जैसे राज्यों में यह आयु 16 वर्ष, परन्तु बंगाल व बिहार में यह आयु 18 वर्ष, राजस्थान, असम और कर्नाटक जैसे राज्यों में यह लड़कों के लिए 16 वर्ष व लड़कियों के लिए 18 वर्ष, फिर भी आयु के अतिरिक्त अपराध की प्रकृति भी अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण है।

वे बच्चें जो परिस्थितिवश अपराधों में लिप्त रहते है, जैसे कि भगोड़ेपन, आवारागर्दी, अनैतिकता और अनियंत्रण बाल अपराधी की परिभाषा में आते है। न्यूमेयर, इवान नाय, जैम्स शार्ट जूनियर, रिचर्ड जैनकिन्स और वाल्टर रैकलेस ने बाल अपराध की अवधारणा में व्यवहार के प्रकार पर जोर दिया है। **वाल्टर रेकलेस** (1956) के अनुसार 'बाल अपराध' शब्द अपराधी संहिता के उल्लंघन पर एवं व्यवहार प्रतिमानों के उस अनुसरण पर लागू होता है, जिसे बच्चों व किशोरों में समाज द्वारा अच्छा नहीं समझा जाता। इस प्रकार आयु और व्यवहार उल्लंघन जो विधान में निषिद्ध हो, बाल अपराध की अवधारणा में महत्तवपूर्ण है।' बालक का असामाजिक व्यवहार जो कोई निश्चित आयु स्तर तक देखा जाता है, जो विभिन्न संस्कृति के आधार पर भिन्न-भिन्न हो सकता है, जो विशेष कानून और कचहरी द्वारा संचालित किए जाते हैं, जो प्रौढ़ अपराध से भिन्न होते है।

किशोर अपराधी की मनोवैज्ञानिक परिभाषा उसकी कानूनी परिभाषा से भिन्न है, क्योंकि मनोविज्ञान में किशोर अपराधों के कारणों पर जोर दिया जाता हैं कानून की दृष्टि से ऐसे अपराधी छूट तो जाते है, पकड़े नहीं जाते परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से ये अपराधी है। बाल अपराधी की सार्वभौमिक परिभाषा देना सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि भिन्न-भिन्न देशों में बाल अपराध की अवधारणा में भिन्नता हैं। बाल अपराध को अनेक विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। इनमें से कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं-

1. **डॉ. सेथना के अनुसार –** 'किशोर अपराध में एक स्थान विशेष पर उस समय लागू कानून द्वारा निर्धारित एक निश्चित आयु के बालक द्वारा किए गए अनुचित कार्य सम्मिलित है।'
2. **न्यूमेयर के अनुसार –** 'एक किशोर अपराधी निर्धारित आयु से कम आयु वाला वह व्यक्ति है जो समाज विरोधी कार्य करने का दोषी है और जिसका दुराचरण कानून का उल्लंघन है।'
3. **मेनगोल्ड के अनुसार –** 'बाल अराधी वह अपराधी है जो आवश्यक रूप से किसी विशेष अपराध करने से अभियुक्त नहीं होता, अपितु उनमें समाज विरोधी दृष्टिकोण तथा व्यवहार के लक्षणों का विकास हो जाता है, जो यदि नहीं रोके गए तो वह नि:संदेह ऐसे कार्यो की ओर अग्रसर होंगे, जिन्हें लोग सहन नहीं कर सकेंगे।'
4. **इलियट तथा मैरिल के अनुसार –** 'बाल अपराधी एक कम उम्र वाला युवक व्यक्ति है, जो प्रचलित कानूनों के प्रत्यक्ष विरोध में समाज विरोधी आचरण करता हो। ये अपराधी प्राय: 16 या 18 वर्ष तक की आयु के व्यक्ति होते है। परन्तु इनके अन्तर्गत 21 वर्ष की आयु के व्यक्ति भी सम्मिलित किए जा सकते है।'

'बाल अपराध' शब्द की व्याख्या यद्यपि अनेक समाजशास्त्रियों, अपराध शास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों, मनोचिकित्सकों तथा विधि शस्त्रियों ने की है और कई उपागमों के आधार पर सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी किया हैं तथापि इसके अवधारणात्मक अर्थ के सम्बन्ध में उनमें एकमत्त नहीं हैं। इन विद्वानों ने अपने विषय के स्वानुभूति मूलक ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में बाल अपराध पद को परिभाषित करने का प्रयास किया है। इस विषय पर उपलब्ध साहित्य का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि कुछ विद्वान बाल अपराध की व्याख्या आयु एवं व्यवहार क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में वैधानिक उपागम के आधार पर, जबकि कुछ विद्वान सामाजिक मानदण्डों के आधार पर करते है। इसके विपरीत कुछ विद्वान ऐसे भी है जो वयस्क अपराध तथा बाल अपराध की व्याख्या समान रूप में करते हैं, ये विद्वान आयु के आधार पर इन दोनों अपराधों में कोई भेद नहीं मानते है। कुछ विद्वान ऐसे भी है, जो आयु तथा व्यवहार को ध्यान में रखते हुए मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में बाल अपराध की व्याख्या करते है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान ऐसे भी है, जो आयु तथा व्यवहार की दृष्टि से वैधानिक तथा सामाजिक दोनों उपागमों के आधार पर बाल अपराध की व्याख्या करते हैं।

औचित्य – बाल अपराध समाज के लिए एक भयंकर चुनौतीपूर्ण समस्या है। इस समस्या के समाधान हेतु अब तक किसी भी स्वस्थ एवं कारगर मार्ग की खोज नहीं की जा सकी हैं। इस समस्या के समाधान के लिए आज तक के समस्त प्रयासों से कहीं नहीं प्रतीत होता है कि समस्या निरोध के कार्यक्रम और कानून अपने उद्देश्य की प्राप्ति सफलतापूर्वक कर पाए हैं। बाल अपराध के आँकड़े इस बात को स्पष्ट करते हैं कि समस्या कम होने के स्थान पर बढ़ती ही जा रही है और हमारे प्रयत्न असफल हो रहे हैं। इस वस्तुस्थिति को देखते हुए समस्या का निदान एवं निराकरण हमारे लिए चिंतन का विषय बना हुआ है।

* सहायक प्राध्यापक (गृह विज्ञान) महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

यद्यपि वयस्क अपराधियों का संवर्द्धन तथा विकास बाल अपराध से ही होता है, तथापि ऐसे हजारों वयस्क स्त्री-पुरुष मिलते है, जो अपने जीवन की प्रारंभिक अवस्था में बाल अपराधी नहीं रहे है किन्तु बाद में कानून उल्लंघनकारी कार्यो में संलग्न हो गये हैं। वास्तव में ऐसे अधिकांश वयस्क अपराधियों का इतिहास विधि संगत तथा नैतिक साधुता से पूर्ण मिलता है तथापि हमारा ध्यान अधिकतर बाल अपराध निवारण के उपायों व कार्यक्रमों पर ही केन्द्रित होता है। यद्यपि केवल ये उपाय व कार्यक्रम उन वयस्क अपराधियों की अपराधिकता के निवारण में कार्यकारी नहीं होते, जो अपने बाल व किशोर जीवन में किसी प्रकार के अपराधिक कृत्यों में कभी भी संलग्न नहीं रहे हैं। तथापि बाल अपराध की समस्या के निवारणार्थ कुछ अन्य उपायों पर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है, जिनसे इस समस्या के निवारण की चुनौतियों का सामना किया जा सके।

बाल अपराध का सुधारात्मक उपाय इस उपचारीय मान्यता आधारित है कि यदि बाल अपराधियों की समस्याओं को समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समझने तथा उनके सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने का प्रयास किया जाये और इनको उचित प्रशिक्षण, व्यवसायिक शिक्षा, परामर्श एवं सहायता दी जाए तो निश्चित ही ये आपराधिक वृत्ति का परित्याग कर सामान्य नागरिकों की भाँति व्यवहार करने लगेगें। दूसरी मान्यता यह है कि अपराधिक व्यवहार बालकों के स्वभाव तथा जीवन प्रतिमान के कोई जन्मजात गुण नहीं होते हैं। प्रत्युत सामाजिक परिस्थितियों के परिणाम या उत्पाद हैं। उनके अपराधिक व्यवहार आकस्मिक होने के साथ ही साथ उनकी अपरिपक्व बुद्धि, कानून के परिणामों के प्रति अज्ञानता तथा आपराधिक कार्य करने की किसी योजना के अभाव के संकेतक मात्र हैं। बालकों के अपराधिक व्यवहार उस पर्यावरण में प्रस्फुटित होते हैं, जिसमें अपराधियों का संवर्द्धन तथा विकास होता है।

इस प्रकार बाल अपराध के इन तमाम पहलुओं का अध्ययन कर यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया है कि बढ़ते शहरीकरण एवं औद्योगीकरण के कारण शहरों में अपराध के साथ-साथ बाल अपराध में भी तेजी से वृद्धि हो रही है। अत: उक्त शोध के माध्यम से यह भी ज्ञात किया जाएगा कि इन्दौर शहर में बाल अपराध में बालक एवं बालिकाओं में अपराधिक प्रवृत्ति एवं प्रकार में क्या अन्तर है तथा बाल अपराध में पारिवारिक पृष्ठभूमि की क्या भूमिका है। बाल अपराध का बालक बालिकाओं के शारीरिक एवं मानसिक विकास पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ रहा है। बाल अपराध में आर्थिक, शैक्षणिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि कितनी उत्तरदायी है। इन सभी पहलुओं का तथ्यात्मक अध्ययन करके ही शोध का महत्व प्रतिपादित किया जा सकता था।

उद्देश्य – प्रस्तुत शोध का उद्देश्य था संयुक्त परिवार के अपराधी बालकों एवं बालिकाओं का सांवेगिक परिपक्वता स्तर ज्ञात करना।

परिकल्पना – प्रस्तुत शोध की परिकल्पना थी - संयुक्त परिवार के अपराधी बालकों एवं बालिकाओं का सांवेगिक परिपक्वता स्तर सार्थक अंतर नहीं होगा।

न्यादर्श – इन्दौर आयुक्त संभाग का इन्दौर जिला मालवा के मध्य में स्थित है। इस जिले की सीमाएँ $22^0 20$ उत्तर से $23^0 05$ उत्तर आक्षांश और $75^0 25$ पूर्व से $76^0 15$ पूर्व देक्षांश तक फैली हुई है। यह उत्तर में उज्जैन जिले से दक्षिण में निमाड़ जिले से, पूर्व में देवास जिले से और पश्चिम में धार जिले से घिरा हुआ है। इन्दौर जिले की सीमाएँ तीन ओर से प्राकृतिक सीमाएँ है। तथा पूर्व में क्षिप्रा नदी, पश्चिम में चम्बल नदी तथा दक्षिण में करम और चोरल नदियाँ जो दक्षिण में नर्मदा नदी में गिरती है। मध्य की विन्ध्य पर्वत की जल विभाजक रेखा उत्तरी सीमा लगभग कृत्रिम रेखा है। इसी इन्दौर जिले से प्रतिदर्श का चयन किया गया।

निर्देशन का शाब्दिक अर्थ किसी भी इकाई को चुनने से होता है। गुडे व हट्ट के अनुसार 'एक निर्देशन जैसे कि नाम से स्पष्ट करता है, सम्पूर्ण समूह का निम्नतम प्रतिनिधित्व करता है। इस शोध कार्य के लिए न्यादर्श का चयन इन्दौर जिले से किया गया है। इस न्यादर्श का चयन उद्देश्यपरक न्यादर्श विधि (Purposive Sampling Method) द्वारा किया गया। प्रस्तुत शोध कार्य में निदर्शन के लिए बाल सुधार गृह जो इन्दौर में परदेशीपुरा में स्थित है, से 100 बाल अपराधी बालक, लिए एवं 100 बाल अपराधी बालिकाएँ लिये। ये बाल अपराधी 06-12 वर्ष एवं 13 -17 वर्ष की उम्र के लिए गये। इसमें सामान्य वर्ग, अन्य पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के बालकों एवं बालिकाओं को लिया गया था।

उपकरण – प्राय: शोध से संबंधित चर के मापन के लिए निम्न उपकरण का उपयोग किया गया था-

संवेगात्मक परिपक्वता मापनी – वर्तमान शोध कार्य में बालकों एवं बालिकाओं की सांवेगिक परिपक्वता के अध्ययन हेतु डॉ.यशवीर सिंह एवं डॉ. महेश भार्गव की सांवेगिक परिपक्वता मापनी का उपयोग किया गया था, जिसमें सांवेगिक परिपक्वता से संबंधित 48 प्रश्न थे। बालकों एवं बालिकाओं को सांवेगिक परिपक्वता में दिए गए प्रश्नों पर अपने विचार व्यक्त करने के लिए समय का कोई बंधन नहीं था। इसमें सांवेगिक परिपक्वता के विभिन्न पहलुओं से संबंधित पदों का निर्माण किया गया था। इस मापनी में पाँच खण्ड है- क, ख, ग, घ एवं च है। क, ख, ग, घ खंड में 10-10 प्रश्न है। खंड 'च' में 08 प्रश्न है। खंड क में सांवेगिक अस्थिरता से संबंधित 10 प्रश्न है। खंड ख में सांवेगिक दमन से संबंधित 10 प्रश्न है। खंड ग में सामाजिक कुसमायोजन से संबंधित 10 प्रश्न है। खंड घ में व्यक्तित्व विघटन से संबंधित 10 प्रश्न है। खंड च में नेतृत्वहीनता से संबंधित 08 प्रश्न है। इन सभी खंडों को विकल्पवार निम्न प्रकार पाँच बिंदु मापनी से अंकन किया गया।

विकल्प	भार
अत्यधिक	05
बहुधा	04
अनिश्चित	03
प्राय:	02
कभी नहीं	01

प्रदत्त संकलन – इस शोध के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सबसे पहले उपयुक्त उपकरणों को चयनित किया गया गया। तत्पश्चात् अपराधी बालकों एवं बालिकाओं को शोध का उद्देश्य स्पष्ट कर तादात्म्य स्थापित किया गया। न्यादर्ष हेतु चयनित बालकों एवं बालिकाओं को सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में संवेगात्मक परिपक्वता मापनी भरवाई गई। अन्त में सभी बालकों एवं बालिकाओं से संवेगात्मक परिपक्वता मापनी प्राप्त कर ली गई। इस प्रकार सभी उपकरणों को सफलता पूर्वक भरवाने के लिए कुल 60 दिन लग गये। प्रदत्त संकलन के लिए एक अपराधी बालिका व बालक का भरवाने में औसत 30 मिनिट का समय लगा।

प्रदत्त विश्लेषण – प्रस्तुत शोध कार्य हेतु प्रदत्तों का विश्लेषण स्वतंत्र टी परीक्षण द्वारा किया गया।

परिणाम तथा विवेचना – प्रस्तुत शोध का उद्देश्य के अनुसार प्रदत्त विश्लेषण, प्राप्त परिणाम एवं उनकी विवेचना निम्न है-

'संयुक्त परिवार के अपराधी बालकों एवं बालिकाओं का सांवेगिक परिपक्वता स्तर के माध्य में सार्थक अंतर ज्ञात करना' था। अत: इस उद्देश्य हेतु प्राप्त प्रदत्तों का विश्लेषण स्वतंत्र 'टी' परीक्षण की सहायता से किया गया। इसके परिणाम तालिका क्रमांक 1 में दिए गए हैं।

तालिका 1 – **(देखे)**

तालिका 1 से विदित है कि स्वतंत्र 'टी' का मान 2.38 है जो कि 0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है, जबकि वष=78 है। इससे यह ज्ञात होता है कि संयुक्त परिवार के अपराधी बालकों एवं बालिकाओं के संवेगात्मक परिपक्वता के माध्य फलांकों में सार्थक अंतर है। अत: शून्य परिकल्पना यसंयुक्त परिवार के अपराधी बालकों एवं बालिकाओं का सांवेगिक परिपक्वता स्तर के माध्य में सार्थक अंतर होगा निरस्त हुई। तालिका से यह भी विदित होता है कि अपराधी बालकों की संवेगात्मक परिपक्वता के माध्य फलांक 105.40 है जो कि बालिकाओं के संवेगात्मक परिपक्वता के माध्य फलांक 94.40 से सार्थक रूप से उच्च है। अत: इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यसंयुक्त परिवार के अपराधी बालकों एवं बालिकाओं के सांवेगिक परिपक्वता स्तर के माध्य में सार्थक अंतर है। इसका संभावित कारण यह हो सकता है कि संयुक्त परिवार के सदस्यों का प्रभाव पडा, इसलिए अपराधी बालकों की संवेगात्मक परिपक्वता उच्च पायी गयी।

निष्कर्ष – प्रस्तुत शोध का निष्कर्ष था–

'संयुक्त परिवार के अपराधी बालकों एवं बालिकाओं के सांवेगिक परिपक्वता स्तर के माध्य में सार्थक अंतर है।'

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Ahuja, R. (2002). *Research Methods*. New Delhi: Rawat Publications.
2. Anderson, M. (1994). *Intelligence and Development - A Cognitive Theory*. Oxford: Blackwell Publishers.
3. Baron, A.R. & Pearson (2004). *Social Psychology*. New York: Prentice Hall.
4. Cyril, Burt (1944). *The Young Delinquent.* London: University of London Press.
5. Deniel, Glaser and Kent Rice. (1964). *Reading in Criminology and penology.* Newyork: Macmillan.
6. Miriam, Van Waters (1925). *Youth in Conflict.* Newyork: The New Republic.
7. William, Healy and Augusta F. Bronner. (1926). *Delinquents and Criminal.* Newyork: Macmillan Publication.

तालिका 1 – संयुक्त परिवार के अपराधी बालकों एवं बालिकाओं के संवेगात्मक परिपक्वता स्तर

लिंग (Gender)	न्यादर्श (Sample)	माध्य (Mean)	मानक विचलन (Standard Deviation)	टी–मान (t-Value)	सार्थकता का स्तर (Level of Significance)
बालक	34	105.40	10.13	2.38	0.05
बालिकाएँ	46	94.40	1.81		
कुल	80				

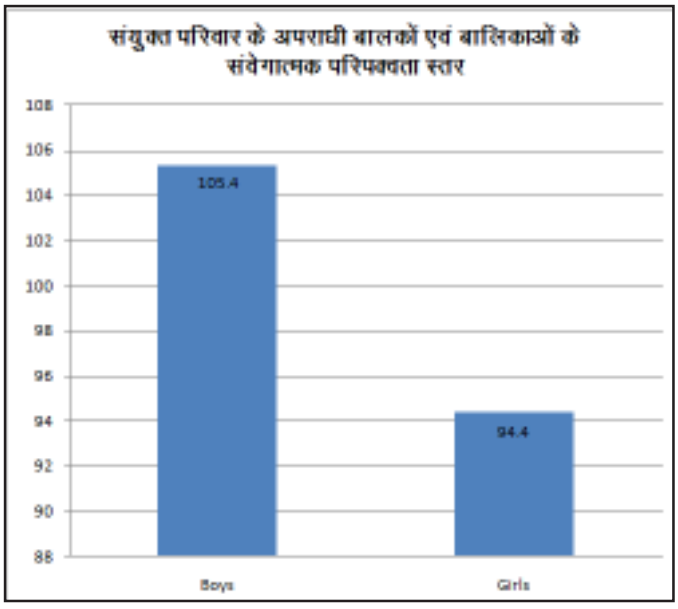

चित्र क्र. 8

****

उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं में व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता

डॉ. नंदिनी रेखड़े *

प्रस्तावना – जन्म से ही मनुष्य अपने आपको एक विशेष वातावरण में पाता है। वातावरण के संपर्क से उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता है। व्यक्ति के संतुलित विकास तथा जीवन की सफलता के लिये आवश्यकता है कि व्यक्ति अपने वातावरण को भली प्रकार से समझे जिसके द्वारा वह जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में समायोजन स्थापित कर सके। आज के वैज्ञानिक युग में जीवन की जटिलताएं जितनी अधिक बढ़ती जा रही हैं, निर्देशन की आवश्यकता उतनी ही बढ़ती जा रही है।

निर्देशन मानव जीवन का अभिन्न अंग है। जब कभी मानव को किसी समस्या का सामना करना पड़ा है, उसने किसी से निर्देशन प्राप्त किया है। वास्तव में निर्देशन एक व्यक्तिगत कार्य है जो किसी व्यक्ति को उसकी समस्याओं के समाधान करने के लिये दिया जाता है। जीविकोपार्जन के लिये प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी व्यवसाय को अपनाता है। व्यवसायिक निर्देशन से तात्पर्य व्यक्ति को उसकी योग्यताओं एवं क्षमताओं तथा वातावरण की परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए ऐसे व्यवसाय के चयन में सहायता करना है जिसमें वह इच्छानुरूप कार्य करके सफलता एवं संतुष्टी प्राप्त कर सके।
प्राय: विद्यार्थी अपने कौशल तथा योग्यता के प्रति जागरूक नहीं होते, यदि उन्हें विकसित होने का अवसर दिया तो जीवन में उन्नति की जा सकती है। लेकिन उचित निर्देशन के अभाव में विद्यार्थी उन पाठ्यक्रमों का चुनाव कर लेते हैं जिनका उनके व्यवसायिक लक्ष्यों से कोई संबन्ध नहीं होता। वर्तमान युग तेजी से विकसित होने वाले संचार माध्यमों का युग है जिसमें लगातार नये-नये व्यवसाय उत्पन्न हो रहे हैं। अत: इस परिवर्तन के युग में उचित व्यवसाय के चुनाव तथा उसमें स्थापित होने के लिये व्यवसायिक निर्देशन महत्वपूर्ण कार्य करता है। इसके माध्यम से छात्रों को उसकी रूचि तथा योग्यताओं के अनुरूप व्यवसाय चुनने, उसका प्रशिक्षण प्राप्त करने एवं समस्याओं का समाधान करने में सहयोग प्रदान किया जाता है। 'व्यवसायिक निर्देशन व्यक्तियों के गुणों एवं व्यवसायिक अवसरों के साथ उनके संबन्ध को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति को व्यवसाय के चयन एवं उसके प्रगति में आने वाली समस्याओं को हल करने में प्रदान की जाने वाली सहायता है।' (ILO 1949)

सन् 1964 में carrier research advisory committee (CRAC) ने 224 ब्रिटिश पाठशाला में व्यवसायिक निर्देशन की स्थिति पर अध्ययन किया और पाया की उनमें से लगभग 50 प्रतिशत विद्यार्थियों को कोई व्यवसायिक निर्देशन नहीं मिला था।

1959 में सर्वप्रथम माईकेल कार्टर ने दैव निर्देशन विधि से 100 लड़के तथा 100 लड़कियों के साथ तीन बार साक्षात्कार द्वारा पाठशाला से कार्य तक उनके परिवर्तन के दौरान निर्देशन के प्रभाव का विस्तृत अध्ययन किया जिसके परिणाम दर्शाते हैं कि इन युवाओं ने अपने विद्यालयीन जीवन में बहुत कम निर्देशन प्राप्त किया तथा नौकरी भी बिना किसी उचित निर्देशन द्वारा चुनी गई। विद्यालय में रोजगार अधिकारी द्वारा इनके कार्यों को संतोषजनक तरिके से नहीं समझा गया। पालसन ने 1967 में विभिन्न पाठशाला के 900 विद्यार्थियों की शैक्षिक तथा व्यवसायिक निर्देशन की समस्याओं का अध्ययन कर पाया की बालकों को विद्यालय में दोनों निर्देशन की आवश्यकताता होती है।

अध्ययन के उद्देश्य – वर्तमान अध्ययन इन्दौर शहर के शासकीय विद्यालय में अध्ययन करने वाले 16 से 18 वर्ष आयु के विज्ञान तथा कला विषय (10+2) के छात्र एवं छात्राओं के निर्देशन की आवश्यकताता की तुलनात्मक अध्ययन करना तथा छात्र एवं छात्राओं की व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकताता में भिन्नता एवं संबन्ध ज्ञात करना है। इसी आधार पर अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य स्थापित किये गए –

1. शासकीय विद्यालय में अध्ययनरत कला संकाय के छात्र-छात्राओं की व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता ज्ञात करना।
2. शासकीय विद्यालय में अध्ययनरत विज्ञान संकाय के छात्र-छात्राओं की व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकताता को ज्ञात करना।
3. कला तथा विज्ञान संकाय के छात्र-छात्राओं के निर्देशन की आवश्यकता में भिन्नता ज्ञात करना।

उपकरण तथा प्रविधि –

Sample Selection - वर्तमान अध्ययन के लिये इंदौर शहर के शासकीय विद्यालय के 16 से 18 वर्ष के विज्ञान तथा कला संकाय के 50 छात्र एवं 50 छात्राओं का चयन दैव निदर्शन विधि से समान रूप से किया गया।
प्रस्तुत अध्ययन तथ्यों के संकलन के लिये जे.एस. ग्रेवाल तथा मीना शर्मा द्वारा निर्मित Guidance need inventory का प्रयोग किया गया। यह अनुसूचि पूर्णत: भारतीय परिस्थितियों एवं भारतीय पाठशाला में पढ़ने वाले छात्रों की निर्देशन की आवश्कता को ध्यान में रखकर निर्मित की गई है। प्रयोग का संचालन एवं गणना निर्देशिका Manual में दिये गए निर्देश के आधार पर की गई है।

निर्देशन की इस अनुसूचि का प्रयोग निर्देशन के विभिन्न क्षेत्र जैसे शारीरिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, शैक्षिक तथा व्यवसायिक निर्देशन क्षेत्र में किया जा सकता है। वर्तमान अध्ययन विद्यार्थियों की व्यवसायिक क्षेत्र में निर्देशन की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए किया गया है।

परिकल्पना – उद्देश्य के आधार पर निम्नलिखित उपकल्पना स्थापित की गई –

1. शासकीय विद्यालय में अध्ययनरत कला संकाय के छात्र-छात्राओं की व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकताता में सार्थक अंतर नहीं होगा अर्थात दोनों की व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता समान होगी।
2. शासकीय विद्यालय में अध्ययनरत् विज्ञान संकाय के छात्र-छात्राओं

* प्राध्यापक (गृहविज्ञान) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, किला भवन, इन्दौर (म.प्र.) भारत

की व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता में सार्थक अंतर नहीं होगा, अर्थात दोनों को समान निर्देशन की आवश्यकता होगी।

3. व्यवसायिक निर्देशन के संदर्भ में शासकीय विद्यालय में अध्ययनरत विज्ञान एवं कला संकाय के छात्र-छात्राओं की व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

परिणाम तथा विवेचना -अध्ययन हेतु जो उद्देश्य एवं परिकल्पना स्थापित की गई उसके आधार पर निम्नलिखित परिणाम प्राप्त किये गए -

तालिका क्रमांक - 1 (देखें)

तालिका के आधार पर पाया गया कि शासकीय विद्यालय में अध्ययनरत कला संकाय के विद्यार्थियों में छात्रों को छात्राओं की तुलना में अधिक निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है। छात्रों के व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता का प्रतिशत 94 जबकि छात्राओं की आवश्यकता का प्रतिशत 90 है।

व्यवसायिक निर्देशन के क्षेत्र में छात्र-छात्राओं के निर्देशन संबंधी आवश्यकता का विश्लेषण करने पर पाया कि छात्रों का माध्य 5.88 तथा प्रमाप विचलन 5.37 तथा छात्राओं का माध्य 5.62 तथा प्रमाप विचलन 4.28 है। 48 स्वातंत्रांष (DF) तथा .05 (5%) सार्थकता के स्तर पर t का मान 4.63 प्राप्त हुआ जो t के टेबल मूल्य 2.02 से अधिक है। अत: सिद्ध होता है कि छात्र छात्राओं की अपेक्षा व्यवसायिक निर्देशन की अधिक आवश्यकता महसूस करते हैं।

तालिका क्रमांक - 2 (देखें)

तालिका से स्पष्ट होता है कि शासकीय महाविद्यालय में अध्ययनरत विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों में भी छात्रों को छात्राओं की अपेक्षा व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता अधिक पड़ती है। जैसा कि छात्रों की आवश्यकता का प्रतिशत 96 तथा छात्राओं का प्रतिशत 90 है।

निर्देशन की आवश्यकताता का विष्लेषण करने पर पाया कि छात्रों का माध्य 6 तथा प्रमाप विचलन 3.64 तथा छात्राओं का माध्य 5.62 तथा प्रमाप विचलन 2.31 है। 48 स्वातंत्रांश तथा .05 (5%) सार्थकता के स्तर पर t का मान 4.26 तथा तालिका मान 2.02 है जो t के सारिणी मूल्य से अधिक है। अत: सिद्ध होता है कि विज्ञान वर्ग के छात्र-छात्राओं में व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता भिन्न है।

कला तथा विज्ञान संकाय के छात्र एवं छात्राओं के व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता से भी पता चलता है कि दोनों ही विषयों में अध्ययनरत छात्रों को निर्देशन की अधिक आवश्यकता (94% तथा 96%) पड़ती है तथा छात्राओं को (90%) छात्रों की तुलना में कम आवश्यकताता पड़ती है। डनेसंल (1971) ने ग्रामीण तथा शहरी विद्यार्थियों में निर्देशन की आवश्यकताता एवं उनकी समस्याओं का अध्ययन कर पाया कि ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्र में छात्र निर्देशन की अधिक आवश्यकता महसूस करते हैं।

निष्कर्ष - निर्देशन शिक्षा एवं मानव जीवन का एक अविभाज्य अंग है एवं एक सतत प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य निर्णय लेने में उसकी सहायता करना है। आज भारत में ही नहीं बल्की विदेशों में भी निर्देशन कार्यक्रम व्यापक स्तर पर चलाया जा रहा है। संचार के विभिन्न साधनों के माध्यम से राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्था आपस में जुड़ गई है। भारतवर्ष में सेंट्रल ब्यूरो ऑफ एजुकेशलन तथा वोकेशनल गाइंडस (CBEVG) NCERT, NPE आदि संस्थाएं इस दिशा में प्रयासरत है जिससे की भविष्य में व्यवसायिक सभांवनाओं की जानकारी छात्रों को दी जा सके। ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

(1) 1964 (CRAC) Carrier Research Advisory Committee
(2) 1949 (ILO) International Labour Organization
(3) Grewal J.S. & Sharma Meena – A manual of guidance need inventory, NPC 4/230 Kachaheri Ghat, Agra
(4) Michel Carter 1959 –
(5) Palsane M.N. 1969 – Some problems and perception of college student Education & Psychology review, 1969, 9(4) pp 175-182

तालिका क्रमांक - 1 कला संकाय के छात्र-छात्राओं की व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकता

	छात्र संख्या	प्रतिशत	छात्राओं की संख्या	प्रतिशत
निर्देशन की आवश्यकता है	23.50	94	22.50	90
निर्देशन की आवश्यकता नहीं है	1.50	6	2.50	10
	25	**100**	**25**	**100**

	माध्य	प्रमाप विचलन	DF	F मूल्य	t का तालिका मूल्य .05 सार्थकता के स्तर पर	परिणाम
छात्र	5.88	5.37	48	4.63	2.02	अंतर सार्थक है।
छात्राएं	5.62	4.28	-			

तालिका क्रमांक - 2 विज्ञान संकाय के छात्र, छात्राओं व्यवसायिक निर्देशन की आवश्यकताता

	छात्र	प्रतिशत	छात्राएं	प्रतिशत
आवश्यकता है	24	96	22.50	90
आवश्यकता नहीं है	1	4	2.50	10
योग	**25**	**100**	**25**	**100**

	माध्य	प्रमाप विचलन	स्वातंत्रांश DF	F का मूल्य	t का मूल्य तालिका मान	परिणाम
छात्र	6	3.64	48	4.26	2.02	अंतर सार्थक है।
छात्राएं	5.62	2.31				

शराब कारखाने मे कार्यरत महिला श्रमिको की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन

डॉ. मीना सिसोदिया *

शोध सारांश – महिला श्रम से तात्पर्य आर्थिक उद्देश्यो या लाभो के लिए महिला द्वारा किए गए प्रयत्नो या क्रियाओ का वह समावेश है जो कि उद्देश्यो का लाभो का प्रश्न है, अनेक दार्शनिको विचारो के बीच यह विवाद रहा है कि शारीरिक और मानसिक श्रम की दृष्टि से पुरूष एवं नारी के बीच भिन्नताएँ हैं या नहीं। सामान्यत: महिला श्रमिको को पुरूषो की अपेक्षा कम मजदूरी दी जाती है, भले ही पुरूष के बराबर कार्य करे अत: प्रस्तुत अध्ययन से रतलाम जिले की शराब कारखानो में कार्यरत महिला श्रमिको की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के विषय में, जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। महिला श्रमिको को कार्य के दौरान किन कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है, उन्हें प्राप्त सुविधाएँ जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य मनोरजंन निर्धारित वेतन एवं सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक पक्ष स्वास्थ्य स्तर इत्यादि के संबंध में शोध प्रबंध किया गया है।

प्रस्तावना – अध्ययन क्षेत्र – रतलाम जिले के शराब कारखानो में कार्यरत महिला श्रमिको के समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए महिला श्रमिको को शामिल किया यहाँ शराब का निर्माण एवं पैकिंग कार्य में महिला श्रमिक कार्य करती है।

अध्ययन विधि – प्रस्तुत अध्ययन में वैयक्तिक अध्ययन प्रणाली का प्रयोग किया गया इसमें तथ्यो एवं सूचनाओं का संकलन, प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतो के माध्यम से किया गया प्राथमिक स्त्रोतो के अंतर्गत महिला श्रमिको से स्वंय मिलकर साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया जिसमें प्रश्न पूछकर सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक धार्मिक, पारिवारिक जातिगत, शैक्षिक, आयु संबंधी प्रश्न पूछकर पृष्ठभूमि को जानने का प्रयास किया गया।

द्वितीय स्त्रोतो में मुख्य रूप से महिला श्रमिको के संबंध में उपलब्ध प्रलेखों, ग्रन्थों, साहित्य, कारखाना प्रबंधन, कार्यालयीन दस्तावेजो के द्वारा तथ्य एवं सूचनाएँ एकत्रित की गई अध्ययन में 50 महिला श्रमिकों को न्यादर्श के रूप में चुना गया है।

अध्ययन का उद्देश्य – महिला श्रमिको की सामाजिक आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना एवं उचित निष्कर्ष प्राप्त कर उनकी समस्याओं के निराकरण हेतु आवश्यक सुझाव देगा।

संग्रहित प्राथमिक तथ्य एवं विश्लेशण

उत्तरदाताओं की कार्यस्थिति संबंधी

विवरण – **तालिका नं. 1**

कार्य स्थिति	संख्या	प्रतिशत
सामान्य	1037	20%
अच्छी	00	74%
बुरी	03	00%
बहुत अच्छी	50	06%
योग		100%

उपरोक्त तालिका में पाया गया है कि सर्वाधिक महिला श्रमिको की कार्यस्थिति अच्छी है, जो 37 (74 प्रतिशत) है सामान्य कार्यस्थिति का 10 (20 प्रतिशत) बहुत अच्छी कार्यस्थिति का 3 (6 प्रतिशत) है। बुरी कार्यस्थिति का नगण्य है।

तालिका नं. 2

कानून की जानकारी	संख्या	प्रतिशत
हाँ	36	72%
नही	14	28%
योग	50	100%

उपरोक्त तालिका में पाया गया है कि सर्वाधिक महिला श्रमिको को कार्यस्थल पर सुरक्षा संबंधी कानूनो की जानकारी हैं जो 36 (72 प्रतिशत) हैं, एवं 14 (28 प्रतिशत) महिलाओ को कानून की जानकारी नहीं हैं।

तालिका नं. 3

उत्तरदाता के वेतन से संतुष्टि विवरण

कानून की जानकारी	संख्या	प्रतिशत
हाँ	47	94%
नहीं	03	06%
जवाब नहीं	00	00%
योग	50	100%

उपरोक्त तालिका में पाया गया कि 50 महिला श्रमिक में से सर्वाधिक 47 (94 प्रतिशत) अपने वेतन से संतुष्ट है एवं 3 (6 प्रतिशत) लोग असंतुष्ट है तथा जवाब नही देने वालो का प्रतिशत नगण्य है।

तालिका नं. 4

उत्तरदाता के साथ पुरूष सहकर्मियो के व्यवहार का विवरण

व्यवहार	संख्या	प्रतिशत
अच्छा	40	80%
बुरा	00	00%
सामान्य	04	08%
ब्हुत अच्छा	06	12%
योग	50	100%

उपरोक्त तालिका में पाया गया कि महिला श्रमिको के साथ पुरूष सहकर्मियो का व्यवहार सर्वाधिक अच्छा है, 40 (80 प्रतिशत) बहुत अच्छे व्यवहार का प्रतिशत 6 (12 प्रतिशत) है सामान्य व्यवहार का प्रतिशत क्रमश: 4 (8 प्रतिशत) है एवं बुरा व्यवहार नगण्य है।

* सहायक प्राध्यापक (गृह विज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

तालिका नं. 5

उत्तरदाता को पुरूषकर्मी की तरह समान वेतन की प्राप्ति का विवरण

कानून की जानकारी	संख्या	प्रतिशत
हॉ	20	40%
नहीं	30	60%
योग	50	100%

उपरोक्त तालिका में पाया गया कि सर्वाधिक (60 प्रतिशत) महिला कुशल श्रमिको को पुरूषकर्मी की तरह समान वेतन नहीं मिलता समान वेतन मिलने वाली कुशल श्रमिको का प्रतिशत 20 (40 प्रतिशत) है।

उत्तरदाता को पुरूषकर्मी की तरह समान वेतन की प्राप्ति का विवरण

कानून की जानकारी	संख्या	प्रतिशत
हॉ	20	40%
नहीं	30	60%
योग	50	100%

उपरोक्त तालिका में पाया गया कि सर्वाधिक (60%) महिला कुशल श्रमिको को पुरुषकर्मी की तरह समान वेतन नहीं मिलता समान वेतन मिलने वाली कुशल श्रमिको का प्रतिशत 20 (40%) है।

घरेलु महिला और कामकाजी महिला को मिलने वाली प्रतिष्ठा में अंतर का विवरण

क्रं.	प्रतिष्ठा में अंतर	संख्या	प्रतिशत
1	हॉ	17	34%
2	नहीं	33	66%
3	नहीं जवाब	00	00%
	योग	50	100%

उपरोक्त तालिका में पाया गया कि महिला श्रमिको के बीच प्रतिश्ठा में अंतर नहीं पाया गया जो सर्वाधिक 33(66%) है एवं 17(34%) महिला श्रमिको ने कहा कि अंतर आया है।

उतरदाताओं के स्वास्थ संबंधी विवरण

क्रं.	प्रतिष्ठा में अंतर	संख्या	प्रतिशत
1	सामान्य	10	20%
2	निम्नतर	37	74%
3	जवाब नहीं	03	06%
	योग	50	100%

उपरोक्त तालिका में पाया गया कि सर्वाधिक महिला श्रमिको का स्वास्थ्य स्तर सामान्य 10 (20%) है निम्न स्वास्थ्य स्तर 37 (74%) है, तथा अच्छा स्वास्थ्य स्तर 3(06%) है। बुरी स्वास्थ्य स्तर नगण्य है।

इस शोध को पूर्ण करने के बाद प्राप्त जानकारी के अनुसार महिला श्रमिको की कार्यस्थिति अच्छी हैं, परन्तु इन्हें व्यापक रुप से सभी को कार्यस्थल पर सुरक्षा संबंधी कानूनोंकी जानकारी नहीं है , अधिकांश महिला श्रमिक अपने वेतन को लेकर संतुष्ट है, महिलाओं एवं पुरुष सहकर्मी के साथ व्यवहार भी अच्छा है, कुछ ही महिला श्रमिकों को अच्छे व्यवहार का सामना नहीं हुआ। महिला श्रमिक को पुरूषकर्मी की तरह समान वेतन प्राप्त नहीं है, तथा यहॉ कार्यरत सर्वाधिक महिला श्रमिको का स्वास्थ्य स्तर निम्न है, कुछ आंशिक महिला श्रमिको का स्वास्थ्य स्तर सामान्य पाया गया।

सुझाव – इस लघु शोध को पूर्ण करने के बाद प्राप्त जानकारीयॉ प्राप्त हुई उनके संदर्भ में सुझाव इस प्रकार है–

1. महिला श्रमिको कार्य स्थल पर सुरक्षा संबधी कानुनो की जानकारी हो सके इसके लिए उन्हें कार्य के दौरान इन जानकारी से प्रशिक्षण व जागरुकता के माध्यम से सचेत किया जाना चाहिए।
2. महिला और पुरुष श्रमिको के मध्य कार्य के दौरान सामंजस्य बना रहे इस और ध्यान देना चाहिए। इसके लिए नियमो कडाई से पालन किया जाना चाहिए सुरक्षा एवं स्वास्थ्य हेतु दस्ताने एवं मास्क प्रवाइड किए जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. चटोपाध्याय कमल देवी (1983) इंडियन बुमेंन्स बेटल फार फ्रीडम नई दिल्ली
2. मजूमदारबीना (ईडी)सिम्बल आफ पावर बुमेंन्स इन चैन्जिग सोसायटि।
3. शाह कल्पना (1984)लिबरेशन एण्ड वेलिन्टरी एक्शन नई दिल्ली।
4. सिंह (1987) इन विजीबन हेन्ड बुमेंन इन होम बेस्ट प्राडक्टस।
5. परमार दुर्गा श्रमजीवी महिलाए और समकालिन परिवारिक संगठन साहित्य भवन इलाहबाद (1982) राय सरोज महिला श्रमिक रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

****

पर्यावरण और विकास

डॉ. भावना रमैया *

शोध सारांश –पर्यावरण शब्द संस्कृत भाषा के 'परि' उपसर्ग (चारों ओर) और 'आवरण' से मिलकर बना है जिसका अर्थ है ऐसी चीजों का समुच्चय जो किसी व्यक्ति या जीवधारी को चारों ओर से आवृत्त किये हुये है। परिस्थितिकी और भूगोल में यह शब्द अंग्रेजी Envirnoment के पर्याय के रूप में इस्तेमाल होता है। आधुनिक युग विकास का युग है इस धरा की मानवीय सोच विकासान्मुख है जो सही है किंतु इसका संबंध पर्यावरण से होता है अत: मानव की विकासान्मुख प्रवृत्ति से पर्यावरण प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता। विकास के साथ विज्ञान और तकनीकी में परिवर्तन आ रहा है शहरों में मोबाइल, ए.सी. कम्प्यूटर, इंटरनेट, टी.वी. के बिना जीना दुभर हो गया है। विकास की दौड़ में विज्ञान और तकनीकी के माध्यम से दुनिया ई–कचरा का ढेर बनती जा रही है। विकास के साथ उद्योग– धंधों का विस्तार पर जोर दिया जा रहा है औद्योगीकरण को विकास सूचक माना जाता है। विकास के इस मॉडल में ग्लोबल वार्मिंग की समस्या खड़ी हो गई है। विकास की असीम लालसाओं के कारण हमने नदी, जल, और भू–जल की भेंट चढ़ा दी है और दूसरे राज्यों के पानी पर डाका जल रहे है। दिल्ली के अलावा झारखण्ड का प्रमुख शहर है धनबाद यह पर विकास के नाम पर तालाबों का दूरूपयोग के कारण जल संकट समस्या आ रही है। हमारी परिवर्तित जीवनशैली, खानपान का तरीके यह भी किस हद तक हमारी परिस्थितिकी को प्रभावित कर रहा है। इटंर गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेंट चेंज (आई.पी.सी.सी) की एक रिर्पोट के अनुसार, खानपान एवं जीवनशैली में परिवर्तन जैसे आज हम 'मांसाहार' हो रहे है। पर्यावरण और विकास की बात आती है वही दूसरी ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है 'स्वच्छता' पर हम विकासशील रहना चाहते है, आधुनिकता को अपनाना चाहते है वही दूसरी ओर स्वच्छता को नजर अंदाज कर देते है क्या वास्तव में यह विकास है या पर्यावरण से खिलवाड़। परंपरागत शिक्षण जैसे पशु के साथ जीने का प्रशिक्षण भी शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिए।गाड़ियों के पार्किग व्यवस्था, टाउनशिप के नागरिकों के लिए अन्य सुविधाओं के अलावा ऐसे, पीपल और वट वृक्ष की उपस्थिति और गायों, कुत्तों, पक्षियों के रहने की व्यवस्था अनिवार्य है। इस प्रकार के और भी उपाय हो सकते है जिन्हें आज हम अव्यावहारिक मान बैठे है। परंतु परिस्थितिकीय असंतुलन से जो खतरा पैदा हो रहे है। उसके हिसाब से हम अपने नजरिए में बदलाव लाना आवश्यक है। **शब्द कुंजी –** पर्यावरण, विकास, ई–कचरा, ग्लोबल वार्मिंग, जल संकट।

प्रस्तावना – पर्यावरण शब्द संस्कृत भाषा के 'परि' उपसर्ग (चारों ओर) और 'आवरण' से मिलकर बना है जिसका अर्थ है ऐसी चीजों का समुच्चय जो किसी व्यक्ति या जीवधारी को चारों ओर से आवृत्त किये हुयें है। परिस्थितिकी और भूगोल में यह शब्द अंग्रेजी Envirnoment के पर्याय के रूप में इस्तेमाल होता है।

पर्यावरण उन सभी भौतिक, रसायनिक एवं जैविक कारको की समष्टिगत इकाई है जो किसी जीवधारी और परितंत्रीय आबादी को प्रभावित करती है यह हमारे चारों ओर व्यापत है और हमारे जीवन की प्रत्येक घटना इसी के अंदर सम्पादित होती है तथा मनुष्य अपनी समस्त क्रियाओं से पर्यावरण को भी प्रभावित करती है।

आधुनिक युग विकास का युग है इस धरा की मानवीय सोच विकासान्मुख है जो सही है किंतु इसका संबध पर्यावरण से होता है अत: मानव की विकासान्मुख प्रवृत्ति से पर्यावरण प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता। आज किसी भी चीज का मापदड़ विकास से है। व्यक्ति की समृद्धि का सूचक विकास है, देश की समृद्धि का सूचक विकास है। समृद्धि का संबध संसाधन से है और संसाधन प्रकृत्ति का हिस्सा है। पैसा भी संसाधन में आता है। इसकी होड़ में पूरी दूनिया लगी है। चूँकि संसाधन का संबंध प्रकृति से है तो स्वाभाविक इससे प्रकृति प्रभावित होती है।

वैश्वीकरण के साथ हम विकास की बात सोचते विकास का प्रतीक हम अपनी सुख–समृद्धि से लगाते है किंतु हम मानसिक रूप से सोचते है कि हम विकसित हो रहे है किंतु दूसरी तरफ देखा जाये तो हम अवन्नति की ओर प्रशस्त हो रहे है।

विकास के साथ जैव विविधता खतरे में है। पेयजल का समस्या, स्वच्छ वायु, उपजाऊ जमीन खतरे में आ रही है। विकास के साथ विज्ञान और तकनीकी में परिवर्तन आ रहा है शहरों में मोबाइल, ए.सी. कम्प्यूटर, इंटरनेट, टी.वी. के बिना जीना दुभर हो गया है। गृहप्रवेश के साथ बिजली चालू करना, शहरों में घनी आबादी के साथ स्वच्छ वातारवरण की समस्या आ रही है। वैज्ञानिक प्रगति के साथ गृह कार्यो में प्रत्येक संसाधनों की उपयोग की प्रवृत्ति में परिवर्तन आ गया है। चूल्हा से गैस से अब इन्डेशन चूल्हा, माइक्रोवेव, डिशवॉय, वॉशिंग मशीन, वेक्यूम क्लीनर यानि घरेलू हर दैनिक क्रियायें बिजली पर निर्भर है।

विकास की दौड़ में विज्ञान और तकनीकी के माध्यम से दुनिया ई–कचरा का ढेर बनती जा रही है। एक तरफ हम पर्यावरण प्रदुषण के रोकथाम के लिए पॉलीथिन के उपयोग पर रोक लगाते है वही दूसरी ओर हम इलैक्ट्रॉनिक उपकरणो के इस्तेमाल से ई–कचरे को बढ़ावा दे रहे है।

विकास के साथ उपयोग धंधा का विस्तार पर जोर दिया जा रहा है औद्योगीकरण को विकास सूचक माना जाता है। विकास के इस मॉडल में ग्लोबल वार्मिंग की समस्या खड़ी हो गई है। पृथ्वी इतनी गर्म हो रही है जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती/ ग्लेशियर और ध्रुवों पर मौसम वर्फ पिघल रही है। औद्योगिकरण के साथ वनों की कटाई हो रही है। चाहे वह दूध का उत्पादन का उपयोग हो या मांस के उत्पादन का उपयोग आज कल खेतों में भी उपयोगो की श्रेणी में लाने का प्रयास किया जा रहा है। समस्या औद्योगीकरण से ही शुरू हो रही है किसी भी चीज का उत्पादन बुरा नहीं है। बुरा है उसका काफी बड़े पैमाने पर उत्पादन करना। उदाहरण के लिए दूध का

* सहायक प्राध्यापक (गृहविज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, सागर (म.प्र.) भारत

उत्पादन है। व्यक्तिगत स्तर पर या छोटे-मोटे समूह द्वारा दूध का उत्पादन सदियों से हो रहा है। परन्तु कोई समस्या नहीं। लेकिन आज दूध का उत्पादन डेयरी इंडस्ट्री यानि की दूध का उद्योग बन गया है। परिणामस्वरूप भारत में तो नहीं परंतु अमेरिका जैसे देशो में गायों के विशाल स्तर पर रखरखाव के कारण ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ रहा है। इसके अलावा यह उत्सर्जन उतना नहीं है जितना बड़ी-बड़ी गौशालाओं के संचालन के लिए की जा रही चारे की खेती में प्रयुक्त रसायनिक खादों से होता है।

विकास की बात करें तो दिल्ली सुख- सुविधाओं और पर्याप्त से अधिक समृद्धि से युक्त नगर माना जाता है परंतु यदि पर्यावरण या परिस्थितिकी की बात कहें तो दिल्ली जैसा गरीब कोई शहर नही है। हांलाकि दिल्ली गर्व के साथ देश का सबसे अधिक हरियाली वाला मेट्रो शहर होने का दावा करता है, परंतु इसके बावजूद यह गौरैया जैसे एक पक्षी को बचा नहीं पा रहा है, कोयल की कूक न जाने कहॉ गुम हो गई है। जहॉ सुबह चिड़ियों की चहचहाहट से शुरू होती है ये ध्वनियां लुप्त हो गई है अब तो सुबह उद्योगों के सायरन से होती है जो ध्वनि प्रदुषण को प्रदर्शित करता है।

विकास की असीम लालसाओं के कारण हमने नदी, जल, और भू-जल की भेंट चढ़ा दी है और दूसरे राज्यों के पानी पर डाका जल रहे है। यदि हम आकड़ों की दृष्टि से देखे दिल्ली को कुल 939 एमजीडी पानी की आवश्यकता पड़ती है। जिसकी आधे से अधिक उसे दूसरे राज्यों यानि कि भांखड़ा नांगल, गंगानहर और टिहरी से प्राप्त होता है। यमुना उसकी आवश्यकता का केवल 30 प्रतिशत की ही पूर्ति कर पाती है। दिल्ली में घरेलू उपयोग के लिए 75 प्रतिशत पानी की खपत है एवं 20 प्रतिशत औद्योयोगिक उपयोग के लिये। यानि दिल्ली रहवासियों को पानी की बचत आवश्यक है तभी विकास के साथ पर्यावरण संतुलन रह पायेगा।

दिल्ली के अलावा झारखण्ड का प्रमुख शहर है धनबाद यहाँ पर विकास के नाम पर तालाबों का दूरूपयोग के कारण जलसंकट समस्या आ रही है। धनबाद शहर की आबादी तीन लाख है, लेकिन मात्र पचास हजार लोग ही मैथन के पानी का उपयोग कर पा रहा है ढाई लाख लोग सार्वजनिक नल और पानी पर निर्भर है। जिले में जलापूर्ति का मुख्य स्त्रोत मैथन गैस, तोपाचांची झील और दमोदर नदी है गर्मी में तीनों का जल स्तर घट जाता है। धनबाद शहर में प्रतिदिन जहॉ प्रतिदिन 80 लाख गैलन पानी की आवश्यकता है वही दूसरी ओर देखा जाये तो यह पूर्ति विभाग की और मात्र 40 लाख गैलन है। इसी तरह सरिया क्षेत्र की बात देखे तो माड़ा की ओर से 30 लाख गैलन आपूर्ति की जा रही है जबकि आवश्यकता 125 लाख गैलन की होती है। पिछलें 15 वर्षो में धनबाद का भू-जल स्तर गिर गया। जिसका प्रमुख कारण विकास की हौड में तलाबों का बलिदान ऐसे में समृद्धि की बात हम कैसे सोच सकते है।

हमारी परिवर्तित जीवनशैली, खानपान का तरीके यह भी किस हद तक हमारी परिस्थितिकी को प्रभावित कर रहा है। इटंर गवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेंट चेंज (आई.पी.सी.सी) की एक रिर्पोट के अनुसार, खानपान एवं जीवनशैली में परिवर्तन जैसे आज हम 'मांसाहार' हो रहे है। एक किलो मक्का के उत्पादन में 900 लीटर पानी की आवश्यकता होती है, वही गाय या भैस के 1 किलो मांस के उत्पादन में 15500 लीटर पानी की जरूरत होती है। हॉलाकि ऐसे व्यक्तियों का प्रतिशत कम है कि वे इसका सेवन करे। आज पशुधन से मांस के नजरिये से ज्यादा और कृषि, पर्यावरण और आजीविका के नजरियें से इसे देखा जाता है। एक व्यक्ति एक हैक्टेयर खेती की जमीन से सब्जियां, फल, और अनाज उगाकर 30 लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था कर सकता है। किंतु अगर इसी का उपयोग अण्डे, मांस, जानवर के लिये किया जाता है तो केवल 5 से 10 लोगों का ही पेट भर पायेगा। अत: मांसाहार दुनिया परिस्थितिकी के लिए एक बहुत बड़ा खतरा है।

पर्यावरण और विकास की बात आती है वही दूसरी ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है 'स्वच्छता' पर हम विकासशील रहना चाहते है, आधुनिकता को अपनाना चाहते है वही दूसरी ओर स्वच्छता को नजर अंदाज कर देते है क्या वास्तव में यह विकास है या पर्यावरण से खिलवाड़। हम घर के अंदर साफ सफाई रखकर यह सोचते है कि हमें तो सफाई पसंद है लेकिन वही घर का सारा कचरा सड़क पर फेंक देते है जिससे शहरों में गंदगी फैलती है बल्कि परिस्थितिकी को भी खतरा पहुंचता है। घर पर उपयोग में लाये जाने वाले साधनों में अधिकांश साधन इलेक्ट्रॉनिक होते है पूर्णत: ई-कचरा पर्यावरण प्रदुषण फैलाता है। घरेलू कचरों में पॉलीथीन अधिक होता है क्योंकि अक्सर इसमें ही कचरा भरकर फेंक देते है जो जानवरों के लिये घातक है खासकर गाय के लिये। और गाय एक दूधारू पशु है जिससें पर्यावरण बहुत खतरा पहुंचता है।

इस प्रकार यदि पर्यावरण और विकास की बात की सोचे तो यह देखते है कि मानव विकास की हौड़ में इतने आगे निकल गया कि पर्यावरण से उसका फर्ज समाप्त होता जा रहा है। वह जीवन जीने की कला का अविकसित तरीके से अपनाता रहे है जिसका उन्हें स्वयं पता नहीं हैं अत: समाधान यही है कि विकसित जीवन शैली या जीने की कला को अपनाये और उसके अनुसार विकास के मापदण्डो को अपनायें तभी पर्यावरण और परिस्थितिकी की समस्या सुलझेगी। सही तरीक से जीने की कला अपना कर हम पर्यावरण को भी स्वस्थ रख सकते है एवं स्वयं भी स्वस्थ रह सकते है। आधुनिक संसाधन एवं नवीन तकनीको को अपनाये पर सुचारू एवं विकसित मानसिकता से उसका उपयोग करें। परिस्थितिकी के स्वरूप को विकसित बनाये रखने के लिए एवं मानव को सुखी रहने के लिए आवश्यक है कि शहर के पानी का अपना स्त्रोत हो जिसकी रक्षा करना लोगों की जिम्मेदारी हो। जैव विविधता की सुरक्षा का जिम्मा भी स्वंय का होना चाहिए इसमें 'स्वच्छता' भी शामिल होना चाहिए। परंपरागत शिक्षण जैसे पशु के साथ जीने का प्रशिक्षण भी शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिए आज शहरों में बच्चा यह नही जानता है कि रसोई की पहली रोटी गाय के लिए निकालना, कुत्तों को रोटी देना, पक्षियों को दाना देना । यह हमारी संस्कृति से लुप्त होते जा रहे है जिसकी शिक्षा आज के परिवेश में आवश्यक है।

उद्योगीकरण के साथ टाउनशिप का विकास भी होता है। अत: उद्योगों के प्रदुषण का प्रभाव टाउनशिप पर पड़ सकता है। अत: जैव विविधता की रक्षा को अनिवार्य रूप से शामिल किया जाना चाहिए। गाड़ियों के पार्किंग व्यवस्था, टाउनशिप के नागरिकों के लिए अन्य सुविधाओं के अलावा ऐसे, पीपल और वट वृक्ष की उपस्थिति और गायों, कुत्तों, पक्षियों के रहने की व्यवस्था अनिवार्य है।

इस प्रकार के और भी उपाय हो सकते है जिन्हें आज हम अव्यावहारिक मान बैठे है। परंतु परिस्थितिकीय असंतुलन से जो खतरा पैदा हो रहे है। उसके हिसाब से हम अपने नजरिए में बदलाव लाना आवश्यक है यदि ऐसा नहीं किया तो परिस्थितिकी तंत्र का अस्तित्व ही खतरा में पड़ जायेगा। अत: हम इसका हिस्सा है तो पर्यावरण के विकास के लिए वास्तविक रूप में इसे सुदंर निर्मित कर सच्चे अर्थो में विकसित कर सकते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. पर्यावरण चेतना-मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल
2. पर्यावरण, परिस्थितिकी और विकास खमई 2013 लेख
3. रचना मई-जून 2014 म.प्र. शासन उच्च शिक्षा विभाग एवं म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल ।

किशोरावस्था में मूल्यों के विकास में अभिभावक, शिक्षक एवं सिनेमा की भूमिका

डॉ. मीना सिसोदिया *

शोध सारांश – जब बालक जन्म लेता है तब वह सामाजिक प्राणी नहीं होता है, और परिवार आदर्शो का पालना होता है यह मूल्यों की भावना को विकसित करने वाला विद्यालय होता है। औद्योगिकरण के कारण आधुनिक परिवार की संरचना में परिवर्तन आ रहे है, जिसके कारण समाज के मूल्यों और परिवार की भूमिका में परिवर्तन हो रहे है। और परिवार के सदस्यो पर इसका प्रबल प्रभाव पड़ रहा है।

प्रस्तावना – अभिभावक की भूमिका – बच्चो में सामाजिक चेतना अभिभावक से प्राप्त की जा सकती है। अभिभावक द्वारा ही किशोरो को सामाजिक नैतिक मूल्यों का ज्ञान होता है। परस्पर विश्वास से मूल्यों में वृद्धि अभिभावको द्वारा ही की जाती है। किशोर जिस समूह के सदस्य होते है उसको वे अपने परिवार से भी ज्यादा महत्वपूर्ण मानते है और ये समूह उसके लिए सामाजिक प्रशिक्षण के स्थल हो जाते है। ऐसे में अभिभावक अपनी भूमिका निभाते है और उन्हें सही गलत की जानकारी देते है। अभिभावक द्वारा जिन परिवारो अभिभावको द्वारा प्रजातांत्रिक वातावरण दिया जाता है उन परिवारो में पले बच्चो की समस्याएँ कम जटिल होती है। किशोरो बच्चो को समूह में रखने से सहयोगात्मक भावना और उतरदायित्व की भावना का विकास होता है सहानुभूति, मित्रता, दया व अन्य मूल्यों को भी वे सीखते है और समूह में वे नियम अनुशासन में रहना सीखते है, और अपनी समस्या का समाधान करना सीखते है। और संयुक्त परिवारो में बच्चो में विभिन्न परिस्थितियों में रहने के अनुभव प्राप्त होते है, और परिवार के अन्य सदस्यो की अपेक्षाओं की पूर्ति करने की योग्यता अभिभावकों से प्राप्त कर लेते है। अभिभावकों से किशोर बालक अपनी विशिष्ट शैली का निर्माण करना भी सीख जाते है। वे अपने अभिभावको से लक्ष्य निर्धारित करना और आत्मविश्वास के गुण अनुसरण विधि से सीख अभिभावकों के व्यवहार से ही अनुकरण की दिशा निर्देशित होती है। उनका मार्गदर्शन करते है। इससे सामाजिक मूल्यों का विकास होता है।

विभिन्न सामाजिक गतिविधियो हेतु इत्यादि में भाग लेने देने से उन्हें कार्यक्षेत्रो के चुनाव एवं कार्यविधियो के चुनाव में स्वतंत्रता प्रदान करने से उनमें आत्मविश्वास तर्कशक्ति जैसे मूल्यों का विकास होता है। अभिभावको द्वारा विपरीत परिस्थितियों मे किशोरो को सुरक्षात्मक व्यवहार करने से उनमें उत्पन्न असुरक्षा भीरूता उत्पन्न नहीं होती है। वे आक्रामक प्रतिक्रिया नहीं कर पाते, अभिभावको द्वारा उनमें विषम लिंग सदस्यो के प्रति शालीनता का व्यवहार अपनाने की शिक्षा दी जाती है तो इस प्रकार अभिभावको के व्यवहार का प्रभाव उनके मूल्यों के विकास मे बड़ा योगदान देते है।

मूल्यों के निर्माण मे शिक्षक की भूमिका – समाज में शिक्षक की भूमिका अधिक है किशोर, बच्चो के भविष्य को सुन्दर बनाने की सारी जिम्मेदारी शिक्षको की होती है कहा जाता है कि शिक्षक द्वारा दिए गए ज्ञान को ही छात्र अधिक महत्व देते है। शिक्षको की भूमिका को कबीर तुलसीदास ने भी सराहा है। गुरू ज्ञान के द्वार होते है वे अपने शिष्यो को सही शिक्षा देकर समाज ओर राष्ट्र के हितार्थ नागरिक को तैयार करते है ऐसे में नैतिक मूल्यो के उत्थान में शिक्षको की भूमिका सबसे कारगर और प्रभावी मानी जाती है। शिक्षक ही किशोर शिष्यो के जीवन में ईमानदारी, सदाचार, चरित्र निर्माण तथा कर्तव्यनिष्ठा का बीजारोपण करते है। गुरू प्रारभिंक शिक्षा से उच्चतर शिक्षा तक उसके साथ रहकर उसे सही राह दिखाते है और छोटे छोटे बच्चो को झूठ ना बोलने, चोरी ना करने बड़ो का आदर करने, सभ्यता को अपनाने तथा संस्कृति को अपनाने तथा संस्कृति से प्यार करने की शिक्षा शिक्षक ही देते है।

किशोरो को चरीत्र निर्माण शिक्षको द्वारा ही होता है बड़े बड़े महापुरूषो ने अपने निर्माण में शिक्षको की भूमिका को सर्वोपरि माना है। महात्मा गांधी ने भी अपनी आत्मकथा में शिक्षक की भूमिका का उल्लेख किया है वे शिक्षको के चरित्र निर्माण के लिए अनिवार्य मानते है किशोरो के उचित मार्गदर्शन में शिक्षको की भूमिका सबसे विशिष्ट मानी गयी है। शिक्षा के विषयो के अतिरिक्त शिक्षक का यह भी कर्तव्य है कि समय समय पर शिष्यो को सदाचार, सद्व्यवहार की शिक्षा दे।

चरित्र निर्माण में उचित मार्गदर्शन करे शिक्षक को आदरयुक्त आचरण करते हुए उनके भी आंतरिक विकास का ध्यान देना चाहिए। शिक्षको के हाथ में शिष्यो के भविष्य की डोर होती है। उसे जिस ओर ले जाना चाहिए। देश के लिए अच्छे नैतिक मूल्यो वाले अच्छे नागरिक को निर्माण का दायित्व शिक्षको पर ही है। हाल के वर्षो में जो नैतिक मूल्यो में गिरावट आई उसका कारण हमारी शिक्षा व्यवस्था भी है। शिक्षा व्यावसायीकरण के कारण ऐसा हो रहा है आज शिक्षको के जागृति की आवश्यकता है शिक्षक की मूल भावना किशोरो को ज्ञान देने की है ना की धन कमाने की। संत कबीर दास के अनुसार शिक्षक का उत्थान ईश्वर से पहले है।

मूल्यो के विकास में सिनेमा की भूमिका – शिक्षा के प्रसार में वृद्धि करने के लिए दृष्य, श्रव्य, साधनो का महत्व है भारतवर्ष में पिछले 10 वर्षो में चलचित्र का अधिक प्रसार हो गया है। टेलीविजन पर आने वाले विभिन्न कार्यक्रमों से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक मूल्यो पर प्रभाव पड़ा है। विभिन्न अध्ययन से पता चला है कि इसके द्वारा किशोरों की विभिन्न विषयों से सम्बन्धित अभिवृत्तीया प्रभावित होती है। वयस्को की अपेक्षा किशोर अधिक प्रभावित होते है। टेलिविजन के माध्यम से बच्चो में रूची जागृत होती है। सीखने की प्रेरणा प्राप्त होती है। और विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा विभिन्न मूल्यो को भी पात्रों के माध्यम से दिखाया जाता है। मनोरंजन के साथ-साथ व्यवसायिक जानकारी भी दी जाती है। टेलीविजन सिनेमा बड़ी शक्ति है जो समाज को नए संस्कार देने, कुरीतियों, कुनीतियों, कुप्रथाओं के विरूद्ध आन्दोलन खड़ा करने, अंधविश्वास के प्रति अनास्था और घृणा उत्पन्न करने और वैज्ञानिक दृष्टीकोण विकसित करते है। मनोरंजन के साथ-साथ यह मानसिक प्रशिक्षण भी देना ही समाज सुधार का प्रमुख साधन है, और इसके साथ ही राष्ट्रीय एकता नैतिक मुल्यों आदि गुणों का समावेश भी इसमें किया जाना चाहिए। वर्तमान में यह किशोरों के चरित्र पतन का कारण बन रहा है, तथा जिस कारण मुल्यों का हास होकर किशोर के दिशा भ्रमित हो रहे है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. प्रसार एवं संचार परिचय, मंजुपाटनी पेज नं. 40, पेन. 45
2. सामाजिक विघटन एवं अपराध शास्त्र, पेज नं. 209 किरण बघेल
3. विवाह एवं पारिवारिक जीवन, अलका डेविड पेज नं. 27, पेज नं. 87
4. किशोरावस्था एवं पारिवारिक जीवन, कमलेश शर्मा पेज नं. 07,पेज नं. 33
5. हिन्दी अध्ययन, डॉ. अशोक कुमार पाण्डे, पेज नं. 28

* सहायक प्राध्यापक (गृह विज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

उपभोक्ता संरक्षण में उपभोक्ता फोरम का योगदान

डॉ. मीना सिसोदिया *

प्रस्तावना – आज का उपभोक्ता पीड़ित है, बाजार में भ्रष्टाचार फैला हुआ खाद्य सामग्रीयों में अन्य वस्तुओं में मिलावट, दुकानदार के माप में अन्तर दुकानदार द्वारा मनमाने दाम वसूल किए जाते है। घोर कालाबाजारी, इन समस्याओं से उपभोक्ता पीड़ित है और उपभोक्ता इसके लिए सरकार, उत्पादनकर्ता व अन्य संबंधित अधिकारियों को दोषी ठहराते है। जबकि इसके लिए स्वयं ही हम दोषी है। और इसका शिकार शिक्षित उपभोक्ता भी है। वह अपने धन का अधिकतम उपयोग नहीं कर पा रहे है। उपभोक्ता की अनेक समस्याएं है, उपभोक्ता समस्याओं के प्रति जागरुक है।

कारण – उपभोक्ता को अज्ञानता के कारण बाजार का पुरा ज्ञान नहीं है, लापरवाही, लज्जा की भावना, समय की कमी, प्रचलित फैशन के तहत, कम दाम में मिलावटी वस्तु भ्रमित विज्ञापन के तहत गलत खरीददारी करना, वस्तुओं खाद्यानों में मिलावटी वस्तु का एकाधिकार होना, चोर बाजारी है। गलत माप करना आदि समस्या है। उत्पादन और व्यापारी अपनी वस्तु का अधिक से अधिक मूल्य लेना चाहते है, और उपभोक्ता का शोषण करना चाहते है, उपभोक्ता अपने को इस शोषण से बचना चाहते है।

उपभोक्ता के अधिकार होते है उपभोक्ता को अपने अधिकारों का उपयोग करना चाहिए उपभोक्ता को कम से कम खर्च करके अधिक से अधिक आवश्यकता पुरी करना चाहिए निर्धारित मूल्य से अधिक मूल्य न दे। आवश्यकता से अधिक वस्तु क्रय की जा रही वस्तुओं के गुणों की जानकारी हो। नवीन आविष्कारों की जानकारी होना चाहिए जिससे वे व्यापारियों के शोषण से बच सके।

उपभोक्ता फोरम – उपभोक्ता यदि कभी व्यापारियों, उत्पादको द्वारा शोषित हो जाता है ठगा जाता है तो उपभोक्ता फोरूम की सहायता लेना चाहिए। उपभोक्ता फोरम उपभोक्ता को उचित न्याय दिलाने के लिए एक कडी का काम करता है ओर यदि उपभोक्ता फोरम से संतुष्टि नही है तो वह राज्य उपभोक्ता आयोग से सहायता ले सकता है। वैसे ज्यादातर निराकरण जिला उपभोक्ता फोरम द्वारा ही निपटाये जाते है।

राज्य उपभोक्ता आयोग द्वारा 31 दिसम्बर 2006 तक सीधे तौर पर 1142 शिकायते दर्ज हुई है तथा 1082 का निराकरण भी किया गया जिला उपभोक्ता फोरम में 13973 शिकायते दर्ज हुई 11665 शिकायतों का निराकरण किया गया इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि उपभोक्ता द्वारा सीधे तौर पर की गई शिकायतो का भी निराकरण किया जाता है।

वर्तमान युग में उपभोक्ताओं को शोषण से बचाने के लिए उपभोक्ता की उचित शिकायतों को सरल तरीके से निवारण करने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के प्रावधानों के अंतर्गत राज्य स्तर पर दिनांक 1.1.1990 को म.प्र.राज्य उपभोक्ता आयोग का गठन किया। जिसमें उपभोक्ता फोरम के विरुद्ध शिकायतों का निराकरण किया जाता है। इस आयोग में 01.09.1990 से कार्य करना प्रारम्भ किया।

यदि कोई पक्षकार जिला उपभोक्ता फोरम के निर्णय से संतुष्ट होता है तो वह आदेश के 30 दिन के भीतर राज्य आयोग को अपील प्रस्तुत कर सकता है। उपभोक्ता फोरम उपभोक्ता के हितो के संरक्षण के प्रति प्रतिबद्ध है, और उनके अधिकारो के लिए सदैव तत्पर रहता है।

उपभोक्ता फोरम उपभोक्ता को राहत प्रदान करने में लगातार प्रयत्नशील रहता है। कई बार उपभोक्ता या अन्य पक्षकार की अनुपस्थिति में अथवा तकनीकी की कमी के कारण कुछ मामले खारिज हो जाते है।

वर्तमान में उपभोक्ता फोरम अपनी समय सीमा अवधि में अधिक से अधिक शिकायतो का निराकरण कर रहा है।

वर्ष 2004 में 1105 शिकायते दर्ज हुई 2005 मे 1117 शिकायते दर्ज हुई 2006 में 1142 शिकायते दर्ज हुई इससे स्पष्ट होता है कि उपभोक्ता जागरूकता के कारण प्रतिवर्ष दर्ज उपभोक्ता शिकायतो में वृद्धि हुई है तथा निराकरण कार्य भी तेजी से किया जाता है।

निष्कर्ष – उपभोक्ता फोरम उपभोक्ता को राहत प्रदान करने में लगातार प्रयत्नशील है। उपभोक्ता फोरम के केस दर्ज नहीं होते तो इससे पता चलता कि उपभोक्ता में तकनीकी जानकारी की कमी है।

उपभोक्ता अपने अधिकारो के प्रति सचेत है इसी का परिणाम यह हुआ है कि ठगे जाने पर, वस्तु में कमी पाए जाने पर, सेवा में त्रुटि होने पर वह उपभोक्ता फोरम से न्याय प्राप्त कर सकता है।

उपभोक्ता फोरम उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के तहत उपभोक्ता के हितो को ध्यान में रखते हुए समय सीमा अवधि में उपभोक्ता मामलो का निराकरण कर उपभोक्ता को राहत दिलाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. यह अर्थशास्त्र, महेश भटनागर अरूण प्रकाशन
2. गृह प्रबंध शकुंतला
3. उपभोक्ता संरक्षण विधि, सुरेश त्यागी 2003
4. उपभोक्ता डायजेस्ट, 2005
5. उपभोक्ता संरक्षण केस, 2000, 2001, 2002
6. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम

****

* सहायक प्राध्यापक (गृह विज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

The Impact Of Change Management Strategies In Organizational Commitment & Business Efficacy In Rajasthan

Dr. Anita Sukhwal * Harshita Paliwal **

Abstract - Strategy concerns the nature, direction and focus of tomorrow's business.The management process of establishing, reviewing and updating a Company'sStrategy should be one of the most stimulating and purposeful activities in which Senior Managers are involved. This research deals with the conceptual framework of strategic change management which includes strategic intent, environmental analysis, various types of strategies and their implementation. The foundation of building strategies depend on environmental analysis. In the proposed study certain strategic parameters have been identified viz. Demographic variables, personality traits, intuition and innovation. These factors provide us a framework for building strategies. The strategies although follow a sequential layer namely corporate level strategies, business level strategies, and operational level strategies, however the major thrust areas include finance, marketing, human resource, information & technology and research & development. Due to liberalization, globalization and privatization, the international business environment has become fiercely competitive. In order to survive and prosper the top management teams must provide Change Management Strategies in all spheres of business activities. The present study explores the Efficacy of Business Strategy.

Key words - Organizational Culture and Change, Change and HR, Change Management, Strategy, Business Strategic Efficacy.

Introduction - Organization Culture and Dealing with Change - The existing corporate culture may even be a liability in implementing a new business strategy successfully. Ex. Lake of openness and trust, and interdepartmental rivalries might inhibit a department from rectifying certain problems because of consequent changes in the work process/ schedule that might affect related departments. The company culture may make it unattractive to inconvenience others while rectifying one's own problem. Where units/subsystems are characterized by different subcultures, initiating change in one subsystem could aggravate problems of coordination. Any intended change has to be a natural corollary of the existing corporate culture. For ex. companies like Sony, Motorola Xerox etc have supported strong quality cultures that speak of the quality of their products. Similarly, a change strategy should be wound around or built in to the existing value and belief system of the organization and translated in to visible and measurable goals to be effective. Changing the corporate culture can improve the organization's ability to implement new business strategies and to perform better. It is to be remembered that cultural change is an extremely difficult and long-term process. Firms with adaptive cultures can initiate incremental changes in their strategies and practices in the context of environmental changed. The computer business gave rise to a new subculture that emphasized strategic planning rather than entrepreneurism. Employees were laid-off on 3 different occasions, by-the-seat-of-one's-pant management became rare, and management was professionalized with the retirement of the founders. The new culture was a logical response to a new set of conditions (Kotter & Heskett, 1992).

Change and the Human Resources - Organizations over the past decade have been moving towards flatter, learner and more responsive structures. This has made many of them more efficient in terms of their resource utilization and more effective in terms of their responsiveness to the market demands. Technology has played a major role in ensuring that a coherent business approach and managerial performance can be mentioned from a reduced resource base. The key to success in such move has been the mobilization of human resources (Peters and Waterman, 1982; Kenter, 1983; 1989; Pettigrew & Whipp, 1993). The revolution in the organization design has been achieved by creating responsive work environments which emphasis the need to cooperate across and within functions; focus on service and quality; and search for holistic and integrated responses to trigger events, while encouraging participation, ownership and shared accountability (Spector, 1989; Handy, 1990). IBM, Compaq, Motorola and Steel Case have amongst many others, adopted team based solution to the management of their manufacturing facilities. Responsibilities increase as the team matures and gains confidence. Teams are being asked to participate in the process of innovation and change; employees are seeking, and ensuring they get enhanced performance through greater involvement and empowerment (Piczak & Hauser 1996; Anderson & West, 1996). Many

* Associate Professor, Kota University, Kota, (Raj.) INDIA
** Research Scholar, Pacific Academy of Higher Education & Research, Udaipur, (Raj.) INDIA

organisations have dropped the term 'foreman' and 'supervisor' in favor of title such as 'team leader', which is visible manifestation of workforce empowerment. For the managers, this had led to an increasing emphasis being placed on project and teamwork, communications, customer awareness, auditing and quality procedures. Managers are being asked to facilitate events rather than lead; share responsibility and accountability rather than shoulder the burden; develop and administer participative planning and control system. The manager of the 21st century is busy; they face challenging operating environments; multiple tasks and cross-functional responsibilities. They are increasingly encouraged to empower others and facilitate success.

Change Management - By John Kotter, Daryl Conner, Linda Ackerman Anderson, and Jeff Hiatt "Change Management is a set of principles, techniques and prescriptions applied to the human aspects of executing major change initiatives in organizational settings."Change Management provides a competitive advantage, allowing organizations to quickly and effective implement change to meet market needs.

By Prosci's "Change Management is the application of a structured process and set of tools for leading the people side of change to achieve a desired outcome." Change Management emphasizes the "people side" of change and targets leadership within all levels of an organization including executives, senior leaders, middle managers, and line supervisors. When Change Management is done well, people feel engaged in the change process and work collectively towards a common objective, realizing benefits and delivering results. One size doesn't fit all when it comes to Change Management. All organizations, however share the need to address the complexity of how change impacts people.

Strategy - In Management concept of the strategy in1962 "Strategy is the determination of the basic long term goals and objectives of an enterprise and the adoption of the course of action and the allocation of resources necessary for carrying out these goals".

By Professors of Harvard Business School (Andrews, one of them) has defined strategy as "Strategy is the pattern of objectives, purpose or goals and major policies and plans for achieving these goals, stated in such a way, so as to define what business the company is in or is to be and the kind of company it is or is to be". Formulating strategy is becoming a much more pragmatic affair that it was in the heady days of ivory tower corporate planning departments. As one cynic says: "Whatever you hit you call your strategy". The responsibility for strategic change is becoming more and more diffused through the organization, 'bottom-up' as well as 'top-down'. To be competitive, companies need to be world class. However no organisation can be world class in all its activities. This is where a company has to identify the activities it can perform to world class standards in terms of its core capabilities. Those that do not underlie its core capabilities, have to be outsourced. A company's activities can be classified into 4 categories:

- Unit of Competitive Advantage (UCA) works that creates distinctiveness for the business in the market place.
- Value-added support work that facilitates UCA work.
- Essential support work that has to be done.
- Non-essential support work that can be outsourced though it is still performed in-house due to tradition.

Change Management Policies: Policies that support change management include:

- Creating a culture of change management across the IT organization
- Aligning the service change management process with business, project and business/organization change management process
- Prioritisation of changes
- Establishing accountability/responsibilities for changes through the service lifecycle
- Establishing a single focal point for changes to minimize conflicting changes and potential disruption
- Preventing anyone who is not authorized to make changes from having access to the production environment
- Establishing change windows
- Performance and risk evaluation of all changes
- Performance measures for the process

Research Methodology - For perusing any research there should be a proper research methodology. A detailed plan of the research methodology is provided below-

A. Research Problem: The research Problem of the study is- " **The Impact of Change Management Strategies in Organizational Commitment & Business Efficacy in Rajasthan".**

B. **Objectives of the study -** The main objectives of the study are to measure the value of Change Management Strategic Practices In the corporate culture. However the specific objectives are as follows-

1. To study the value of change management strategies on different parameters of organization.
2. To find out relation between these parameters and their impact on change management.
3. To determine the change management efficiency quotient.

Sample - A sample of 30 units operating within the industrial areas of Rajasthan namely was considered as target population.

Limitations of the study - Every research conducted has certain limitations. The limitations of this study are as follows:

1. Although 30 companies are being taken in to consideration, still data collected is about the present number of employees working in organization. There is no information of past employees.
2. The study being corporate sector or company specific cannot be generalized.

Measurement of Strategic Change Management Practices - Organizational Change is a complex process; it is much more complex than human behaviour. Therefore, there can not be one specified solution to managing change.

A change technique that works in one organization may not work and even fail in another organization within the same culture/country, not to speak of across diverse cultures and countries. Organizations differ in many ways-in their work culture, management and leadership styles, structure and design, resources, technology, work processes and techniques, employees and their expectations, the customers that they serve (and their own expectations of them), and the complexity of the business environment, in which they operate. Any intended change, to be implemented effectively, should be congruent with this dynamism, complexity and uniqueness of an organization.

Table No. 1 (See last page)

Comments -

1. 90% respondents were highly agreed that change management concept as the most important for overall organization's objectives, mission and strategies.
2. 76.67% respondents were accepted highly that strategic change management is engaging employee to drive business results positively. While as 20% respondents were moderately agreed and 3.33% respondents were low agreed.
3. 83.33% respondents were favored that companies work with best skilled HR and market leaders. While as 13.33% respondents were moderately agreed and 3.33% were low agreed with the statement.
4. 96.67% respondents were agreed that strategic change management includes demographic variables, personality traits, intuitive abilities and innovative abilities to development of performance and rewards, align with company's business strategies and objectives.
5. 63.33% respondents were highly agreed that strategic change management practice can result in a competitive advantage for the company in the market place. And 36.67% respondents were moderately agreed with this statement.
6. 90% respondents were highly favored with the statement that change management is a systematic tool to improve jobs and abilities. And 6.67% respondents were moderately agreed with the statement while 3.33% respondents were low agreed that only change management is a systematic tool to improve jobs and abilities.

Table No.2 (See last page)

Comments -

1. 96.67% respondents were highly favored with the statement that employee's demographic variables are important as it has impact on organizational development and work culture.
2. 43.33% respondents were highly agreed, 20% were moderately agreed and 36.67% were low agreed that Gender constitutes a major issue to the survival and development of the organizations.
3. 90% respondents were highly favored with the statement that Openness to diversity is an important dimension of the corporate culture to knowledge sharing and cooperation within the firm.
4. 93.33% respondents were highly agreed that Age and occupation also influences employee attitudes and behaviour towards affirmative action policies.
5. 96.67% respondents were fully supported with the statement that Employee experience and employment sectors impact on productivity and quality of output.
6. 43.33% respondents were highly agreed, 20% were moderately agreed and 36.67% were low agreed that Employee's personality traits are important as it has impact on OD and work culture.

Table No.3 Hypothesis testing - The following hypothesis has been framed to find out whether the large and small sized organizations differ with respect to the Change Management Strategic Practices in aggregate as well as factor wise. The hypothesis has been tested using above tests using difference of means at 5% levels of significance. The results obtained are presented below:-

Ho1: There is non significant difference in the level of strategic change management strategies adopted by large and small size companies.

Size	N	Mean	SD	t	df	Result
Small	18	3.89	0.51	-1.659	27	NS
Large	11	4.17	0.26			

Test results given above shows that there is no significant difference in the level of strategic change management strategies adopted by the company whether it is of large size or small size company ($t = -1.659$, $p>0.05$). Hence it can be concluded that strategic change management strategies adopted by the companies are independent of size of the companies and the null hypothesis is accepted. [*Note: The size was taken as the function of the number of employees in the organisation. Organisations having 500 or more employees were considered as 'Large' organisations, organisation having employees and less than 500 were put under the category of small sized organisations.]

Ho2: There is no significant difference in the level of strategic change management strategies adopted by service and manufacturing companies.

Type	N	Mean	SD	t	df	Result
Service	16	3.90	0.54	-1.464	28	NS
Manufacturing	14	4.13	0.28			

Test results given above shows that there is no significant difference in the level of strategic change management strategies adopted by the company whether it is Service industry or Manufacturing industry ($t = -1.464$, $p>0.05$). Hence it can be concluded that strategic change management strategies adopted by the companies are independent of type of the companies i.e. whether it is service type or manufacturing type of company and null hypothesis is accepted.

Ho3: There is no significant difference in the level of strategic change management strategies adopted by new and old companies.

Age group	N	Mean	SD	t	Result
New(up to 20 years)	15	3.96	0.51	-0.61	NS
Old (above 20 years)	15	4.06	0.39		

Test results given above shows that there is no significant difference in the level of strategic change management strategies adopted by the new industry or old industry ($t = -0.61$, $p>0.05$). Hence it can be concluded that strategic change management strategies adopted by the companies are independent of age of the companies i.e. whether it is new or old company and null hypothesis is accepted

Conclusion -

- Test of difference of mean between 'Large', and 'Small' organisations in aggregate and factor-wise Change Management Strategic practices showed that they do not differ significantly.
- Test of significance of means between 'Service' and 'Manufacturing' organisations in aggregate and factor-wise Change Management Strategic practices showed that they do not differ significantly.
- Test of significance of means between 'New' and 'Old' organisations in aggregate and factor-wise Change Management Strategic practices showed that they do not differ significantly.
- In the analysis done size-wise the 1st rank was accorded to 'Competition from other existing organisation in industry' and 'Supplier bargaining Power' in case of large sized, and small size organisations.
- When analysis was done on type-wise basis manufacturer and service both type of organisations accorded highest rank to 'Competition from other Existing Organisation in Industry' 'Supplier bargaining Power 'got the last priority.
- When analysis on age-wise basis was done it revealed that 'Competition from other existing organisation in industry.' was the first rank for new and old organisations, while 'Supplier bargaining Power 'got the last priority.

Note - This analysis reveals that the top management is continuously progressively monitoring the external environment and is aware of all the factors that are in the vicious circle.

Suggestions - To the business efficacy following suggestions kept in the mind:

1. Large sized Organisation must refine their customer and employee focus Strategies by regular review of key customers.
2. The large sized Organisations are suggested to arrange for key customers contact with the top management and down to the hierarchy.
3. For small organisations top management must keep in mind and instruct the research and development to focus their product/service development on customers Strategic needs.
4. 'Diversifying' may be one of the Strategies for optimum utilization of the expensive quality, adopted by large sized organisations.
5. The top management must further ensure Total quality Management inputs to regular Strategy reviews. Also, develop Total quality Management awareness as business opportunity at senior manager level.
6. There must be existence of a business-wide sense of purpose and motivation. People development must be the key constituent in Strategy.
7. Formal Personal Development programmes, Training, Seminars and Conferences have been stressed by all level of managers in this Research. Also it came up that it must be kept in mind that conscious effort is given to all employees relevant skills at best practice standards.

References:-

1. Martin L. Roger, 2014, "The big lie of strategic planning", Harward Business Review, Jan. – Feb., pp. 79 – 83.
2. C.B. Mamoria, S.V.Gankar "Personnel Management" 24th edition, (2004) 271-225.
3. Porter E. Michael, 2013, "What is Strategy", Harward Business Review south asia on point, Nov. - Dec., pp. 104 – 120.
4. Porter E. Michael and Thomas H. Lee, 2013, "Providers must lead the way in making value the overarching goal", Harward Business Review, Oct., pp. 41 –
5. Prahlad C. K. And Gary Hamel, 2013, "The Core Competence of the Corporation", Harward Business Review, May – June, pp. 122- 134.
6. Ryall D. Michael, 2013, "The New Dynamic od Competition, Harward Business Review, June, pp. – 68 – 75.
7. Zenger Todd, 2013, "Strategy: The Uniqueness Challenge", Harward Business Review, Nov., pp. 52 – 56.
8. Zenger Todd, 2013, "What is the Theory of the firm?", Harward Business Review, June, pp. 61 – 66.

Table No.1 Strategic Change management: In this section the following topics have been covered -

S. No.	Statement	Agreement with the Statements		
		Low	Moderate	High
1	The change management concept as the most important for overall organization's objectives, mission and strategies.	0	10	90
2	Strategic CM is engaging employee to drive business results.	3.33	20	77
3	You believe that companies work with best skilled HR & market leaders	3.33	13.3	83
4	SCM includes demographic variables, personality traits, intuitive abilities and innovative abilities to development performance and rewards align with companies' business strategies and objectives.	0	3.33	97
5	SCM practice can result in a competitive advantage for the company in market place.	0	36.7	63
6	CM is a systematic tool to improve jobs and abilities.	3.33	6.67	90

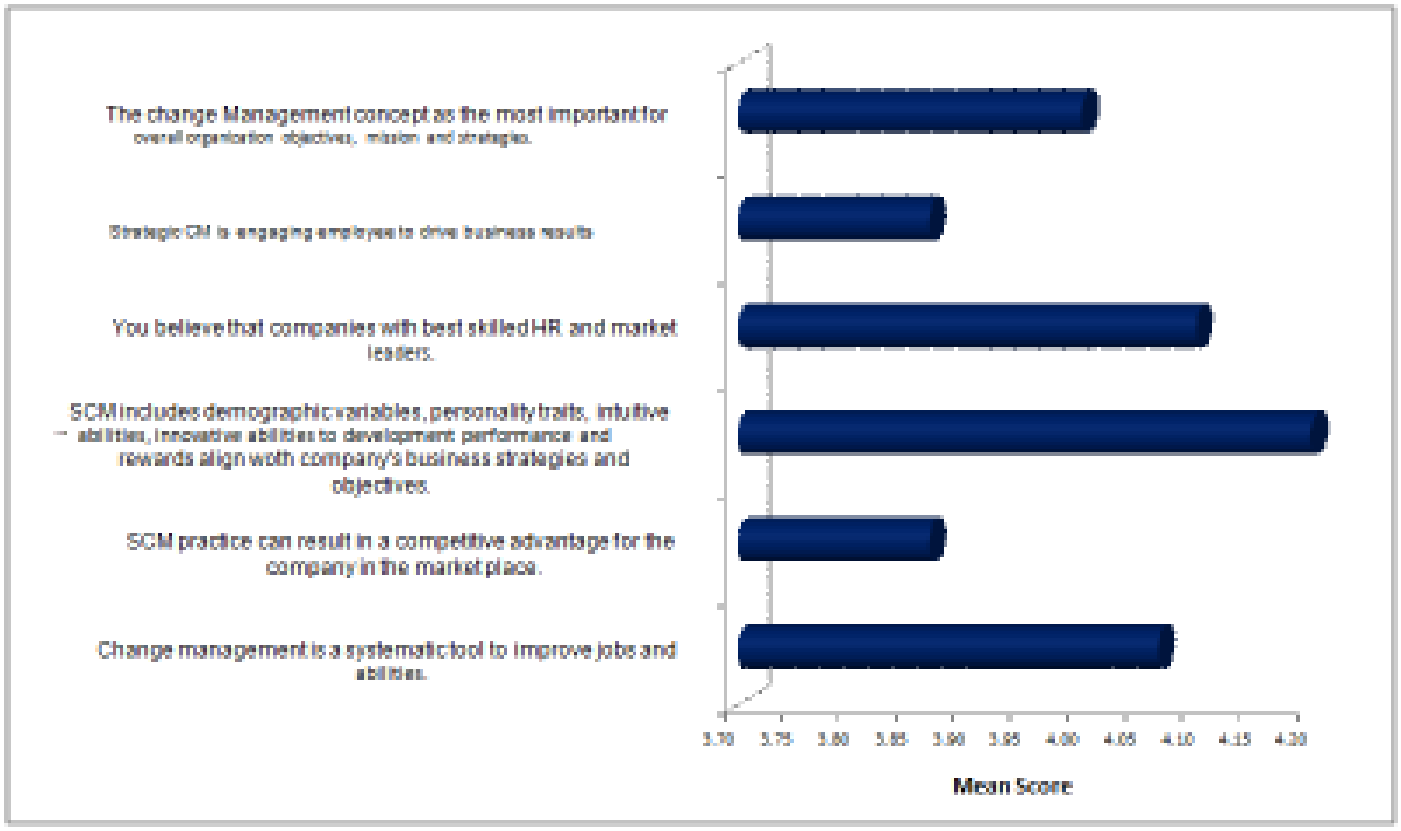

Source: Data compiled from questionnaire

Table No.2 Change Management Tool and Techniques: In this section the following topics have been covered-

S. No.	Statement	Agreement with the Statements		
		Low	Moderate	High
1	Employee's demographic variables are important as it has impact on OD and work culture.	0.00	3.33	96.67
2	Gender constitutes a major issue to the survival and development of the organizations.	36.67	20.00	43.33
3	Openness to diversity is an important dimension of the corporate culture to knowledge sharing and cooperation within the firm.	3.33	6.67	90.00
4	Age and occupation also influences employee attitudes and behaviour towards affirmative action policies.	6.67	0.00	93.33
5	Employee experience and employment sectors impact on productivity and quality of output	0.00	3.33	96.67
6	Employee's personality traits are important as it has impact on OD and work culture.	36.67	20.00	43.33

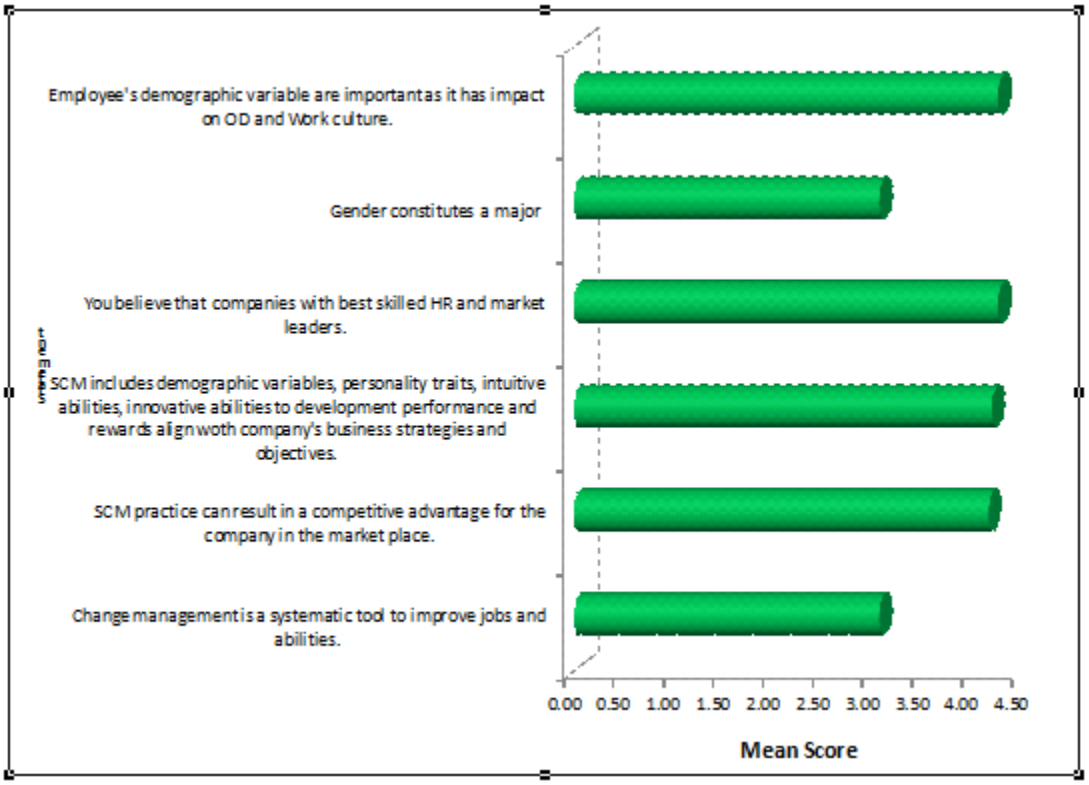

Source: Data compiled from questionnaire

****

A Study Of Creativity & Innovation In Small And Medium Entrepreneurships

Dr. Anita Sukhwal * Harshita Paliwal **

Abstract - This paper aims at exploring the critical dynamic capabilities of Small and Medium Entrepreneurs in the innovation process and at identifying the dynamic capabilities that enable the implementation of open innovation practices. To link dynamic capabilities to an open innovation approach undertaken by SMEs. The study extends existing work on innovation in SMEs by identifying key dynamic capabilities in the context. Research provides empirical evidence of dynamic capabilities in practices, where analysis reveals that companies with strong sensing, seizing and reconfiguring capabilities are more inclined to develop open innovation approaches. Innovation has become one of the important mainstays in today's fast changing business world. To sustain competitive advantage, organizations need to keep up the pace of innovation demanded by rapidly changing technology, customer's needs and extensive competitive pressure. Indispensable for the creation of successful innovation is an organization's knowledge and its capabilities to absorb, integrate and create new knowledge as innovation arise from the knowledge available for the innovation activities and the ability to apply available knowledge. Companies nowadays are more and more globally dispersed and thus need to find solutions for letting this knowing practices take place in an online and virtual environment.
Key words - Creativity and Innovation, Small and Medium Entrepreneurship, Technology Adaptation and Appropriateness.

Introduction -Creativity and Innovation- Innovation can be generated through creative process. History of human civilization is full of innovation of different types. Technological innovation has changed the pattern of human lives. In the present globalised and competitive environment, in which customer's aspirations are increasing day-by-day, every forward looking company is trying to satisfy its customers' needs in innovative ways. Innovation is the process of creating and doing new things. Virtual collaboration offers the possibility to include more employees in activities and decision making processes, especially from other countries or other departments. For innovation activities this means that more knowledge becomes accessible and can be used in this process. Innovations are new ways to achieve tasks. Type of innovations includes:

a) Mechanical: tractors, cars.
b) Chemical: pesticides.
c) Biological: seed varieties.
d) Managerial: IPM, extra pay for work, overtime.
e) Institutional: water user's association, patents, banks, stoke market, conservation and districts, monks.
f) It is useful to distinguish between process innovation (new biotechnology procedures) and product innovations (BT cotton)

Innovation Process: Innovation starts as a "concept" that is refined and developed before application. Innovations may be inspired by reality. The innovation process, which leads to useful technology, requires: Research, Development (up-scaling, testing), Production, Marketing, Use, Experience with a product results in feedback and leads to improved innovations.

Stakeholders in the innovation process:

1. Universities, including research scientists, university administrators, and designated officers of technology transfer.
2. Entrepreneurs, including start-up companies and venture capitalists.
3. Incumbent corporations.
4. Potential technology adopters and downstream producers who will use the technology.
5. Government regulators.
6. Environmental and other special interest organizations.
7. Consumers.

Introduced Innovation: Innovation respond to need and economic conditions. Inventors, Investors, and researchers put effort into solving burning problems and that lead to innovations.

1. Labour shortages led to mechanized equipment
2. Drought conditions led to improve irrigation
3. Energy crises led to high efficiency cars
4. Farmers' cooperatives were established during periods of excessive low farm prices.
5. Environmental regulations trigger cleaner technologies:- A tax on carbon will lead to improved stoves and power plants.

Various Types of Innovators: In the past most innovations were introduced by practitioners. Even now practitioners are important innovators. They identify to meet needs. The scientific discoveries of the late 19th century gave rise to science based innovations (Edison, Bell, and Marconi). Major companies (IBM, Sony, Kodak, Bell, and GM) built their own research labs. Public sector labs made important agricultural and environmental discoveries. Universities and

* Associate Professor, Kota University, Kota, (Raj.) INDIA
** Research Scholar, Pacific Academy of Higher Education & Research, Udaipur, (Raj.) INDIA

start up companies are becoming major sources of new innovations. The ownership of a technology and leadership in its applications move between organizations overtime.
Incentives for Innovation:
a. Patents - Awards monopoly right for 17-20 years. Patent protection allows publication of research findings that leads to innovations. Patent rights (for certain applications) can be transferred. Patents are valid only where they are registered.
b. Copyright protection - Pertains to books, brand names and the media.
c. Trade secrets - Protects against thefts.
d. Plant breeders' right - Allows exclusive sales of varieties and allows farmers to reduce seeds.
e. Prizes - Awarded to winners of a contest for finding a technical solution to a problem. Indigenous knowledge is poorly protected
Small and Medium Entrepreneurships - By *Hari Shrinivas*
"The acronym "SME" refers to small to medium-sized business. While a board generic definition can be taken for SMEs, note that some countries have a very specific definition for what types of enterprise can be called an "SME". For ex. The European commission defines an SME as " an enterprise which employs less than 250 people; has an annual turnover of less than 50m and /or balance sheet assets of less than 43m; and has no more than 25% of its capital or voting rights owned by a large firm or public body".
SME defined by 3 keywords- small, single and local:
1} Small - SMEs are small in nature- either in terms of number of (A) employees-10 persons for small to 200 persons for medium depending on the country's law. (B) capital and assets- limited working capital and assets and (C) turnover- the overall turn over of the enterprise is small, compared to larger business.
2} Single - Most SMEs have a single owner who could also be the sole employee. While this may predominately be the case, definitions set 250 t0 500 employees as the limit for enterprises to be called an SME. The 'single' also refers to single products produced or service provided.
3} Local - SMEs are essentially local in nature- their market is usually localized to the area where they are located (same city, district or state); or may be 'local' in the sense that every operate from a place of residence- also called SOHO [Small Office Home Office]

SMEs are socially and economically important- they represent 99% of an estimated 23 million enterprises in the EU and provide around 75 million jobs representing 2/3 of all employment. SMEs contribute up to 80% of employment in some industrial sectors, such as textiles, construction or furniture.Entrepreneurs are individuals who take a concept & convert it into a reality, a product, policy or institution. They become the champions of a new process, and they are engines of change. Entrepreneurship occurs in all areas of life. Entrepreneurs are everywhere in Wall Street and the Sahel, in business, academy, government & NGO's. This can be used for good and evil. The Godfather was an entrepreneur that misused his talent.

Entrepreneurs can be encouraged and promoted -

- Openness to new ideas, freedom from investigation of operation and promotion and pay based on merit encourage entrepreneurship.
- Excessive regulation, rigid hierarchy, lake of freedom and excess control discourage entrepreneurship.

Requirements of Entrepreneurs -
a) Entrepreneurs need a keen eye to understand economic, social and scientific realities and the capacity to understand evolutionary processes in the future.
b) They need to understand how institutions work, and individuals react in order to introduce activities and products that serve peoples' need and that are sustainable economically and politically.
c) They also need dedication and commitments and the capacity to overcome failure.
Entrepreneurship & Society - To encourage entrepreneurship society should tolerate failure and give people a second chance. Obviously people need to pay for their mistakes. But if the payment is too high, people will not be daring or take risks. Effective legal system is essential for positive entrepreneurship.

Marketing & Environmental leadership: A leader may have to sell ideas, promote concepts, raise funds, and recruit followers-which require marketing. Frequently, environmental issues are abstract and removed from the daily reality of most people marketing environmental issues is a challenge.
Technology Adaptation and Appropriateness -Rarely is the same technological solution optimal everywhere. The value of an innovation depends on socioeconomic, climatic and ecological specifics. Important innovative activities adapt technological solutions to specific conditions. Export of technologies across regions without adaptation may lead to negative environmental side effects and waste. A technology may have several versions to meet needs and capabilities of various users in a region, ex. large vs small farmers' version of machinery. The establishment of an innovative capability starts with a buildup of capacity to support and adopt innovations and new technologies. Why Universities do not do what companies do and why Companies do not do what Universities do:
1. Uncertainty - uncertainty outcome of basic research.
2. Inappropriability or nonmarketability - some results from basic research are not appropriable, because they occur at such fundamental levels of scientific analysis.
3. Spillovers - some results from basic research can easily spill over to competitors in the same line of business that the results may actually help the competitors more than they help the company that conduct the initial research.

Institutional arrangements: Incentives to universities researchers: Formulas for the allocation of OTT revenues from license royalties:

- **Most common formula-** equal sharing among the university (33%), the department (33%), and the employee inventor (33%).
- **Another common formula -** 50%-50% sharing between the university and the inventor.
- **Average net revenue distributions -** university (35%), department (25%) and faculty inventor (40%).

Adoption and Diffusion: The use of new technologies spreads gradually. There is a significant time lag between

the time a new innovation is introduced and when it becomes widely used by producers or consumers. Diffusion is the aggregate process of product penetration. It is measured by the percentage of potential users who actually adopt a technology. Diffusion curves measure aggregate adoption as a function of time. They tend to be S-shaped. Adoption is decision by a specific individual to use a technology. Diffusion is aggregate adoption.

Stages of diffusion:

1) **Early adopters:** More educated, innovative individuals who gain from technology.

2) **Followers:** The majority of adopters who see its success and want to join it.

3) **Laggards:** Less advanced individuals who either do not adopt or adopt very late or may lose because of the technology.

Technology Reemergence: Creating new value of old innovations by *Carmen Nobel (6 Jan 2014) "*Every once in a while, an old technology rises from the ashes and finds new life". *Ryan Raffaelli* explains how the Swiss watch industry saved itself by reinventing its identity. "Out with the old, in with the new! That's the natural path of Innovation." PCs killed typewriters, for instance. Smartphone's superseded telephones, pocket calculators and point-and-shoot cameras. Every once in a while, though an old technology rises from the ashes and finds new life: a reemergence. Take for ex, the mechanical wristwatch. Swiss watchmakers dominated the industry for centuries until the mid 1970s, when the Japanese introduced low cost production methods to manufacture highly accurate quartz watches. Swiss business historians refer to this as the "Quartz Crisis". Companies like Seiko and Casio seized the quartz market. By 1983, two-thirds of the watch industry jobs in Switzerland had disappeared, and the country was producing only 10 percent of the world's watches. Yet Switzerland has reemerged as the global leader of watch exports (by export value), due to a new found market demand for old style mechanical watches. **Key concepts include:**

1. The value of some products may go beyond pure functionality to embrace non-functional aspects that can influence consumer buying behaviours.
2. Introducing a new technology is not always the only way to get ahead of the curve when older technologies or industries appear to be reaching the end of their life.
3. Industries that successfully re-emerge are able to redefine their competitive set- the group of organizations upon which they want to compete and the value proposition that they send to the consumer.
4. There is significant interplay among community, organization and product identities.
5. Swiss watches as well as fountain pens, streetcars, independent bookstores and vinyl records- are all examples of technologies once considered dead that have rematerialized to claim significant market interest.
6. For Swiss watchmakers, "who we are"(as a community) and "what we do"(as watch producers) were mutually constitutive and may have been a potent force in the processes that sought re-coupling in the face of the de-coupling precipitated by technological change.
7. Although new or discontinuous technologies tend to displace older ones, legacy technologies can re-emerge, coexist with and even come to dominate newer technologies. Core to this process is the creation and recreation of product, organization and community identities that resonate with the reemergence of markets for legacy technologies.
8. Substantial economic change may not be contained only within organizational or industry boundaries, but also extend outward to include broader forces related to field level change.

Research Methodology - For perusing any research there should be a proper research methodology. A detailed plan of the research methodology is provided below:-

Research Problem - The research Problem of the studyis: *"A study of Creativity and Innovation in Small & Medium Entrepreneurships".* Objectives of the study: The main objective of the study is to measure the value of Creativity and innovation in Small and Medium Entrepreneurships in the corporate culture. However the specific objectives are as follows:

1. To study the value of creativity and innovative ideas on different parameters in small and medium organizations.
2. To find out relation between these parameters and their impact on creativity and innovations.

Period of study - The period of study is confined to 2012-2013 as no data is available after this period of the selected companies.

Sampling Techniques - Sampling technique used is convenient sampling technique. Sample of Study: The overall study is confined to 30 units of Rajasthan was considered as target population.

Sources of Data Collection- The data used for this study is primary data. Questionnaire sent to selected companies and on that basis data is collected and analyzed.

Data Analysis - To process the data scientifically and to make it easily understandable statistical method of tabulation is used. Compilation of data was done with the aid of computers. MS-Excel was used for data processing and presentation.Every research conducted has certain limitations. The limitations of this study are as follows:

1. Although 30 companies are being taken in to consideration, still data collected is about the present number of employees working in organization. There is no information of past employees.
2. The study being corporate sector or company specific cannot be generalized.

Measurement of the Creativity and Innovation in small and medium entrepreneurship:

Q.1 How would you rate the Creativity and Innovative ideas in Management on developing strategic leadership abilities of the top management team of your organization on the basis of type of industry?

Response	Service		Manufacturing	
	N	%	N	%
VeryEffective	6	37.50	3	21.43
Effective	8	50.00	9	64.29
Average	2	12.50	2	14.29
Ineffective	0	0.00	0	0.00
Total	16	100.00	14	100.00

50% service organizations and 64.29% manufacturing organizations agreed that the effective and 37.50% service and 21.43% manufacturing organizations agreed very effective Creativity and Innovative ideas in Management to develops strategic leadership abilities of the top management team in their organization

Chi square test

x2	df	Result
0.930	2	NS

The chi square result shows that the creativity and innovative ideas in management develops strategic leadership abilities of the top management team in their organization is independent of type of the organization in rating of creativity and innovative ideas in management (*x2=0.930, p>0.05).* Hence it can be said that whether company will develop strategic leadership abilities of the top management team in their organization, is not dependent upon type of the company **(graph 1 : See in last page)**

How would you rate the Creativity and Innovative ideas in management to developing strategic leadership abilities of the top management team of your organization on the basis of age of industry?

Response	New		Old	
	N	%	N	%
VeryEffective	4	26.67	5	33.33
Effective	9	60.00	8	53.33
Average	2	13.33	2	13.33
Ineffective	0	0.00	0	0.00
Total	15	100.00	15	100.00

60% new organizations and 53.33% old organizations agreed that the effective Creativity and innovative ideas in management strategies to develops strategic leadership abilities of the top management team in their organization.

Chi square test

x2	Df	Result
0.170	2	NS

The chi square test result shows that the creativity and innovations in management strategies to develops strategic leadership abilities of the top management team in their organization is independent of age of the organization in rating of creativity and innovations (*x2=0.170, p>0.05).* Hence it can be said that whether company will develop strategic leadership abilities of the top management team in their organization, is not dependent upon age of the company **(graph 2 : See in last page)**

Hypothesis - There is non significant difference in the level of change management tools and techniques adopted by medium and small size companies.

Creativity and innovative Tools and Techniques in SMEs

Size	N	Mean	SD	T	df	Result
Small	18	3.80	0.48	-0.650	27	NS
Medium	11	3.91	0.40			

Test results given above shows that there is no significant difference in the level of creativity and innovative tools and techniques adopted by the company whether it is of medium size or small size company (t = -0.650, p>0.05). Hence it can be concluded that creative and innovative tools and techniques adopted by the companies are independent of size of the companies and the null hypothesis is accepted.

Conclusion -

- Test of significance of means between 'Service' and 'Manufacturing' organisations in aggregate and factor-wise Creativity and Innovations in small and medium entrepreneurs showed that they do not differ significantly.
- Test of significance of means between 'New' and 'Old' organisations in aggregate and factor-wise Creativity and Innovations in small and medium entrepreneurs showed that they do not differ significantly.
- Test of difference of mean between 'Medium', and 'Small' organisations in aggregate and factor-wise Creativity and Innovations in small and medium entrepreneurs showed that they do not differ significantly.
- In the analysis done size-wise the 1st rank was accorded to 'Competition from other existing organisation in industry' and 'Supplier bargaining Power' in case of medium sized and small size organisations.
- When analysis was done on type-wise basis manufacturer and service both type of organisations accorded highest rank to 'Competition from other Existing Organisation in Industry' 'Supplier bargaining Power 'got the last priority.
- When analysis on age-wise basis was done it revealed that 'Competition from other existing organisation in industry.' was the first rank for new and old organisations, while 'Supplier bargaining Power 'got the last priority.

***Note-** This analysis reveals that the top management is continuously progressively monitoring the external environment and is aware of all the factors that are in the vicious circle.

Suggestions- To the business efficacy following suggestions kept in the mind:

1) Large sized Organisation must refine their customer and employee focus Strategies by regular review of key customers.

2) The large sized Organisations are suggested to arrange for key customers contact with the top management and down to the hierarchy.

3) For small organisations top management must keep in mind and instruct the research and development to focus their product/service development on customers Strategic needs.

4) 'Diversifying' may be one of the Strategies for optimum utilization of the expensive quality, adopted by large sized organisations.

5) The top management must further ensure Total quality Management inputs to regular Strategy reviews. Also, develop Total quality Management awareness as business opportunity at senior manager level.

6) There must be existence of a business-wide sense of purpose and motivation. People development must be the key constituent in Strategy.

7) Formal Personal Development programmes, Training, Seminars and Conferences have been stressed by all level of managers in this Research. Also it came up that it must be kept in mind that conscious effort is given to all employees relevant skills at best practice standards.

References-

1. Michele Grimaldi, Ivana Quinto and Pierluigi Rippa 16

DEC 2013 “Enabling Open Innovation in Small and Medium Enterprises: A Dynamic Capabilities Approach” Knowledge and Process Management vol20, issue4, page 199-210
2. Xiaojuan Wen, Chi Huang, “ The impact of uncertainty avoidance and organizational culture on Management Innovation” IEEE, 2012, pp331-334
3. Arora Anju, 2012, “The Impact of size on CRM Strategies in Commercial Banks: Empirical Evidence from India”, The IUP Journal of Financial Risk Management, Vol. IX, No. 3, Sept. ISSN No. 0972- 916X,pp.- 24.
4. Samir Rajan Chatterjee, “Managerial Ethos of the Indian Tradition: Relevance of a wisdom model” Journal of Indian Business Resaerch, Vol.1, 2009, pp 136-162
5. www.iccwbo.org/News/Articles/2014/Research-paper-explores-benefits-of-open-innovation-to-business
6. www.hbswk.hbs.edu/topics/innovation.html
7. www.gdrc.org/sustbiz/what-are-smes.html

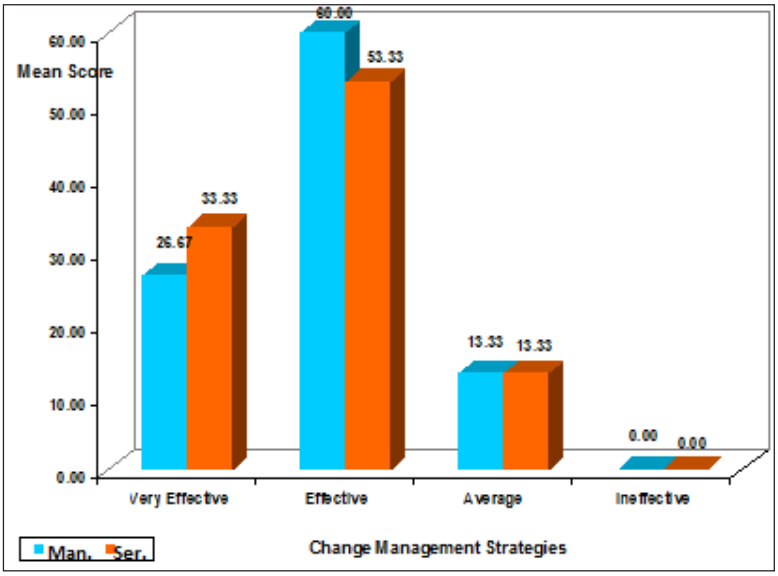

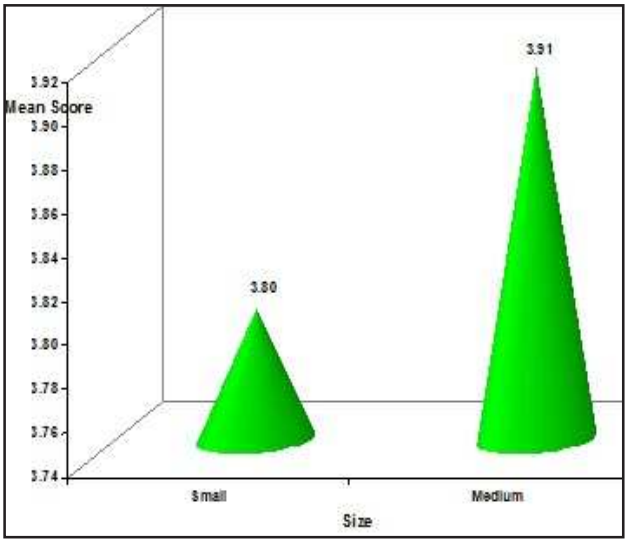

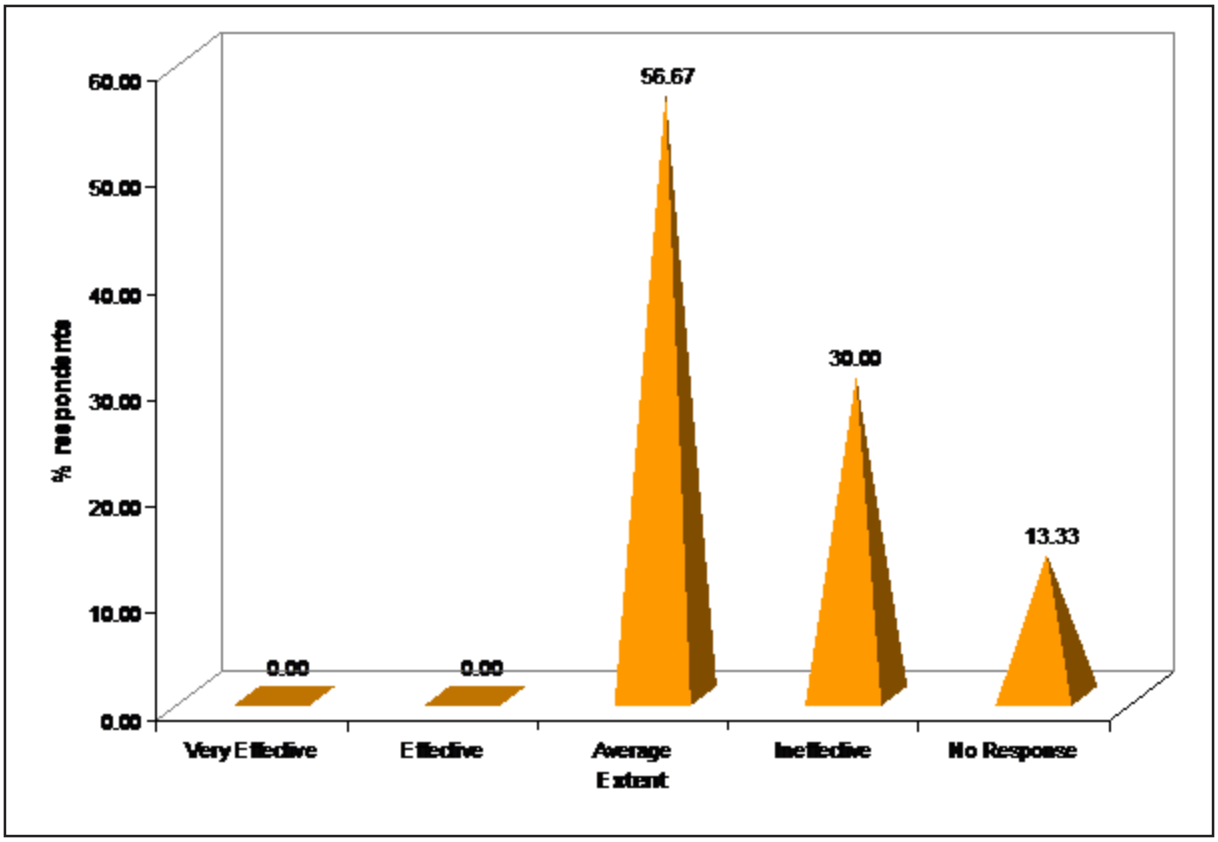

Corporate Social Responsibilty In Management Education

Richa P.Shah *

Abstract - With the increased globalization and Liberalization the concept of corporate social responsibility is gaining mounting importance. This paper aims to understand how students of Management Education perceive the introduction of corporate social responsibility in their curricula. A survey was conducted among 100 students of Management education in Valsad and Navsari district in the state of Gujarat to understand the perception of students regarding introduction of CSR in coursework. The paper is valuable for the management schools undertaking curriculum revisions in the changing global scenario.

Key Words - Globalization, Corporate Social Responsibility, Coursework.

Introduction - Since last so many years the practice of management has become important with the emergence of the large organizations. These organizations are structured around highly competent functional specialist program that prepares individual with different competencies for facing future business challenges.CSR is strongly anchored in the business ethics. According to Hockerts (2008) most firms conceptualize CSR primarily as a tool to reduce risks and operational cost. As the need of markets change the structured programs of the management schools also changes, so that future managers can easily integrate the work in the changing environment.

Literature Review - The social responsibility of business encompasses the economic, legal, ethical and discretionary expectations that society has of organizations at a given point in time (Carrol 1979), the paper tries to answer whether business and ethics are positively related. Hanke and Starke (2009) proposed a conceptual framework to develop a company's CSR strategy. The conceptual framework separates the two factors: legitimation and sense making/ sense giving in the one dimension and the organization system is separated from the organizational environment.

Objectives

1. To study the importance of CSR in Management Education.
2. To identify the need of introducing CSR as a course work in the Management Education.
3. To study the relation between Business, CSR and Management Education.

Design And Methodology - The present study is based on self-structured questionnaire. The questionnaire was administered to collect the view points of the students on the topic of corporate social responsibility. Data was collected from 140 Management students (Valsad & Navsari District).The respondents were asked to indicate on a five-point Likert –type scale the extent of their agreement (1:strongly disagree; 5:strongly agree) with the following statements: CSR and business, CSR and Management School, Introduction of CSR in Management course, Role of ethics in business. The mean of each respondent's score was calculated to arrive at an individual's perception of introducing CSR as a coursework in Management Education. The questionnaire was pilot tested to evaluate the clarity of questions. Out of 140 questionnaires, there were only 100 questionnaires complete in all aspects and they have been taken up for analysis. The response rate of the survey is 71.4%.

Discussion - The students pursuing masters in management expressed that there is a dire need for businessmen to start CSR in their business strategies to sustain in present competitive and global environment. Thus introducing CSR in the curricula will help the future managers in defining priorities, and build social and business values. This will also strengthen decision making ability and risk management.

Almost all Management School teach about corporate strategy, corporate Governance, marketing, Human resource management, so why not to introduce CSR course work which the business and market demands?

Regarding whether the courses offered to students are sufficient for their knowledge enhancements following two options have been chosen by the students: These are partially satisfied and satisfied. The result of the below question highlights that students want change in the present coursework.

Table 1: Factors affecting CSR

Factors	Percentage
Are you satisfied with the present Course-scheme	
Fully satisfied	0

* **Lecturer, Laxmi Institute of Commerce and Computer Applications, Sarigam, Distt. Valsad (Gujarat) INDIA**

Partially satisfied	52
satisfied	48
Fully dissatisfied	0
Partially dissatisfied	0
Change in course- work	
More practical oriented courses	44
Increase in training period	0
Visit to business organization	32
Discussion of case studies	24
New course	0

From table 1 it is very clear that majority of students are partially satisfied with the course offered and they want change in course work. Most of the students want practical knowledge techniques like CSR in the course work. Most of them like to visit more business organization for practical learning.

Table 2: Reasons for introducing CSR in curricula of Management Education

Options	N	Mean	Std.Dev	Rank
Competition	100	3.30	1.12	5
Performance improvement	100	3.54	1.32	4
Need of the hour	100	3.66	1.31	3
Creates booming environment	100	3.62	1.31	2
Attract placements	100	3.68	1.38	1

Majority of the respondents opine that CSR should be the part of the curricula of Management education. Need for introduction of CSR in curricula of Management Education is very much clear from above shown ranking as given in table 2.Students prioritize CSR as the need of the hour. This proves that hypothesis that students perceive a strong need for introducing CSR as a coursework in Management Education has been accepted. This will also help in attracting campus placements and create more opportunities.

Results Of Factor Analysis - Factor analysis was used to analyze the factors explaining the need of introducing CSR in management school. Following eight factors were considered -

1. Linkage of CSR, Business and Ethics
2. Responsibility of Business
3. Legal responsibility
4. Philanthropy Aspect
5. Importance of CSR in MBA curricula
6. Ethical Responsibility
7. Awareness of CSR
8. Connection of business and ethics

Factors are in next page

Eight factors accounted for a total variance of 80.243.Ethics, CSR and business factors accounted for 51.653 percent of variation. This factor includes (effect of CSR on business and Management school with respect to CSR and business , business without ethics, CSR can be replaced with NGO's , Ethics in Management course work, Management without ethics, Need for CSR. It also covered CSR in Management course work and CSR and Management education. The business responsibility factor includes: Acceptance of risk, Profit only and shareholders and stakeholders. The mean of all these are higher than the overall mean score of business responsibility factor, i.e. 4.690. Philanthropy responsibility factor includes-course work of management education and management education involves CSR activities. Economic responsibility factor includes service to the society and courses offered in management schools are suffice for knowledge enhancement. This factor explains 3.855 per cent of total variation. Knowledge about CSR factor tires to access the students' knowledge of corporate social responsibility .this factor explains 3.762 percent of total variation. The business and ethics factor includes: business and ethics have parity. This answers that weather business and ethics can go together or not. This factor explains 3.448 percent of total variation.

The above analysis highlights that the mean score of four factors namely, linkage of CSR, Management Education and business (3.60). Business responsibility. (4.24). Philanthropy responsibility (3.92) and Economic responsibility (4.09) are higher than overall mean of all factors. I.e. 3.209. Thus, these four factors are important factors for describing the need and importance of the introduction of CSR in Management School. Management Education should focus upon introducing CSR as a course work.

The next part of research is focused on whether the Management School students perceive a strong need for introducing CSR as a course work. Majority of the students (52%) are partly satisfied with the course they are offered. This is an area of concern and can be easily tackled by introducing CSR as a course work in curricula.

Conclusion - In conclusion, the finding of this study provides insight into an area of growing concern of corporate towards society and all types of management education have to focus upon the introduction of CSR concept as a course work. This issue is likely to gain increased attention by educators and practitioners of Management Education in the coming years.

Limitations Of The Study - There are a number of limitations to this research. First the major limitation of our data collection is the constraint of time period which limits the scope of validity of data. Second the findings are limited to only the area of Valsad and Navsari district of Gujarat State of Management education so results may not be generalized to other forms of courses offered in other countries or areas.

References :-

1. www.Indiacsr.in
2. Book on Corporate social responsibility: reading and cases in global context by A. Crane, D.Matten, L.G Spence.
3. GahlotSushmita(2013),"Corporate Social Responsibility: Current Scenario", Research Journal of Management Science, Vol. 2(12), 12-14, December (2013),
4. www.weikiepedia.com.

Factor	Factor Name	Total % Of Variance	Items	Item Loading	Mean	S.D.	Rank Mean
1	Linkage of , CSR Business & Ethics	51.653	I.CSR and Business	.800	3.40	1.14	7
			II.Business Vs Ethics	.880	3.70	1.34	2
			III.CSR can be replaced with NGO's	.841	3.62	.94	6
			IV.Ethics in Management Course Work	.896	3.74	1.38	1
			V.Need for CSR	.905	3.65	1.40	4
			VI.CSR and Management Education	.892	3.68	1.34	3
			VII.CSR in Management Course Work	.879	3.62	1.29	5
			Mean of Ethics, CSR and Business	**3.63**			
2	Responsibility of Business	4.690	I. Acceptance of Risk	.696	4.10	.73	2
			II. Profits only	.762	4.62	.49	1
			III.Shareholders an stakeholders	.602	4.00	.78	3
			Mean of Business Responsibility	**4.24**			
3.	Legal Responsibility	4.646	I. Serving the society	.689	3.66	.68	1
			II. Courses offered are suffice	.840	2.48	.50	2
			Mean of Legal Responsibility	**3.07**			
4.	Philanthropy Aspect	4.126	I. Corporate social responsibility	.787	3.92	1.04	1
			Mean of Philanthropy responsibility	**3.92**			
5.	CSR as coursework in management schools	4.063	I. Coursework of MBA	.663	3.54	.83	1
			II. Management education involved in CSR Activities.	.753	1.58	.49	2
			Mean	**2.56**			
6	Economic Responsibility	3.855	I. Exchange of goods	.681	4.00	.78	2
			II. Need for CSR	.810	4.18	.66	1
			Mean of economic responsibility	**4.09**			
7	Awareness of CSR	3.762	I. Knowledge of CSR	.865	1.14	.35	1
			Mean of Awareness of CSR	**1.14**			
8	Connection of Business and ethics	3.448	Business and ethics can go together	.834	1.54	.50	1
			Mean of business and ethics	**1.54**			
			OVERALL MEAN OF ALL EIGHT FACTORS	**3.21**			

****

A Study Of E-Accounting In India

Dr. Vandana K. Mishra *

Abstract - E-Accounting is new development in field of accounting to help businesses to be more competitive. In an electronic accounting system, source documents and accounting records exist in digital form instead of on paper. E-Accounting might just be the beginning of a new era. Previous inefficient traditional paper-based manual accounting methods caused some problems, such as, wrong data entry, slow and inefficient task performance and massive utilization of paper products, Lack of data security was also a major issue. But, the emergence of computer based IT has changed not only the accounting profession itself, but also the accounting information systems and practices. IT as a key resource in accounting and financial information processing has enabled the tedious task of manual book keeping to be substantially eliminated through the implementation of computerized information systems. Therefore this paper is based on accounting professionals in India on various issues relating to e-accounting and provides a brief outline about adoption and impact of e-accounting. Concept and features of e-accounting, Use and Major role of IT in accounting and benefits-problems of e-accounting have been discussed in the paper comprehensively.
Key words: E-Accounting, Accounting Information System, Auditing.

Introduction - E-Accounting or Online Accounting is still a new development in field of accounting. It means all business transactions are recorded in online server or data base, just like website or blog or web blog. But for opening or making accounts requires login ID and password provided by accounting service provider.

E-Accounting is just in the development age still and we may see its commercial use only. There is large number of companies who stared E-Accounting. In E-Accounting the accountants and employer both feel satisfaction because, this is cheap and without software defaults or failure. Business accounts are saved in online server or database, so there is need to record the business transactions manually. By this way big business entity that cross-border coverage can save large amount of money is spending on manual books and different accounting software.

In this age of fast growing information technology and internet connectivity almost all companies are connected by internet by one-way or the other. The introduction of the internet has revolutionized the process of business automation. Revolution is all about transformation for the good. In this competitive world of business, every business wants to be as cost effective as possible. The best way to reduce cost is to outsource non-core functions. Accounting is considered a non-core function for a business. E-Accounting is new development in field of accounting to help businesses to be more competitive. In an electronic accounting system, source documents and accounting records exist in digital form instead of on paper. E-Accounting might just be the beginning of a new era.

The proper use of this technology may create competitive advantage for most business and organizations in all fields, including accounting. As a single largest user of IT and purvey or of information for the organization, the evolution of IT accounting has transformed the accounting information flow within and outside the organization. Previous inefficient traditional paper-based manual accounting methods caused some problems, such as, wrong data entry, slow and inefficient task performance and massive utilization of paper products, Lack of data security was also a major issue. But, the emergence of computer based IT has changed not only the accounting profession itself, but also the accounting information systems and practices. IT as a key resource in accounting and financial information processing has enabled the tedious task of manual bookkeeping to be substantially eliminated through the implementation of computerized information systems.

Objectives of study- The main objectives of this paper are as below.

1. To Know and discuss the concept of E-Accounting.
2. To describe the impact of E-Accounting.
3. To find out the benefits of using e-accounting.

Research methodology -

Data Collection - This is a descriptive research paper based on secondary data. Data have been collected through the websites, research paper, Journals, magazines and Books.

Concept of e-accounting - E-Accounting is new development in field of accounting. In an electronic accounting system, source documents and accounting records exist in digital form instead of on paper. E-Accounting might just be

* **Assistant Professor, Smt. L.R.T. College of Commerce, Akola (Maharasthra) INDIA**

the beginning of a new era where world would be extending its arms to India with perspective that "India is the place which can deliver the best". So e-accounting has visited India with a rainbow of opportunities.

If one tries to define e-accounting, it can be defined as the application of online and internet technologies to the business accounting function. Similar to e-mail, being an electronic version of traditional mail, e-accounting is "electronic enablement" of accounting and accounting processes which are more traditional manual and paper based. E-accounting involves performing regular accounting functions, accounting research and the accounting training and education through various computer based /internet based accounting tools such as digital tool kits, various internet resources, international web-based materials, institute and company databases which are internet based, web links, internet based accounting software and electronic financial spreadsheet tools to provide efficient decision making. This discussion implies that e-accounting can also be viewed as online accounting.

Features of e-accounting - E-accounting can be recognized by the following characteristics which all make for a much more efficient accounting process.

1. Multi-user access
2. Multi-site access
3. A single / multiple, shared database(s)
4. Zero system administration for end-users
5. Very economical to provide service to large number of clients
6. Enhancements and fixes continuously developed and installed by service provider.

E-accounting impact -

E-accounting Task Performance Outcome Dimensions -

(**See the next page)**

There is a positive relationship between E-Accounting and overall task performance outcomes for the organization.

Use of computers in accounting - The most common method of keeping the financial records of a company was manually. Today totally change because of the minute by minute change in finances, accurate record keeping is critical. Computerizing are business's general ledger, payroll, and other accounting tasks increases office efficiency. With a computer, you can request and receive an in house balance sheet, an income statement or other accounting reports at a moment's notice. While keeping your checkbook on a computer may not be practical, computers are great for handling complex home financial records. You can get statements on net worth and year's tax deductible expenses within minutes.

Major role of it in accounting -

1. To put information close to accountants.
2. To improve the capacity of accounting, research and extension, for specialists to organize, store, retrieve and accounting information exchange.
3. To evolve mechanism of information sharing.
4. To develop accounting database for easy access and data base decision making.
5. Access to the storehouse of information is easy.
6. Accounting data will be available universally.

Traditionally, research in Information Systems has focused on the study of information processing, on computer systems security and on the development of new systems; leaving for study the relationship between IT and accounting. Even those studies that have, in some way, covered this relationship fall short due to their focus on outdated tools. Also research on management accounting and integrated information systems has evolved across a number of different lines of research. Some place heavier emphasis on the management accounting side, while others emphasize the information systems side. Nonetheless, to be able to understand emerging technologies and anticipate their effects on accounting, we must begin to understand the effects of the most up-to-date technologies.

Benefits of e-accounting - Some of the major benefits of e-accounting are as under -

1. Anywhere, anytime access of accounting information by authorized person, because it is on internet.
2. No need of expensive in-house bookkeepers' expertise.
3. No communication difficulties between the accountant and business owner because of work pressure.
4. The accounting function receives attention only when a serious need arises. No wastage of time.
5. The business organization can concentrate on the revenue side of business, and spends as little time as necessary on the accounting and payroll function.
6. Online accounting through a web application is typically based on a simple monthly charge.
7. Zero-administration approach to help businesses concentrate on core activities.
8. Avoid the hidden costs associated with traditional accounting software such as installation, upgrades, exchanging data files, backup and disaster recovery.

Problems in e-accounting - There are several problems with adoption of e-accounting by any company. Some of them are listed below.

1. Security of transactions (data) - All the transaction (data) of the company is given to the service provider co. which is on a remote server; however, a company can take back up regularly.
2. Sharing of financial information of a company with the other (service provider) is a big mindset problem for traditional management.
3. Broadband connectivity and Speed - If internet connectivity is down, work will be affected. Most of the currently available online office suites require a high broadband internet connection.
4. Lack of some features in the offline office suites, but they are progressively becoming available.
5. News about client information leaked by service provider is a big letdown for the progress of e-accounting adoption.

6. Lack of proper accounting standards are a big worry. Where information can be compromised and distributed, global firms need to be cent-percent assured that their information is safe and are being safeguarded from identity theft.
7. A network connection (usually Internet access) is required to send and receive changes. That is, internet dependence makes it more difficult to work offline.

Suggestions -

- From above criticism, it can be said that today, where information can be compromised and distributed, global firms need to be cent-percent assured that their theft does not take place. Being professionals, Indian Chartered Accountants should be absolutely confident about the work process, ensure service integrity, observe professional ethics and generate trust and confidence in the client for striking a lasting business relationship.
- If there is a provision of proper IT assistance the Accuracy of the techniques can be improved. Proper peripherals should be used in order to overcome the hindrance of inability of the system.
- It is not enough, if there is large storage capacity, rather it is more important that the available storage space should be used effectively in order to increase the efficiency of work.

Conclusion - E-accounting is the application of online and internet technologies to the business accounting function. In e-accounting, source documents and accounting records exist in digital form instead of on paper. All major institution and organisation at national and international level are in the favor of e-accounting. In Present years, continuous change and development in the technological field forced a change in the accounting sectors. This change find itself in the execution of activities, recording these activities and auditing record by showing itself through the process of the realization of control. Recording activities in a correct, honest, and time saving manner is extremely important in terms of faithful reflection of the economics status of institutions and making a sound estimate for various aspects of organizations' development. It provides superior cost effectiveness to the adopting company, batter time management, transparency in accounting, Less possibility of Fraud, anywhere and anytime access of financial information are positives. But it is still in a beginning stage in India because of lack of trust, government guidelines, internet connectivity at all places etc. E-accounting can only grow faster if some major problems faced by it are eliminated as early as possible.

References:-

1. American Institute of Certified Public Accountants for 'Definition'
2. Prasad, Lalan(2007) E-Accounting :Theory and principles, APH publishing corporation New Delhi.
3. Dr. Patel J.K.: Adoption and impact of e-accounting.
4. Gupta Nisha(2012) Accountancy, Dhanpat Rai & Co. (P) Ltd. New Delhi-110002.
5. Relhan Aradhana (2013) E-Accounting Practices of SMEs in India, International Journal of Technical Research Vol.2.Issue 1, Pg-1-10.
6. http//e-accounting.4t.com.

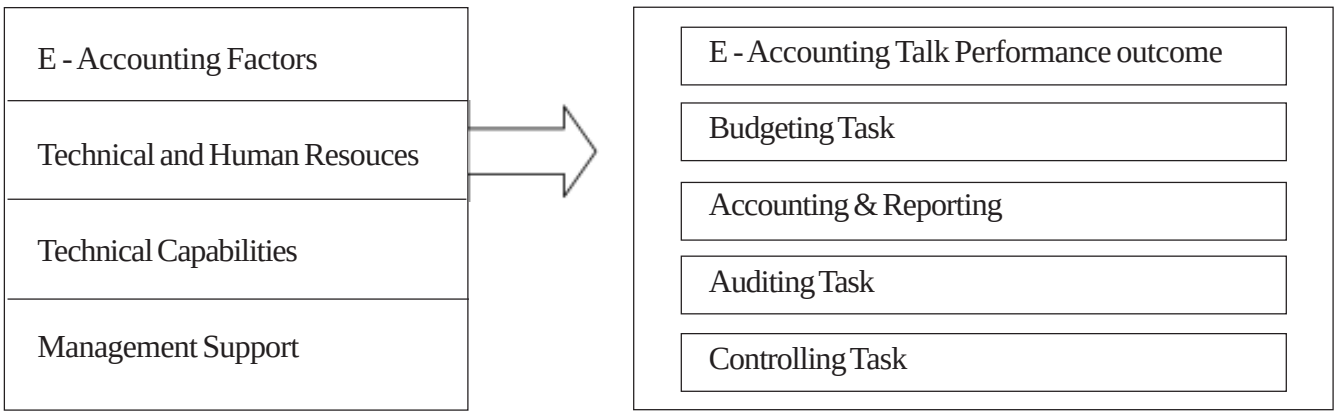

****

Sampling in Qualitative and Quantitative Research

Dr. Vivek Kumar Patel * **Rakesh Kumar Garg** **

Abstract - Sampling, is the process of selecting a few from bigger group to become the basis for estimating or predicting the prevalence of an unknown piece of information, situation or outcome regarding the bigger group. A sample is a sub group of the population you are interested in. In a majority of cases of sampling there will be a difference between the sample statistics and the true population mean, which is attributable to the selection of the units in the sample. Sampling design can be classified as random sampling designs, Non-random sampling designs and mixed sampling designs.

Kew Word -Sample, Information, Group, Population,Statistics, Mean, Design, Classified, Random, Non-random Mixed, Qualitative, Quantitative,Judgement, Technique, Survey, Cluster, Snowball.

Introduction - Sampling may be defined as the selection of some part of an aggregate or totality on the basis of which a judgement or inference about the aggregate or totality is made. It is the process of obtaining information about an entire population by examining only a part of it. The researcher quite often selects only a few items from the universe for his study purpose.The items so selected constitute what is technically called a sample, their selection process or technique is called sample design and the survey conducted on the basis of sample is described as sample survey.

The selection of a sample in qualitative and quantitative research in guided by two opposing philosophies-

- In quantitative research you attempt to select a sample in such a way that it is unbiased and represents the population from where it is selected.
- In qualitative research number considerations may influence the selection of a sample such as the ease in accessing the potential respondents, you judgement that the person has extensive knowledge about an episode, an event or a situation of interest to you, how typical the case is of a category of individuals or simply that it is totally different from the other.

Object -

- The differences between sampling in qualitative and quantitative research.
- Different type of sampling including.
- The theoretical basis for sampling.
- Need of sampling.

Concepts of Sampling -

Take a very simple example to explain the concept of sampling. Suppose you want to estimate the average age of the student in your class. There are two ways of doing this. The first method is to contact all students in the class, find out their ages, add them up and then divide this by number of students. The second method is to select a few students from the class, ask them their ages, add them up and divide by the number of students you have asked. From this you can make estimate of the average age of the class. Therefore, sampling is the process of selecting a few from bigger group to become the basis for estimating or predicting the prevalence of an unknown piece of information, situation or outcome regarding the bigger group. A sample is a sub group of the population you are interested in.

Need of Sampling -

- Sampling can save time and money.
- Sampling may enable more accurate measurements for a sample study is generally conducted by trained and experienced investigators.
- Sampling remains the only choice when a test involves the destruction of the item under study.
- Sampling remains the only way when population contains infinitely many members.

Principles of Sampling -

- In a majority of cases of sampling there will be a difference between the sample statistics and the true population mean, which is attributable to the selection of the units in the sample.
- The greater the sample size, the more accurate the estimate of the true population mean.
- The greater the difference in the variable under study in a population for a given sample size, the greater the difference between the sample statistics and the true population mean.

Types of Sampling -

The various types of sampling in quantitative research can be categorised as figure –

- Random Sampling –

* Asst. Prof. (Commerce) Govt. College, Kotma, Distt. Anuppur (M.P) INDIA
** Guest Faculty (Computer) Govt. College, Kotma, Distt. Anuppur (M.P) INDIA

1. Simple Random Sampling.
2. Stratified Random Sampling.
   a. Proportionate Sampling.
   b. Disproportionate Sampling.
3. Cluster Sampling.
   a. Single Stage Sampling.
   b. Double stage Sampling.
   c. Multi Stage Sampling.

- Non Random Sampling –
  1. Quota Sampling.
  2. Accidental Sampling.
  3. Judgemental Sampling.
  4. Snowball Sampling.
  5. Expert Sampling.
- Mixed Sampling –
  1. Systematic Sampling.

Random Sampling - Each element in the population has an equal and independent chance of selection in the sample. The concept of independence means that the choice of one element in not dependent upon the choice of another element in the sampling. That is the selection or rejection of one element does not affect the inclusion or exclusion of another.

Non Random Sampling - Non random sampling designs are used when the number of elements in a population is either unknown or cannot be individually identified. In such situation the selection of element is dependent upon other considerations. There are five commonly used non-random designs, each based on a different consideration, which are commonly used in both Qualitative and Quantitative research.

- Quota Sampling.
- Accidental Sampling.
- Judgemental Sampling.
- Snowball Sampling.
- Expert Sampling.

Mixed Sampling - Systematic sampling has been called a Mixed Sampling because it has the characteristics of both random and non-random sampling. In mixed sampling the sampling frame is first divided into number of segments called intervals. Then from the first interval, using the simple random sampling technique, one element is selected. The selection of subsequent elements from other intervals is dependent upon the order of the element selected in the first interval. If in the first interval it is the fifth element, the fifth element of each subsequent interval will be chosen.

Difference between Qualitative and Quantitative research Sampling -

- In quantitative research you collect information from predetermined number of people but in qualitative research you don't have a sample size in mind. Data collection based upon a predetermined sample size and the saturation point distinguishes their use in quantitative and qualitative research.
- In quantitative research you are guided by your desire to select a random sample, whereas in qualitative research you are guided by your judgement as to who is likely to provide you with the best information.

Conclusion - Sampling, the selecting a few elements from a sampling population. Two opposing philosophies underpin the selection of sampling units in quantitative and qualitative research. In quantitative research a sample is supposed to be selected in such a way that it represents the study population, which is achieved through randomisation. However the selection of a sample in qualitative research is guided by your judgement as to who is likely to provide you with complete and diverse information. This is the non-random process. Sampling design can be classified as random sampling designs, Non-random sampling designs and mixed sampling designs.

Referances :-

1. Kothari C.R – Research Methodology, Wishwa Prakashan New Delhi.
2. Ranjeetkumar - Research Methodology, SAGE Publications India prt. Ltd New Delhi.
3. Dr. Shukla S.M – Advance Statistical Analysis, ShityaBhawan Publication Agra.
4. Donald R. Cooper & Pamela S. Schindler –Business Research Methods, TheMcgraw-hill Publishing Co. New Delhi.

****

Perfromance Appraisal: Past And Future Oriented Methods

Meenu Kumari * Chinar Malik **

Introduction - Appraisal in simple terms means to estimate the values or quality. Performance appraisal is the estimate of values or quality of the work done. It is evaluation of an individual's performance on the basis of their potential in order to bring about their growth professionally.

Appraisal is a system which carries out the assessment of the work of the teaching staff, may or may not be directly connected to promotions, incentives and pay increases. In performance appraisal the workers behaviour is measured, documented and communicated to him. It is simply the judgment of teachers either formally or informally.

A performance appraisal also referred to as a performance review, performance evaluation, development discussion or employee appraisal- is a method by which the job performance of an employee is documented and evaluated. Performance appraisals are a part of career development and consist of regular reviews of employee performance with in organization.

Characteristics -

1. **Objectives should be clear -** The objectives of appraisal should be clear and specific. An effective performance system will always have specific appraisal attributes to match the employee's job description.
2. **Data should be valid and reliable -** An effective performance appraisal system provides data that consistent, reliable and valid. It supplies data according the objective that serves the purpose of performance appraisal and succession planning.
3. **Performance criteria should be well defined** - effective performance appraisal has standard appraisal forms, rules and appraisal procedure. It will have well defined performance criteria and standards.
4. **Economic and less time consuming** – effective performance appraisal systems are designed to be economical and less time consuming to benefits.
5. **Should initiate follow-up** - A post appraisal talk should be arranged for employees to get feedback from their managers. It also helps the organization to learn about the problems and difficulties the employees might be facing and discover suitable training.

Goals of Performance Appraisal

	General Goals	Specific Goals
1.	Developmental use	Individual needs Performance Feedback Transfers and Placements Strengths and development needs
2.	Administrative uses	Salary Promotion Retention Recognition Poor performers identification
3.	Organizational maintenance	Training needs Organizational goal achievements Goal identification
4.	Documentation	Validation Legal requirement

Bear (1986) has identified the following theoretical issues in performance appraisal:

Techniques\methods of performance appraisal-

Numerous methods have been devised to measure the quantity and quality of performance appraisals. Each of the methods is effective for some purposes for some organizations only. None should be dismissed or accepted as appropriate except as they relate to the particular needs of the organization or an employee.

Broadly all methods of appraisals can be divided into different categories.

Past oriented methods

Future oriented methods

Past oriented method -

1. Rating scale: Rating scale consists of several numerals scales representing job related performance criterions such as dependability, initiative, output, attendance, attitude etc. each scales ranges from excellence to poor. The total numerical scores are computed and final conclusions are derived.

* Asst. Prof. Aravali College of Advance Studies in Education, Faridabad (Haryana) INDIA
** Asst. Prof. Aravali College of Advance Studies in Education, Faridabad (Haryana) INDIA

2. Checklist: Under this method, checklist of statements of traits of employee in the form of yes or no based questions is prepared.
3. Force choice method: The series of statements arranged in the blocks of two or more are given and the rater indicates which statement is true or false. The rater is forced to make a choice.
4. Force distribution method: Here employees are clustered around a high point on a rating scale. Rater is compelled to distribute the employees on the performance is conformed to normal distribution.
5. Critical incidence method: The approach is focused on certain critical behaviour of employee that makes all the difference in the performance. Supervisors as and when they occur record such incidents.
6. Behaviorally anchored rating scale: Statements of effective and ineffective behaviors determine the points. They are said to be behaviorally anchored. The rater is supposed to say, which behaviour describes the employee performance.
7. Field review method: This is an appraisal done by someone outside employee own department usually from corporate or HR department.
8. Performance tests and observations: This is based on the test of knowledge or skills. The tests may be written or an actual presentation of skills. Tests must be reliable and validated to be useful.
9. Confidential records: Mostly used by government departments, however its applications in industry are not ruled out. Here the report is given in the form of annual confidentiality report and may record ratings with respect to following items, attendance, self expression, reasoning ability, originality and resourcefulness etc. the system is highly secretive and confidential.
10. Essay method: In this method the rater writes down the employee description in detail with a number of broad categories like; overall impression of performance, promote ability of employee, existing capabilities and qualifications of performing jobs, strengths and weaknesses and training needs of the employee.
11. Cost accounting method: Here performance is evaluated from the monetary returns yield to his or her organization. Cost to keep employee end benefits the organization derives is ascertained. Hence it is more dependent upon cost and benefit analysis.

Future oriented methods -

1. Managements of objectives: It means management by objectives and the performance is rated against the achievement of objectives stated by the management.MBO process goes as under.
   - Establish goals and desired outcomes for each subordinate.
   - Setting performance standards.
   - Comparison of actual goals with goals attained by the employee.
   - Establish new goals and new strategies for goals not achieved in previous years.
2. Psychological appraisals: These appraisals are more directed assess employee potential for future performance rather than the past one. It is done in the form of in-depth interviews, psychological tests and discussion with supervisors and review of other evaluations. It is more focused on employee's emotions, intellectual, and motivational and other personal characteristics affecting his performance.
3. Assessment centers: This technique was first developed in USA and UK in 1943. An assessment centers is a central locations where managers may come together to have their participation in job related exercises evaluated by trained observers. It is more focused on observation of behaviors across a series of selected exercises or work samples. Assessors are requested to participate in in-basket exercise, work groups, computer simulation, role playing and other similar activities which require same attributes for successful performance in actual job. The characteristics assessed in assessment centre can be assertiveness, persuasive ability, communicating ability, self confidence, resistance to stress, energy level, decision making, sensitivity of feelings, administrative ability, creativity and mental alertness.
4. 360 degree feedback: It is a technique which is systematic collection or performance data on an individual group, derived from a number of stakeholders like immediate supervisor, team members, customers, peers and self. In fact anyone who has useful information on how an employee does a job may be one of the appraisers. This technique is highly useful in terms of broader perspective, greater self-development and multi-source feedback is useful.360-degree appraisal are highly useful interms of broader perspective, greater self-development and multi-source feedback is useful.

References :-

1. www.en.wikepedia.org/wiki/performance_appraisal
2. www.corew.wordpress.com/performance-management/performance-appraisal-methods
3. www.blog.synergita.com/2013/10/what-are-the-characteristics-of-effective-perfromance-appraisal-system

****

"Women Entrepreneurship" With Reference to Indian women

Dr. A. C. Jain *

Introduction - Entrepreneurship refers to the act of setting up a new business or reviving an existing business so as to take advantages from new opportunities. Thus, shape the economy by creating new wealth and new jobs and by inventing new products and services. However, an insight study reveals that it is not about making money, having the greatest ideas, knowing the best sales pitch, applying the best marketing strategy. It is in reality an attitude to create something new and an activity which creates value in the entire social eco-system. It is the psyche makeup of a person. It is a state of mind, which develops naturally, based on his/her surrounding and experiences, which makes him/her think about life and career in a given way. The women have achieved immense development in their state of mind, with increase in dependency on service sector many entrepreneurial opportunities along with study on their impact on various economies. The third part deals with objectives and research methodologies. The fourth part concentrates on analysis of data collected through questionnaires to establish motivating and de-motivating internal and external factors of women entrepreneurship. The attempt has been made to rank these factors in regard to their severity of impact on women Entrepreneurship. The last part of this study includes the suggestive measures for eliminating and reducing the hurdles for the women Entrepreneurship development in Indian context, especially for have been created where they can excel their skills with maintaining balance in their life. Accordingly, during the last two decades, increasing numbers of Indian women have entered the field of Entrepreneurship and also they have not capitalized their potential in India the way it should be. The first part of this paper deals with the ideas why to boost the women Entrepreneurship and what are the reasons that propel women to undertake such profession. This part also depicts the factors of hindrance of women Entrepreneurship and also the likely measures to be taken for removing such obstacles that are affecting women Entrepreneurship. The second part deals with a review of various research studies done on women Entrepreneurship.

Darrene, Harpel and Mayer, (2008) performed a study on finding the relations of Entrepreneurship between elements of human capital and self employment among women. The study showed that self employed women differ on most human capital variable as compared to the salary and wage earning women. The study also revealed the fact that the education attainment level is faster for self employed women than for other working women. The percentage of occupancy of managerial job is found to be comparatively higher in case of self employed women as compared to other working women. This study also shed light on similarity and dissimilarity of situations for self employed men and self employed women. Self employed men and women differ little education, experience and preparedness. However, the main difference lies in occupational and industry experience. The percentage of population holding management occupation levels of self employed women as compared to self employed men. Also the participation levels of self employed women are found to be less than of self employed men in industries like communication, transportation, wholesale trade, manufacturing and construction. based on data from the current Population survey (CPS) Annual Social and Economic Supplement (ASEC) from 1994 to 2006.

Das, 2000 preformed a study on women entrepreneurs of SMES in two states of India, viz, Tamilnadu and Kerala. The initial problems faced by women entrepreneurs are quite similar to those faced by women in western countries. However, Indian women entrepreneurs faced lower level of work family conflict and are also found to differ from their counterparts in western countries on the basis of reasons for starting and succeeding in business. Similar trends are also found in other Asian countries such as Indonesia and Singapore Again the statistics showed that the proportion of business, setup and operated by women is much lower than the figures found in western countries.

Woman constitutes the family, which leads to society and Nation Social and economic development of women is necessary for overall economic development of any society or a country. Entrepreneurship is the state of mind which every woman has in her but has not been capitalized in India in way in which it should be. Due to change of environment, now people are more comfortable to accept leading role of women in our society, though there are some exceptions. Our increasing dependency on service sector has created many entrepreneurial opportunities especially for women where they can excel their skills with maintaining balance in their life. Purpose of this empirical study is to find out

* Professor (Commerce) Govt. Arts And Commerce College, Sagar (M.P.) INDIA

various motivating and de- motivating internal and external factors of women Entrepreneurship. It is an attempt to quantify some for non parametric factors to give the sense of ranking these factors. It will also suggest the way of eliminating and reducing hurdles of the women Entrepreneurship development in Indian context.

Women Entrepreneurship An Optionn For Strengthning Their Economic Condition - Self determination, expectation for recognition self esteem and career goal are the key drivers for taking up Entrepreneurship by women (Moore & Buttner, 1997). Sometimes, women chose such career path for discovering their inner potential, caliber in order to achieve self satisfaction. It can also provide a means to make best use of their leisure hours. However, dismal economic conditions of the women arising out of unemployment in the family and divorce can compel women into entrepreneurial activities.

The objectives of women Entrepreneurship are:

- To Identify the reasons for women for involving themselves in entrepreneurial activities.
- To Identify the factors of hindrance for women Entrepreneurship.
- To determine the possible success factors for women in such entrepreneurial activities.
- To make an evaluation of people's opinion about women Entrepreneurship.

Limitations Of Women Entrepreneurship - The Entrepreneurship process is same for men and women Successful men and women undergo similar motivations and thus achieve success in largely same way under similar challenges. They are also found to have access to fund from the same sources. The same condition both men and women can be successful. However, in practice most of the upcoming women face problems that are of different dimensions and magnitudes that are faced by their male counterparts. These problems, generally, prevent these women entrepreneurs from realizing their potential as entrepreneurs. The major hurdles that the women face during starting and running a company generally come from financing and balancing of life. The balancing of life is caused due to lack of family support for the women. The other hindering external factors include gender discrimination, inaccessibility to information, training opportunities, infrastructure etc. some internal factors like risk aversion by women lack of confidence, lack of vision of strategic leader etc. can also create obstacles for the women Entrepreneurship development.

Measures To Remove The Obstacles - The elimination of obstacles for women Entrepreneurship requires a major change in traditional attitudes and mindsets of people in society rather than being limited to only creation of opportunities for women. Hence, it is imperative to design programmes that will address to attitudinal changes, training supportive , training, supportive services. The basic requirement in development of women Entrepreneurship is to make aware the women regarding her existence, her unique identity and her contribution towards the economic growth and development of country. The basic instinct of Entrepreneurship should be tried to be reaped into the minds of the women from their childhood. This could be achieved by carefully designing the curriculum that will impart the basic knowledge along with its practical implication regarding management (financial, legal etc.) of an enterprise.

Conclusion - The study tried to find out the difference among various set of people of the crucial factors which are concerned with the women entrepreneurial opportunities at large. Issues have been identified through various review of literature. It should be cross checked with the real Entrepreneurship is necessary for the growth of any economy wether it is large or small.

References :-

1. Ayadurai, Selvamalar, (2005) An Insight into The "constraints" Faced by Women in A War0Torn Area: Case Study of The Northeast of sri Lanka, presented at the 2005 50th world conference of ICSB Washington D.C.
2. Bowen, Donald D. & Hirsch Robert D. (1986) , The Female Entrepreneur. A career Development Perspective, Academy of Management Review, Vol. 11 no. 2 Page No. 393-404.
3. Cohoon, J. Mc Grath, Wadhwa, Vivek & Mitchell Lesa, (2010), The Anatomy of an Entrepreneur Are Successful Women entrepreneurs Different From Men? Kauffman, The foundation of Entrepreneurship.
4. Green, Patricia G, Hart Myra M, Brush, Candida G, & Carter, Nancy M, (2009), Women entrepreneurs: Moving From and Center: An Overview of Research and Theory, White paper at United States Association for Business and Entrepreneurship.
5. Hackler, Darrene, Harpel, Ellen and Mayer, Keike, (2008), "Human Capital and women's Business Owners Entrepreneurship", Arlington, Office of Advocacy U.S. Small Business Administration August 2006, VA 22201 [74], No. 323.
6. Hacdbook on Women-owned SMEs, Challenges and opportunities in Policies and programmes, International Organization for Knowledge Economy and Enterprise Development.
7. http://WWW. nfwbo.org/Research/8-21-2001/8-21(2001).htm
8. Jalbert, Susanne E., (2008), Women entrepreneurs in the Global Economy, education research.
9. http://research .brown.edu/pdf/1100924770.pdf.

****

India & World Trade Organization (WTO)

Dr. Satish Maheshwari * **Trapti Maheshwari** **

Introduction - The WTO has no specific agreement dealing with the environment. But a number of WTO agreements include provisions dealing with environmental concerns. The Agreement on Technical Barriers to Trade and the Agreement on Sanitary and Phytosanitary Measures address environment related issues. Environment issues have also been addressed in GATT Article XX (b) and (g) as part of general exceptions.

After the conclusion of the Uruguay Round in 1994, a Committee on Trade and Environment (CTE) was established in the WTO. The broad mandate of the CTE was to promote an understanding of the relationship between trade measures and environmental measures for achieving sustainable development and to make recommendations on the need for modifications of the provisions of the multilateral trading system to ensure compatibility with an open, equitable and non-discriminatory trading system.In keeping with the above mandate, the CTE developed a Comprehensive work programmed, which covers the items as below:

Item 1: The relationship between the provisions of the multilateral trading system and trade measures for environmental purposes, including those pursuant to Multilateral Environmental Agreements (MEAs)

Item 2: The relationship between environmental policies relevant to trade and environmental measures with significant trade effects and the provisions of the multilateral trading system.

Item 3: The relationship between the provisions of the multilateral trading system and charges and taxes for environmental purposes and the relationship between the provisions of the multilateral trading system and requirements for environmental purposes relating to products, including standards and technical regulations, packaging, labelling and recycling.

Item 4: The provisions of the multilateral trading system with respect to the transparency of trade measures used for environmental purposes and environmental measures and requirements which have significant trade effects.

Item 5: The relationship between the dispute settlement mechanisms in the multilateral trading system and those found in Multilateral Environment Agreements.

Item 6: The effect of environmental measures on market access, especially in relation to developing countries, in particular to the least-developed among them, and environmental benefits of removing trade restrictions and distortions.

Item 7: Issue of export of domestically prohibited goods (DPGs)

Item 8: The relevant provisions of the Agreement on Trade-related aspects of Intellectual Property Rights (TRIPS).

Item 9: The work programmed envisaged in the decision on Trade in Services and the Environment.

Item 10: Inputs to the relevant bodies in respect of appropriate arrangements for relations with intergovernmental and non-governmental organizations referred to in Article V of the WTO Agreement.

Submissions by India before the Doha Ministerial Conference (1997-2002)

- Relationship between the TRIPS Agreement and the Convention on Biodiversity (WT/CTE/W/65, dated 29th September, 1997)
- The relationship of the TRIPS Agreement to the development, access and transfer of environmentally sound technologies and products (WT/CTE/W/66 dated 29th September, 1997).
- Protection of biodiversity and traditional knowledge – The Indian experience (WT/CTE/W/156 dated 14th July, 2000).
- Study of the effects of environmental measures on market access (WT/CTE/W/177 dated 20th October, 2000).
- The effects of environmental measures on market access, especially in relation to developing countries, in particular the least-developed among them(WT/CTE/W/207 dated 21st May, 2002).

Doha Ministerial Declaration - The WTO Ministerial Conference at Doha in 2001 stated the following on trade and environment:

"Para 31 - With a view to enhancing the mutual supportiveness of trade and environment, we agree to negotiations, without prejudging their outcome, on:

1. The relationship between existing WTO rules and specific trade obligations set out in Multilateral Environmental Agreements (MEAs). The negotiations shall be limited in scope to the applicability of such existing WTO rules as among parties to the MEA in question. The negotiations shall not prejudice the WTO rights of any Member that is not a party to the MEA in question;

* **Professor (Commerce) Govt. Commerce College, Ratlam (M.P.) INDIA**
** **Research Scholar , Govt. Commerce College, Ratlam (M.P.) INDIA**

2. procedures for regular information exchange between MEA Secretariats and the relevant WTO committees, and the criteria for the granting of observer status; and
3. The reduction or, as appropriate, elimination of tariff and non-tariff barriers to environmental goods and services.

We note that fisheries subsidies form part of the negotiations provided for in paragraph 28.

Para 32 - We instruct the Committee on Trade and Environment, in pursuing work on all items on its agenda within its current terms of reference, to give particular attention to:

1. The effect of environmental measures on market access, especially in relation to developing countries, in particular the least-developed among them, and those situations in which the elimination or reduction of trade restrictions and distortions would benefit trade, the environment and development;
2. The relevant provisions of the Agreement on Trade-Related Aspects of Intellectual Property Rights; and
3. Labelling requirements for environmental purposes.

Para. 33 - We recognize the importance of technical assistance and capacity building in the field of trade and environment to developing countries, in particular the least-developed among them. We also encourage that expertise and experience be shared with Members wishing to perform environmental reviews at the national level. A report shall be prepared on these activities for the Fifth Session."

Paragraph 31 is being discussed in the Special Sessions of the CTE (CTE-SS) and Paragraphs 32 and 33 are being discussed in the Regular Sessions of the CTE.

Hong Kong Ministerial Declaration

The Ministerial Declaration at Hong Kong in December 2005 reaffirmed the mandate in Para 31 of the Doha Ministerial Declaration and recognized the progress made by the Members. It also instructed Members to intensify the negotiations, without prejudging their outcome, on all parts of paragraph 31 to fulfill the mandate. Regarding paragraph 31(iii), the Declaration instructed Members to complete the work expeditiously. The Ministerial Conference adopted the following declaration on environment negotiations:"30. We reaffirm the mandate in paragraph 31 of the Doha Ministerial Declaration aimed at enhancing the mutual supportiveness of trade and environment and welcome the significant work undertaken in the Committee on Trade and Environment (CTE) in Special Session. We instruct Members to intensify the negotiations, without prejudging their outcome, on all parts of paragraph 31 to fulfill the mandate.

31. We recognize the progress in the work under paragraph 31(i) based on Members' submissions on the relationship between existing WTO rules and specific trade obligations set out in multilateral environmental agreements (MEAs). We further recognize the work undertaken under paragraph 31(ii) towards developing effective procedures for regular information exchange between MEA Secretariats and the relevant WTO committees, and criteria for the granting of observer status.

32. We recognize that recently more work has been carried out under paragraph 31(iii) through numerous submissions by Members and discussions in the CTE in Special Session, including technical discussions, which were also held in informal information exchange sessions without prejudice to Members' positions. We instruct Members to complete the work expeditiously under paragraph 31(iii)."

Submissions by India

a) Paragraph 31(i) - India believes that trade and environment should be mutually supportive with the objective of achieving sustainable development. India is one of the strongest proponents of Multilateral Environment Agreements (MEAs) and is party to all the major MEAs.

On Paragraph 31(i), India made a submission (TN/TE/W/23) in February, 2003 giving its views on the criteria for considering an environmental agreement as a "Multilateral Environmental Agreement" (MEA) and its "Specific Trade Obligations" (STO).

India believes that the term "Specific Trade Obligation" has three elements that must be considered together i.e. the provision must be specific with a trade element and should be in the nature of an obligation. Thus, any provision in an MEA to qualify as an STO must be specific and mandatory in character, and so precise in its direction that there can be no doubt about the action or restraint that a party to the MEA must adopt. India believes that the mandate given under Paragraph 31(i) of the Doha Declaration refers only to the trade measures that are both mandatory and specific in their entirety. Non-specific provisions cannot qualify as an STO. Also if the provision set out in the MEA does not contain the crucial "obligation" element, such provisions too would fail to qualify.

India sees benefit in furtherance of the negotiations in identifying the STOs set out in MEAs prior to discussing its outcome, since it would help appreciate the likely consequences as well as strengthening the logic behind any of the suggested outcomes.

b) Paragraph 31(iii) - For negotiations on Paragraph 31(iii), identification of environmental goods has been at the core of the negotiation process so far. A number of Member countries and groups have made their submissions. Countries, mostly developed, have proposed a "List approach" for seeking tariff reduction on "environmental goods". The potential criteria, definitions and classification of environmental goods continue to be the subject of intense discussions in the CTE-SS. The ambiguity, however, continues. Suggested definitions have varied between "limited primarily to pollution prevention activities" to "extend beyond simply end-use criteria".

Many of the items suggested for inclusion in the list of environmental goods have dual and multiple uses. Though these items may be utilized for an environmental purpose, other industrial applications of such goods are also significant. Examples include electricity meters, liquid flow meters, heat exchangers, conveyers and centrifugal drums. The list of environmental goods contains equipment's, which cannot even be considered to be predominantly used for

environmental purposes, for example suggestions for inclusion of consumer appliances, such as microwave ovens, energy efficient refrigerators, etc. If preferential tariff treatment, including zero tariffs, is to be given to dual use and consumer goods, there would be significant ramifications for industrial sectors, particularly in developing and least developed countries where industry is largely dominated by small and medium enterprises (SMEs).

Considering these issues, India had submitted an alternate approach for negotiations under Para 31(iii) (TN/TE/W/51). This approach, called the "Environmental Project Approach", intends to address the diversity in environmental standards with common but differentiated responsibilities and bring in trade liberalization to meet the environmental as well as development goals of both the Doha Development Agenda and Agenda 21. Under this approach, a project, which meets certain criteria, could be considered by a Designated National Authority (DNA). If approved, the goods and services included in the project would qualify for specified tariff concessions for the duration of the project.

India and China jointly submitted vide document No. TN/TE/W/79 dated 15th April, 2011 WTO Negotiations on Environmental Goods and Services addressing the development dimension for a " Triple Win" outcome under para 31(iii).

Submissions by India on the Project Approach

- An alternative approach for negotiations under paragraph 31(iii): TN/TE/W/51, dated 3 June 2005
- Structural Dimensions of the Environmental Project Approach: TN/TE/W/54, 4 July, 2005.
- Procedural and Technical aspects of the Environmental Project Approach -TN/TE/W/60, 19 September, 2005.
- Environmental Project Approach – Compatibility and Criteria - TN/TE/W/67, 13 June, 2006
- "Triple Win" outcome – India and China (jointly) – TN/TE/W/79 date 15thApril, 2011. .

Paragraph 31(ii) - Transparency is an important aspect of WTO work on trade and environment. Numerous notification systems in the WTO increase the transparency of trade-related environmental measures (TREMs). GATT Article X on the Publication and Administration of Trade Regulations, the 1979 Understanding Regarding Notifications, Consultation, Dispute Settlement and Surveillance, and the transparency provisions of the TBT and SPS Agreements create a broad basis for ensuring the transparency of TREMs at the multilateral level.

The elements of Paragraph 31(ii) are procedures for regular information exchange between various Multilateral Environmental Agreement secretariats and the relevant WTO Committees and the criteria for the granting of observer status to these MEA secretariats.

Paragraph 32 (i) - Effect of environmental measures on market accessThe effect of environmental measures on market access is being discussed in the CTE. India had submitted a paper (WT/CTE/W/177) on "the study of the effects of environmental measures on market access". Another paper (WT/CTE/W/207) was submitted on "the effects of environmental measures on market access, especially in relation to developing countries, in particular the least-developed among them".

India in its paper proposed that it is the responsibility of importing countries to ensure that such measures do not affect the market access of developing countries. Environmental measures should be based on the criteria of sound science, transparency and equity. These measures should be compatible with the open, equitable and non-discriminatory nature of the multilateral trading system and conform to its basic provisions and disciplines. While participation of developing countries in developing the environmental measures needs to be ensured, Members also need to promote suitable mechanisms for information dissemination systems to ensure that changes in environmental measures and standards can be accessed by industries in the developing and the least-developed countries.

India also proposed that longer time frames for compliance should be accorded to products of interest to developing country Members so as to maintain opportunities for their exports. Exceptions should be provided to environmental measures in exporting countries, which are equivalent in effect with environmental measures in the importing country, though the measures themselves may be different.

On the issue of technical co-operation, it was proposed that when environmental measures affect the market access of developing countries, they should be assisted by way of bilateral technical and financial assistance for compliance. Such technical assistance and transfer of technology should be provided and/or facilitated on concessional and preferential terms. The negative effects of environmental measures on market access should be mitigated or eliminated altogether by providing additional market access to developing countries in these products.

References :-

1. http://www.echoworld.com
2. http://timesofindia.indiatimes.com

****

Women Empowerment of India

Dr. R.C. Gupta *

Abstract - Empowering women is a prerequisite for creating a good nation when are empowered, society with stability is assured empowerment of women is essential as their thoughts and their value system lead to the development of good family , good society and ultimately a good nation when a women is empowered it does not mean that another individual becomes power cars or is having cars power on the contrary if a women is empowered her competencies towards decision making will surely influence her family behavior.

Introduction - Science age India has been men dominated country but time is changing now women in India have out raged the face that since hundreds of years they had few following the orders of men they now know their rights and duties and with the spreading awareness amongst the women they are now no less then the men. They are walking with men at the same place in each and every field.

Following this latest trend, women are no less and back ward any more many women have established their own economy i.e. entrepreneurial empire and are now ruling their world as they wished to the hidden entrepreneurial potential of women has gradually bean enhancing with the growing sensitivity to the role and economic status in the society skill knowledge and adoptability in basemen are the main reason for women to emerge into business ventures.

The Indian economy has been witnessing a drastic change since 1991 with new policies of economics liberalization globalization and privation initiated by the Indian government India has great entrepreneurial potential Indian society is still characterized by its ancient so critical norms and values but yet amongst it the status & role of women have witnessed rapid changes in recent year. The thoroughly domesticated women who could not think beyond the welfare of their families have now awakened to action. The role of women entrepreneur in economic development is inevitable. Now a day women entry not only in selected professions but also in professions like trade, industry and engineering women are also willing to take up business and contribute to the nation's growth.

Any strategy aimed at economic development will be lopped sided without involving women who constitute half of the world. Population. Evidence has unequivocally established. That entrepreneurial sprit is not a male prerogative women entrepreneurship has gained momentum in the last three decades with the indicate in the number of women enterprises and their substantive contribution to economic growth. The industrial performance of Asia Pacific region propelled by foreign direct investment, technological innovations and manufactured experts has brought a wide range of economic and social opportunities to women entrepreneurs.

In this dynamic world women entrepreneurs are an important part of the global guest for sustained economic development and social progress. In India though women have played a key role in the society, their entrepreneurial ability has not been properly tapped due to the lower status of women in the society. The development of women entrepreneurship has become an important aspect of our plan priorities. Several policies and programmes are being implemented for the development of women entrepreneurship in India. There is a need of changing the mindset towards women so as to give equal rights as enshrined in the constitution. The progress towards gender equality is slow and is partly due to the failure to attach manly to policy commitments.When a women is empowered it does not mean that another individuals becomes powerless or is having less power. On the contrary it a women is empowered her competencies towards decision making will surely influence her family's behaviors.

In finally women are pivotal for development of any society any every where in the world women discharge towards at home as housewives and outsiders wage earners both are important for development of good society and nation as a whole. It is the women, who acts as vital agents for socio economics activities like bearing and rearing children providing much of the labor for house hold maintains and subsistence agriculture and soon women make an important contribution to the economy through waking in both the formal and informal sections.

References :-

1. Agarwal C M (2001) Indian women, Indian publishers & distribute, Delhi.
2. Arya Anita (196) Indian women volume I, II, III, gyan publishing house, New Delhi.
3. Zubair Meenal (2004) Empowering rural women: An approach to empowering women
4. www.ncw.org
5. www.wed.org

* **Professor (Commerce) Govt.P.G. College, Bina, Distt. Sagar (M.P.) INDIA**

स्वयं सहायता समूह से लाभान्वित ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक विकास - एक अध्ययन (धार जिले के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. मालसिंह चौहान *

प्रस्तावना – भारतीय अर्थव्यवस्था मूलत: ग्रामीण और कृषि प्रधान है। देश के सर्वागीण आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास में ग्रामीण महिलाओं का विकास महत्वपूर्ण है। भारत की कुल जनसंख्या का 74.3 प्रतिशत भाग गॉवो में निवास करता है। भारत की कुल ग्रामीण आबादी का एक बड़ा भाग गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहा है। इसमें 65 से 70 प्रतिशत हिस्सा महिलाओं का ही है। अत: गरीबी का असली चेहरा महिलाओं का ही है। इसी आधार पर गरीबी के मुद्दे पर अधिक से अधिक महिलाओं तक पहुंच बनाने पर बल दिया गया है। साथ ही यह तथ्य भी सामने आया है कि महिलाएँ स्वीकृत ऋण की अदायगी में पुरूषो की अपेक्षा अधिक अनुशासित एवं प्रतिबद्ध होती है। इसलिए अधिकांश लघु ऋण कार्यक्रमो मे महिलाओं को प्राथमिकता दी जाती है।

हमारी सरकार ग्रामीण महिलाओं में तेजी से विकास और सामाजिक आर्थिक परिर्वतन लाने के प्रयास में जुटी हे। ग्रामीण महिलाओं का जीवन स्तर सुधारने और विकास कार्यक्रमों में महिलाओं की प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करने के प्रयास जारी है। सरकार के राष्ट्रीय एजेंडे में महिलाओं के आर्थिक विकास को प्राथमिकता दी गई है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ग्रामीण विकास की कुछ प्रमुख योजनाओं में परिर्वतन का फैसला किया गया है। ये नये परिर्वतन 1 अप्रैल 1999 से लागू हो गये है। इनके तहत् स्वरोजगार की चल रही सभी योजनाओं को मिलाकर एक नई स्वरोजगार योजना ' स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना ' लागू की गई है। इसके तहत् ग्रमीण विकास के लिए हर जिला अपने संसाधनों के आधार पर व्यापक योजना तैयार करेगा। इसमें सामूहिक विकास पर जोर दिया जायेगा।

उसके लिये स्वयं सहायता समूहों का गठन किया जायेगा और इन समूहों को अपने आर्थिक कार्यकलाप कारगर ढंग से चलाने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा। यह भी सर्वविदित है कि , भारत की 74.3 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है इन ग्रामीण क्षेत्रों मे चूंकी पूर्व में कोई सुलभ साख सुविधायें नहीं थी और कृषि उत्पादन भी न्यूनतम था। परिणामस्वरूप ग्रामीण लोगों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु साहुकारों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। ये साहुकार ग्रामीणों को सरलता से ऋण तो दे देते थे परन्तु बदले में वे इन ग्रामीणों के अनपढ़ होने का भरभूर फायदा उठाते थें ओर इन्हें न केवल अपना आजीवन कर्जदार बनाकर इनका शोषण करते थें, बल्कि कभी कभी इन ग्रामीणों की पीढ़ी दर पीढ़ी को ऋण के चक्रव्यूह में हमेशा के लिए फंसा लेते थे। इन ग्रामीणों को शोषण से निजात दिलवाने और इनकी छोटी छोटी आकस्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही शासन ने एक बैक प्रणाली के रूप में ' स्वयं सहायता समूह योजना ' की संकल्पना की है जो मात्र एक ऋण प्रणाली न होकर ' महिलाओं के आर्थिक विकास कार्यक्रम' भी है।

मध्यप्रदेश में स्वयं सहायता समूह योजना 1 अप्रैल 1999 से प्रारम्भ हुई है। इस योजना के संचालन को केन्द्र और राज्य के बीच 75:25 के लागत बंटवारे के अनुपात के आधार पर विभाजित किया गया है। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक सामाजिक समस्याओं को आपस में मिलकर समाधान करना है तथा अनेक सामाजिक बुराईयों से मुक्ती पाना है जिससे की हम विकास के पथ पर अग्रसर हो सके। यह कार्यक्रम ग्रामीण महिलाओं को आपस में संगठित करके आत्मनिर्भर बनाने पर ध्यान देता है। इसके अलावा इस कार्यक्रम की एक अनूठी विशेषता यह है कि यह अल्पबचत को प्रोत्साहित भी करता है। उपयुक्त संदर्भ यह आवश्यक है इस योजना के माध्यम से गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली ग्रामीण महिलाओं के जीवन स्तर को उपर उठाने में स्वयं सहायता समूह कितनी भूमिका निभा रहा है, समूह की बैंको में निक्षेप की क्या स्थिति है। बैंको ने स्वयं सहायता समूह के सदस्यों को कितनी मात्रा में ऋण वितरित किया है आदि की वास्तविक जानकारी हेतु इस योजना का मूल्याकंन करना प्रासंगिक लगता है–

अध्ययन का उद्देश्य – अध्ययन का उद्देश्य यह जानना है कि –

1. निर्धनो को साहुकारों के चंगुल से बचाने में स्वयं सहायता समूह की भूमिका का अध्ययन करना।
2. ग्रामीण महिलाओं की आय एवं रोजगार वृद्धि में स्वयं सहायता समूह के योगदान का मूल्यांकन करना।
3. स्वयं सहायता समूहों का ग्रामीण महिलाओं के उपभोग संरचना पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
4. स्वयं सहायता समूह का ग्रामीण महिलाओं के जीवन स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों का पता लगाना।

अध्ययन की उपकल्पना – किसी विषय या समस्या के संबंध में जो हमारे प्राथमिक विचार या सामान्य बौद्धिक कल्पना होती है उसे ही शोध क्षेत्र में उपकल्पना का नाम दिया जाता है उपकल्पना निमार्ण शोध समस्याओं के अध्ययन की वैज्ञानिक पद्धति का एक महत्वपूर्ण अंग है। उपकल्पना हमें यह बताती है कि अध्ययन कार्य में हमें निश्चित रूप से क्या करना है उन कल्पना के कारण ही शोध कार्य को एक निश्चित दिशा प्राप्त होती है। शोध कार्य मुख्यत: निम्न उपकल्पनओं पर आधारित है –

1. निर्धनों को साहुकारों के चंगुल से बचाने में स्वयं सहायता समूह महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है ?
2. स्वयं सहायता समूह के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं की आय एवं रोजगार में काफी वृद्धि हुई है ?
3. स्वयं सहायता समूह के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं की उपभोग संरचना में सुधार हुआ है?

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय महाविद्यालय, सैलाना, जिला-रतलाम (म.प्र.) भारत

4. स्वयं सहायता समूह से ग्रामीण महिलाओं के जीवन स्तर में महत्वपूर्ण परिवर्तन सम्भव हुआ है?

समक संकलन – प्रस्तुत शोध पत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक सूचनाओं एव समंको पर आधारित है । स्वयं सहायता समूह के दिशा निर्देशों का पालन और हितग्राही महिलाओं की आय एवं रोजगार तथा उपभोग संरचना पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन तथा 'स्वयं सहायता समूह से लाभन्वित ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक विकास एक अध्ययन ' को ज्ञात करने के लिए प्राथमिक समंको और सूचनाओं का संग्रहण कर उनका उचित प्रकार से विश्लेषण किया गया है । इस हेतु सविचार निदर्शन प्रणाली का उपयोग करते हुए धार जिले से कुल 13 विकास खण्डो में से क्रमशः 4 सर्वाधिक महिला सूमह विकास–खण्ड गंधवानी, बाग,डही एवं कुक्षी का चयन किया गया है तथा प्रत्येक विकासखण्ड से 5–5 गाँव का चयन 'देव निदर्शन प्रणाली' द्वारा किया गया है। यहि नही समंको के संग्रहण हेतु प्रत्येक गॉव में गठित (संचालित) कुल स्वयं सहायता समूहों में से केवल दो समूहो की 5–5 हितग्राही महिलाओं का चुनाव कर उनसे जानकारी प्राप्त की गई है। इस प्रकार प्रत्येक गॉव के समूहो में से 10 तथा कुल 200 हितग्राही महिलाओं से समंक एकत्रित कर उनका गहन अध्ययन किया गया है। देव निदर्शन प्रणाली द्वारा चयनित उक्त 200 हितग्राही महिलाओं से जानकारी प्राप्त करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का निमार्ण किया गया है और संग्रहित सूचनाओ एवं जानकारियों से निष्कर्ष निकालने के लिए सांख्यिकीय विधियों जैसे– वर्गीकरण, सारणीयन, प्रतिशत आदि का प्रयोग किया गया है उक्त महिलाओं 1 अप्रैल 1999 से 31 मार्च 2013 की समयावधि में गठित स्वयं सहायता समूहो की है –

समूह की सदस्यता से पूर्व की स्थिति – वर्तमान समय में मंहगाई अपनी चरम सीमा पर है, और ऐसे में प्रत्येक मध्यम एवं निम्नवर्गीय परिवारों को आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पडता हैं जहां तक ग्रामीण महिलाओं का प्रश्न है। तो उनकी स्थिति और भी दयनीय होती है क्योंकि उनकी आय के स्त्रोत बहुत ही सीमित होते है। ऐसी स्थिति में उन्हें परिवारिक सामाजिक आर्थिक एवं आकस्मिक व्यय की पूर्ति करने हेतु अन्य लोगो पर निर्भर रहना ही पड़ता है । उक्त बात को दृष्टिगत रखते हुए शोध अध्ययन क्षेत्र में महिलाओं से यह जानने का प्रयास किया है कि स्वयं सहायता समूह की सदस्यता लेने के पूर्व आप विभिन्न प्रकार के व्ययों की पूर्ति हेतु आर्थिक व्यवस्था कहॉ से करती थी ? इस संदर्भ में जो जानकारी प्राप्त हुई , उसे अग्रलिखित तालिका में दर्शाया गया है।

समूह की सदस्यता से पूर्व आर्थिक व्यवस्था की स्थिति

क्र	आर्थिक व्यवस्था	महिलाओं की संख्या	प्रतिशत
1	स्वयं की बचत	56	28.00
2.	सहूकारो से ब्याज पर	118	59.00
3.	अन्य से उधार	26	13.00
	योग	200	100.00

स्त्रोत – सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर स्व– निर्मित

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक 59 प्रतिशत ग्रामीण महिलाओं स्वयं सहायता समुह की सदस्यता लेने के पूर्व विभिन्न प्रकार के व्ययों की पुर्ति हेतु आर्थिक व्यवस्था साहूकारों से ब्याज पर रूपये उधार लेकर करती थी। इसी प्रकार 28 प्रतिशत महिलायें स्वयं की बचत से तथा 13 प्रतिशत महिलायें अन्य व्यक्तियों से उधार लेकर व्ययों की पूर्ति करती थी।

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहां जा सकता है कि अध्ययन में सम्मिलित अधिकांश ग्रामीण महिलायें स्वयं सहायता समूह की सदस्यता लेने के पूर्व विभिन्न प्रकार के व्ययों की पूर्ति हेतु आर्थिक व्यवस्था साहूकारों से ब्याज पर रूपये उधार लेकर करती थी। इन ग्रामीण महिलाओं का साहूकारों के चंगुल में फंसने के पीछे मुख्य कारण साहूकारों के पास रूपये का शीध्र मिल जाना रहा है।

समूह की सदस्यता पश्चात आय में वृद्धि की स्थिति – समूह का मुख्य उद्देश्य महिलाओं की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ कर उन्हें साहूकारों के चंगुल से मुक्त करना है। अध्ययन क्षेत्र में इसकी वास्तविकता पता लगाने हेतु महिलाओं से यह जानकारी प्राप्त की है कि स्वयं सहायता समूह की सदस्यता लेने के पश्चात आपकी आय में वृद्धि हुई है। एंव साहूकारों के चंगुल से मुक्ति मिली है। इस संदर्भ में जो जानकारी प्राप्त हुई है उसे अग्रलिखित तालिका में दर्शाया गया है

समूह की सदस्यता लेने के पश्चात आय में वृद्धि होने की स्थिति–

क्र	स्थिति	महिलाओं की संख्या	प्रतिशत
1	हॉ	184	92.00
2	नहीं	16	08.00
	योग	200	100.00

स्त्रोत – सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर स्व–निर्मित

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक 92 प्रतिशत महिलाओं का यह कहना है कि स्वयं सहायता समूह की सदस्यता लेने के पश्चात ही हमारी आय में वृद्धि हुई है, एवं साहूकारो के चंगुल से मुक्ति भी मिली है । जबकि 8 प्रतिशत महिलाओं का यह कहा है कि समूह की सदस्यता लेने के पश्चात भी हमारी आय में कोई वृद्धि नहीं हुई है एवं साहुकारों के चंगुल से मुक्ति भी नहीं मिली है।

अत: निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अध्ययन में सम्मिलित कुछ महिलाओं को छोड़कर अधिकांश महिलाओं की समूह से जुड़ने के पश्चात आय में वृद्धि हुई है एवं साहूकारों के चंगुल से मुक्ति मिली है। यहां यह बताना भी उचित होगा कि समूह की सदस्यता लेने के पश्चात महिलाओं का आर्थिक कार्यक्षेत्र बढ़ा है अब महिलायें अपनी मेहनत लगन और उचित मार्गदर्शन का लाभ उठाकर धनोपार्जन कर रही है। अत: कहा जा सकता है कि स्वयं सहायता समूह अपने उद्देश्यों में सफल हो रहे है।

आय में वृद्धि से उपभोग संरचना पर प्रभाव –सामान्यत: किसी भी व्यक्ति का उपभोग स्तर उसकी आय से निर्धारित है। प्राय: जिन व्यक्तियों की आय अधिक होती है उनका उपभोग स्तर भी उच्च होता है। शोध अध्ययन के द्वारा महिलाओं को विभिन्न कार्यो से प्राप्त आय के साथ ही समूह से प्राप्त मासिक आय को भी ज्ञात किया है , जिसमें पाया है कि स्वयं सहायता समूह से जुड़ी समस्त महिलाओं को अपने उत्पाद हाट बाजार में विक्रय करने से आय प्राप्त हो रही है, इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए अध्ययन क्षेत्र में महिलाओं से यह जानने का प्रयास किया है कि आय में वृद्धि से उपभोग संरचना पर कोई प्रभाव पड़ा है इस संदर्भ में महिलाओं से जो जानकारी प्राप्त हुई है उसे अग्रिलिखत तालिका में दर्शाया गया है –

आय में वृद्धि से उपभोग संरचना पर प्रभाव की स्थिति

क्रं.	स्थिति	महिलाओं की संख्या	प्रतिशत
1	हॉ	180	090.00
2	नहीं	20	010.00
	योग	200	100.00

स्त्रोत – सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर स्व- निर्मित

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक 90 प्रतिशत महिलाओं का कहना है,कि स्वयं सहायता समूह से हमारी आय में वृद्धि हुई है और इससे हमारी उपभोग संरचना पर भी प्रभाव पड़ा है जबकि 10 प्रतिशत महिलाओं का कहना है कि समूह से हमारी आय में तो वृद्धि हुई है परन्तु इससे हमारी उपभोग संरचना पूर्व के समान ही है।

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अध्ययन क्षेत्र में कुछ परम्परावादी एवं रूढिवादी महिलाओं को छोड़कर अधिकांश महिलाओं ने इस बात को स्वीकार किया है कि स्वयं सहायता से हमारी आय में तो वृद्धि हुई है। साथ ही हमारी उपभोग संरचना पर भी अच्छा प्रभाव पड़ा है।

आय वृद्धि से निश्चित ही उपभोग संरचना पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अत अध्ययन क्षेत्र में जिन महिलाओं का यह कहना था कि समूह से हमारी आय में वृद्धि हुई है और इससे हमारी उपभोग संरचना पर भी प्रभाव पड़ा है। इन महिलाओं से पुन: यह जानने का प्रयास किया है कि आपकी उपभोग संरचना में किस प्रकार का प्रभाव पड़ा है। इस संदर्भ में जो जानकारी प्राप्त हुई है उसे अग्रलिखित तालिका में दर्शाया गया है।

उपभोग संरचना पर प्रभाव का प्रकार

क्र	प्रभाव का प्रकार	महिलाओ की संख्या	प्रतिशत
1	भोजन , वस्त्र	136	75.56
2	पंखा , टी.वी, फ्रीज, मोटर सायकल	16	8.89
3	मकान, गहने	28	15.55
	योग	180	100.00

स्त्रोत – सर्वेक्षण से प्राप्त जानकारी के आधार पर स्व-निर्मित

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक 75.56 प्रतिशत महिलाओं का कहना है कि आय में वृद्धि होने से अब हम पहले की तुलना में अधिक पौष्टिक भोजन एवं नये नये वस्त्रों का प्रयोग करने लगी है। अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि समूह से महिलाओं की आय में वृद्धि हुई है और इससे उनकी उपभोग संरचना या उपभोग प्रवृति पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

निष्कर्ष – प्रस्तुत शोध अध्ययन में यह परिकल्पना की गयी थी कि ग्रामीण महिलाओं को साहूकारों से चंगुल से बचाने में स्वयं सहायता समूह महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। अध्ययन के पश्चात यह देखा गया कि अधिकांश महिलाओं की समूह से जुड़ने के पश्चात आय में वृद्धि हुई है एवं साहूकारों के चुंगल से मुक्ति मिली है यही नहीं समूह की सदस्यता लेने के पश्चात महिलाओं का आर्थिक कार्यक्षेत्र भी बढ़ा है। साथ ही समूह में अधिक समय व्यतीत हो जाने से महिलाओं के आत्मविश्वास एवं अनुभव में भी वृद्धि हुई है। समूह की सदस्यता लेने के पश्चात ग्रामीण महिलाओं की आय में वृद्धि बचत के माध्यम से हुई है। साथ की समूह में कार्य किये जाने से महिलाओं के लाभ का प्रतिशत भी अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। क्योंकि लाभ केवल महिलाओं तक ही सीमीत रहता है। अन्य किसी के पास नहीं जाता है समूह की सदस्यता के पश्चात महिलाअें के रोजगार की सम्भावनाऐं भी बढ़ने लगी है साथ ही उन्हें आय अर्जित करने के अनेक क्षेत्र भी दिखाई देने लगे है। शोध अध्ययन में यह परिकल्पना कि गई थी कि समूह के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं की उपभोग संरचना में सुधार हुआ है। अध्ययन के पश्चात् यह देखा गया कि समूह से जुड़ी समस्त महिलाओं को अपने उत्पाद हाट-बाजर में विक्रय करने से आय प्राप्त हो रही है। यही नहीं इस बढ़ी हुई आय का उनकी उपभोग संरचना पर भी महत्पवुर्ण प्रभाव पड़ा हैं अर्थात ग्रामीण महिलायें अब पहले से बेहतर वस्तुओं का उपभोग करने लगी है। दूसरे शब्दों मे यह कहा जा सकता हैं कि ग्रामीण महिलायें अब पहले की तुलना में अधिक पौष्टिक भोजन एवं नये नये वस्त्रों का प्रयोग करने लगी है।

अत: जिस प्रकार डॉक्टर रोगी के एक बुंद खून का परीक्षण करके उसके रोग के बारे में निष्कर्ष निकाल लेता है। उसी प्रकार दैव निदर्शन प्रणाली द्वारा कुछ ईकाईयों का निरीक्षण करके वृहद मात्राओं के बारे में निष्कर्ष निकाले जा सकते है। इस प्रकार दैव निदर्शन प्रणाली के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष लगभग सत्य होते है।

सदर्भ ग्रंथ सूची-

1. स्व-सहायता समूह गठन प्रक्रिया एवं मार्गदर्शन (श्री आर.केसिन्हा, फेमिदा शेख, मनोज सक्सेना)
2. सचिन दुबे – महिलाओं के आर्थिक विकास में ' स्व-सहायता समूह' का योगदान।
3. डॉ.सिंह निशांत (2009) ' भारतीय महिलाऐं एव सामाजिक अध्ययन ' औमेगा पब्लिकेशन , नई दिल्ली
4. प्रो. त्रिपाठी , मधुसुदन (2008) ' महिला विकास एक मूल्यांकन औमेगा पब्लिकेशन दरियागंज नई दिल्ली।
5. गौरवसिंह राठौर—— ग्रामीण विकास में स्वयं सहायता समूह की भूमिका'
6. कु.सुमा थंकाचन' महिला सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूह'
7. अग्रवाल , अंशुप्रिया (2008) ' लधु-ऋण गरीबों की जीवन रेखा बैकिंग चिंतन अनुचिंतन

****

भारत में ई–कॉमर्स का प्रादुर्भाव एवं विकास

डॉ. मधुकर ठोमरे *

प्रस्तावना – ई–कॉमर्स – वस्तुओं या सेवाओं को इंटरनेट पर खरीदना बेचना या विज्ञापन द्वारा उत्पादकों की सूचनाऐं ग्राहको तक पहूँचाना ही ई–कॉमर्स है। कम्प्यूटर नेटवर्को, इंटरनेट, वर्ल्ड वाईड वेब से लेकर इलेक्ट्रानिक डाटा एक्सचेंजर, ई–मेल, इलेक्ट्रानिक बुलेटिन बोर्ड, इलेक्ट्रानिक फण्ड ट्रांसफर आदि उपयोगी तकनीकों को समाविष्ट कर व्यापारिक कार्यकलापों को संपादित करने में ई–कॉमर्स एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

ई–कॉमर्स का प्रादुर्भाव – दुनिया में ई–कॉमर्स की शुरूआत सन् 1970 में हुई थी जब कुछ कंपनियों ने अपनी कम्प्यूटर आधारित सूचना प्रणालियों के लिए निजी कम्प्यूटर नेटवर्को की स्थापना की थी। उन्होंने उन नेटवर्को से अपने व्यापारिक सहयोगियों एवं अन्य संबंधित कंपनियों को भी सूचनाओं के लेनदेन हेतु जोड़ा। यह प्रथा बाद में 'इलेक्ट्रानिक डाटा एक्सचेंज' के रूप में विकसित हुई। इस प्रकार इलेक्ट्रानिक कॉमर्स का प्रारम्भ हुआ। ई–कॉमर्स का संचालन करने के लिए फैक्स, ई–मेल, इलेक्ट्रानिक बुलेटिन बोर्ड, ई–कैश, इलेक्ट्रानिक फंड ट्रांसफर, वीडियो टेक्स्ट, ऑनलाईन डाटाबेस आदि का उपयोग किया जाता है।

ई–कॉमर्स के लाभ –

ग्राहकों को लाभ –

1. वांछित वस्तुओं एवं सेवाओं के चयन में सुविधा।
2. उत्पादों की विशेषताओं और मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन आसान।
3. वस्तुओं की खोजबीन हेतु बार–बार बाजार जाने–आने में लगने वाले समय व धन की बचत।
4. बाजारों की समय सीमा व भौगालिक सीमाओं का विस्तार।
5. किसी भी समय क्रय करने की सुविधा।
6. इलेक्ट्रानिक भुगतान की सुविधा।
7. वस्तु पसंद न आने पर वापसी की सुविधा तथा अग्रिम भुगतान की स्थिति में फंड वापसी की सुविधा।

उत्पादकों व विक्रेताओं को लाभ –

1. उत्पादकों, वितरकों व अन्य व्यापारिक सहयोगियों से व्यापारिक सूचनाओं का आदान प्रदान एवं व्यापारिक खर्चो में कमी।
2. व्यापार चक्र की गतिविधियों में तीव्रता।
3. नये बाजारों व ग्राहकों तक पहूँचने में आसानी।
4. वस्तुओं, उत्पादकों व सेवाओं की अधिक जानकारी।
5. ग्राहकों से बेहतर संबंधो की स्थापना।
6. कागज की बचत।
7. नये व्यापार की संभावनाएँ।
8. समग्र गुणवत्ता मे सुधार।
9. डाक खर्च मे कमी।

ई–कॉमर्स के घटक –

1. इलेक्ट्रानिक डाटा इंटरचेंज द्वारा विभिन्न व्यापारिक सूचनाओं का व्यापारिक संस्थाओं के बीच विनिमय।
2. वर्ल्ड वाईड वेब से विभिन्न क्षेत्रों एवं देशों की जनसंख्या की सामाजिक एवं आर्थिक दशा की जानकारियों का संग्रहण एवं उपयोग।
3. ग्राहकों तक पहूँचने के लिए ई–मेल, फैक्स का मीडिया की तरह प्रयोग।
4. कंपनी की वेब साईड पर ऑनलाईन कैटलॉग का प्रदर्शन।
5. बिजनेस टू बिजनेस क्रय एवं विक्रय।
6. व्यापारिक व्यवहारों की सुरक्षा के उपाय।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में ई–कॉमर्स की स्थिति – सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र मे भारत ने सम्पूर्ण विश्व में आश्चर्यजनक प्रगति की है। इसी प्रौद्योगिकी के सहयोग से हमारे देश में ई–कॉमर्स के क्षेत्र में तेजी से प्रगति हुई है। रिसर्च फर्म गार्टनर के अनुसार पुरे एशिया पैसेफिक में भारत में ई–कॉमर्स सबसे तेजी से बढ़ रहा है। ट्रेवलिंग के क्षेत्र में 71 प्रतिशत की दर से हर साल भारत मे ई–कॉमर्स मार्केट बढ़ रहा है। भारत में ई–कॉमर्स क्षेत्र की प्रमुख कंपनियों में फ्लीपकार्ट, स्नैपडील, फैशन एण्ड यू, डील्स एण्ड यू, होमशॉप–18, फ्रुट इत्यादि है। दैनिक भास्कर के 29 अक्टूबर 2014 के अंक मे छपी खबर के अनुसार जापान की साफ्ट बैंक कंपनी स्नैपडील में 3800 करोड़ रूपए का निवेश करने हेतु प्रयासरत् है। भारत मे डिजिटल कॉमर्स की प्रगति निम्न सारणी द्वारा प्रस्तुत की गई है।

तालिका

ई–कॉमर्स का विभिन्न वर्षो में विकास

वर्ष	डिजिटल–कॉमर्स (राशि करोड़ रूपयों मे)	प्रतिशत वृद्धि
2009	19249	–
2010	26263	73
2011	35142	74
2012	47350	74
2013	62000 (अनुमानित)	76
	CAGR	34

स्त्रोत – आई.ए.एम.ए. इंडिया की वर्ष 2013 की रिपोर्ट

उपरोक्त तालिका में डिजिटल वाणिज्य उद्योग की व्यापार वृद्धि को प्रदर्शित किया गया है। डिजिटल वाणिज्य उद्योग का कुल व्यापार वर्ष 2009 में 19249 करोड़ रू था जो बढ़कर वर्ष 2012 में 47349 करोड़ रू हो गया है। नि:संदेह डिजिटल वाणिज्य ने विगत वर्षो में महत्वपूर्ण वृद्धि दर्ज की है। वर्ष 2013 में डिजिटल वाणिज्य का आकार 62000 करोड़ रू होने का अनुमान लगाया गया है। डिजिटल वाणिज्य के तेजी से बढ़ते आकार मे सबसे

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

बड़ा भाग ऑन लाईन ट्रेवल उद्योग का है जो कुल डिजिटल व्यापार का लगभग 71 प्रतिशत है। डिजिटल वाणिज्य की चक्रवृद्धि औसत विकास दर 34 प्रतिशत रही है।

वर्ष 2014 और आगे के वर्षो में ई-कॉमर्स रिटेल व्यापार तेजी से बढ़ेगा क्योंकि ऑनलाईन शॉपिग पर मिल रहे भारी डिस्काउंट और सुविधाओं को देखते हुए यह अनुमान लगाया जा रहा है। एक अनुमान के अनुसार सन् 2020 तक ई-कॉमर्स उद्योग का व्यापार लगभग 12 हजार अरब रू हो जायेगा।

ई-कॉमर्स के विस्तार मे रूकावटें या चुनौतियाँ -

1. पर्याप्त व्यापार मांडलो का अभाव।
2. प्रमुख ब्रांड उत्पादको का ई-वाणिज्य में शामिल न होना।
3. व्यापार विधि व नियमों का अपर्याप्त होना।
4. ऑन लाईन व्यापार के दौरान सर्वर का डाउन होना व लाईनो का क्रेश होना।
5. ई-कॉमर्स विकास के लिए उपयुक्त ढांचे का अभाव तथा इंटरनेट के मूल ढांचे मे विकास की कमी।
6. कंपनी का ग्राहकों से मेलजोल का अभाव।
7. ई-कॉमर्स तकनीक मे निरन्तर परिवर्तन होने के कारण वर्तमान तकनीके अनुपयूक्त हो जाना तथा नई तकनीके अपनाने मे बाधाएँ उपस्थित होना।
8. साईट की सुरक्षा एवं उसे नष्ट होने व परिवर्तित होने से बचाना।
9. अनेक बार ग्राहको के अंसतुष्ट होने से उनकी नाराजगी का सामना करना।
10. आम व्यक्ति तक कम्प्यूटरों की पहुँच न होना।
11. सामाजिक कानूनों एवं नीतिगत निर्णयों का अभाव।
12. डाटाबेस के साथ छेड़छाड़ एवं इलेक्ट्रानिक धोखाधड़ी।
13. दूरदराज के क्षेत्रो तक पहूँचने के लिए परिवहन संसाधनों का अभाव।
14. ई-कॉमर्स विस्तार के लिए पूँजी का अभाव।

ई-कॉमर्स का भविष्य - भारत में ई-कॉमर्स द्वारा व्यापार वृद्धि के प्रबल आसार है इसके लिए व्यापारिक अनुभव व गतिविधियों को कुशलतापूर्वक संपादित करने हेतु उचित वातावरण व तालमेल आवश्यक होगा। बड़ी कंपनियों के पास अधिक संसाधन होने के कारण वे भविष्य में लाभ उठाकर छोटी कंपनियों की अपेक्षा अधिक सफल हो पाएगी। ब्रॉड तथा ट्रेडमार्क का लाभ भी बड़ी कंपनियों को अवश्य मिलेगा। इन सबके बावजूद जितने भी सर्वेक्षण किए जा रहे है, उनमें से सभी ने ई-कॉमर्स के द्वारा व्यापार वृद्धि को सुनिश्चित माना है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित व्यापारिक गतिविधियों जैसे - वित्त, स्वास्थ्य, मनोरंजन, पर्यावरण, शिक्षा आदि में भी ई-कॉमर्स द्वारा व्यापार की प्रबल संभावनाऐं है। ई-कॉमर्स ने वाणिज्य एवं व्यापार को नए ढंग से करने के लिए वातावरण बनाया है। इंटरनेट के लिए तेजी से बढ़ती हुई आधारभूत सुविधाऐं, सस्ते कम्प्यूटर, मोबाईल कनेक्टीविटी, इंटरनेट प्रदाता कंपनियों मे तेजी से बढ़ती प्रतियोगिता इत्यादि सुविधाऐं ई-कॉमर्स या डिजिटल वाणिज्य के विकास मे ईधन का कार्य करेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. आई.ए.एम.ए.आई. की डिजिटल वाणिज्य पर रिपोर्ट 2013
2. डॉ. एस.सी. जैन, 2014 'व्यावसायिक वातावरण', कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल
3. दैनिक भास्कर व टाईम्स ऑफ इंडिया अक्टूबर, नवम्बर 2014
4. Evaluation of e-commerce in india, PWC, 2014

****

भारत में ग्रामीण विकास कार्यक्रम एक सामान्य अध्ययन

डॉ. जे.पी. पाण्डया *

शोध सारांश – सच्चे लोकतंत्र की प्राण प्रतिष्ठा तभी संभव है जब समाज सुखी एवं समृद्ध हो स्वतन्त्रता के पश्चात् गाँवो की दशा अत्यन्त दयनीय थी चाहे वह शिक्षा व स्वास्थ्य की दृष्टि से हो या आर्थिक दृष्टि से चाहे स्वतन्त्रता की दृष्टि से हो या भेदभाव व कलह की दृष्टि से चाहे बेरोजगारी हो या अंधविश्वास भारत गाँवो का देश है आज भी गाँवो में विकास का झरना पुरी तरह से प्रस्फुटित नहीं हुआ है ग्रामीण क्षेत्र में आज भी भेदभाव, कलह, अज्ञान व संकीर्णता का प्रकोप चारो और विकास को बाधित कर रहा है। महात्मा गाँधीजी की इच्छा थी कि भारत में राम राज्य की स्थापना की जाये। इस विचारधारा को वास्तविक धरातल पर लाने के लिए देश की सरकारों ने ग्रामीण विकास के लिए समय-समय पर कई योजनाए बनाई है जिसमें ग्रामीण क्षेत्रो का पर्याप्त विकास हो। इन विकास योजनाओं से परिचय कराना इस लेख का प्रमुख उद्देश्य है ताकि इन योजनाओं से अपरिचित लोग इन योजनाओं के माध्यम से अपना, समाज व परिवार का सर्वागीण विकास कर उन्नत जीवन निर्वाह कर सके व निर्धनता व अंधविश्वास के कुचक्र से छुटकारा पा सके।

प्रस्तावना – भारत की अधिकांश जनसंख्या गाँवो में निवासरत है गाँव हमारी संस्कृति के केन्द्र बिंदु है। जब तक भारत में 5.75 लाख गाँव उन्नत स्वावलम्बी दरिद्रता का दानव व ऊँच नीच के भेदभाव को नष्ट नही होगा। स्वतन्त्रता व स्वराज का भारत के लिए कोई महत्व नहीं रहेगा। इसी उद्देश्य से ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले लोगों का विकास करने के लिए उनकी खुशहाली बढ़ाने के लिए- लोक कार्यक्रम ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद की स्थापना वर्श 1986 में की है यह परिषद ग्रामीण विकास में स्वयं सेवी कार्यो को प्रोत्साहन, महिला व बाल विकास, पेयजल आपूर्ति, स्वच्छता कार्यक्रम, गरीबी उन्मूलन हेतु रोजगार प्रोत्साहन, प्रोद्योगिकी विकास, विकलांगो का पुनर्वास आदि के लिए कार्य करती है जो इस प्रकार है –

1. **इंदिरा आवास योजना –** इस योजना का प्रारम्भ 1985-86 में ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी योजना के रूप में (RLEGP) प्रारंभ की जिसे बाद में 1 अप्रैल 1989 से जवाहर रोजगार योजना में मिला दिया। इसमें अनुसूचित जाति व जनजाति बंधुआ मजदूरो व गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले ग्रामीणो को नि:शुल्क आवास उपलब्ध कराना जिसमें मैदानी क्षेत्र के लोगो को 45000/- रू व पहाड़ी क्षेत्र में 48500/- रू दिया जाता है इस योजना के वर्ष 2011 तक 271 लाख मकानो का निर्माण किया जा चुका है।

2. **स्वर्ण जयंती ग्रामीण आवास योजना –** इस योजना में नए मकान निर्माण या क्रय करने के उद्देश्य से व वर्तमान मकान के उन्नयन व मरम्मत हेतु संस्थागत ऋण सुविधा ग्रामीण क्षेत्रो में उपलब्ध कराई जाती है। अत: आवास समस्या का हल हो सके।

3. **त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम –** भारत सरकार ने वर्ष 1972-73 से इस योजना को प्रारम्भ किया जिसका उद्देश्य जल की समस्या से ग्रसित गॉव में नदी, कुँए व तालाब का पानी विद्युत यंत्रो के माध्यम से ग्रामीणजनो को उपलब्ध कराना व इसमें व्यय राशि का 50 प्रतिशत केन्द्र सरकार व 50 प्रतिशत राज्य सरकार वहन करेगी।

सूखा प्रवण एवं मरूस्थल विकास कार्यक्रम – इस योजना का प्रार्दुभाव 1977-78 में फसलो की उत्पादकता पशु व भूमि की उत्पादकता को बढ़ाने जल व मानव संसाधनो को पूर्ण विदोहन कर कृषि उत्पादकता को बढ़ावा देना जिससे सूखे का प्रभाव न्युनतम रहे व भूमि की उर्वरा शक्ति को अधिकाधिक बढ़ावा देना।

4. **प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना –** (PMG4) ग्रामीण क्षेत्र की बुनियादी आवश्यकताओं को पुरा करने के लिए समयबद्ध कार्यक्रम चलाने के उद्देश्य से वर्श 2000-01 में प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना षुरू की गई। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगो के जीवन-स्तर में सुधार लाने के समग्र उद्देश्य सहित प्राथमिक स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, पेयजल, आवास, ग्रामीण पोशाहार तथा ग्रामीण विद्युतीकरण जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में ग्रमीण स्तर पर विकास करने पर ध्यान देना इसका उद्देश्य है। इय योजना के अंतर्गत निम्नलिखित कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए है –

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY) – 25 दिसम्बर, 2000 में शुरू की गई इस योजना का उद्देश्य 10 वी योजना के अंतर्गत (वर्ष 2007) तक ग्रामीण क्षेत्रों में 500 या अधिक व्यक्तियों की (पहाड़ी, मरूस्थलीय और जनजातिय क्षेत्रों के मामले में 250) की जनसंख्या वाली संपर्क रहित बस्तियों को बारहमासी सड़क संपर्क उपलब्ध कराना है।

5. **प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (ग्रामीण आवास) –** ग्रामीण स्तर पर लोगों के स्थायी निवास को विकसित करने तथा ग्रामीण गरीबो की बढ़ती हुई आवास संबंधी आवश्यकताओं को पुरा करने के उद्देश्य से प्रतिवर्श 25 लाख आवासो का निर्माण करने की योजना।

6. **प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (पेयजल आपूर्ति परियोजना) –** इस कार्यक्रम के अंतर्गत कुल आवंटन का कम से कम 25 प्रतिशत भाग संबंधित राज्यो/संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा मरू विकास कार्यक्रम/सूखा प्रभावित क्षेत्र कार्यक्रम के अंतर्गत ऐसे क्षेत्रों के संबंध में जल संरक्षण, जल प्रबंधन, जल भराई तथा पेयजल संसाधनो को कायम रखने के लिए परियोजनाओं/योजनाओं के संबंध में उपयोग में लाया जाना है।

7. **प्रधानमंत्री ग्रामीण जल संवर्द्धन योजना –** 15 अगस्त 2002 से आरंभ इस योजना के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की उपलब्धता सुनिष्चित करना है। इस योजना में पहले कार्यक्रम के अंतर्गत अभावग्रस्त ग्रामीण क्षेत्रों में 1 लाख हैडपंप स्थापित किय जाएगे, दुसरे कार्यक्रम में 1 लाख ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों में पेयजल की व्यवस्था की जाएगी और तीसरे कार्यक्रम

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में पांरपरिक पेयजल स्त्रोतो का जीर्णोद्धार किया जाएगा।

8. खेतीहर मजदूर बीमा योजना – 1 जुलाई 2001 से लागू इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले खेतिहर मजदूरो को सुरक्षा प्रदान करने के साथ 100 रू प्रतिमाह पेंशन प्रदान करना है।

9. निर्मल ग्राम पुरस्कार – संपूर्ण स्वच्छता अभियान के अंतर्गत सभी पंचायती राज संस्थाएँ 24 फरवरी 2005 से प्रारम्भ 'निर्मल ग्राम पुरस्कार' के रूप में 2 लाख रू से लेकर 50 लाख रू तक नकद धनराशि पुरस्कार स्वरूप प्राप्त कर सकती है, यदि –

- पंचायत क्षेत्र में आने वाले सभी घरो में शौचालय हो तथा उनका सही प्रयोग हो रहा हो।
- क्षेत्र में खुले में शौच न किया जाता हो।
- क्षेत्र के सभी विद्यालयो में स्वच्छतागत सुविधाएँ हो तथा सभी सह शिक्षा विद्यालयों में छात्र छात्राओं के लिए अलग अलग शौचालय हो।
- सभी आंगनवाड़ी केन्द्रो में स्वच्छतागत सुविधाएँ हो।
- सभी ओर साफ सफाई व स्वच्छतापूर्ण वातावरण हो।

5000 से अधिक जनसंख्या वाली पंचायत के लिए अधिकतम 2 लाख रू दिए जाते है, जबकि 10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले जिले के लिए अधिकतम 50 लाख रू तक दिए जाते है। जिन व्यक्तियों व संगठनो ने पूर्ण स्वच्छता की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया हो उन्हे 10000 से 50000 रू तक की नकद पुरस्कार राशि दी जाती है।

10. राजीव गांधी ग्रामीण विद्युतीकरण योजना – अप्रैल 2005 से शुरू की गई इस योजना के अंतर्गत 2009 तक देश के 1 लाख गॉवो को विद्युतीकरण किए जाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इस योजना में 'ब्याज सब्सिडी योजना', 'त्वरित ग्रामीण विद्युतीकरण कार्यक्रम' तथा 'कुटीर ज्योति कार्यक्रम' का विलय करके प्रारम्भ की गई। '1 लाख गॉवो और 1 करोड़ मकानो का त्वरित विद्युतीकरण योजना' का लाभ दिया जाएगा।

11. राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन – इस योजना का प्रारंभ 12 अप्रैल 2005 को दुरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनतम परिवारो को पहुँच गम्य, वहनीय और विश्वसनीय गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिए किया गया था। यद्यपि यह मिशन पूरे देश में लागु है, लेकिन 18 राज्यो पर विशेष ध्यान दिया गया है। इस योजना की प्रमुख उपलब्धियाँ इस प्रकार रही –

1. सितम्बर 2011 तक 8.55 लाख आषाओं व कार्यकर्ताओं का चयन किया गया जिनमें से 8.07 लाख को प्रशिक्षण दिया गया।
2. दिसम्बर 2010 तक 23042 रोगी कल्याण समितियाँ कार्य कर रही थी।
3. देश में 16338 स्वास्थ्य केन्द्र प्रतिदिन सेवा कार्य कर रहे है।
4. वर्तमान में 442 मोबाईल चिकित्सा इकाईयाँ कार्य कर रही है।
5. पिछले तीन वर्षो में संस्थागत प्रसवो के लिए जननी सुरक्षा योजना के अंतर्गत 3.4 करोड़ महिलाओं को लाया गया। इसके अतिरिक्त 11712 डॉक्टर 10851 आयुष डॉक्टर, 16784 ए.एन.एम., 32860 स्टॉफ नर्से और 20159 पैरा मेंडिकल स्टॉफ इस व्यवस्था में शामिल किए गए।

उपरोक्त योजना के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रो का संतुलित विकास कर देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त किया जा सकता है। इसमें ग्रामीण आवास, सिंचाई क्षमता, सड़के, विद्युतीकरण, ग्रामीण दुरसंचार आदि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण विकास कार्य करके ग्रामीण सुविधाओं को बढाकर ग्रामीणो का सर्वागीण विकास कर गांधीजी के स्वप्न को साकार कर देश में राम राज्य की स्थापना की जा सके। देश के आर्थिक विकास को संतुलित रूप से निरन्तर गति प्रदान की जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. वीरेन्द्र प्रकाश शर्मा, भारतीय ग्रामीण समाज एवं समस्या पंचशील प्रकाशन, जयपुर
2. एम.एल. गुप्ता, भारतीय सामाजिक समस्या साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा
3. महेन्द्र कुमार शर्मा, भारतीय अर्थव्यवस्था हिमांशु पब्लिकेशन उदयपुर प्रतियोगिता दर्पण अतिरिक्तांक 2013 उद्योग व योजना पत्रिका अप्रैल 2014 दैनिक भास्कर व नईदुनिया दैनिक समाचारपत्र

****

आर्थिक नीतियों में उदारीकरण एक मूल्यांकन

डॉ. आनंद तिवारी *

शोध सारांश – उदारीकरण केवल बहुराष्ट्रीय कंपनी तक सीमित नहीं होगा। स्वदेशी उद्योग तथा फर्मे भी संचालन तथा स्पर्द्धा में सामने आयेगी, इसलिए सार्वजनिक क्षेत्र की अनार्थिक इकाइयों को बंद कर शेष को इतना सक्षम बना दिया जाय ताकि निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों में स्पर्द्धा पैदा हो जाये। इससे जहाँ बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर अंकुश लगेगा वहीं दूसरी ओर रोजगार सृजन की संभावनाएं बढ़ेंगी, जो हमारे देश की मूल आवश्यकता है। हमारी घरेलू पूंजी के संबंध में सरकार को ध्यान में रखना होगा कि घरेलू पूँजी को देश के भीतर असमान प्रतिस्पर्द्धा का सामना न करना पड़े, उसे, बराबरी के स्तर पर प्रतिस्पर्द्धा करने का अवसर देना होगा। अंतिम सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि लघु तथा कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने हेतु सभी सुविधाएँ भौतिक परिसंपत्तियों, अनुदान तथा ऋण के रूप में देकर और उनकी मानीटरिंग कर यथासंभव नवीन तकनीक का उपयोग करते हुए स्पर्द्धायोग्य बनाने होंगे और साथ ही विकास की गति भी शिथिल नहीं होनी चाहिए।

प्रस्तावना – भारत में समाजवादी तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था का मार्ग चुनकर अप्रैल 1951 से पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक विकास का श्रीगणेश किया। अब तक सात पंचवर्षीय योजनाएं पूर्ण हो चुकी हैं। निस्संदेह नियोजन काल में हमने कृषि तथा उद्योग के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित किये। इसके अलावा मानवीय संसाधन के बुनियादी शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, साथ ही बैंकिंग, वित्त तथा सहकारिता आदि क्षेत्रों में भी उन्नति की हो। किंतु न तो हम पूर्णत: बेरोजगारी को समाप्त कर सके और न ही गरीबी उन्मूलन कर सके। यही दो घटक हमारे आर्थिक पिछड़ेपन के सूचकांक हैं। 2012-13 के आँकड़ों के आधार पर लगभग 23.8 करोड़ व्यक्ति गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। प्रति व्यक्ति आय के आधार पर 125 राष्ट्रों के संघ में हमारे देश का स्थान 104वां हैं। एशिया में केवल तीन देश नेपाल, भूटान तथा बांग्लादेश भारत से ज्यादा गरीबी है । विश्व विकास प्रतिवेदन 2011 के अनुसार हमारी जनसंख्या के निचले 208 प्रतिशत लोगों का घरेलू आय में 8 प्रतिशत भाग तथा जबकि ऊपर से 20 प्रतिशत लोगों का घरेलू आय में 41 प्रतिश भाग था। यह इस बात का संकेत है कि जनसंख्या का एक बड़ा भाग आज भी विकास के लाभ की भागीदारी से वंचित है।

विश्व में हो रहे परिवर्तनों को दृष्टिगत रखकर हमने अपनी आर्थिक नीति में सुधार का बीड़ा 1991 में उठाया और इस नीति का नाम उदारवादी तथा खुलेपन की नीति दिया। इस नीति के अंतर्गत उदारीकरण उद्योग, व्यापार तथा निजीकरण के क्षेत्र में किया गया।

शोध आलेख के उद्देश्य –

1. आर्थिक उदारीकरण की नीतियों का मूल्यांकन करना।
2. आर्थिक उदारीकरण के निजी क्षेत्रों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।
3. चीन और भारत में आर्थिक उदारीकरण का तुलनात्मक अध्ययन करना।

उदारीकरण नीति का मूल्यांकन : उद्योग तथा व्यापार के क्षेत्र में – 18 उद्योगों को छोड़ शेष सभी उद्योगों को लाईसेंस से मुक्त कर दिया गया तथा विदेशी निवेश की सीमा को 51 प्रतिशत बढ़ा दिया। इसके अतिरिक्त एम.आर.टी.वी. तथा फेरा कानूनों में परिवर्तन कर दिया गया। निर्यात को प्रोत्साहन देने तथा मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण के उद्देश्य से जुलाई 1991 में रूपये का अवमूल्यन कुल मिलाकर 21 प्रतिशत कर दिया। पूँजीगत तथा उन्नत तकनीक के आयात को प्राथमिकता दी गई तथा आयात पर मात्रात्मक प्रतिबंध हटा दिये गये।

निजीकरण के क्षेत्र में उदारीकरण – उदारीकरण के फलस्वरूप एक तो सार्वजनिक क्षेत्रों की संख्या कम कर दी गई, साथ ही सरकारी क्षेत्रों के नये उद्योगों की स्थापना पर प्रतिबंध लगा दिया गया। उद्योगों में उदारीकरण की नीति का लाभ काफी सीमा तक वृहद् तथा कुछ सीमा तक मध्य स्तरीय औद्योगिक इकाईयों को मिला है। लघु औद्योगिक इकाईयों को उदारीकरण का लाभ नहीं मिल सका है। इस समय देश में कुल 18 लाख लघु औद्योगिक इकाईयाँ हैं जिनसे कुल निर्यात का लगभग 40 प्रतिशत निर्यात किया जाता है। उदारीकरण की नीति के अंतर्गत वैधानिक जटिलताओं को कम करने की बात कही अवश्य गई है किंतु विदेशी निवेशकों को अभी तक हम अपेक्षित रूप से आकर्षित नहीं कर सके हैं। इस संबंध में हमें चीनी की उदारीकरण की नीति को दृष्टिगत करना होगा। चीन ने निवेश को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से निवेशकों को तृतीय विकास प्रक्षेत्र उपलब्ध कराये, परिणामत: वहाँ अब तक 50 से 60 अरब डालर निवेश किया जा चुका है। उसकी तुलना में भारत की उपलब्धि नगण्य है। भारत में प्रक्रियात्मक विलम्ब तथा स्टाक एक्सचेंज की अव्यावसायिक कार्यप्रणाली इस संबंध में प्रमुख बाधायें हैं। निर्यात को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से हमने मुद्रा का अवमूल्यन कर दिया किंतु निर्यात में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो सकी है निर्यात का लक्ष्य हमने 14 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा था किंतु वह मात्र 6-4 प्रतिशत तक ही बढ़ पाया है और जुलाई 1991 से अब तक कुल मिलाकर मुद्रा का अवमूल्यन लगभग 48 प्रतिशत हो गया है। इसी प्रकार हमारी आयातित वस्तुएँ (14.6 : वार्षिक वृद्धि) निरंतर बढ़ ही रही है। किंतु जिन वस्तुओं का हम निर्यात कर रहे हैं उनके मूल्य का 40 प्रतिशत कच्चा माल आदि (विदेशी तकनीक के रूप में) विदेशों से मंगा रहे हैं। नई आर्थिक नीति के अंतर्गत मौद्रिक नियंत्रण का लक्ष्य रखा गया। इसके अंतर्गत 1990-91 में 43331 करोड़ रूपये व्यय का प्रावधान रखा गया था जो कि 1993-94 में घटाकर 36959 करोड़ रूपये कर दिया है। किंतु हमने यहाँ इस तथ्य को पूर्णत: उपेक्षित कर दिया कि यह कटौती उत्पादक

* प्राध्यापक एवं अध्यक्ष (वाणिज्य) शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत

मदों तथा माननीय संसाधनों की महत्वपूर्ण मदों तथा स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार-सृजन तथा ग्रामीण विकास आदि से की है। इसी प्रकार 1991-92 में राजस्व घाटे का लक्ष्य 6.5 प्रतिशत रखा गया जो कि वास्तव में 12 प्रतिशत हुआ अर्थात लक्ष्य से लगभग 92 प्रतिशत अधिक जो निस्संदेह निराशाजनक स्थिति का द्योतक है। औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के लक्षण दिखायी अवश्य पड़ते हैं, परंतु उसका मूल कारण आयात में दी गई ढील है। औद्योगिक उत्पादन के केवल उन्हीं क्षेत्रों में वृद्धि के संकेत दृष्टिगोचर होते हैं जो आयात पर निर्भर हैं। वर्ष 1991-92 में सर्वाधिक उत्पादन ह्रास (10 प्रतिशत) पृष्ठ टिकाऊ उपभोक्ता सामग्री और विद्युत मशीनरी के क्षेत्रों में हुआ था जो आयात पर कठोर नियंत्रण के शिकार हुए थे। मुद्रा स्फीति पर अपेक्षित नियंत्रण स्थापित नहीं किया जा सका है। यद्यपि 1991-92 में मुल्य वृद्धि का लक्ष्य 3 से 3.5 प्रतिशत रखा गया किंतु वास्तविक 3.5 प्रतिशत रखा गया किंतु वास्तविक वृद्धि 2.5 प्रतिशत ही रही। इस संबंध में एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि थोक मूल्यों पर आधारित मुद्रा स्फीति में गिरावट के बावजूद भी उपभोक्ता सूचकांकों पर आधारित स्फीति में गिरावट के बावजूद भी उपभोक्ता सूचकांकों पर आधारित स्फीति दर में कोई गिरावट नहीं आई है। मुद्रा-अवमूल्यन के फलस्वरूप आयात-निर्भर निर्यात की लागत बढ़ गई है जबकि हमारा निर्यात सस्ता हो गया है। मुद्रा अवमूल्यन न तो निर्यात सामग्री की लागत को घटा सका है और न ही उसकी गुणवत्ता सुधार सकता हैं यदि उत्पादन लागत में 40 प्रतिशत वृद्धि हुई तो उसके मूल्य में 8 प्रतिशत वृद्धि होना तय है। इस प्रकार नवीन आर्थिक नीति ने प्रारंभ में कतिपय सीमा तक अर्थव्यवस्था को गति तो अवश्य प्रदान की है किंतु यह तय है कि दीर्घकाल की दृष्टि से इस नीति में कुछ सुधार अपेक्षित है।

चीन में उदारीकरण की स्थिति – चीन लगभग एक दशक से अधिक समय से सुधार कार्यक्रमों को क्रियान्वित कर रहा है और चीन की विकास दर आज 9 प्रतिशत से अधिक है जो इस बात का संकेत है कि नवीन आर्थिक उदारता नीति चीन में सफल रही है। चीन का उदाहरण भारतीय संदर्भ में अत्यधिक महत्व का है। वहाँ एक और जहाँ लोगों की बचतें बढ़ गई हैं। (उदारीकरण से पूर्व जो मात्र 6 प्रतिशत थी, अब लगभग 38 प्रतिशत हो गई है) वहीं दूसरी ओर विदेशी निवेश भी बढ़ा है। नई तकनीक को अपनाने से न केवल श्रमिकों की कार्यकुशलता तथा माल की गुणवत्ता में आश्चर्यजनक सुधार हुआ है अपितु नई तकनीक से रोजगार को बढ़ावा मिला है। जिससे श्रमिकों का जीवन स्तर सुधरा है, साथ ही अनेक नागरिकों ने स्वयं उद्यमी बनना भी स्वीकार किया है।

निष्कर्ष – उदारीकरण केवल बहुराष्ट्रीय कंपनी तक सीमित नहीं होगा। स्वदेशी उद्योग तथा फर्में भी संचालन तथा स्पर्द्धा में सामने आयेंगी, इसलिए सार्वजनिक क्षेत्र की अनार्थिक इकाइयों को बंद कर शेष को इतना सक्षम बना दिया जाय ताकि निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों को बंद कर शेष को इतना सक्षम बना दिया जाय ताकि निजी क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों में स्पर्द्धा पैदा हो जाये। इससे जहाँ बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर अंकुश लगेगा वहीं दूसरी ओर रोजगार सृजन की संभावनाएं बढ़ेंगी, जो हमारे देश की मूल आवश्यकता है। हमारी घरेलू पूंजी के संबंध में सरकार को ध्यान में रखना होगा कि घरेलू पूँजी को देश के भीतर असमान प्रतिस्पर्द्धा का सामना न करना पड़े, उसे, बराबरी के स्तर पर प्रतिस्पर्द्धा करने का अवसर देना होगा। अंतिम सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि लघु तथा कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने हेतु सभी सुविधाएँ भौतिक परिसंपत्तियों, अनुदान तथा ऋण के रूप में देकर और उनकी मानीटरिंग कर यथासंभव नवीन तकनीक का उपयोग करते हुए स्पर्द्धायोग्य बनाने होंगे और साथ ही विकास की गति भी शिथिल नहीं होनी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भारतीय अर्थव्यवस्था, रूद्रदत्त एवं सुंदरम्, एस. चंद पब्लिकेशन नई दिल्ली।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था, मिश्र एवं पुरी, हिमालय पब्लिकेशन मुंबई।
3. योजना, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, 15 मार्च 1994।
4. कुरूक्षेत्र, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, नवंबर 2004।
5. जनसत्ता समाचार पत्र, 28 मार्च, 2009, नई दिल्ली।

****

परम्परागत खुदरा व्यापार का भविष्य(आधुनिक संगठित बहुराष्ट्रीय खुदरा कम्पनियों के संदर्भ में)

डॉ. राकेश माथुर* गौरव राठौर **

प्रस्तावना – खुदरा यानि कि रिटेल शब्द से आज हर व्यक्ति परोक्ष रूप से परिचित है। यह एक व्यापारिक इकाई कि ऐसी व्यवस्था है जो अत्यंत सूक्ष्म तो हैं पर हर उत्पादक कार्यरत है जैसे कि मानव शरीर में श्वेत रक्त कण। उपरोक्त पंक्ति को इसलिये लिखा गया है क्योंकि उत्पादक की समस्या की इतिश्री नहीं हो जाती है अपितु उसे अंतिम उपभोक्ता तक पहुंचा कर उपभोग कर संतुष्टि पा कर पुनः मांग आ जाने तक भी है इसी क्रम में रिटेलर याने खुदरा व्यापारी भी अपनी भूमिका उस उत्पादित माल को उपभोक्ता तक पहुँचाने में अहम भूमिका निर्वाह करता है।

खुदरा व्यापार से आशय– खुदरा व्यापार का अर्थ यदि सरल शब्दों में समझा जाये तो इससे यह ज्ञात होता हैं कि थोक व्यापारी से सीमित मात्रा में यह माल खरिदता हैं और उसे छोटी छोटी मात्राओं में उपभोक्ताओं को बेच देता है। यदि एक आर्दश वाक्य में इसका अवलोकन करें तो खुदरा व्यापार वितरण व्यवस्था का मुख्य कार्य है जो थोक व्यापारी सें माल खरीदता हैं एवं सीधे उपभोक्ता को बेच देता हैं।

वैश्विक खुदरा व्यापार परिदृश्य – खुदरा व्यापार किसी देश कि अर्थव्यवस्था में कितना सहायक हैं इसका अवलोकन केवल इस तथ्य सें किया जा सकता है कि 2008 में अमेरिका कि सकल घरेलु उत्पाद दर में 31 प्रतिशत् का योगदान था। विकसित अर्थव्यवस्था वाले देशों का ध्यान रखा जाए तो संगठित रिटेल उपक्रमों का कुल रिटेल व्यापार में 75से 80 प्रतिशत तक का योगदान निहीत होता हैं।

भारत में खुदरा व्यापार – भारत का स्थान विश्व के बाजारों में पॉचवें स्थान पर आता हैं एक सर्वे के अनुसार 30 देशों में चार क्रम पर भारत की खुदरा व्यापार के विकास में भुमिका है। भारत में खुदरा व्यापार का आकार वर्तमान में 520 बिलियन डॉलर का हैं जो कि 14 प्रतिशत प्रति वर्ष कि दर से विकास कि दर को प्राप्त कर लेगा ऐसा अनुमान हैं यदि सी.ए.जी.आर का अनुमान माने तो 2018तक यह आकडॉ 950 बिलियन डॉलर तक पहुँच जायेगा। परन्तु भारत में संगठित खुदरा व्यापार कि स्थिति कुल खुदरा व्यापार की 8से10 प्रतिशत है। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि भारत में खुदरा व्यापार का भविष्य अत्यत उज्वल हैं। वर्तमान समय में संगठित खुदरा व्यापार समुह टियर 1 समुह से टियर 2 से टियर 3 शहरो कि और अग्रसर है वे शहर इन शहरो में भी विकास की नई सम्भावनाएं तलाश रहे हैं सरकार ने भी खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को भी मुक्त कर दिया है जिसे कि मल्टीब्राडेण्ड खुदरा व्यापार का भी अवसर मिले।

संगठित खुदरा व्यापार के प्रमुख नाम– दैनिक उपभोग एवं खाद्य पदार्थ –

फुड बाजार– प्रिल ने 2002 फुड बाजार कि स्थापना कि प्रांरभ में यह बिग बाजार का भाग था पर अब यह सतत् रूप से व्यापार संलग्न है। इसकी विशेषता है कि लाई बेकरी, फ्रेश ज्युस भी उपल्बध कराता है।

मोर– आदित्य बिरला लि. ने 2006 में त्रिनेत्र सुपर मार्केट को अधिग्रहित कर मोर का प्रांरभ किया यह प्रांरभ में दक्षिण भारत कि रिटेल श्रृंखला थी 2007 में मोर का पहला आउटलेअ पुणे में प्रांरभ हुआ। इसके आउट लेंट 2500 स्केवर फिट में फैला हैं जहा पर सब्जीयॉब सौन्दर्य प्रसाधन, दुध उत्पाद जुतें चप्पल आदि सभी वस्तुए मिलती है।

रिलायंस रिटेल– रिलायंस रिटेल लि. रिलायंस रिटेल कम्पनी कि सहायक इकाई है 2006 में खाद्य एवं किराना उत्पाद के साथ इस क्षेत्र में प्रवेश किया था स्टोर– फल, सब्जी, बर्तन, सौन्दर्य प्रसाधन आदी वस्तुए सीधे उत्पादक से खरिदता है एवं उपभोक्ता को सेवाएं प्रदान करता है।

कुछ फैशन एवं युटीलीटी उत्पाद– पैंटालुन का पहला आउटलेट 1997 में 8000 स्कवेअर के साथ गरियाहर में शुरू हुआ पेंटालुन में ख्यात् परिधान डेनिम आदि उपल्बध है। शॉपर स्टॅपस यह भारत कि एक प्रमुख बडी रिटेल श्रंखला है जहॉ पर देशी एवं विदेशी लाईफ ब्राडण्डस उपल्बध होते है

कुटान्स – रेडिमेट वस्तुओं के निर्माता एवं विक्रेता कुटान्स् का नाम भारतीय उपभोक्ताओं का ज्ञात ही है। यह नाम चार्ली आउटलेट क्रियेशन नें सन् 1991 में प्रांरभ किया 1998 में पुरूष परिधान एवं सन्2008 में महिला परिधान लॉच किया गया जो कि 16 से 34 वर्ष आयु वाले वर्ग के लिये अनुकुल है। जैसें टि शर्ट, डेनिम,केफरी आदी साथ ही बच्चों के लिये कई आकर्षक श्रंखला उपल्बध है

रिबाक– भारतीय व्यापार जगत में रिबाक ने कदम रखा है। भारतीय फुटवियर जगत में रिबाक एक अग्रणी ब्राण्ड हैं रिबाक में साथ ही फिटनेस उत्पाद भी उपल्बध है।रिबाक में नया ब्राण्ड रिवाक क्लासिक भी उपल्बध है।

बाटा– बाटा भारतीय जगत का सिरमोर है यह भारत के अपने रबर,चप्पल, केनवास, चमड़े के जुते और प्लास्टीक उत्पाद प्रख्यात हैं इसके ब्राड नार्थ पॉवर, एम्बेसेडर मल्टीक्लेयर आदी उत्पाद हैं।

इलेक्ट्रोनिक गैजेटस्– इलेक्ट्रोनिक उपकरण के प्रमुख रिटेलर ई जोन है जो कि किशोर बयानी के फ्युचर ग्रुप का हैं पहले ई जोन का उद्घाटन इंदौर शहर में हुआ ई जोन व्यक्तिगत उत्पाद जैसे कम्प्युटर,हैन्डी कैम, मोबाईल,प्लेट

* प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय स्वामी विवेकानंद महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र) भारत
** शोधार्थी, शासकीय स्वामी विवेकानंद महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र) भारत

टी.वी,एयर कन्डीशनर,वाशिंग मशीन, आदि कई प्रकार के आधुनिक उपकरण उपल्बध है।

ज्वेलरी रिटेलर्स– गीतांजली ज्वेलरर्स लि. भारत का बडा एवं विश्वसनीय नाम है जो कि हीरे एवं ज्वेलरी उत्पाद बनाता हैं यह मुख्यत: प्राथमिक एवं द्वितीयक स्त्रोतों से हीरे खरिदता है एवं उनकी कटींग एवं पालिसिंग कर देशी एवं विदेशी बाजारों में विकृय करता है जैसें – गिली,अस्सी, संगिनी, डीमास, आदी।

तनिष्क ज्वेलर्स– 1990 में टाटा ग्रुप द्वारा रिटेल ज्वेलरी तनिष्क की शुरूआत कि इसका कारखाना तमिलनाडु में स्थापित किया गया।इसका क्षेत्रफल 135000 स्कवेअर फिट है जहॉ पर सभी प्रकार कि आधुनिक मशीनें स्थापित है। वर्ष 2008 में भारत भर मे इसकी 115 शाखाऐं स्थापित है।

संगठित खुदरा व्यापार के प्राथमिक होने के कारण–

1. सभी वस्तुऍ एक ही स्थान पर उपल्बध होना ।
2. आकर्षक ऑफर उपल्बध होना
3. स्टाफ का मधुरतम व्यवहार।
4. कीमत अन्य स्थानों से कम होना
5. क्रय करने में उपभोक्ता को अधिकतम संतुष्टि होना।

यहॉ पर अपवाद स्वरूप तथ्य यह भी है कि भले ही यह संगठित रिटेलर्स कितने भी प्रयत्न कर लें परन्तु भारतीय उपभोक्ता का एक मध्यम वर्ग आज भी आज संगठित रिटेलरर्स से सन्तुष्ट है। यह उनकी ही विशेषता हैं कि आज भी उपभोक्ताओं का बडा वर्ग इन्ही के पास से सभी खरीदी करता है। जिसके कारण निम्न हैं –

1. व्यक्तिगत पहचान होना।
2. घर के पास ही उपल्बध होना।
3. वापसी की सुविधा
4. उधार भी माल मिल जाता हैं
5. मधुर व्यवहार।
6. सामाजिक एवं अन्य कार्यो में सहभागिता।
7. इनसे सामान खरीदने के लिए अतिरिक्त समय कि आवश्यकता नहीं।

निष्कर्ष– उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय उपभोक्ता ओं का सुक्ष्म वर्ग तो संगठित व्यापारी रिटेलरर्स का है परन्तु एक बडा वर्ग आज भी और भविष्य में असंगठित (गली महोल्ला) वाले व्यापारी के पास उपल्बध है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. www.dnb.co.in/indian/industry/overview.asp
2. व्यक्तिगत सर्वेक्षण।

Segments	Total retail market (Rs billion)			Organised retail market (Rs billion)		
	2006	2007	Share in 2007	2006	2007	Share in 2007
Clothing & accessories	1135	1313	9.50%	214	298	38.10%
Food and grocery	7439	7920	62.00%	58	90	11.50%
Footwear	137.5	160	1.10%	52	77.5	990.00%
Electronics	481	575	4.00%	50	71	9.10%
Catering services (F&B)	570	713	4.80%	39.4	57	7.30%
Home & office improvement	406.5	455	3.40%	37	50	6.40%
Telecom	216.5	272	1.80%	17.4	27	3.40%
Entertainment	380	456	3.20%	15.6	24	3.10%
Jewellery	602	694	5.00%	16.8	23	2.90%
Book,music & gifts	133	164	1.10%	16.8	22	2.80%
Watches	39.5	44	0.30%	18	21.5	2.70%
Pharmaceuticals	422	488	3.50%	11	15.4	2.00%
Beauty &Wellness	38	46	0.30%	4	6.6	0.80%
Total	12000	13300		550	783	

****

उद्यमिता विकास

डॉ. रामजी गर्ग * डॉ. विवेक पटेल **

शोध सारांश – उद्यमिता से आशय वह प्राकृतिक गुण है जो उन व्यक्तियों में निहित है जो हानि सहन करने की दक्षता और क्षमता रखता है एवं भविष्य की अनिश्चितता का भी बड़ी धैर्यता के साथ सामना कर सकें। अर्थात् जोखिम सहन करने की असीमित शक्ति धारण करते हुये कुशलता से व्यवसाय चलाना ही उद्यमिता कहलाता है।16वीं शताब्दीं में उद्यमिता का प्रयोग फ्रांस में सैन्य अभियान के अंतर्गत किया गया था। सैन्य संचालन में व्यवस्था या प्रबंधन की आवश्यकता होती है। 17वीं शताब्दी आते–आते पुलो का बन्दरगाहों का निर्माण करने वाले ठेकेदार भी उद्यमी की श्रेणी गिने जाने लगे। इस प्रकार सत्रहवीं शताब्दी में पूरे विश्व में उद्यमिता की जानकारी हो गई। भारतवर्ष में 18वीं शताब्दी में अंग्रेजो के आगमन के बाद उद्यमिता विचारधारा का अभ्यूदय हुआ (उन्नीसवीं शताब्दी) में फ्रांस में ब्रदर्स पेरेर ने एक बैंक बनाया तथा उद्यमी बैंक की प्रतिस्थापना की इसी प्रकार व्यवसायी रूप में उद्यमी शब्द का प्रयोग होने लगा। आधुनिक युग नई वैचारिक क्रांति का है जो विकास के निरंतर आगे की ओर बढ़ने का प्रयत्न है। औद्योगीकरण के कारण ही विश्व में प्रगति के नये द्वार खुले है। गरीबों को आधार प्रदान करना, बेरोजगारी दूर करना, सभी को व्यक्ति की योग्यता के अनुसार काम मिलना, औद्योगिक प्रतिक्रिया का ही परिणाम है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति तभी हो सकती है जब वह देश औद्योगीकरण की दृष्टि से सम्पन्न हो और यह सब उद्यमिता विकास से ही संभव है।

प्रस्तावना – उद्यमिता जैसा कि नाम से ही प्रकट होता है कि किसी भी कार्य को करने का साहस होता है। उद्यमशीलता प्राकृतिगत होती हैं। उद्यम व्यक्ति को कर्त्तव्य तथा कर्त्तव्यनिष्ठा के रूप में प्रस्तुत करता है। प्रत्येक मनुष्य का उद्देश्य होता है कि जीवन में आनन्द प्राप्त करना। आनन्द शब्द का तात्पर्य सुखमय जीवन का प्रतीक है। सुखमय जीवन समृद्धि से ही संभव है और समृद्धिमय बनना सभी आवश्यक संसाधनों से युक्त या सम्पन्न रहना। उद्यमी धन ही प्राप्त नहीं करता अपितु वह प्रतिष्ठा भी अर्जित करता है, लेकिन प्रतिष्ठा व्यक्ति के विकास से ही संभव है। उद्यमी को धन या संग्रह धर्मनिष्ठ होना चाहिए अर्थात् जीवन का उद्धेश्य सिर्फ धन ही नहीं अपितु सामाजिक कल्याण होना चाहिए। मनुष्य स्वभाव से ही विचारशील है इसलिये वह पशुओं से अलग है, श्रेष्ठ है। समाज में हरकर व्यक्तित्व का विकास करता हुआ सर्वोत्तम प्राप्त करने की चेष्ठा करता है। यही सर्वोत्तम व्यक्ति के जीवन का सारा प्रयत्न है। आत्म सम्मान जीवन का प्रतीक है और ये सभी उद्यम से ही प्राप्त होती है। व्यक्ति की सामाजिक व आर्थिक उन्नति का एक प्रमुख कारण उद्यमशीलता भी है। उद्यम ही मनुष्य की सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक है। कहा गया है कि 'आवश्यकता अविष्कार जननी है अर्थात् हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास को ही उद्यम कहते है। उद्यम का गुण जिस व्यक्ति में होता है वही उद्यमी कहलाता है। उद्यमिता आर्थिक विकास एवं सामाजिक प्रतिष्ठा का मूलमंत्र है। उद्यमशीलता एक कला है ऐसा व्यवस्थित तरीका है जो नवीन जीवन जीने का गुर सिखलाता है। उद्यमिता से ही व्यक्ति में साहस, धैर्य के गुण विकसित होते है, असंभव कार्य को संभव बनाने की आंतरिक क्षमता जागृत होती है।

आधुनिक युग में उद्यमिता से ही वैज्ञानिक सोच को एक नई दिशा मिली। व्यावसायिक कुशलता के लिए प्रेरक शक्ति व चिन्तन शक्ति का विकास होता है। नित्य नये परिवर्तन ही प्रकृति का स्वभाव है। यह नवीनता उद्यमिता द्वारा ही संभव है। प्रत्येक राष्ट्र में सामाजिक परिवर्तन हुए है और नवीनता के प्रति अग्रसर हुए है, विश्व का कोई भी देश हो उसकी सम्पन्नता उद्यमिता विकास से ही संभव है। देश के भविष्य का विकास इसी पर टिका हुआ है।

आधुनिक युग नई वैचारिक क्रांति का है जो विकास के निरंतर आगे की ओर बढ़ने का प्रयत्न है। औद्योगीकरण के कारण ही विश्व में प्रगति के नये द्वार खुले है। गरीबों को आधार प्रदान करना, बेरोजगारी दूर करना, सभी को व्यक्ति की योग्यता के अनुसार काम मिलना, औद्योगिक प्रतिक्रिया का ही परिणाम है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति तभी हो सकती है जब वह देश औद्योगीकरण की दृष्टि से सम्पन्न हो और यह सब उद्यमिता विकास से ही संभव है।

उद्यमिता से आशय –उद्यमिता से आशय वह प्राकृतिक गुण है जो उन व्यक्तियों में निहित है जो हानि सहन करने की दक्षता और क्षमता रखता है एवं भविष्य की अनिश्चितता का भी बड़ी धैर्यता के साथ सामना कर सकें। अर्थात् जोखिम सहन करने की असीमित शक्ति धारण करते हुये कुशलता से व्यवसाय चलाना ही उद्यमिता कहलाता है। उत्पादन के सभी साधनों भूमि, श्रम एवं पूंजी को एकत्रित कर सुव्यवस्थित तरीके से उनका समुचित प्रयोग करना तथा भविष्य में उत्पादन के प्रति सावधानी से क्रियाशील होना ही उद्यमिता है। उद्यमिता ही किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास का एक प्रमुख कारण होता है। सृजनशीलता एवं नवप्रवर्तन को नयी राह उद्यमिता से ही प्रशक्त होती है। भविष्य की अनिश्चितताओं को ध्यान में रखकर जोखिम वहन करने की शक्ति धारण कर जो कार्य को सम्पादित किया जाय वह उद्यमिता है।

उद्यमिता द्वारा देश में व्याप्त गरीबी एवं बेरोजगारी जैसी समस्याओं को दूर किया जा सकता है। उद्यमिता किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था का आधार होता है। हर देश के पास प्रचुर मात्रा में संसाधन होते है, लेकिन उद्यमिता के

* अतिथि विद्वान (वाणिज्य) शासकीय महाविद्यालय, तेन्दूखेड़ा (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय महाविद्यालय,कोतमा, जिला – अनूपपुर (म.प्र.) भारत

माध्यम से ही इन संसाधनो का कुशलतम प्रयोग कर देश के लिए नई संभावनाएँ प्राप्त की जा सकती है।

उद्यमिता का उद्भव – 16वीं शताब्दीं में उद्यमिता का प्रयोग फ्रांस में सैन्य अभियान के अंतर्गत किया गया था। सैन्य संचालन में व्यवस्था या प्रबंधन की आवश्यकता होती है। 17वीं शताब्दी आते–आते पुलो का बन्दरगाहों का निर्माण करने वाले ठेकेदार भी उद्यमी की श्रेणी गिने जाने लगे। इस प्रकार सत्रहवीं शताब्दी में पूरे विश्व में उद्यमिता की जानकारी हो गई। भारतवर्ष में 18वीं शताब्दी में अंग्रेजो के आगमन के बाद उद्यमिता विचारधारा का अभ्यूदय हुआ (उन्नीसवीं शताब्दी) में फ्रांस में ब्रदर्स पेरेर ने एक बैंक बनाया तथा उद्यमी बैंक की प्रतिस्थापना की इसी प्रकार व्यवसायी रूप में उद्यमी शब्द का प्रयोग होने लगा।

परिभाषाएँ –

1. पीटर एफ.ड्रकर के अनुसार,

'व्यवसाय में अवसरों को अधिकाधिक करना अर्थपूर्ण है। ड्रकर मानते है कि समाज में धन संपदा का निर्माण करने संसाधनो को उत्पादक बनाने आर्थिक मूल्यों का सृजन करने का महत्वपूर्ण साधन है।

2. जोसेस सुम्पीटर,

'उद्यमिता एक नवप्रवर्तनकारी कार्य है वह स्वामित्व की अपेक्षा नेतृत्व कार्य है।'

उद्यमिता की विशेषताएँ –

- **एक कौशल –** उद्यमिता को पूरी कुशलता के साथ जाना जा सकता है। जीवन का अधिकांश कार्य एवं व्यवहार ज्ञान के द्वारा ही जाना जा सकता है। ज्ञान से उद्यमी जीवन में साहसिक बनता है। साहसी व्यक्ति नवीन चीजों की जानकारी रखता है।
- **जोखिम उठाना –** मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन ही जोखिम से भरा होता है। लाभ हानि जीवन के दो पहलू है। उद्यमिता में उद्यमी को जोखिम वहन करना पड़ता है। व्यवसाय में अनेक प्रकार के जोखिम विद्यमान होते है। उद्यमी इन व्यवसायिक जोखिमों को वहन करता है। उद्यमी का यह विशेष युग है।
- **संसाधनो का कुशलतम उपयोग –** कुशल उद्यमी उत्पादन के विभिन्न साधनो को एकत्र कर उन्हें उत्पादन प्रक्रिया में लगाता है। उद्यमी इन संसाधनो का व्यवसायिक कार्य में बड़ी कुशलता के साथ प्रयोग करता है।
- **नवप्रवर्तन –** प्रकृति में हमेशा परिवर्तन होते रहता हैं। नवप्रवर्तन उद्यमिता का प्रमुख तत्व है। नवप्रवर्तन से तात्पर्य नित नये परिवर्तन, नवीन खोज होते रहते है। व्यक्ति इससे प्रेरित होता है।
- **निर्णय लेने की पात्रता –** व्यवसाय में विभिन्न प्रकार के निर्णय लेने पड़ते है। उद्यमी व्यक्ति व्यवसाय से संबंधित निर्णय लेने की क्षमता का पूर्ण प्रयोग करता है।
- **आंतरिक प्रेरणा –** जोखिम वहन करना उद्यमी की आंतरिक व स्वा.प्रेरणा शक्ति है, जो सभी व्यक्तियों में नहीं पाई जाती है। कुछ ही व्यक्ति साहसी होते है जो जोखिम को वहन करने की क्षमता रखते है। जब आंतरिक शक्ति प्रेरित होती है तो सभी कार्य कुशलता पूर्वक सम्पादित होते है।
- **व्यक्तित्व का विकास –** किसी भी राष्ट्र की समृद्धि तब होती है, जब वहाँ के नागरिक अपने व्यक्तित्व विकास के साथ आगे बढ़ते है। उद्यमिता से ही व्यक्तित्व का विकास होता है। इससे उसका आत्म विश्वास बढ़ता है। वही आत्म विश्वास उसे सफलता की ऊँचाइयों तक ले जाने में मदद करता है।
- **सार्वभौमिकता –** उद्योगों का आकार चाहे छोटा हो या बड़ा समस्त प्रकार के उद्योगों के लिए उद्यमिता आवश्यक है। उद्यमिता एक ऐसी प्रक्रिया है जो हमेशा विद्यमान रहती है।

उद्यमिता की सीमाएँ – साहसी व्यक्तियों का अभाव उद्यमिता विकास पूर्णत: जोखिम वहन करने की क्षमता पर निर्भर है, वर्तमान में युवाओं में साहसी मनोवृत्ति का अभाव होता है। युवाओं में व्यवसाय करने की अपेक्षा नौकरी करना ज्यादा पसंद करते है, क्योंकि व्यवसाय में जोखिम अधिक होता है, जिसे लोग वहन नहीं करना चाहते। इस प्रकार से देश में साहसी व्यक्तियों अभाव के कारण उद्यम विकसित नहीं हो पाता।

- **आंतरिक संरचना की कमी –** उद्यमी को व्यवसाय की स्थापना हेतु कुछ मूलभूत सुविधाओं की आवश्यकता होती है, जैसे– बिजली, सड़क एवं पानी इनकी कमी के कारण उद्योगों का पर्याप्त विकास नहीं हो पाता है।
- **तकनीकी की कमी –** वर्तमान में व्यवसाय के विकास में तकनीकी क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान होता है लेकिन विकासशील एवं अल्पविकसित राष्ट्रों के पास के पूंजी की कमी के कारण तकनीकी विकास नहीं कर पाती है, एवं उद्यमियों को नवीन तकनीकी की जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती। जो उद्यमिता के विकास में एक बाधा है।
- **शोध एवं अनुसंधानो के प्रति उदासीनता –** विद्यमान उपक्रमों के विकास के आवश्यक है कि इनमें नये–नये शोध एवं अनुसंधान किये जाए, लेकिन हमारे देश शोध एवं अनुसंधान पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा है, इनके अभाव में नवप्रवर्तन नहीं हो पाता है।
- **वैधानिक नियंत्रण में –** किसी भी उपक्रम को स्थापित करने के लिए बहुत से वैधानिक औपचारिकताओं को पूरा करना आवश्यक होता है, ये नियम इतने कठोर होते है उद्यमी इन औपचारिकताओं को पूरा करने में अपने आप को असहज महसूस करता है। जिससे वे उद्यम की ओर आकर्षित नहीं होते है।
- **पूंजी का अभाव –** पूंजी किसी भी व्यवसाय की जीवनदायनी रक्त होती है जिसके अभाव में कोई भी व्यवसाय अपना विकास नहीं कर सकता है। अत: पूंजी की कमी भी उद्यमिता के विकास में एक बड़ी समस्या है।
- **स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का अभाव –** छोटे उद्योगों द्वारा उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं का विकल्प बड़े उद्योग विशाल लेते है, जिससे उनके बीच अनुचित प्रतिस्पर्धा होती है। अत: स्वस्थ प्रतिस्पर्धा की कमी भी उद्यमिता विकास की सबसे बड़ी बाधा है।

उद्यमिता के विकास हेतु सुझाव –

- **साहस हेतु प्रेरणा –** वर्तमान में उद्यमिता के विकास के लिए युवाओं में साहस की भावना का विकास करना इसके लिए उन्हें प्रेरित किया जाना चाहिए।
- **आंतरिक संरचना का विकास –** किसी भी देश में उद्यमिता के विकास के लिए आंतरिक संरचना सड़क, बिजली एवं पानी का विकास पर्याप्त होनी चाहिए जिससे उद्योगों को किसी भी प्रकार से समस्या न हो।
- **तकनीकी शिक्षा का विकास –** देश में उद्यमिता विकास के लिए तकनीकी शिक्षा का विकास पर जोर देना चाहिए। इसके लिए पाठ्यक्रमों में तकनीकी शिक्षा के विषय को शामिल करना चाहिए एवं तकनीकी शिक्षा के लिए सरकार को विशेष सुविधा प्रदान करना चाहिए।
- **शोध एवं अनुसंधान को प्रोत्साहन –** उद्यम के विकास के लिए शोध एवं अनुसंधान परियोजनाओं को प्रोत्साहन करना चाहिए। शोध एवं

अनुसंधान में नवप्रवर्तन पर विशेष ध्यान देना चाहिए जिससे औद्योगिक कार्यो में गुणवत्ता आ सके।

- **वैधानिक नियंत्रण में छूट –**उद्यमिता के विकास के लिए सरकार को वैधानिक नियमों में थोड़ी छूट देना चाहिए जिससे उद्यमी व्यक्ति उद्यम की स्थापना आसानी से कर सके।
- **वित्तीय प्रबंधन –** किसी भी उपक्रम की स्थापना एवं विकास के लिए प्राथमिक आवश्यकता वित्त का प्रबंध होता है। अत: उद्यमिता के विकास के लिए आवश्यक है कि उद्यमियों की स्थापना एवं विस्तार के लिए पर्याप्त वित्त उपलब्ध कराना चाहिए।

इसके लिए वित्त उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं का विस्तार किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष – आधुनिक युग में उद्यमिता से ही वैज्ञानिक सोच को एक नई दिशा मिली। व्यावसायिक कुशलता के लिए प्रेरक शक्ति व चिन्तन शक्ति का विकास होता है। नित्य नये परिवर्तन ही प्रकृति का स्वभाव है। यह नवीनता उद्यमिता द्वारा ही संभव है। प्रत्येक राष्ट्र में सामाजिक परिवर्तन हुए है और नवीनता के प्रति अग्रसर हुए है, विश्व का कोई भी देश हो उसकी सम्पन्नता उद्यमिता विकास से ही संभव है। देश के भविष्य का विकास इसी पर टिका हुआ है।

आधुनिक युग नई वैचारिक क्रांति का है जो विकास के निरंतर आगे की ओर बढ़ने का प्रयत्न है। औद्योगीकरण के कारण ही विश्व में प्रगति के नये द्वार खुले है। गरीबों को आधार प्रदान करना, बेरोजगारी दूर करना, सभी को व्यक्ति की योग्यता के अनुसार काम मिलना, औद्योगिक प्रतिक्रिया का ही परिणाम है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति तभी हो सकती है जब वह देश औद्योगीकरण की दृष्टि से सम्पन्न हो और यह सब उद्यमिता विकास से ही संभव है।

संदर्भग्रंथ सूची:-

1. दैनिक जागरण रीवा म0प्र0।
2. उद्यमिता विकास म.प्र.हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल (म.प्र.)।
3. उद्यमिता विकास कैलाश पुस्तक सदन भोपाल (म.प्र.)।
4. उद्यमिता विकास पुणेकर पब्लिकेशन खजूरी बाजार इन्दौर।

****

मण्डियों का प्रशासन, प्रबन्धन, संगठन एवं अधिनियम की भूमिका

डॉ. सतीश माहेश्वरी * प्रो. मोहन सिंह वास्केल * *

प्रस्तावना – कृषि उपज मण्डियों के अन्तर्गत संगठन का समिति संगठन प्रारूप अपनाया जाता है। यह संगठन की एक प्रजातांत्रिक प्रणाली है। एक कुशल व दृढ़ अध्यक्ष के समिति के दो विशेषज्ञ सदस्य किसी भी समस्या के निर्णय के संबंध में अपनी बुद्धि एवं अनुभव से शीघ्र एवं व्यवहारिक निर्णय लेते है। इन समितियों का महत्वपूर्ण उपयोग नीति निर्माण के क्षेत्र में होता है। जब इनका इस प्रकार प्रयोग किया जाता है। तो यह प्रशासकीय समितियां कहलाती है।

मालवा क्षेत्र में स्थित कृषि उपज मण्डियों का संगठन भी समिति संगठन के आधार पर किया जाता है। प्रारम्भ में इन मण्डियों का संचालन व्यापारियों के द्वारा किया जाता था। वर्तमान में इन मण्डियों का संचालन समिति संगठन प्रारूप तो है। किन्तु समिति के सदस्यों के कर्तव्य, अधिकार एवं दायित्वों का निर्धारण म.प्र. कृषि उपज मण्डी अधिनियम 1972 के अन्तर्गत होता है। कृषि उपज मण्डी समितियां अपने कर्तव्यों को सुचारू रूप से पालन करने हेतु उपसमितियां भी बना सकती है, इससे अधिकारों का विकेन्द्रीकरण होकर कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। अत: मालवा क्षेत्र में स्थित कृषि उपज मण्डी द्वारा भी म.प्र. कृषि उपज मण्डी अधिनियम के अधीन उपसमितियां बनाई गई है।

शोध का उद्देश्य– किसी ऐसे क्षेत्र में जिसके लिये मण्डी की स्थापना किया जाना प्रस्तावित हो स्थानीय प्राधिकारी द्वारा या किसी कृषि उपज की पैदावार करने वाले द्वारा किये गये अभ्यावेदन पर या अन्यथा राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा तथा ऐसी रीति से जो कि विहित की जाय, कृषि उपज के क्रय विक्रय का विनिमय करने के लिये अपने आशय की घोषणा कर सकेगी तथा इसके बाद अगर किसी को आपत्ति हो तो उस पर राज्य सरकार ऐसी घोषणा करने के बाद राज्य सरकार समस्त या किसी भी कृषि उपज के संबंध में मण्डी स्थापित कर सकेगी तथा प्रत्येक ऐसी मण्डी समिति ऐसे नाम से जिसे राज्य सरकार विनिर्दिष्ट करे एक निर्गमित निकाय होगी उसका शाश्वत उत्तराधिकार होगा तथा उसकी एक सामान्य मुद्रा होगी वह अपने नाम से वाद चला सकेगी व इसके विरूद्ध भी वाद चलाया जा सकेगा। इस अधिनियम या नियमों के अधीन उसे अनुबंध करने का अधिकार व सम्पत्ति खरीदने, बेचने व हस्तान्तरित करने का अधिकार होगा।

परिकल्पना–

प्रजातांत्रिक प्रणाली द्वारा मण्डियों से संबंधित नियम बनाये जाते है।

मध्य प्रदेश कृषि उपज अधिनियम–मध्यप्रदेश के संगठन के पूर्व मध्य भारत कृषि उपज मण्डी अधिनियम 1952 क्रियाशील था। सम्पूर्ण मध्यप्रदेश में एक सा नियम और प्रतिबन्ध लागू करने के दृष्टिकोण से मध्यप्रदेश कृषि उपज मण्डी अधिनियम 1960 पारित किया गया। 03 अगस्त 1960 को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हुई। यह अनुमति 26 अगस्त 1960 को मध्यप्रदेश राजपत्र में प्रकाशित की गई। इसके पश्चात मध्यप्रदेश शासन ने पुन: पूर्ण रूप से संशोधित मध्यप्रदेश कृषि उपज मण्डी अधिनियम 1972 बनाया, जिस पर 18 अप्रैल 1973 को राष्ट्रपति ने अपनी स्वीकृति दी व इसे 27 अप्रैल 1973 को राजपत्र में प्रकाशित किया गया। इसमें कुल 82 धाराएं है तथा यह अधिनियम 01 जून 1973 से प्रभावशील किया गया। मध्यप्रदेश में कृषि उपज के क्रय विक्रय का उत्तम नियमन करने की दृष्टि से एवं नई मण्डियों की स्थापना करने की दृष्टि से अधिनियम 1972 पारित किया गया यह अधिनियम सम्पूर्ण मध्यप्रदेश में 1972 से वर्तमान समय तक प्रभावशील है। इस अधिनियम की प्रमुख बातें निम्नलिखित है–

मण्डी का गठन–नई मण्डी की स्थापना करने पर राज्य सरकार मण्डी समिति का गठन होने तक भारसाधक या भारसाधक समिति की नियुक्ति करेगी। किसी भी मण्डी समिति में कम से कम 8 सदस्य व अधिक से अधिक 20 सदस्य होंगे जैसा राज्य सरकार विनिर्दिष्ट करे जिसमें से निर्वाचित सदस्यों में से दो तिहाई सदस्य कृषकों के प्रतिनिधि होंगे जो कि उस निर्वाचित क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने हेतु उस क्षेत्र की ग्राम पंचायतों पंचों द्वारा तथा कृषि सेवा सरकारी सोसायटी या कृषि संबंधित अन्य सरकारी संस्थाओं के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्षों द्वारा निर्वाचित किये गये हो।

निर्वाचित सदस्यों में से एक तिहाई सदस्य व्यापारियों के प्रतिनिधि होंगे जो कि उन व्यापारियों द्वारा निर्वाचित किये गये हो जो कि दो वर्ष लगातार मण्डी लायसेंस धारण किया हो व विहित रीति से निर्वाचित किये गये हो नई मण्डी की दशा में यह अवधि छ: माह की होगी।

एक सदस्य विधान सभा का वह सदस्य होगा जो कि उस निर्वाचत क्षेत्र से निर्वाचित किया गया हो जहां मण्डी का प्रांगण स्थित हो परन्तु विधान सभा का कोई भी सदस्य एक से अधिक मण्डी समितियों का सदस्य नहीं हो सकता है। एक सदस्य उस मण्डी क्षेत्र में कार्यरत सहकारी विपणन सोसायटी का प्रतिनिधि होगा। अधिक से अधिक तीन सदस्य होंगे जो कि सरकारी अधिकारी होंगे संचालक द्वारा नाम निर्दिष्ट किये जायेगे।

एक सदस्य गोदाम निगम द्वारा नामांकित किया जायेगा।

प्रत्येक मण्डी समिति में एक अध्यक्ष ओर एक उपाध्यक्ष होंगे अध्यक्ष निर्वाचित द्वारा कृषकों के प्रतिनिधियों में से किया जायगा तथा उपाध्यक्ष सदस्यों में से निर्वाचित किया जायेगा।

मण्डी समिति के कर्तव्य व अधिकार– इस अधिनियम तथा इसके अधीन बनाये गये नियमों एवं उपविधियों के उपबन्धों को अपने क्षेत्र में लागू करे। मण्डी क्षेत्र में कृषि उपज का विपणन करने के लिये ऐसी सुविधाओं का प्रबन्ध करना जो राज्य सरकार समय–समय पर निर्देश दे।

* प्राध्यापक (वाणिज्य) स्वामी विवेकानन्द शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी, स्वामी विवेकानन्द शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति से मण्डी समिति खाद, कीटनाशक दवाईयां उन्नत बीज कृषि उपकरण तथा पम्पों का स्टॉक करना ओर भुगतान लेकर उन्हें कृषकों में वितरित करना तथा कृषि उपज के विपणन में सुविधा हो इस हेतु मण्डी क्षेत्र में सड़कों के निर्माण के लिये अनुदान देना। मण्डी समिति किसी ऐसे भी आदेश को कार्यान्वित करेगी जिसे राज्य सरकार मण्डी प्रांगण में सुविधायें प्रदान करने हेतु जारी करे। मण्डी समिति ऐसी समस्त जानकारी देगी जिसकी कि कलेक्टर या संचालक या इनमें से किसी के भी द्वारा सम्यक रूप से प्राधिकृत अधिकारी को जरूरत है। मण्डी प्रांगण की रक्षा व उसका प्रबंध करेगी। मण्डी प्रागंण में कृषि उपज विपणन के लिये आवश्यक सुविधाओं का प्रबंध करेगी। मण्डी में कार्य करने वाले क्रय विक्रय, तुलाई नीलामी आदि के कार्य करने वाले व्यक्तियों जैसे–व्यापारी, तुलावटी, हम्माल आदि को लायसेंस प्रदान करना।

कृषि उपज मण्डी में कार्य करने वाले व्यापारी, दलाल, हम्माल व तुलावटीयों के द्वारा लायसेंस की शर्तो या समिति द्वारा बनाये गये नियमों का उल्लघन करने या भंग करने पर लायसेंस निरस्त करना।

मण्डी प्रांगण में व्यापार प्रारम्भ करने, बन्द करने तथा निलंबित करने का निमयन करेगी। अनुज्ञप्तियों की शर्तों को प्रवर्तित करेगी।

कृषि उपज के विपणन से संबंधित विक्रयों का करार करने उसके कार्यान्वयन तथा प्रवर्तन या रद्दकरण का अधिसूचित कृषि उपज के विपणन से संबंधित विषयों का विनिमयन करेगी।

ऐसे समस्त विवादों को जो कि उपज के विपणन से संबंधित किसी भी व्यवहार के कारण क्रेता व विक्रेता के बीच हो, तय करने के लिये तथा उसमें समस्त मामलों के लिये उपलब्ध करेगी।

अधिसूचित कृषि उपज के उत्पादन, विक्रय, भण्डार करण, प्रसंस्करण कीमतों तथा संचालन के संबंध में जानकारी प्राप्त करेगी व संचालक द्वारा निर्देशित किये गये अनुसार उसको प्रसारित करेगी।

माल में अपमिश्रण रोकने के लिये तथा कृषि उपज के श्रेणीकरण तथा मानकीकरण के संप्रवर्तन के लिये समस्त संभव कार्यवाही करेगी।

मण्डी यह देखेगी की कोई भी कार्यवाही अपनी समर्थ्य से बाहर कृषि उपज का क्रय न करे तथा उपज का व्यय न करने में विक्रेताओं को होने वाली जोखिम न रहे।

फीस तथा साध्य प्रभावों से संबंधित समस्त धन जिसे प्राप्त करने के लिये मण्डी समिति प्राधिकृत है, उद्ग्रहित व वसूल करेगी।

तुलाई व हम्माली से संबंधित प्रभारों को वसूल करेगी ओर इन्हें तुलावटीयों व हम्मालों में वितरत करेगी।

इस अधिनियम के अधीन व इसके अधीन बनाये गये नियमों को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक संख्या में अधिकारियों व सेवकों को नियोजित करेगी।

मण्डी प्रांगण में व्यक्तियों के प्रवेश तथा गाड़ियों के यातायात का विनियमन करेगी। बनाये गये नियमों का उल्लंघन करने के लिये व्यक्तियों को अभियोजित करेगी ओर यदि आवश्यक हो तो ऐसे अपराधों का शयन करेगी।

अपने कर्तव्यों को पुरा करने के उद्देश्य से किसी भी स्थावर सम्पतियों को अर्जित करेगी धारण करेगी तथा उसका व्यय न करेगी।

कोई वाद कार्य कार्यवाही आवेदन पत्र या मध्यस्थ संस्थित करेगी या उसमें प्ररिक्षा करेगी ओर ऐसे वाद कार्य कार्यवाही आवेदन पत्र या मध्यस्थ में समझौता करेगी।

कृषि उपज मण्डी समिति के कोषों का मण्डी कार्यों में प्रयोग करना।

मण्डी के कार्य संचालन के लिये यदि ऋण लेने की आवश्यकता हो तो शासन से पूर्ण स्वीकृति प्राप्त कर ऋण लेना।

मण्डी में उपस्थित विवादों को निपटाने के लिये विवाद या समझौता समिति को स्थापना करना।

मण्डी में उचित बांट कांटों का प्रयोग हो रहा है अथवा नहीं तुलावटी सही माल तौलता है या नहीं समय समय पर जॉच करना व आवश्यकता अनुसार इन्हें आदेश देना।

मण्डी प्रांगण में किये संव्यवहारों के संबंध में माल के तौलने तथा उसके परिवहन के लिये तुलैयों तथा हम्मालों का बारी बारी से नियोजन करने की व्यवस्था करेगी।

मण्डी समिति अपने अधिकारियों द्वारा प्राप्त हुई प्राप्तियों तथा किये गये भुगतानों पर उचित नियंत्रण बनाये व इस अधिनियम व उसके अधीन बनाये गये नियमों की एक प्रति नि:शुल्क निरीक्षण के लिये अपने कार्यालय में रखना।

व्यापारियों, हम्मालों, तुलावटीयों आदि के लिये अनुमति पत्र– कोई भी व्यक्ति कृषि उपज के संबंध में मण्डी क्षेत्र में व्यापारी, हम्माल, तुलावटी आदि अपने कार्य धारा 38 तथा उसके अधिन बनाये गये नियमों तथा उपनियमों के अनुसार निश्चित शुल्क भुगतान शर्तों पर अनुमति पत्र प्राप्त कर सकता है।

कोई भी व्यक्ति जो कि मण्डी में कार्य करना चाहता हो अनुज्ञप्ति को मंजूरी या उसके नवीनीकरण के लिये निश्चित समय के भीतर जो कि मण्डी समिति निश्चित करे आवेदन पत्र निश्चित शुल्क के साथ मण्डी समिति को प्रेषित करे। मण्डी समिति अनुज्ञप्ति मंजूरी करेगी या नवीनीकरण करेगी तथा वह लिखित में कारण देकर अनुज्ञप्ति देने या नवीनीकरण करने से इंकार कर सकती है। किन्तु यदि मण्डी समिति आवेदन पत्र प्राप्त होने के छ: सप्ताह के बाद भी अनुज्ञप्ति देने नवीनीकरण में चूक करती है तो यह माना जाता है। कि यथा स्थिति अनुज्ञपप्ति मंजुर कर दी गई उसका नवीनीकरण कर दिया गया है।

मण्डी समिति की ऋण लेने की क्षमता– कृषि उपज मण्डी समिति द्वारा प्राप्त हुई सभी रकम एक निधि में जो कि मण्डी समिति की निधि कहलायेगी जमा की जायेगी ओर मण्डी समिति द्वारा इस अधिनियम के अधीन या इस अधिनियमों के आशयों के लिये किये गये समस्त व्यय उक्त निधि से चुकाये जावेगें।

मण्डी निधि का उपयोग– धारा 21 के उपबंधों के विरूद्ध न जाते हुए मण्डी समिति निधि में से केवल निम्न विषयों के लिये व्यय कर सकती है

- कृषि उपज मण्डी समिति के लिये किसी स्थान को खरीदना।
- ऐसे स्थानों को बनाये रखना व सुधार करना।
- ऐसे मण्डी के आशयों के लिये ओर मण्डी का उपयोग करने वाले व्यक्तियों की सूरक्षा के लिये आवश्यक भवन निर्माण करना व उसकी मरम्मत करना।
- प्रमाणित बांटों व नापों का उपयोग बनाये रखना ।
- मण्डी समिति द्वारा नियुक्त किये गये अधिकारियों व सेवकों की भविष्य निधि निवृत्ति पुरस्कार के संबंध में भुगतान करना व अंशदान देना।
- इस अधिनियम के अधीन निर्वाचन के या उससे संबंधित व्यय का भुगतान करना।
- मण्डी हेतु लिये गये ऋण के ब्याज का भुगतान करना एवं ऐसे ऋण के संबंध में निक्षेप निधि की व्यवस्था करना।

- कृषि के क्रय विक्रय की एवं फसल संबंधि जानकारी एकत्र करना व उसका प्रसारण करना।
- मण्डी समिति के हिसाब का अंकेक्षण करवाने हेतु किये गये विभिन्न व्यय का भुगतान करना।
- राज्य शासन से पूर्ण स्वीकृति प्राप्त होने पर अन्य आशयों पर मण्डी निधि से किया जाने वाला व्यय आदि लोकहित में हो।

निष्कर्ष–स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय सरकार ने ऐसे लोगों पर नियंत्रण स्थापित करने के प्रयास किये है। जिसमें नियमित एवं नियंत्रित कृषि उपज मण्डियों की अधिकाधिक स्थापना एक महत्वपूर्ण प्रयास है। मण्डी स्थल है जहां स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा करने के प्रयास किये जाते है। इस हेतु मण्डी समिति का गठन किया जाता है जो प्रजातांत्रिक प्रणाली द्वारा मण्डियों से संबंधित नियम बनाती है और मण्डी कार्य को इस प्रकार संपन्न करती है कि एकत्रिकरण, संग्रहण एवं वितरण की प्रक्रिया को गतिशिल बनाया जा सके इस प्रकार मण्डियों द्वारा एक आदर्श बाजार का निर्माण किया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. प्रो. कुलकर्णी, एग्रीकल्चर एवं मार्केटिंग इन इण्डियां
2. रिसर्च, जनरल इंस्टीट्यूशन क्रेडिट एग्रीकल्चर इन मालवा
3. ओ.बी. जेसनेस को आपरेटिव्ह मार्केटिंग ऑफ प्रोडक्ट
4. बाजार व्यवस्था टी. आर. शर्मा व डॉ. ए.सी. सिंह
5. मीडिया प्रबंधन 2010
6. विक्कीपीडिया
7. नवभारत टाईम्स

****

खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का समीक्षात्मक मूल्यांकन

डॉ. संदीप माथुर *

शोध सारांश – विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के कारण हमारे देश की अर्थव्यवस्था में तीव्र गति से सुधार हुआ है और विश्व के सबसे तेज आर्थिक विकास करने वाले देशों में शामिल हो गया है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश से केवल पूंजी का ही आगमन नहीं हुआ, बल्कि इसके साथ-साथ, नई-नई तकनीकें भी आई जिससे देश के विभिन्न क्षेत्रों में अपेक्षाकृत सस्ते और गुणवत्तापूर्ण उपभोक्ता वस्तुएं, उपकरण, सुविधाएं और सेवाएं आसानी से उपलब्ध हुई हैं। इससे हमारे देशवासियों का जीवन स्तर पहले से बेहतर हुआ है। इसके साथ ही विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के कुछ दुष्परिणाम भी सामने आये हैं, जिसमें बेरोजगारी, गरीबी, सामाजिक विषमता में वृद्धि इत्यादि शामिल है। अत: आज हमारे देश में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति को तर्कसंगत बनाने के लिये सुधार की आवश्यकता है। जिससे वह देश के आम नागरिकों व गरीबों के लिये भी कल्याणकारी सिद्ध हो सके और सतत् एवं समावेशी विकास की अवधारणा को साकारित करने में सहयोग दे सकें।

प्रस्तावना – व्यापारिक क्षेत्र में खुदरा व्यापार वह अंतिम बिन्दु है, जहां कोई वस्तु सीधे उपभोक्ताओं के हाथ में पहुंचती है, इसीलिये व्यापार का यह क्षेत्र सर्वाधिक विस्तृत है। भारत में कृषि के बाद खुदरा व्यापार पर सर्वाधिक लोग आश्रित हैं। एक अध्ययन के आधार पर देश में वर्तमान में लगभग तीन करोड़ खुदरा पटल हैं, जिनसे लगभग तीस से पैतीस करोड़ लोगों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार जुड़ा हुआ है। भारत में खुदरा व्यापार से किसान भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुये हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि खुदरा बाजार में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का सर्वाधिक सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव छोटे खुदरा व्यापारियों तथा छोटे किसानों पर ही पड़ेगा। ये भी हो सकता है कि प्रारंभ में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के सकारात्मक प्रभाव दिखें और बाद में नकारात्मक प्रभाव देखने को मिले। एकल ब्रांड की खुदरा व्यापार वाली कंपनियां देश के असंगठित क्षेत्र में नगण्य हैं, इसलिये उनसे अधिक खतरे का भय नहीं है परंतु बहु ब्रांड खुदरा व्यापार में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश से देश के खुदरा बाजार पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रूप में प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश से भारतीय घरेलू खुदरा बाजार भी प्रभावित न हो और अर्थव्यवस्था को भी गतिशीलता मिले, इस संभावना के लिये सरकार ने विदेशी खुदरा कारोबारियों के लिये कुछ नीति निर्देश तय किये हैं। विदेशी रिटेलरों के लिये केवल उन्हीं शहरों में बहु ब्रांड खुदरा स्टोर्स खोलने की अनुमति दी गई है जिनकी जनसंख्या 10 लाख से अधिक है। दूसरी ओर विदेशी कंपनियों को विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के माध्यम से कम से कम 10 करोड़ डॉलर का निवेश करना पड़ेगा उसमें से भी आधा अर्थात् कम से कम पांच करोड़ डॉलर उन्हें शीतगृहों, शीतश्रृखंला, अधोसंरचना तथा मूल्य श्रृंखला आदि में करना पड़ेगा। घरेलू उद्योगों को विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का लाभ दिलाने के लिये विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के जरिये भारत में अपने स्टोर्स खोलने वाले खुदरा कारोबारियों के लिये यह अनिवार्य शर्त रखी गई है कि वे अपनी खरीद का कम से कम 30 प्रतिशत माल घरेलू लघु तथा सीमांत उद्योगों से खरीदेंगे।

उदारीकरण की प्रक्रिया से पूर्व हमारे देश में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में निरपेक्ष रूप से महत्वपूर्ण वृद्धि हुई थी, परंतु इस वृद्धि से अन्य क्षेत्रों विशेषकर खनन एवं पेट्रोलियम की अपेक्षा विनिर्माण क्षेत्र अधिक लाभांवित हुआ था। ऐसा हमारी आयात प्रतिस्थापन नीति के कारण हुआ। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश कई कारणों से किया जाता है। जैसे –सस्ती मजदूरी का लाभ उठाने के लिये, किसी देश के द्वारा पूरे देश या किसी क्षेत्र विशेष में उपलब्ध कराई जाने वाली विशेष सुविधाओं यथा करों में छूट, बाजारों तक पहुंच तक आने वाली बाधाओं मेंकमी या समाप्ति आदि से लाभ कमाने एवं उसमें वृद्धि करने के लिये इत्यादि।

भारत सरकार द्वारा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति के प्रमुख उद्देश्य – अपेक्षाकृत कम समय में भारत को विश्व के शीर्ष औद्योगिक क्षेत्रों में सम्मिलित करना, सतत् औद्योगिक क्रियाकलापों में निवेश के लिये वृहद् स्तर पर अवसरों का सृजन करना, आमजनता के जीवन की गुणवत्ता बढ़ाना और रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना, विदेशी उन्नत प्रौद्योगिकी को आकर्षित करना, विदेशी पूंजी के आगमन के मार्ग को सरल बनाना, भारत के आयात को कम करना और निर्यात को बढ़ाकर व्यापार घाटे को कम करना, घरेलू उद्योगों को वैश्विक प्रतिस्पर्धी बनाने का मार्ग प्रशस्त करना, आम जनता को गुणवत्तापूर्ण वस्तुएं एवं सेवाएं उपलब्ध कराना और सतत् व समावेशी विकास की अवधारणा को साकारित करना।

भारत सरकार ने इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये कई संस्थाओं का गठन किया है। जैसे – विदेशी निवेश संवर्द्धन बोर्ड (एफआईपीबी), औद्योगिक नीति व प्रोत्साहन विभाग, निवेश आयोग आदि। इसके अतिरिक्त विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पर निगरानी के लिये *सिक्योरिटीज एंड एक्सचेंज बोर्ड ऑफ इंडिया* (सेबी), भारतीय रिजर्व बैंक, वित्त मंत्रालय व अन्य संबंधित मंत्रालय भी क्रियाशील हैं। भारत सरकार अपनी इन संस्थाओं के माध्यम से अपनी विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये समय – समय पर अपनी विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति की समीक्षा करती है। परिणामस्वरूप उसकी विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति में संशोधन होते रहते हैं। वर्तमान विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति, जो 10 अप्रैल 2012 से प्रभावशील है, के अनुसार निम्न क्षेत्रों एवं गतिविधियों के अलावा सभी क्षेत्रों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति है। इन क्षेत्रों को निषिद्ध क्षेत्र कहा गया है– सरकारी एवं निजी लॉटरी, ऑन लाइन लॉटरी आदि सहित लॉटरी व्यवसाय; कैशिनो आदि

* प्राचार्य, प्रज्ञा कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, कटंगी , जबलपुर (म.प्र.) भारत

सहित जुआ और सट्टा; चिट फंड;निधि कंपनी;हस्तांतरणीय विकास अधिकार में व्यापार;रियल इस्टेट व्यवसाय या फार्म हाऊसों का निर्माण;तंबाकू और तंबाकू के स्थानापन्न, सिगार, बीड़ी, सिगरेट आदि के उत्पादन;निजी क्षेत्र निवेश के लिये न खोले गये क्षेत्र एवं गतिविधियां जैसे –परमाणु ऊर्जा और रेल्वे परिवहन (मास रैपिड ट्रांसपोर्ट सिस्टम से पृथक)।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के सकारात्मक प्रभाव –

- कृषि कार्यों में तकनीकि, गुणवत्ता तथा कौशल विकास बढ़ेगा। किसानों को सर्वश्रेष्ठ पद्धतियों, कृषि यंत्रों, तकनीकि तथा उपज की ग्रेडिंग जैसी उपयोगी जानकारियां और अधिक विस्तार से मिल सकेंगी।
- देश में अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी के आने से उत्पादन तथा गुणवत्ता बढ़ेगी। अर्थव्यवस्था अधिक गतिशील तथा प्रतिस्पर्धी बन सकेगी। इससे मानवीय संसाधनों को अधिक दक्ष, कार्यकुशल तथा गुणवत्तापूर्ण बनाया जा सकेगा।
- छोटे उत्पादकों तथा किसानों को उनके उत्पादों का उचित मूल्य मिल पायेगा। इससे कृषि तथा उस पर आधारित लघु–कुटीर व मध्यम आकार के उद्योगों का विकास व विस्तार होगा, विशेषकर खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को अधिक गतिशीलता मिलेगी। खाद्यान उत्पादन में तेजी आयेगी। खेती पर अनावश्यक मानवीय श्रम के बोझ को कम कियाजा सकेगा तथा उन्हें कृषि आधारित उद्योगों, अन्य व्यवसायों एवं उद्योगों मेंउचित रोजगार मिल पायेगा।
- अधोसंरचना जैसे –परिवहन, शीतश्रृंखला, विनिर्माण, प्रशीतन प्रसंस्करण, भंडारण तथा विपणन आदि की व्यवस्था सुधरने से उत्पादों की लागत कम हो जायेगी, जिससे मुद्रा स्फीति की दर कम हो जायेगी, ग्राहकों को उचित मूल्यों पर उत्पाद मिल सकेंगे तथा बिचौलियों की भूमिका न्यूनतम हो जायेगी।
- अच्छे भंडारण, विनिर्माण, प्रसंस्करण, प्रोसेसिंग तथा विपणन व्यवस्था से कृषि उत्पादों की बर्बादी रोकी जा सकेगी तथा उनका अधिकाधिक गुणवत्तापूर्ण उपयोग सुनिश्चित किया जा सकेगा। इससे अनावश्यक पूंजी तथा समय की बर्बादी को भी रोका जा सकेगा। रिटेल स्टोर्स, सब्जियां, फल तथा खाद्यान्न सीधे किसानों से खरीदेंगे, इससे किसानों को नियमित आमदनी मिलनी शुरू हो जायेगी।
- विदेशी प्रत्यक्ष निवेश से ग्रामीण–कस्बाई तथा छोटे शहरों में औद्योगिक तथा व्यावसायिक गतिविधियां बढ़ेंगी। लघु एवं सीमांत उद्योगों को प्रोत्साहन मिलेगा तथा उनके उत्पादों की पहुंच बड़े शहरों तक हो जायेगी। इसके अतिरिक्त घरेलू तथा विदेशी स्तर पर आयात निर्यात में बढ़ोत्तरी होगी। बाजारों में पूंजी का प्रवाह तथा जीडीपी बढ़ेगी।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के नकारात्मक प्रभाव एवं उनको दूर करने के उपाय –

- वर्तमान में भारत का घरेलू खुदराबाजार तकनीकि तथा गुणवत्ता के वैश्विक मानदंडों के अनुसार प्रतिस्पर्धी नहीं है। ऐसे में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को तत्काल व्यापक स्तर पर लागू करना घरेलू खुदरा बाजार के हित में नहीं होगा। अत: सरकार को चाहिये कि वह भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की प्रक्रिया को धीरे–धीरे आगे बढ़ाये तथा प्रारंभ में बडे शहरों में इसे प्रायोगिक तौर पर शुरू करे। साथ ही छोटे खुदरा व्यापारियों, किसानों तथा लघु एवं सीमांत उद्यमियों को पर्याप्त संरक्षण, रियायतें, सुविधाएं,प्रशिक्षण तथा तकनीकि कौशल प्रदान करके वैश्विक मानकों के अनुसार प्रतिस्पर्धी बनाने में मदद करे।
- भारत में खुदरा कारोबार में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को लेकर इसलिये भी आशंकाएं पैदा हो रही हैं, क्योंकि भारत में आर्थिक उदारीकरण का लाभ अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों को नहीं मिल पाया है। विशेषकर कृषि एवं कृषि आधारित उद्योगों तथा लघु व मध्यम उद्योगों को इसका पूरा लाभ नहीं मिल पाया है।
- यद्यपि प्रारंभ में विदेशी कंपनियां दूरगामी हितों को देखते हुए घाटा उठाने के लिये भी तैयार रहती हैं। चूंकि अधिकाधिक लाभ कमाना ही इनका मुख्य उद्देश्य होता है। अत: इस बात की बड़ी संभावनाहै कि बाद में वे बड़े बिचौलियों की भूमिका में न आ जाएं। बहुराष्ट्रीय कंपनियां कभी भी मनमानी पर न उतरें, इसके लिये सरकार को दो स्तरों पर नियामकों की स्थापना करनी चाहिए–(1)आर्थिक तथा (2)पर्यावरणीय स्तर पर, जिससे इन कंपनियों के कामकाज तथा गतिविधियों पर निगरानी रखी जाये और आवश्यक कार्यवाही भी की जाये।
- देशी खुदरा बाजार तथा विदेशी खुदरा बाजार एक दूसरे के विरोधी नहीं, जबकि पूरक के रूप में साथ – साथ आगे बढ़े, इसके लिये सरकार को स्तरों पर कार्य करना चाहिये –(1) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की प्रक्रियाको धीरे–धीरे आगे बढ़ाया जाये। (2) लघु एवं मध्यम स्तर के असंगठित घरेलू खुदरा बाजार को वैश्विक मानकों के अनुरूप प्रतिस्पर्धी बनाने के लिये पर्याप्त संरक्षण, रियायतें, अनुदान, प्रशिक्षण तथा तकनीकि सुविधाएं उपलब्ध करवाई जायें तथा (3) उत्पादन विपणन, भंडारण, संचार परिवहन तथावितरण से संबंधित उच्च स्तरीय बुनियादी ढांचे का ग्रामीण, कस्बाई तथा छोटे शहरी क्षेत्रों तक विकास व विस्तार किया जाये।
- जिन राज्यों में आधारभूत सुविधाएं अपेक्षाकृत अच्छी हैं उन्हीं राज्यों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का प्रवाह अधिक हुआ है। परिणामस्वरूप उन राज्यों में लोगों की प्रतिव्यक्ति आय बढ़ी है। इसके कारण अन्य समस्याएं बढ़ रही हैं जैसे अमीरी –गरीबी की खाई चौड़ी होती जा रही है। राज्यवार विद्यमान विषमता को दूर करने के लिये गरीब व कमजोर आधारिक संरचना वाले राज्यों में आधारिक संरचना पर निवेश आकर्षित करने का प्रावधान करना होगा। जिससे इन राज्यों में आधारिक संरचना में मजबूती प्रदान कर अन्य क्षेत्रों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को आकर्षित किया जा सके।

अन्य उपाय –

- कीमतों को घटाने के लिये ब्याज दर घटानी होगी और मौद्रिक नीति को विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के अनुकूल बनाना होगा।
- निवेश संबंधी प्रशासनिक जटिलता और लेट लतीफी को कम करना होगा और उसे पारदर्शी बनाना होगा। विदेशी निवेश संवर्द्धन बोर्ड और डीआईपीपी को अधिकाधिक स्वतंत्रता देनी होगी, उनके अधिकार बढ़ाने होंगे।
- सामाजिक समस्याओं को दूर करने के लिये विशेषकर गरीबी व बेरोजगारी दूर करने के लिये 'नेशनल भ्रष्ट एरियाज' की पहचान की आवश्यकता है और इन क्षेत्रों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश आकर्षित करने के लिये सभी अवरोधों को हटाना होगा। दूसरी ओर हमारे नवजवानों को कौशल प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है जिससे वे आधुनिक उद्योगों की जरूरत के अनुरूप कुशलता अर्जित कर सकें। इससे उनकी इन उद्योगों में खपत होगी, इससे बेरोजगारी व गरीबी की समस्या का निदान होगा।
- कॉरपोरेट सोशल रिस्पांसबिलिटी को बढ़ाना होगा और इसके लिये प्रोत्साहन देना होगा।

● कालेधन की समस्या और मॉरीशस के रास्ते आनेवाले अत्याधिक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को तर्कसंगत बनाने के लिये गार (जी.ए.ए.आर.) जैसे नियमों की जरूरत है। साथ ही हमें ऐसी विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति बनाने की आवश्यकता है जिससे यदि कोई क्षेत्र हमारे देश के आर्थिक विकास व लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को नुकसान पहुँचा रहा हो, तो उसमें तुरंत प्रभावशाली हस्तक्षेप की संभावनाहो। तभी सही अर्थ में सतत् और समावेशी विकास की अवधारणा को साकारित किया जा सकेगा।

निष्कर्षत: विदेशी प्रत्यक्ष निवेश प्रवाह के इन नकारात्मक प्रभावों को दूर करने या कम करने और अधिकाधिक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश आकर्षित कर उसे आमजन के हितैषी बनाने के लिये भारत की वर्तमान विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति में सुधार करना अपेक्षित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Agrawal, Vibhuti & Bahree, Megha. "India puts retails reforms on hold". The Wall Street Journal, 7 December2011.
2. Majumdar, Sanjay. "Changing the way Indian's shop". BBC News, November 25, 2011.
3. Mukherjee, Arpita; Satija, Divya, etl. "Impact of the Retail FDI policy on Indian consumer". ICRIER policy series, August 2011.
4. Sharma, Amol; Sahu,Prasanta. "India Lifts Some Limits on Foreign Retailers". The Wall Street Journal, January 11, 2012.
5. Sheikh, A. & Fatima, K..Retail Management. Himalaya Publishing House, First edition, 2008.
6. Swami, Shekar. "How FDI in retail will hurt farmers". The Hindu Business Line, December 26, 2011.
7. Tripathi, Salil. "India needs Supermarkets". London; The Guardian, December 29, 2011.
8. "Farmer Organisations back retail FDI". The Financial Express, December 2, 2011.
9. "Retailing in India Unshackling the chain stores". The Economist, 29 May 2008.
10. "INDIAN RETAIL INDUSTRY: A Report". CARE Research, March 2011.
11. "Indian retail: The supermarket's last frontier". The Economist, 3 December 2011.
12. "FDI in retail is first major step towards reforms in agriculture, feels Sharad Joshi". The Economic Times, 2 December 2011.
13. "Major Benefits of FDI in Retail". The reformist India, 30 November 2011.
14. "FDI POLICY IN MULTY BRAND RETAIL". Ministry of Commerce, Government of India, 28 November 2011.
15. "Aam bania is more powerful than the aam aadmi". The Times of India, 4 December 2011.
16. A. T. Kearney's Report on Indian Retail. 2008.

****

कृषि उपज विपणन की सैद्धांतिक विवेचना

डॉ. सतीश माहेश्वरी * प्रो. मोहन सिंह वारकेल * *

प्रस्तावना – प्राचीनकाल में जब कृषि जीवन निर्वाह के आधार पर की जाती थी तब यह कहा जाता था कि 'एक अच्छे कृषक की एक आँख हल पर तथा दूसरी आँख बाजार पर रहती हैं'लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भाग से जबकि यातायात एवं सन्देशवाहक के साधनों की चमत्कारिक उन्नति हो गई और इसके फलस्वरूप कृषि का व्यापारीकरण हो गया तब उक्त कथन ने निम्न रूप ग्रहण कर लिया कि 'एक अच्छे कृषक के दोनों हाथ हल पर और दोनों आँखे बाजार पर लगी रहती हैं'अन्य शब्दों में कृषक के लिए अपनी उपज के विपणन पर ध्यान देना उतना ही आवश्यक हैं जितना कि उत्पादन करना सच तो यह कि यदि कृषि उपज के विपणन से किसान को उचित मूल्य मिल जाता हैं तो इससे वह अधिकाधिक उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहित होगा, उसका और सारे राष्ट्र का जीवन स्तर ऊँचा उठेगा।

उद्देश्य– कृषि उपज की उचित विपणन व्यवस्था का जानना अत्यन्त ही आवश्यक हैं। यह उतनी ही अधिक महत्वपूर्ण हैं, जितनी की कृषि उत्पादन में वृद्धि निजी विपणन की पद्धति को जानना जो विश्व में अधिकतर प्रचलित हैं, दोषपूर्ण हैं यह कृषकों का हित ध्यान में नहीं रखती उसमें मध्यस्थों का बाहुल्य हैं कोई भी वस्तु उनके माध्यम से ही उपभोक्ताओं तक पहुँचती हैं। यह जानना ।

परिकल्पना–कृषि उपज मण्डी समिति द्वारा विपणन सूचनाओं का प्रसारण एवं प्रकाशन किया जाता है।

विपणन का महत्व– विपणन के अन्तर्गत उन सभी क्रियाओं को सम्मिलित किया जा सकता हैं, जिनके द्वारा उत्पादक या व्यापारी वस्तुओं व सेवाओं को उपभोक्ताओं एवं प्रयोक्ताओं तक पहुंचाने में प्रयोग करते हैं। वर्तमान में विपणन यही तक सीमित नहीं हैं। इसकी आवश्यकता और महत्व को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

उद्योगों के लिये कच्चा माल –विपणन अनेक उद्योगों जैसे सूती वस्त्र, जूट व चीनी उद्योगों को कृषि से कच्चा माल संबंधी आवश्यकताएं पूर्ण न हो सकेगी तथा औद्योगिक विकास रूक जायेगा। स्पष्ट हैं कि औधोगिक क्षेत्र के विकास के लिये कृषि क्षेत्र में विपणन का होना आवश्यक हैं।

पूँजी निर्माण का आधार –किसी देश का आर्थिक विकास उस देश में पूँजी निर्माण एवं स्वयं कृषि क्षेत्र में विपणन पर निर्भर करता इन देशों में राष्ट्रीय आय में कृषि क्षेत्र में विपणन बढ़ने पर पूँजी निर्माण की दर में वृद्धि होने की संभावनाएं अधिक हो जाती हैं तथा देश के आर्थिक विकास की संभावनाओं में वृद्धि हो जाती हैं।

गैर कृषि क्षेत्र की जनसंख्या के लिय खाद्य सामग्री –यदि कृषि क्षेत्र में विपणन का अभाव रहेगा तो गैर कृषि क्षेत्र की जनसंख्या के लिये योजना संबंधी सामग्री का अभाव रहेगा। अत: स्पष्ट कि कृषि क्षेत्र में विपणन के अभाव में देश के आर्थिक विकास पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ता हैं।

कृषकों की आय व जीवन स्तर में वृद्धि –कृषि क्षेत्र में विपणन योग्य अतिरेक अधिक होने पर कृषकों की आय में वृद्धि होगी। फलस्वरूप कृषक वर्ग गैर कृषि क्षेत्र की वस्तुओं को अधिक मात्रा में खरीद सकेगें। इससे एक और कृषकों के जीवन स्तर में सुधार होगा।

विपणन विधि या प्रक्रिया –समाज के आरंभ में उत्पादक और उपभोक्ताओं में सीधा व्यक्तिगत संबंध था। लेकिन आज के समय में अर्थव्यवस्था ने उत्पादन व विपणन को बहुत जटिल बना दिया हैं। विपणन के कार्य निम्नलिखित तीन विपणन विधियों के अंतर्गत किये जाते हैं।

1. एकत्रिकरण 2. वितरण 3. समानीकरण

एकत्रिकरण –वह क्रिया हैं जिसमें वस्तुएं बहुत से उत्पादकों से एक केन्द्रीय बिन्दु या बाजार की और बहती हैं। एकत्रिकरण की आवश्यकता विभिन्न कारणों से होती हैं जिसमें से प्रमुख कारण इस प्रकार हैं–

- उद्योग में विशिष्टीकरण।
- विभिन्न स्थानों की उत्पत्ति के गुणों में अंतर।
- विभिन्न मौसमों में विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन।
- विभिन्न बाजारों में अधिक मात्रा में वस्तुओं को भेजना जिससे परिवहन के व्ययों में बचत हो।
- उपभोक्ता की विभिन्न प्रकार की मांग इत्यादि।

वितरण –जब केन्द्रीय बिन्दु या बाजार से पदार्थों का विपणन उपभोक्ता या औद्योगिक उपभोक्ता की और होता हैं तो इस क्रिया को वितरण की क्रिया कहते हैं, इसमें माल पहले अधिक मात्रा में जमा किया जाता हैं। फिर उसको कम मात्रा में क्रेताओं को आवश्यकता के अनुसार बांटा जाता हैं एवं निर्मित माल मध्यस्थों के माध्यम से उपभोक्ताओं तक पहुंचाया जाता हैं।

समानीकरण –एकत्रिकरण व वितरण के बीच एक क्रिया होती हैं जिसको हम समानीकरण कहते हैं। समानीकरण में पूर्ति को मांग के समय मात्रा व गुण के आधार पर समायोजित किया जाता हैं। बाजार में मांग सामयिक होती हैं जो घटती–बढ़ती रहती हैं इसलिये यह आवश्यक हैं कि एकत्रिकरण व समानीकरण में सामंजस्य रखा जाय।

कृषि उपज विपणन की वर्तमान स्थिति –भारत में कृषि उपज विपणन की परम्परागत व्यवस्था आज भी प्रचलित हैं

अ. प्राथमिक ग्रामीण बाजार –गाँवों के बाजारों को प्राथमिक बाजार भी कहा जाता हैं। कृषक अपनी उपज को लाकर नजदीक के गाँवों के बाजारों में बेच देते हैं। ये बाजार आवधिक या सामयिक होते हैं जैसे–हाट बाजार जो किसी विशेष दिन, साप्ताहिक, पाक्षिक या समयानुसार लगाते हैं, इन बाजारों में कृषि उपज और पशु दोनों का ही विक्रय होता हैं। अखिल भारतीय ग्रामीण सर्वेक्षण समिति के अनुसार कृषि उपज का लगभग 65 प्रतिशत भाग गाँव में ही बिक जाता हैं।

ब. द्वितीयक मण्डियों में बिक्री –मण्डियों को गौण बाजार भी कहा जाता हैं। जिन कृषकों के पास विक्रय योग्य उपज अधिक होती हैं वे अपनी उपज के विक्रय हेतु नजदीकी मण्डियों में लाते हैं। मण्डी में कच्चे आढ़तिये, पक्के आढ़तिये व दलालों के माध्यम से उपज का विक्रय होता हैं। भारत में दो प्रकार की मण्डियां पाई जाती हैं।

1. **नियमित एवं संगठित मण्डियां**
2. **अनियमित अथवा असंगठित मण्डियां**

* प्राध्यापक (वाणिज्य) स्वामी विवेकानन्द शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी, स्वामी विवेकानन्द शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

भारतीय किसान तथा विपणन की कठिनाईयां – 'कृषक ऋण में जन्म लेता हैं, ऋण में रहता हैं, और ऋण में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता हैं।'कृषि उन्नति का कृषि उत्पादन के विक्रय से गहरा संबंध हैं। यदि कृषक अपनी उपज को उचित लाभ के साथ बेच सकता हैं तो निश्चित ही उसे फसल पैदा करने में बड़ा प्रोत्साहन मिलता हैं, लेकिन भारतीय कृषकों का दुर्भाग्य हैं कि यहां आज भी कृषि उपज बिक्री की दशा में अत्यन्त चिन्तनीय हैं जिससे कृषकों को अपार हानि उठाना पड़ती हैं।

भारत की वर्तमान कृषि विपणन व्यवस्था के अनेक दोष हैं इन दोषों की और संकेत करते हुए 'शाही कृषि कमिशन' ले कहा था यह दोष चोरी से कम नहीं हैं। मध्यस्थों के कपटपूर्ण व्यवहारों के कारण संपूर्ण विपणन व्यवस्था दूषित हो गयी हैं। तथापि उनमें कई दोष आज भी विद्यमान हैं।

- **विपणन व्ययों की विविधता**
- **व्यापारिक छूट**
- **मिलावट की अधिकता तथा श्रेणियन का अभाव**
- **दोषपूर्ण बिक्री का तरीका**
- **गलत तौल**
- **बिक्री मूल्य का विलंब से मिलना**

कृषि विपणन में सुधार के लिये उपाय –कृषि उपज की विपणन व्यवस्था को सुधारने के उद्देश्य से नियोजन काल में सरकार ने कई महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं।

- **नियन्त्रित मण्डियों की स्थापना –**कृषि उपज की विपणन व्यवस्था में सुधार की दृष्टि से सरकार द्वारा उठाया गया एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम देश में नियन्त्रित मण्डियों की स्थापना हैं नियन्त्रित मण्डियों की स्थापना से मण्डियों में प्रचलित कपटपूर्ण व्यवहार विलुप्त हो गए हैं।
- **कृषि उपज का श्रेणीयन एवं प्रमाणीकरण –**अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में ख्याति प्राप्त करने तथा उपज की किस्म में सुधार करने के लिए कृषि वस्तुओं का श्रेणीयन व प्रमाणीकरण होना चाहिए। इससे कृषकों को अपनी उपज का उचित मूल्य मिलेगा तथा देश में बढ़िया किस्म के कृषि उत्पादन को प्रोत्साहन मिलेगा।
- **प्रमाणित बाट एवं नाम तौल –**कृषकों को धोखे से बचाने के लिए प्रमाणित बांट एवं नाप तौल का प्रयोग किया जाए इस दृष्टि से सबसे पहले 1931 में बांट के प्रमाणीकरण के लिए एक अधिनियम बनाया गया था। इसके पश्चात जिसमें 80 तोले का एक सैर वैधानिक बांट माना गया था। 1958 में इस पुरानी प्रणाली को छोड़कर मीट्रिक प्रणाली अपनाई गई जिसे 1 अप्रैल 1962 से अनिवार्य कर दिया गया हैं। इस प्रणाली के अपनाने से मूल्य की गणना सरल हो गई है तथा नाप-तौल की गड़बड़िया भी दूर हो गई हैं।
- **विपणन सूचनाओं का प्रसारण एवं प्रकाशन –**किसानों को उनकी उपज मूल्य संबंधी जानकारी देने के लिए विपणन सूचनाओं का प्रकाशन एवं प्रसारण किया जाना चाहिए ताकि कृषकों को कृषि पदार्थों के मूल्य व उनसे संबंधित बातों की जानकारी हो सके तथा उन्हें धोखा न दिया जा सके। इस संबंध में महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। आल इण्डिया रेडियों के विभिन्न केन्द्रों से प्रतिदिन मुख्य मण्डियों के भाव प्रसारित किये जाते है।
- **भण्डारण की सुविधाएं –**कृषि उपज को सुरक्षित रखने तथा किसानों को उसकी उपज का उचित मूल्य दिलाने के लिए भण्डार ग्रहों का होना बहुत आवश्यक है। इस संबंध में 1954 में केन्द्रीय निगम की स्थापना की गई। खाद्य निगम तथा सहकारी समितियों द्वारा भी अपने गोदाम बनाये गये हैं। ग्रामीण मन्त्रालय द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में गोदाम बनाने की योजना पर कार्य चल रहा हैं।
- **विपणन अनुसंधान एवं सर्वेक्षण –**विपणन में सुधार लाने के लिए यह आवश्यक हैं कि विपणन अनुसंधान एवं सर्वेक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे की कमियों का पता लगाया जा सके तथा उन्हें दूर किया जा सके। अत: केन्द्र सरकार विभिन्न प्रकार के नियम बनाती हैं।
- **कृषि विपणन कर्मचारियों को प्रशिक्षण सुविधाएं –**कृषि विपणन में बहुत सी कमियां तो कृषि विपणन कर्मचारियों की होती हैं अत: कृषि विपणन कर्मचारियों के दोषों को दूर करने के लिए उनको प्रशिक्षण की सुविधाएं उपलब्ध कराई जाना चाहिए इनके प्रशिक्षण के लिए नागपुर हैदराबाद एवं लखनऊ में प्रशिक्षण केन्द्र हैं।
- **वित्तीय सुविधाएं –**किसानों को महाजन के चुगंल से बचाने तथा कृषि विपणन उत्पादों में सुधार लाने के लिए आवश्यक हैं कि सस्ते ब्याज की दर पर वित्तीय सुविधाएं उपलब्ध कराई जानी चाहिए। इस संबंध में अनेक कदम उठाये गये हैं। बैंकों का विस्तार का राष्ट्रीकरण किया गया हैं ग्रामों में बैंक शाखाओं का विस्तार किया गया हैं।
- **परिवहन के साधनों का विकास –**कृषि विपणन में सुधार लाने के लिए सभी गाँवों को शहरी क्षेत्रों से सड़कों के द्वारा जोड़ दिया जाना चाहिए जिससे की किसान अपनी उत्पति को शहरी मण्डियों में बेचने के लिये प्रोत्साहित हो सके।
- **सरकारी विपणन समितियों की स्थापना–**विभिन्न प्रकार के मध्यस्थों को कम करने तथा मण्डियों की कपटपूर्ण पद्धतियों से बचाने के लिए किसानों को अपनी सहकारी विपणन समितियों का गठन करना चाहिए जिससे उनको उचित मूल्य मिल सके। वित्तीय सुविधाएं प्राप्त हो सके अच्छी खाद्य व उन्नत बीजों की व्यवस्था हो सके तथा वे सामूहिक मोल भाव का लाभ उठा सके।

निष्कर्ष – विपणन एक व्यापक शब्द हैं। जिसके अन्तर्गत अनेक प्रकार की क्रियाए सम्मिलित हैं। व्यक्तिगत खेतों की छोटी-छोटी आधिक्य मात्राएं संग्रह करके एक थोक बाजार में लाई जाती हैं। फार्म के उत्पादक की घटती-बढ़ती हुई पूर्ति को उपभोक्ताओं की सदा बदलने वाली मांग के साथ समायोजित करना पड़ता हैं अन्तिम उपभोक्ताओं को उचित किस्म की एवं उचित मात्रा में पूर्ति उपलब्ध हो जाती हैं इन मुख्य क्रियाओं के उत्पादन के लिए अन्य सहायक कार्य भी करने पड़ते हैं। जैसे-संग्रहण, भण्डारण, अर्थ प्रबन्धन, बीमा, प्रमापीकरण, विक्रय एवं यातायात, अंतिम बाजार तक पहुँचानें के लिए फार्म की पैदावार विभिन्न स्त्रोतों से इकट्ठी की जाती हैं, गोदामों में रखी जाती हैं, उनके आवागमन में धन का विनियोग किया जाता हैं। मूल्य परिवर्तनों से उद्य होने वाली हानि के खतरे के विरूद्ध बीमा कराना पड़ता हैं। तत्पश्चात पदार्थों को छाँटा जाता हैं एवं श्रेणी विभाजन होता हैं छोटे-छोटे पार्सल बनाकर चैक किया जाता हैं उन्हें बेचा जाता हैं और अन्त में उपभोक्ता के स्थान तक यातायात किया जाता हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कृषि अर्थशास्त्र डॉ. जय प्रकाश मिश्र-साहित्य भवन पब्लिकेशन्स हॉस्पिटल रोड़ आगरा
2. डॉ. के0पी0 भटनागर संदर्भित द्वारा बरला अग्रवाल 'भारतीय अर्थशास्त्र' रतन प्रकाशन मंदिर दिल्ली वर्ष 1983-84
3. डॉ.के0पी0 भटनागर संदर्भित द्वारा बरला अग्रवाल 'भारतीय अर्थशास्त्र' रतन प्रकाशन मंदिर दिल्ली वर्ष 1983-84
4. एस. सी. मित्तल, भारतीय अर्थशास्त्र ओरियन्टल पब्लिशिंग हाऊस, कानपुर वर्ष 1966
5. बरला अग्रवाल 'भारतीय अर्थशास्त' रतन प्रकाशन मंदिर, दिल्ली वर्ष 1983-84
6. कृषि अर्थशास्त्र, डॉ. आर.सी. सक्सेना,पी.एल. मिश्र, शिक्षा साहित्य प्रकाशन वर्ष 1980-51
7. भारतीय अर्थशास्त्र-डॉ चतुर्भूज मामोरिया साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा.लि.प्र. 386
8. कृषि अर्थशास्त्र-पी.के. गुप्ता वृंद्धा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. बीज आशीष काम्प्लैक्स मयूर विहार दिल्ली

भारत में मध्यप्रदेश संपूर्ण विकास की दशा में अग्रसर

डॉ. आर. सी. गुप्ता *

शोध सारांश – हिन्दुस्तान के हृदय में स्थित मध्यप्रदेश आज देश के अन्य राज्यों की अपेक्षा चहुमुखी विकास की ओर तीव्र गति से अग्रसर हो रहा है जहाँ इस राज्य में 37 हजार करोड़ से ज्यादा के उद्योग धन्धे फल-फूल रहे हैं वही दूसरी ओर प्रदेश ने खेती को लाभ का व्यवसाय बनाने के लिए 2013-14 में 24.99 प्रतिशत कृषि विकास दर हासिल कर देश में प्रथम स्थान प्राप्त किया। वहीं साँची में बौद्ध अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना कर मध्यप्रदेश को उच्च शिक्षा का हब बनाने की ओर आगे कदम बढ़ाया तथा बडी नदियों को जोड़कर लिंक परियोजना बनाकर बड़े स्तर पर सूखे एवं जलसंकट से निजात दिलाने का प्रयास किया जा रहा है। शिक्षा के मामले में हम अपने देश के अग्रणी राज्यों में शामिल हो गये हैं। मध्यप्रदेश में शिशु मृत्यु दर में कमी आयी है। सन 2011 की जनसंख्या के अनुसार मध्यप्रदेश में लिंग अनुपात प्रति 1000 पुरूष के पीछे 930 महिलायें हैं जबकि बालाघाट जिले में यह अनुपात 1000 : 1021 है।

प्रस्तावना – 01 नबम्वर 1956 को भारत की हृदय स्थली कहलाने का गौरव प्राप्त करने वाले मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश एवं राजस्थान की सीमाओं से घिरा 01 नबम्वर 2000 को पुन: विभाजित हुआ फलस्वरूप छत्तीसगढ़ राज्य अस्तित्व में आया। प्राकृतिक सौन्दर्य नदियों, पहाडों, वनों, अभ्यारण्यों, खनिज पदार्थों एवं ऐतिहासिक सम्पदा से समृद्ध मध्यप्रदेश देशी विदेशी पर्यटकों का मन मोह लेता है। 2011 की जनगणना के अनुसार प्रदेश की जनसंख्या 7,25,97,565 हो चुकी है। जिसमें 3,76,12,920 पुरूष तथा 3,49,84,645 महिलायें हैं।

पंचवर्षीय कार्य योजना –

1. कृषिगत क्षेत्र – देश में मध्यप्रदेश शासन पिछले वर्षो में कृषि को लाभ का धन्धा बनाने में अत्यधिक प्रयासरत रहा है। इस प्रयास का परिणाम ही है कि मध्यप्रदेश सरकार ने सन् 2012-13 में 18 प्रतिशत 2013-14 24.99 प्रतिशत विकास दर हासिल कर अपने देश में प्रथम स्थान प्राप्त किया। तथा 27 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में सिचाई सुविधायें उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा। मध्यप्रदेश देश का कुल जैविक उत्पादन का 40 प्रतिशत उत्पादित करता है। यह राज्य सोयाबीन एवं चना उत्पादन में देश में प्रथम स्थान बनाये हुए है तथा गेंहूँ मसूर एवं सरसों उत्पादन में दूसरा। इस प्रकार मध्यप्रदेश राज्य खेती को लाभ का धन्धा बनाने के प्रति कृत संकल्पित है।

2. ई-गवर्नेस के क्षेत्र में- मध्यप्रदेश को ई-गवर्नेस के लिए सीएसआई निहिलेंट अवार्ड 2013-14 से नवाजा जायेगा। अवार्ड फॉर सस्टेंड एक्सीलेंस इन ई-गवर्नेस के लिए मप्र का चयन स्टेट केटेगरी में किया गया है। हैदराबाद स्थित जवाहर लाल नेहरू ऑडिटोरियम में आगामी 13 दिसम्वर को कम्प्यूटर सोसायटी ऑफ इंडिया के 49 वें वार्षिक समारोह के मौके पर यह अवार्ड मध्यप्रदेश को प्रदान किया जायेगा।

3. साक्षरता – मध्यप्रदेश शासन ने शिक्षा को घर घर तक पहुँचाने की दिशा में अत्यधिक प्रयास किया **'आओ स्कूल चलें हम'** जैसे शिक्षा अभियान छेड़े जिसका परिणाम यह हुआ कि आज हम शिक्षा के मामले में अग्रणी राज्यों में शामिल हैं तथा प्रदेश की शिक्षा का स्तर 70.6 प्रतिशत तक पहुँच गया है। मध्यप्रदेश में स्कूल शिक्षा का भविष्य सुदृढ़ है क्योंकि आने वाले समय में मध्यप्रदेश सरकार हर पांच किमी पर एक स्कूल खोलने की योजना पर कार्य कर रही है तथा 10000 नये स्कूल खोले जाना प्रस्तावित हैं तथा इन स्कूलों में शिक्षण कार्य के लिए 52000 शिक्षक नियुक्त किये जायेंगे। उच्चशिक्षा को बढ़ावा देने के लिए 6 नये निजी विश्वविद्यालय खोले जायेंगे एवं सांची में अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय खुलेगा। इन्दौर भोपाल को एजुकेशन हब बनाने की योजना पर गम्भीर विचार किया जा रहा है।

4. औद्योगिक निवेश के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण – प्रसिद्ध उद्योगपति श्री अनिल धीरूभाई अंबानी ने इन्दौर समिट में मध्यप्रदेश को सबसे सुरक्षित एवं सुविधा युक्त उद्योग स्थापित करने का राज्य बताते हुये औद्योगिक इकाईयां लगाने के MOU पर हस्ताक्षर किये। इन्हीं औद्योगिक समिट मीट का परिणाम है कि प्रदेश में 37 हजार करोड़ रूपये से ज्यादा के उद्योग धन्धे फल फूल रहे हैं जिसमें रेडियल टायर का बडे पैमाने पर उत्पादन होता है। तथा 18 हजार से ज्यादा तकनीकी छात्रों को रोजगार तथा 2 लाख 30 हजार लोगों को रोजगार उपलब्ध कराये जाने का दावा किया गया। मध्यप्रदेश में उद्योग खोलने की दिशा में मध्यप्रदेश सरकार निरंतर प्रयत्नषील है इसी संदर्भ में मध्यप्रदेश शासन ने 8 एवं 9 अक्टूवर 2014 को इन्दौर में ग्लोबल इन्वेस्टर मीट का आयोजन किया जिसमें भारत एवं विश्व के अनेक प्रतिष्ठित उद्योगपतियों ने भाग लिया। इस ग्लोबल इन्वेस्टर मीट में लगभग 28 देशों के राजदूतों ने भाग लिया इस इन्बेस्टर मीट में विभिन्न क्षेत्रों में उद्योग खोलने के लिए लगभग 6.89 लाख करोड़ रू. के निवेश करार हुए इससे मध्यप्रदेश के 2 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त हो सकेगा। इस क्रम में भोपाल इन्दौर, जबलपुर, ग्वालियर एवं उज्जैन को स्मार्ट सिटी बनाने के प्रयास तीव्र गति पर हैं।

5. **चिकित्सा –** नागरिकों को उच्चस्तर की चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए मध्यप्रदेश शासन दृढ संकल्पित है वर्तमान में मध्यप्रदेश में 40 मेडीकल कालेज हैं तथा निकट भविष्य में 11 मेडीकल कालेज खोलने जा रहे हैं। दिसम्बर तक एम्स प्रदेश में सेवाएँ देने लगेगा और अगले पांच सालों में यहां 1500 विस्तरों का अस्पताल खुल जायेगा जिससे मध्यप्रदेश वासियों को भोपाल में ही उच्च स्तर का इलाज मिलने लगेगा। इन्दौर भी मेडीकल टूरिज्म के रूप में पहचाना जायेगा।

* प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीना, जिला-सागर (म.प्र.) भारत

6. **सड़कें –** सड़कें किसी भी देश की आर्थिक विकास का दर्पण होती हैं इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए मध्यप्रदेश में 10 हजार कि.मी. की नयी सडकें बिछेगी और जिला मुख्यालयों की 11 हजार कि.मी. सडकों को सुधारा जायेगा। मध्यप्रदेश के 7161 नए गांव मुख्यमंत्री ग्राम सड़क योजना से जोडे जाने है। सभी संभागीय मार्ग फोर लेन और जिला मार्ग दो लेन होंगे। हर शहर में एक एक्सीलेंस सड़क बनेगी तथा एक्सीडेन्ट रिस्पांस सिस्टम शुरू हो जायेगा।

7. **विद्युत का विकास –** मध्यप्रदेश शासन की महात्वाकांक्षी योजना अटल ज्योति ने पूरे भारत में मध्यप्रदेश का नाम ऊँचा किया है। अगले पांच साल में हमारा बिजली उत्पादन 20 हजार मेगावाट हो जायेगा क्योंकि एशिया का सबसे बडा सौर ऊर्जा संयत्र रीवा में बन रहा है वही मंडला जिले में चुटका परमाणु संयत्र भी स्थापित होने जा रहा है। 14700 करोड रू. के इस संयत्र से 700 मेगावाट बिजली बनेगी इससे हमारा मध्यप्रदेश बिजली उत्पादन में पूर्णतया आत्मनिर्भर हो जायेगा।

8. **खनिज संसाधनों का समुचित उपयोग –** मध्यप्रदेश एक ऐसा राज्य है जो खनिज संपदा से भरपूर है। प्रदेश में करीब तीन हजार करोड़ रूपये का सालाना राजस्व प्राप्त होता है इतनी ही राशि का अवैध उत्खनन होता है। यदि इस उत्खनन को रोक दिया जाये तो करीब 10 हजार करोड़ रूपये की सालाना आय प्राप्त होगी जिससे प्रदेश का चहुमुखी विकास संभव होगा।

9. **लिंक परियोजना की शुरूआत होना –** बुन्देलखण्ड़, मालवा, मध्यभारत और विंध्य जैसे क्षेत्रों में बडे स्तर पर सूखे की स्थिति से निपटने के लिए नर्मदा–क्षिप्रा परियोजना के शुरू होने से मालवा और निवाड में बहुत हद तक जल संकट समाप्त हो जायेगा। यदि काली सिन्ध, पार्वती और केन, बेतवा नदियों को जोडने के प्रयास किये जायें तथा नर्मदा की सहायक नदियों को पुनर्जीवित किया जाये तो मध्यप्रदेश में सूखे से बहुत हद तक निपटा जा सकता है।

10. **स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) म.प्र. –** माननीय प्रधानमंत्री की स्वच्छ भारत मिशन योजना को मूर्त रूप देते हुए मध्यप्रदेश शासन ने खुले में शौच मुक्त ग्रामों से संपूर्ण स्वच्छता की ओर कदम बढाते हुए म.प्र. की 2068 ग्राम पंचायतों को निर्मल ग्राम के रूप में पुरूस्कृत किया तथा प्रदेश की सभी 23006 ग्राम पंचायतों में 9500 कि.मी. सीमेंट क्रंक्रीट की आंतरिक सडकों एवं नालियों का निर्माण पूर्ण किया। 114000 शासकीय शालाओं में हाथ धुलाई इकाई का निर्माण एवं साबुन और तौलिए की उपलब्धता कराई वर्ष 2014–15 में 9.94 लाख शौचालयों का निर्माण कराया जिसमें पंचायत एवं स्वच्छता दूत के माध्यम से 514000 शौचालय, 30000 स्वयं सहायता समूहों के सहयोग से 3 लाख शौचालयों का निर्माण एवं उसके उपयोग की निगरानी की गयी। 168000 प्रेरक संस्थाओं द्वारा एवं 12000 किन्नर समुदाय द्वारा इन शौचालयों का निर्माण किया गया।

11. **भ्रष्टाचार के खिलाफ सख्त कानून –** मध्यप्रदेश शासन द्वारा चलायी जा रही भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन से करोड़ों रूपये की काली एवं अवैध कमाई पकडी गई जो जन कल्याण के लिये व्यय किये जाने का प्रावधान है।

12. **टाइगर स्टेट यानी मध्यप्रदेश –** कान्हा, बांधवगढ, पैंच, सतपुडा, संजय और पन्ना टाइगर रिजर्व है। बाघ मध्यप्रदेश की पहचान है और सर्वाधिक बाघों के कारण ही प्रदेश टाइगर स्टेट के नाम से जाना जाता है। सरकार को चाहिए कि वन्य प्राणी पर्यटन की विशेष नीति बनाई जाये ताकि पर्याप्त संख्या में देशी विदेशी पर्यटक आयें और वे बाघ देख सकें।

13. **पर्यटन स्थल में धनी मध्यप्रदेश –** प्रदेश में ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्व, प्राकृतिक सौन्दर्य, धार्मिक महत्व आदि के स्थल हैं। प्रदेश में लगभग 450 पर्यटन स्थल हैं। जहां पर प्रतिवर्ष काफी मात्रा में विदेशी तथा देशी पर्यटक आते हैं। तथा शासन को अच्छा खासा राजस्व प्राप्त होता है।

मध्यप्रदेश की सेहत में सुधार के लिये सुझाव – मध्यप्रदेश की सेहत में सुधार के लिए कुछ सुझाव हैं जो निम्नलिखित हैं

1. मध्यप्रदेश राज्य से 6 राज्यों की सीमा गुजर रही है अत: राज्य में ऐसे उद्योग खुलने चाहिए जिनसे इनका उत्पादन 6 राज्यों को भेजा जा सके।
2. गुजरात राज्य में जिस प्रकार बडी कंपनियां उत्साहित हैं वैसा ही सकारात्मक माहौल शासन को बनाना चाहिए।
3. अवैध उत्खनन रोकने के लिए सैटेलाइट मैपिंग की व्यवस्था होना चाहिए।
4. खनिज निरीक्षकों व तकनीकी विशेषज्ञों का अमला बढाना चाहिए।
5. सरकारी विभागों से जुडे कर्मचारियों के आय सम्बन्धी स्त्रोतों को ऑन लाइन करना चाहिए।
6. मध्यप्रदेश शासन को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि मध्यप्रदेश के अधिक से अधिक युवाओं को रोजगार मिल सके। वर्तमान में 50.25 लाख परिवार जो नल कनेक्शन से वंचित हैं तथा 70 प्रतिशत आबादी पेयजल से दूर है उनको यह मूलभूत सुविधाएं प्राथमिकता पर उपलब्ध करायी जाये। तथा कुपोषण को जड़ से खत्म करने का प्रयास युद्ध स्तर पर हो और जहां जहां शिक्षण विहीन स्कूल हैं वहॉ पर प्राथमिकता के तौर पर शिक्षकों की नियुक्तियॉ की जाये तथा राज्य में जो 13000 के लगभग शौचालय विहीन स्कूल है वहॉ पर शौचालय बनवाये जाये।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. लक्ष्य भोपाल।
2. पत्रिका भोपाल।
3. मध्यप्रदेश का आर्थिक विकास।
4. योजना।
5. पत्रिका नबम्वर 2014
6. उद्योग मित्र।

****

Indian Rupee is depreciating against dollar

Dr. Sapna Soni * Dr. Mohan Singh Dawar ** Smita Patidar ***

Abstract - The rupee has plunged to an all-time low against the dollar and its fall has become a subject for debate. The usual discussions on the all of the rupee bring up macro-economics matters such as slow economic growth, huge current account deficit, rising empors and many more.

Introduction - Rupee ? Rupee is the common name for the currencies of India, Pakistan, Srilanka, Mauritius, Maldives, Indonesia.

Historically first currency called 'Rupiya' was introduced in the 16th century by sher shah. The term 'Rupiya' is a sanskrit term for SILVER COIN.

Dollar ?

Dollar often represented by the Peso and dollar sign ($) is the name of several currencies including those of Australia, Hong Kong, Singapore, Taiwan etc.

Generally 1$ is divided into 100 cents

same like 100 paisa = 1 Rs.

Rupee and dollar are consider as money is money is know as medium of exchange of goods and services at the particular rate of currencies.

There is no single cause for depreciating Rupee against dollar -

The previous higher value of the rupee was related to the volume of direct foreign investment by overseas companies. They demanded large amounts of Rupees to set up factories distribution and trading facilities.

That is drying up for two main reasons and so the demand for Rupees has diminished.

- First the Delhi govt. is making it more difficult for foreign companies to set up in India.
  New regulations and restriction have been introduced since 2009 the early days of international credit crisis.
- Second Indian labour is no longer the cheap resource it was even just 5 years ago. Indian is rapidly becoming a middle-class consumer society, and this is reflected in the wages and salaries that must be paid to find and keep good employees. So foreign companies are moving their "Cheap" international operations to other developing countries.

Devaluation of the Indian Rupee - The Indian rupee has fallen in value against a basket of currencies since independence in 1947. In recent years, the Indian Rupee has continued to depreciate in value.

Indian rupee value against US Dollar -

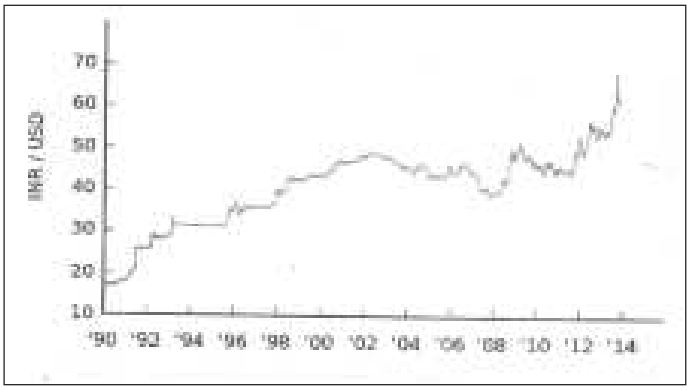

In 1990, you could buy $1 for 16 Indian rupees. By 2013 the value of a Rupee had fallen, so that you would need 65 Indian Rupees to buy $1.

Another way of thinking about ;

- **In 1990 1 Indian Rs. = 0.06 $**
- **In 2013 1 Indian Rs. = 0.016$**

This shows there has been a substantial fall in the value of the Indian Rupee against the US dollar. When there is a devaluation in the Indian Rupee it means that Indian exports become cheaper, but imports are more expensive for Indians to buy.

In particular, a devaluation in the Rupee is bad news for Indians who need to import raw materials, such as Oil and Gold.

For the last couple of months Indian rupee has became the worst performing Asian currency against the dollar. Indian currency is performing worst amont all the major emerging economies. In the first week of July 2013 it crossed the psychological barrier of Rs. 60 an reached to an all time high of Rs. 61 to the dollar. The rupees in recent times have not only depreciated against dollar butagainst all the major currencies. Infact the decline in the alue of rupee has been sharper relative to British pound and Euro. By the 2nd week of July 2013, 1 pound becomes equivalent to Rs. 90.44 and 1 Euro equivalent to Rs. 78.21.

* Professor, Shaheed Bhima Nayak Govt. P.G. Gollege, Barwani (M.P.) INDIA
** Professor, Govt. College, Rau (M.P.) INDIA *** Research Scholar, D.A.V.V. (M.P.) INDIA

Major Causes for decline in the values of rupee -

1. Strengthening of US dollar due to the decline in monetary policy of "quantitative easing' by the US federal.
2. Significant rise in domestic demand for gold imports as has led to depreciation of rupee due to increasing current A/c deficit as India has to pas sell its forex reserves for gold imports.
3. Fiscal deficit in the central udget is increasing at an alarming rate and at present it is at 4.5% of GDP. This deficit is financed by hot money flows and from FD's.
4. The recent downgrading of India by international rating agency has made India less attractive destination for foreign investor.
5. High inflation rate in the economy for quite a long time has resulted in the fall of nominal value of rupee.
6. Due to economic crises going in Europe as well as other parts of world, India export has contracted significantly and which has vesulated in adverse balance of payment conditions.

- We have further main six reasons for the steady stump in the value of India's currency.

1. Huge trade deficit.
2. Lower capital inflows.
3. High current account deficit.
4. Devaluation pressure.
5. Rupee speculation.

- Looking at the current economic outlook, it is necessary for both govt. an RBI to step in and prevent the further depreciation of Rupee -

Following are the measures that should be taken by RBI & Govt.

1. Govt. should increase the limit of FDI in the existign sectors as well as encouraging in other sectors such as amiation, retail, telecommunication, radio & broadcasting etc.
2. Govt. should create a stable political and economic environment in order to make India an attractive destination for foreign investments.
3. Govt. should raise import duty on gold in order to decrease the domestic demand for gold import.
4. Govt. and both RBI should take measures to bring down high inflation rates.
5. Govt. should steps boost export-intensive sectors and develop import-substituting industries in order to make India less dependent on imports.
6. RBI should sell forex reserves and buy rupees in an immediate action in order to arrest the further decline in the value of rupees.
7. RBI should hike the interest rate in order to reduce the money supply in the economy.

Conclusion - "All said and done but it may be argued that if policy makers attempt to arrest the further depreciation of rupees. Then the over-all economic growth will take a back seat.

Hence we can say that the policy maker are facing a real challenge of arresting the fall in the value of rupee as well as remaining the already slow economic growth. The future of the Indian economy now depends on how our policy makers deal with the current global economic situations."

References :-

1. www.iitk.ac.in
2. Wikipedia
3. Macro economics
4. Indian Banking and Financial System
5. Macro Economics Analysis
6. Globlization and Finance

****

भारत में खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश एवं क्रियान्वयन

प्रो. उर्मिला वर्मा * डॉ. आशा साखी गुप्ता **

शोध सारांश – एक देश की कंपनी का दूसरे देश में किया गया निवेश प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कहलाता है जो अंतर्वाह व बहिर्वाह होता है। भारत में 590 अरब डालर का खुदरा कारोबार है, जिसमें 5 करोड़ खुदरा व्यापारी व 30 करोड़ लोग रोजगार प्राप्त करते है। 14 सितम्बर 2012 को सरकार द्वारा मल्टीब्रांड में 51 प्रतिशत व सिंगल ब्रांड में 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दे दी गई है। राज्य चाहे तो अपने यहाँ प्रत्यक्ष विदेशी निवेश रोक सकते है। मुख्य प्रतियोगी विदेशी व देशी कंपनियां क्रमश: वालमार्ट/रिलायंस फ्रेश, केयरफोर/एबी बिरलाग्रुप, मेट्रोएजी/टाटाग्रुप, टैस्को/भारती वालमार्ट है। सन् 2000 से 2011 तक सरकार को प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से 660757 करोड रूपये का राजस्व प्राप्त हुआ, सर्वाधिक निवेश सेवा क्षेत्र में (20 प्रतिशत) रहा एवं 2011 से 14.15 (20 नवम्बर 2014 तक) 96.31 अरब डालर का विदेशी प्रत्यक्ष निवेश प्राप्त हुआ। 35 अरब डालर खूदरा क्षेत्र में एवं 70000 करोड़ रू. कृषि क्षेत्र में 5 वर्षो में आने की संभावना है।

खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से रोजगार बढ़ेगा किसानों को बिचौलियों से मुक्ति मिलेगी व उपभोक्ताओं को उचित दाम पर ब्रांडेड वस्तुए मिलेगी। देश में नई तकनीक आयेगी देश का विकास होगा। परंतु साथ ही बहुराष्ट्रीय स्टोर खुलने से इस क्षेत्र से जुडे 30 करोड़ लोग बेरोजगार हो जायेगे उनका व्यवसाय चौपट हो जाएगा। अत: यह आवश्यक है कि स्थानीय खुदरा व्यापारियों के हितों को ध्यान में रखा जावे, ताकि वे प्रतियोगिता का सामना करने में सक्षम हो सके।

शब्द कुंजी – 1. विदेशी प्रत्यक्ष निवेश 2. खुदरा व्यापार

प्रस्तावना – एक देश की कंपनी का दूसरे देश में किया गया निवेश प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कहलाता है। ऐसे निवेश से निवेशको को दूसरे देश की उस कंपनी के प्रबंधन में कुछ हिस्सा प्राप्त हो जाता है।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश दो तरह के होते है अंतर्वाह एवं बहिर्वाह। अंतर्वाह विदेशी निवेश में निवेशक भारत में कंपनी शुरू कर यहा के बाजार में प्रवेश कर सकता है, इसके लिये वह किसी भारतीय कंपनी के साथ संयुक्त उद्यम बना सकता है या पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कंपनी यानी सब्सिडी शुरू कर सकता है, अगर वह ऐसा नहीं करना चाहता तो यहां कि इकाई का विदेशी कंपनी का दर्जा बकरार रखते हुए भारत में संपर्क परियोजना या शाखा कार्यालय खोल सकता है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश निवेशक का दीर्घावधि निवेश होगा इसमें उनका वित्त के अलावा दूसरी तरह का भी योगदान होगा।

उद्देश्य –

1. भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को ज्ञात करना।
2. प्रत्यक्ष विदेशी खुदरा निवेश की आवश्यकता ज्ञात करना।
3. प्रत्यक्ष विदेशी खुदरा निवेश की कंपनिया एवं क्षेत्र ज्ञात करना।
4. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का खुदरा क्षेत्र पर प्रभाव ज्ञान करना।

परिकल्पना –

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में खुदरा क्षेत्र में विदेशी निवेश में निरन्तर वृद्धि हो रही है।
2. खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश स्थानीय व्यापार को प्रभावित कर रहा है।
3. खुदरा बाजार में बिचौलियों के समाप्त होने पर भारतीय उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर ब्रांडेड वस्तुऐं उपलब्ध होने लगेगी।

शोध प्रविधि – वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक व तुलनात्मक है। समंको का संकलन द्वितीयक स्त्रोतो से किया गया है तथा विषय सामग्री का संकलन पुस्तकें, शोध पत्रिकाएं, समाचार पत्र एवं इन्टरनेट से किया गया है।

भारत में विदेशी प्रत्यक्ष पूंजी निवेशकर्ता देश – अमेरिका, मारिशस, ब्रिटेन, जापान, दक्षिणी कोरिया, हॉलैण्ड, जर्मनी, ऑस्ट्रेलिया, फ्रांस, मलेशियॉ आदि है।

क्षेत्रानुसार विदेशी प्रत्यक्ष निवेश – सन् 2000 से 2011 तक विभिन्न क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश निम्न प्रकार रहा है।

आटोमोबाइल	–	4%
फार्मा	–	6%
कम्प्यूटर उद्योग	–	7%
सेवा क्षेत्र	–	20%
बिजली	–	4%
रियल स्टेट	–	7%
टेलीकाम	–	8%
अन्य क्षेत्र	–	44%

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से मिला राजस्व –

क्र.	वर्ष	राशि (अरब डालर में)
1	2011-12	35.12
2	2012-13	22.42
3	2013-14	24.29
4	2014-15	14.47

स्त्रोत – समाचार पत्र "दैनिक भास्कर" 30 नवम्बर 2014 पृष्ठ क्र. 05

2011-12 से लेकर अब तक (30 नवम्बर 2014) कुल 96.31 अरब डालर का विदेशी प्रत्यक्ष निवेश आया है। महाराष्ट्र में सबसे ज्यादा व दिल्ली दूसरे स्थान पर तथा चैन्नई तीसरे स्थान पर है। सबसे कम जम्मु क्षेत्र में आया है।

* सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) शहीद भीमानायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र) भारत
** प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) शहीद भीमानायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र) भारत

भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश व खुदरा व्यापार – खुदरा क्षेत्र "Sunrise Sector" भारतीय अर्थव्यवस्था का बहुत बड़ा हिस्सा है व देश में 590 अरब डालर (29.50 लाख करोड रूपये) का खुदरा कारोबार है, जिसमें 5 करोड़ खुदरा व्यापारी है एवं 30 करोड़ लोग रोजगार प्राप्त करते है। कृषि के पश्चात भारत का यह दूसरा बड़ा क्षेत्र है जिसमें लोगो को बड़ी मात्रा में रोजगार प्राप्त होता है। खुदरा क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का एक मजबूत आधार स्तम्भ है, जिससे विशेषकर शहरी क्षेत्र में रोजगार मिलेगा व सेवा क्षेत्र का विस्तार होगा। खुदरा क्षेत्र दो तरह का है Organised and Unorganised है।

डॉ. मनमोहन सिंह ने 14 सितम्बर 2012 को ब्राण्ड खुदरा, ऊर्जा प्रसारण व विमानन क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेश निवेश की मंजूरी दी है। मल्टीब्राण्ड में 51 प्रतिशत की अनुमति दी गई है अब विदेशी कंपनिया ग्रामीण दैनिक उपयोगी सामान बेचने के लिये स्वतंत्र है। कंपनियों को निवेश का 50 प्रतिशत हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी ढांचा खड़ा करने पर खर्च करना होगा तथा कम से कम 10 करोड़ डालर का निवेश करना आवश्यक होगा। यह माना जा रहा है कि इससे देश में बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा मिलेगी और ग्राहक अपना मनपसंद सामान उचित दामों पर खरीद सकेगे।

खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की मुख्य बाते –

1. मल्टीब्राण्ड क्षेत्र में 550 करोड़ रूपये का निवेश करना आवश्यक है।
2. सिंगल ब्रांड में 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश।
3. राज्यों के लिये यह निर्णय ऐच्छिक है, जो राज्य नहीं चाहते के अपने यहा निवेश रोक सकते है।
4. स्टोर 10 लाख या ज्यादा आबादी वाले शहरों में ही खुलेगे।
5. भारत में सिर्फ 53 नगर ही है, जहां आबादी 10 लाख या उससे अधिक है।
6. 30 प्रतिशत खरीददारी भारत में ही करनी होगी।

सरकार के फैसले से 53 बड़े शहरों में खुदरा बाजार दिग्गज वालमार्ट केयरफोर, टैस्को जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपने खुदरा स्टोर श्रृंखला खोलने का मार्ग प्रशस्त हो गया है। नई खाद्य वस्तुओं नई जीवनशैली और खेलकूद सामान के व्यवसाय में कंपनिया उतरी है। अब एडीडास गुकी, हर्मेस एल वी एम एच और कोस्टा काफी जैसी कंपनिया भी पूर्ण स्वामित्व के साथ कारोबार कर सकेगी।

कुछ प्रतियोगी कंपनिया –

क्र.	विदेशी	देशी
1	वालमार्ट – देश– अमरीका कारोबार – 16 देशों में, राजस्व (2009) – 404 अरब डालर	रिलायंस फ्रेश – देश के कई शहरों में 560 से भी ज्यादा स्टोरटर्न ओवर रूपये 4500 करोड़
2	केयरफोर – देश– फ्रांस कारोबार – 36 देशों में, राजस्व (2009) – 122 अरब डालर	एबी बिरला ग्रुप – भारत में 600 सुपर मार्केट व 9 घर पर मार्केट टर्न ओवर रूपये 1700 करोड़
3	मेट्रो एजी – देश– जर्मनी कारोबार – 33 देशों में, राजस्व (2009) – 91 अरब डालर	टाटा ग्रुप – पुरे देश में 2000 से अधिक स्टोर टर्न ओवर रूपये 9544 करोड़
4	टैस्को –देश– ब्रिटेनकारोबार – 13 देशों में, राजस्व (2009) – 94.43 अरब डालर	भारती वालमार्ट – भारत के कई शहरों में 100 से अधिक स्टोर 07 अरब निवेश की योजना

भारत में करीब 8 लाख करोड़ रूपये का हर वर्ष कृषि उत्पादों का व्यापार होता है, जिन्हें 28 हजार से अधिक थोक विक्रेता प्राथमिक ग्रामीण बाजार में बेचते है। देश भर में 7557 व्यवस्थित बाजार है। भारत में कृषि उत्पादों की बर्बादी काफी अधिक होती है। कारण देश में सिर्फ 5386 कोल्ड स्टोरेज है और उनका भी उपयोग सिर्फ आलू रखने में किया जाता है। 35.40 प्रतिशत फल सब्जियां हर वर्ष खराब हो जाती है। खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश इन समस्याओं के समाधान में सहायक होगा।

खुदरा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लाभ निम्नलिखित है –

1. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से देश में भारी मात्रा में विदेशी निवेश आयेगा।
2. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से खुदरा सेक्टर में अगले तीन वर्षो में लगभग एक करोड़ रोजगार के अवसर निकलेगे।
3. किसानों को बिचौलियों से मुक्ति मिलेगी और वह अपनी फसल को सीधे मल्टीब्राण्ड खुदरा कंपनियों को अच्छे दामों पर बेच सकेंगे। फसल को उन्हें बेचने नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि कंपनियां सीधे खेत से उनके उत्पाद को उठा लेगी।
4. उपभोक्ताओं को कम दामों पर विश्वसनीय चीचें उपलब्ध होगी।
5. भण्डारण की समस्या नहीं रहेगीं क्योकि कंपनियां अपने वेयर हाउस बनायेगी।
6. विदेशी कंपनियां सप्लाई चेन सुधारेगी तो खाद्य सामग्री का खराब होना थमेगा।
7. सामान सड़ने–गलने से बचेगा तो खाद्य मंहगाई भी सुधरेगी।
8. छोटे दुकानदारों को कोई खास फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि बड़ी कंपनियां व छोटे दुकानदारों के काम करने का तरीका अलग–अलग है। चीन हो या इंडोनेशिया यहां भी खुदरा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को मंजुरी दी गई वहां एग्रो प्रोसेसिंग के दिन फिर गये।
9. विदेशी कंपनियों को कम से कम 30 प्रतिशत सामान भारतीय बाजार में ही लेना होगा इससे देश में नई तकनीक आयेगी। लोगों की आय बढ़ेगी व इसका फायदा औद्योगिक विकास दर को मिलेगा।

खुदरा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की हानियां –

1. एक राष्ट्रघाती कदम मानते है देश में इस समय करीब 5 करोड़ खुदरा व्यापारी है। जिनसे अप्रत्यक्ष तौर पर 30 करोड़ लोग जुड़े हुए है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से ये 30 करोड़ लोग सीधे–सीधे प्रभावित होगें।
2. देश में बहुर्राष्ट्रीय स्टोर खुलने के बाद इन स्टोरों पर ग्राहकों को लुभाने हेतु अनेक योजनाएं जैसे 'एक के साथ एक फ्री' डिब्बे के साथ पेस्ट फ्री आदि चलाई जायेगी। जिनसे छोटी–मोटी दूकान चलाने वाले का तो व्यापार ही चौपट हो जायेगा। साथ ही इनसे जुड़े करोड़ों लोग बेराजगार हो जायेगें।
3. देश में लोग घरों के छोटे हिस्से में ही खुदरा व्यापार कर लेते है वे 1 रूपये व 50 पैसे की चीज भी बेच देते हे। ऐसे में मॉल संस्कृति का विस्तार संदेहप्रद है।
4. चूकिं मल्टीब्राण्ड खुदरा में 51 प्रतिशत निवेश की अनुमति दी गई है। अत: इन स्टोरो पर नियंत्रण भी बहुर्राष्ट्रीय कंपनियों का होगा। अत: इनकी सहयोगी भारतीय कंपनिया चाहकर भी अपने देश के हितों की रक्षा नहीं कर पायेगी।

5. बड़ी विदेशी कंपनियां वर्तमान बाजार व व्यापारियों को प्रभावित करेगी।

सुझाव –

1. स्थानीय व्यापारियों के हितो का ध्यान रखा जाये उन्हें भी प्रतियोगिता हेतु सक्षम बनाया जाना आवश्यक है।
2. विदेशी कंपनियों के उत्पादों की गुणवत्ता पर नियंत्रण आवश्यक है।
3. खुदरा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश नियमों का कड़ाई से पालन कराया जाये।
4. निवेश के स्तर व निवेश के क्षेत्र की सतत निगरानी रखी जाये।
6. भविष्य में खुदरा क्षेत्र में उन्हीं वस्तुओं में विदेशी सहयोग समझौते किये जाय जिनमें विदेशी तकनीक या कुशलता की ज्यादा आवश्यकता होती है।
7. प्राथमिकता वाले उपभोक्ता उद्योग में निवेश को प्राथमिकता दी जाय।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. इंटरनेट।
2. प्रतियोगिता निर्देशिका।
3. प्रतियोगिता किरण नवंबर 2012
4. क्रानिकल दिसंबर 2012
5. 12 इंटरनेशनल कांफ्रेस जयपूर आयोजन रिसर्च डेवलपमेट एसोसियन एवं रिसर्च डेवलपमेंट रिसर्च फाउण्डेशन जयपूर – सोविनियर पृ. क्र. 14, 29, 54, 60,67, 120 एवं 123.
6. डॉ. पी.सी. जैन एवं एल.एन. शर्मा– उद्यमिता कौशल विकास 2010, पृ. 21.3 रमेश बुक डिपों जयपूर।
7. संपादक राज कपिला/उमा कपिला – भारतीय अर्थनीति 2010, पृ. 21.3 साहित्य प्रकाशन, नई–दिल्ली।
8. पी.वी. राजीव, अनुवादक – महावीर प्रसाद भारद्धाज – वैश्वीकरण के युग में भारत–2009 राधा पब्लिकेशनस,नई–दिल्ली।
9. समाचार पत्र, शोध पत्र–पत्रिकाएं।

****

ब्रिक्स विकास बैंक और भारत के लिए इसका महत्व

डॉ. सचिन दास * अतुल मध्दव * *

शोध सारांश – ब्रिक्स (BRICS) दुनिया की पाँच उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं का एक नया संगठन है, जो आपस में आर्थिक सहयोग के साथ-साथ पश्चिम देशों व अमेरिका के प्रभुत्व वाली आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था के स्थान पर एक बहुपक्षीय व्यवस्था की स्थापना के लिए प्रयासरत् है। इस संगठत में पाँच देश-ब्राजील, रूस, इण्डिया, चीन तथा साउथ अफ्रीका शामिल हैं इसका नामकरण इन पाँच देशों के नामों के पहले अक्षरों से हुआ है। भारत इसका एक अहम सदस्य है और क्षेत्रीय संगठनों में भारत द्धारा इसकी सदस्या ग्रहण करना भारत की बदलती वैश्विक नीति का परिचायक है जो कई अर्थो में प्रासंगिक हो सकता है। ब्रिक्स समुह में भारत का अपना अलग महत्व है। आज भारत विश्व में अपना विशेष स्थान प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है। दक्षिण पूर्व एशिया की एक प्रमुख शक्ति होने के कारण आज विश्व के शक्तिशाली देशों ने भारत को महत्व देना प्रारंभ कर दिया हैं। जहां भारत को रूस की पंरपरागत मित्रता और चीन के साथ आर्थिक सहयोग से लाभ हुआ है तो ब्राजील एंव दक्षिण अफ्रिका के साथ (इब्सा – इंडिया, ब्राजील एंव साउथ अफ्रीका के सहारे) भारत का मान – सम्मान बढ़ा है।

प्रस्तावना – ब्रिक्स का विचार सबसे पहले वित्तीय कम्पनी गैंल्डमन सैच के अर्थशास्त्री **जिम ओ नील** ने 2003 में प्रकाशित अपनी रिपोर्ट **'ड्रीमिंग विद ब्रिक्स: दा पाथ टू 2050'** में दिया था, उनके अनुसार चार देशों – ब्राजील, रूस, भारत तथा चीन 2050 तक विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थांऐं होगे, वर्तमान में अमरीका तथा यूरोपियन संघ की अर्थव्यवस्थांऐं विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थांए है,इस रिपोर्ट के अनुसार चीन व भारत वस्तुओं तथा सेवाओं उत्पादन में विश्व के सबसे बड़ी निर्माओं के रूप में उभर रहे हैं, दुसरी ओर रूस व ब्राजील विश्व के कच्चे माल के सबसे बड़े आपूर्तिकर्ता के रूप में उभर रहे हैं अत: इन देशों में आपसी सहयोग की प्रकिया स्वाभाविक रूप से चलेगी। **फालो –अप रिपोर्ट के नाम से उनकी दूसरी रिपोर्ट 2004** में प्रकाशित हुई इसके अनुसार 2007 तक इन देशों में 3000 डॉलर से अधिक प्रति व्यक्ति आय वाले लोगों की सख्या दोगुनी हो जाएगी तथा इन देशों में मध्यम वर्ग की सख्या 800 मिलियन तक हो जाएगी, यही मध्यम वर्ग इन देशों में आर्थिक विकास आगे बढाएगा। गैंल्डमैन सैच की **अगली फार्ले–अप रिपोर्ट वर्ष 2007** में प्रकाशित हुई जिसमें आने वाले दशकों में भारत की विकास क्षमता पर प्रकाश डाला गया है, इस रिपोर्ट के अनुसार भारत अपनी विकास क्षमता को अनुमानित समय के पूर्व ही प्राप्त कर लेगा। विश्व में 30 सबसे तीव्र गति से विकसित होने वाले शहरी क्षेत्रों में से 10 भारत में होगे, वर्ष 2050 तक भारत के 700 मिलियन लोग शहरी क्षेत्रों में निवास कर रहे होगे। **गोल्डमैन सैच की अन्तिम रिपोर्ट 2010 में प्रकाशित हुई जिसका शीर्षक है– ई एम इक्विटी इन टु डिकेडस: ए चेन्जिंग लैण्डस्केपय** इसमें ब्रिक देशों में वित्त व पूँजी की स्थिति पर प्रकाश डाला गया हैं। 2030 तक चीन पूँजी बाजार में हिस्सेदारी के हिसाब से अमरीका से आगे होगा, 2010 में चीन जापान को पीछे कर विश्व की दुसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन गया हैं, गोल्डमैन सैच के उक्त विचारो को **ब्रिक थेसिस** के नाम से भी जाना जाता है।

ब्रिक्स के प्रमुख उद्देश्य – ब्रिक्स के सम्मेलनों के अन्त में जारी घोषण-पत्रों व इनकी गतिविधियों के आधार पर ब्रिक्स के निम्नलिखित उद्देश्य माने जा सकते है –

- पश्चिमी देशों के प्रभुत्व वाली राजनीतिक व आर्थिक व्यवस्था के स्थान पर एक न्यायपूर्ण तथा समतापूर्ण विश्व व्यवस्था की स्थापना करना हैं।
- वर्तमान में विश्व के प्रमूख मुद्दो जैसे-जलवायु परिवर्तन, आतंकवाद, विश्व व्यापार व्यवस्था का संचालन, ऊर्जा सुरक्षा तथा मानवीय विकास आदि का न्यायोचित समाधान करना हैं।
- सदस्य देशों के मध्य आपसी संबंधो को मजबूत करना हैं।

विश्व में ब्रिक्स बैंकों के सदस्यों की वर्तमान स्थिति

	ब्राजील	रूस	**भारत**	चीन	साउथ अफ्रीका
क्षेत्रफल	5TH	1TH	**7TH**	3RD	25TH
जनसंख्या	5TH	9TH	**2ND**	1ST	25TH
श्रमसंख्या	5TH	7TH	**2ND**	1ST	34TH
प्रतिव्यक्ति–सकल राष्ट्रीय उत्पाद	66TH	51TH	**148TH**	83TH	80ST

ब्रिक्स डेवलमेंट बैंक का अन्य क्षेत्रीय राष्ट्रीय एवं बहुपक्षीय बैंकों के साथ सम्बन्ध – ब्रिक्स देशों की राय में ब्रिक्स बैंक का तालमेल अन्य क्षेत्रीय बहुपक्षीय एव बैकों के साथ बैठना जरूरी है ताकि क्षेत्रीय अथवा राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत बैंक अपने उत्तरदायित्व को बेहतर ढंग से कार्यान्वित कर सके। वस्तुत: ब्रिक्स बैंक अन्य बैंकों के लिए एक बेहतर नेटवर्क की तरह कार्य करेगा। इसके पीछे यह तर्क काम करेगा कि अगर राष्ट्रीय विकास बैंक अच्छे ढ़ंग से अपना कार्य तभी निष्पादित सकता है अगर उन्हें किसी बहुपक्षीय बैंक का सहयोग एवं आधार मिले। अत: अन्य क्षेत्रीय एंव राष्ट्रीय बैकों के साथ मिलकर कार्य करने से बैंको की कार्यप्रणाली अधिक संतुलित होगी एंव विकास योजनाओं पर इसका सकारात्मक असर पड़ेगा।

* प्राचार्य, मौलाना आजाद महाविद्यालय, देवास (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

ब्रिक्स देंशों की अर्थव्यवस्था एक-दूसरे की प्रतियोगी न होकर पूरक है,

शिखर सम्मेलन	देश	स्थान	समय
पहला	रूस	येकैटरिनबर्ग	16 जून 2009
दूसरा	ब्राजील	ब्रासीलिया	16 अप्रैल 2010
तीसरा	चीन	सान्या	14 अप्रैल 2011
चौथा	**भारत**	**नई दिल्ली**	**29 मार्च 2012**
पाँचवाँ	दक्षिण-अफ्रीका	डरबन	27 मार्च 2013
छठवाँ	ब्राजील	फोर्टालेजा	15 जुलाई 2014
सातवाँ	रूस	प्रस्तावित	2015

ब्रिक्स में सम्मिलित देशों की कुल जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का 40 प्रतिशत है तथा इन देशों का कुल क्षेत्रफल विश्व के कुल क्षेत्रफल का 25 प्रतिशत हैं। इन देशों का कुल सम्मिलित सकल घेरलु उत्पाद लगभग 15.5 मिलियन डालर है। ब्रिक्स की धारणा के अंतर्गत यह भी बताया गया कि ब्रिक्स देशों की अर्थव्यवस्था एक-दुसरे की प्रतियोगी न होकर पूरक हैं, रूस एंव ब्राजील कच्चे माल एंव ऊर्जा संसाधन के बड़े आपूर्तिकर्ता है वही भारत एंव चीन में ऊर्जा खपत एंव विनिर्माण क्षेत्र में अपार संभावनाएं निहित हैं। इन्हीं धारणाओं से प्ररेति होकर 2009 में रूस, ब्राजील, चीन तथा भारत ने ब्रिक्स की स्थापना का निर्णय लिया।

ब्रिक्स देशों का शिखर सम्मेलन प्रारम्भ से वर्तमान तक -ब्रिक्स के शिखर सम्मेलन ब्रिक्स देशों का प्रथम सम्मेलन रूस के येकैटरिनबर्ग में 16 जून 2009 को सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में इन चार देशों ने अमरीकी उसके यूरोपीय सहयोगियों के प्रभुत्वशाली वर्तमान वैश्विक व्यवस्था के स्थान पर बहुध्रुवीय विश्व-व्यवस्था की मांग की थी।

ब्रिक्स देशों का दूसरा सम्मेलन ब्राजील की राजधानी ब्रासीलिया में 16 अप्रैल 2010 को सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में ब्रिक देशों ने बहुध्रुवीय प्रजातांत्रिक वैष्विक व्यवस्था की मांग दोहराई। इसी सम्मेलन में यह भी निर्णय लिया गया कि दक्षिण अफ्रीका को भी ब्रिक्स की सदस्यता प्रदान की जाए। इसके बाद से ब्रिक का नाम बढ़ाकर ब्रिक्स कर दिया गया।

ब्रिक्स का तीसरा शिखर सम्मेलन चीन के शहर सान्या में 14 अप्रैल 2011 को सम्पन्न हुआ। दक्षिण अफ्रीका ने पहली बार इस सम्मलेन में भाग लिया। इस सम्मेलन के दौरन ब्रिक्स देशों में चल रहे सहयोगात्मक कार्यक्रमों की समीक्षा भी की गई तथा नई गतिविधियां के बारे में भी सहमति बनी। इस सम्मेलन में बहस के अन्य विषय थे, सुरक्षा संबंधी चिन्ता, तकनीकी शोध, खाद्य, सुरक्षा, बैकिग संस्थाओं में सहयोग तथा व्यवसायिक संगठनों के बीच भी सहयोग।

ब्रिक्स देशों का चौथा सम्मेलन नई दिल्ली भारत में 29 मार्च 2012 में सम्पन्न हुआ। इस दौरान भारत ने पर्यावरण, क्लाइमेंट चेंज तथा आतकंवाद को बहस का मुद्दा बनाया तथा ब्रिक्स देशों से अपील की आंतकवाद के खिलाफ एक जुट होकर लड़ने की जरूरत है।

ब्रिक्स देशों का पांचवा सममलेन दक्षिण अफ्रीका के शहर मे सम्पन्न हुआ इस सम्मेलन के दौरान 27 मार्च 2013 में डरबन में हुए ब्रिक्स सम्मेलन में ब्रिक्स बैंक के विचार पर सहमति बनी। डरबन शिखर सम्मलेन के आयोजन के साथ ही पांचों सदस्य देशों में एक-एक बार शिखर सम्मेलन आयोजन का दौर पूरा हो गया। डरबन सम्मलेन के दौरान भारतीय प्रधानमंत्री ने मेजबान राष्ट्रपति जैकब जमा के अतिरिक्त ब्राजील, रूस व चीन के राष्ट्रपतियों के साथ विभिन्न मुद्दों पर अनौपचारिक बातचीत की।

चीन के नये राष्ट्रपति शी जिनजिंग के साथ अपनी पहली ही मुलाकात में जिन द्विपक्षीय मुद्दों पर उनकी बातचीत हुई उनमें ब्रह्मपुत्र नदी पर चीन द्वारा तीन बांध बनाए जाने का मुद्दा भी शामिल था। इन बांधों से भारत आने वाली पानी के प्रवाह पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की चिन्ता से भारत, चीन को पहले ही अवगत करा चुका हैं चीन की और से ऐसी आशंकाएँ निर्मूल बताई गई। ब्रिक्स का अगला शिखर सम्मलेन ब्राजील के शहर फोर्टालिजा मे 15 जुलाई 2014 को सम्पन्न हुआ जहाँ ब्रिक्स के दस्तावेज पर हस्ताक्षर होने के साथ ही न्यू डेवलपमेंट बैंक अस्तित्व में आया यह बैंक 2016 से अपना कार्य शुरू कर देगा। भारत के लिए अच्छी बात यह रही कि बैंक की अध्यक्षता भारत के ही जिम्मे हैं, जिसे भारत की कूटनीतिक सफलता माना जा रहा है।

वर्तमान परिपेक्ष में ब्रिक्स के लिए भारत का महत्व -

- ब्रिक्स भारत को एक ऐसा अवसर प्रदान करता है जिसमें वह अपने विकास अनुभवों को सदस्य देशों के साथ बांट सकता है। साथ ही रूस एंव चीन जैसे देशों के अनुभवों का लाभ भी उठा सकता है, इसका एक कारण यह भी है कि स्वयं ब्रिक्स के अन्य सदस्य देश भी उन्हीं चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, जिनसे भारत जुझता रहा है।
- ब्रिक्स प्लेटफार्म के माध्यम से भारत यह समझने में भी सफल रहा है कि वैश्विक आर्थिक मंदी तथा वित्तीय संकट की स्थिति का किस प्रकार सामना किया जा सकता है और कौन-कौन सी सावधानियां बरती जा सकती हैं।
- भारत के ब्रिक्स देशों के साथ खाद्य सुरक्षा कृषि, बीमारियों, विदेशो सहायता तथा वैश्विक तापन के क्षेत्र में अनुभवों का आदान-प्रदान भी किया इस संदर्भ में भारत में कुछ अभिनव प्रयोग भी किए गए है जिनमें अधिकांश का सकारात्मक प्रभाव रहा है।
- चीन के साथ ब्रिक्स के माध्यम से संबंधो को बेहतर बनाकर न सिर्फ चीन के साथ विवादों को सुलझाने में सफल हो सकता है बल्कि पाकिस्तान में चीन के प्रभाव को प्रतिसंतुलित भी कर सकता है।
- भारत ने इंटेलिजेंस तथा सुचना प्रणाली में रूस से मदद भी ली है कि ताकि पाकिस्तान की आतंकवादी गतिविधियों पर लगाम लगाने हेतु एक बेहतर तंत्र का निर्माण कर सके और इस संदर्भ में ब्रिक्स के माध्यम से सामूहिक सुरक्षा की संकल्पना भारत के लिए फायदेमंद साबित हुई हैं।
- इसके अलावा ब्रिक्स के माध्यम से भारत-रूस के बीच व्यापार-वाणिज्य ऊर्जा तथा अवसंरचना के माध्यम से अपार संभावनांए बनी हैं।
- ब्राजील-भारत संबंध को ब्रिक्स के माध्यम से ही एक नया आयाम मिला है, जिसका परिणाम है कि अंतर्राष्ट्रीय मंचों, डब्ल्यूटीओ विश्व बैंक तथा सयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत की स्थिति अधिक मजबूत मानी जा रही हैं।
- ब्रिक्स इस संदर्भ में भी भारत के लिए महत्वपूर्ण है कि गोल्डमैन सैस के अर्थशास्त्री द्वारा भारतीय अर्थशास्त्री द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था को एक प्रभावी एंव निर्णायक अर्थव्यवस्था के रूप में पहचाना गया हैं।
- अत: भारत में अवसंरचना से जुड़े परियोजनाओं के लिए ब्रिक्स बैंक वित्तीयन के एक नये स्त्रोत के रूप में विकल्प भी प्रदान करेगा।

निष्कर्ष - ब्रिक्स की कार्य विधी का क्षेत्र काफी विस्तृत है,जिसमे गैर ब्रिक्स देशों के वर्चस्व के स्थान पर ब्रिक्स देशों की भी सहभागिता के द्वारा वित्तीय सुधार, सुरक्षा, जलवायु परिवर्तन से होने वाली आपदाओं आदि मुद्दो का

समाधान करने का प्रयास किया जा रहा हैं। वर्तमान मे ब्रिक्स देशों में भारत ने अपना अलग ही स्थान बना लिया है, छठवाँ ब्रिक्स शिखर सम्मेलन जो कि ब्राजील के शहर फोर्टालेजा मे 15 जुलाई 2014 को सम्पन हुआ, जिसमें माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने भारत का प्रतिनिधित्व किया, जिसमें कर चोरी विकास की एक प्रमुख बाधा है इसे रोकने, गरीबी निवारण के लिए विश्व बैंक द्धारा सहायता, आंतकवाद के प्रत्येक रूप को विश्व शांति व सुरक्षा हेतु खतरा बताते हुए इसकी रोकथाम हेतु प्रभावी कदम उठाना, समेकित एंव टिकाऊ विकास पर बल देना प्रमुख रूप से शामिल था। इस सम्मेलन की प्रमुख बात यह रही कि इसमें ब्रिक्स विकास बैंक की स्थापना की गई है, यह बैंक चीन के शहर शंघाई में स्थापित किया जाएगाा, इसकी आरम्भिक पूंजी 100 मिलियन डालर होगी जिसकी अध्यक्षता का कार्यभार भारत को सौपा गया हैं।

अत: उपरोक्त बातों की ध्यान में रखकर निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि ब्रिक्स देशों के छठे शिखर सम्मलेन में माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी द्धारा कुटनीतिज्ञ के रूप मे भारत का प्रतिनिधित्व कर ब्रिक्स देशों के बीच में भारत का प्रभुत्व एंव वर्चस्व स्थापित करने के कारण ब्रिक्स देशों के द्धारा ब्रिक्स विकास बैंक की प्रथम अध्यक्षता का कार्यभार भारत को सौपा गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. सिविल सर्विसेज क्रॉनिकल मैग्जीन -सितम्बर 2014
2. प्रतियोगिता दर्पण हिन्दी मासिक - अक्टूबर 2014
3. महामीडिया मासिक पत्रिका -अगस्त 2014
4. दैनिक पत्र-पत्रिका , दैनिक भास्कर , नई दुनिया , टाईम ऑफ इंडिया
5. विक्कीपीडिया
6. भारतीय अर्थव्यवस्था

****

लिंग संरचना स्थिति का विश्लेषण - मध्यप्रदेश के देवास जिले के संदर्भ में

डॉ. मंजू राजोरिया *

प्रस्तावना – जनसंख्या संरचना का सबसे लोकप्रिय तत्व उसमें पुरूष एवं स्त्रियों का अनुपात निकालना है जिसे लिंगानुपात कहा जाता है। किसी भी देश की बढ़ती हुई जनसंख्या उस देश की आर्थिक प्रगति को मंद कर देती है। देश के जनांनकीय विश्लेषण में उस देश की लिंग संरचना महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत की जनसंख्या संरचना की विशेषता यह है कि यहाँ स्त्रियों की संख्या पुरूषों की संख्या से कम है। लिंग अनुपात का जन्म और मृत्युदर से भी गहरा संबंध होता है। सामान्यत: स्त्रियों का मृत्युदर पुरूषों की मृत्युदर से कम होती है क्योंकि स्त्रियों में बीमारियों की प्रतिरोधक क्षमता पुरूषों की बीमारियों से अधिक होती है। लिंगानुपात विवाह एवं शिशुओं की संख्या पर भी प्रभाव डालता है। लिंग अनुपात में विषमता के कारण सामाजिक बुराईयों को पनपने का अवसर मिलता है। इसलिये लिंग संरचना का अध्ययन आवश्यक है।

लिंग संरचना से आशय –प्रति हजार पुरूष पर स्त्रियों की संख्या को लिंग अनुपात या स्त्री-पुरूष अनुपात कहा जाता है। लिंगानुपात भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार से निकाला जाता है।

भारत में लिंगानुपात एक हजार पुरूषों के संदर्भ में महिलाओं की संख्या के रूप में व्यक्त किया जाता है।

$$SR = \frac{pf \times 100}{pm}$$

PF = महिलाओं की संख्या

Pm = पुरूषों की संख्या

आदर्श लिगांनुपात में पुरूषों पर महिलाओं की संख्या अधिक होती है। भारत में पुरूषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या कम होने के कारण है –

1. **परंपरागत सोच –** भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अनुसार परिवार का नाम बढ़ाने वाला या वंशवृद्धि सिर्फ लड़कों से ही होती है। जीवन के अंत में गंगाजल, अग्नि देने वाला बेटा ही होता है। यही समाजिक सोच प्रतिकूलता पैदा करती है।
2. परिवार नियोजन के अभाव में बार-बार प्रसूती के कारण शरीर कमजोर पड़ जाता है और उनकी मृत्यु हो जाती है।
3. लड़कियों के प्रति भेदभाव का व्यवहार जन्म से ही शुरू हो जाता है जिससे उनकी मानसिकता पर विपरीत असर पड़ता है और उनकी मृत्यु हो जाती है।
4. बाल विवाह भी महिलाओं की मृत्यु का एक कारण है।
5. भारत में स्त्रियों का जन्म अभिशाप माना जाता है। इस कारण या तो भ्रूण में या पैदा होते ही हत्या कर दी जाती है।
6. भारत में लड़कियों की कम देखभाल होती है जिसके कारण बाल्यकाल में प्रसूती अवस्था में ही उनकी मृत्यु हो जाती है।
7. दहेज प्रथा समाज में कुप्रथा है। दहेज लेने देने का तरीका बदल गया है जिसके कारण कन्या को जन्म के बाद या शादी के बाद मार दिया जाता है।
8. क्रोमोसोम विच्छेद का उपयोग अनुवांशिक बीमारी के लिये किया जाता था पर आज इसका दुरूपयोग भी स्त्रियों की कमी कारण है।

देवास जिले में लिंग संरचना की स्थिति का विश्लेषण – देवास जिले में लिंग संरचना की स्थिति का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया जो इस प्रकार से है –

तालिका क्रं. 01
देवास जिले में लिंगानुपात की स्थिति

क्र.	जनगणना वर्ष	लिंगानुपात प्रति हजार पुरूष पर स्त्रियों की संख्या
1	1991	925
2	2001	932
3	2011	942

Source Census 2001-2011

यदि देवास जिले की लिंगानुपात स्थिति देखी जाये तो 1991 में यह 925 था जो बढ़कर 2001 में 932 हो गया और 2011 यह 942/1000 हो गया।

तालिका देखने पर ज्ञात है कि देवास जिले में लिंगानुपात में निरंतर वृद्धि हो रही है जिसमें 1991 में जहाँ 925 स्त्रियॉ प्रति हजार पुरूष थी जबकि 2001 में प्रति हजार पुरूष पर 932 हो गयी यानि स्त्रियों की संख्या में 07 स्त्रियों की वृद्धि हुई है। उसी प्रकार 2011 में प्रति हजार पुरूष पर स्त्रियों की संख्या बढ़कर 932 से 942 हो गयी यानि वर्ष 2001 की तुलना में 10 स्त्रियॉ बढ़ गई। अत: स्पष्ट है कि स्त्रियों की संख्या में लगातार वृद्धि एक सकारात्मक दृष्टिकोण को दर्शाता है। इसके निम्न कारण है –

1. साक्षरता वृद्धि के कारण लिंगानुपात में सुधार हुआ है। 2011 की जनगणना में जिले में 69 प्रतिशत साक्षरता है। शिक्षा से सोच में बदलाव आता है।
2. साक्षरता से महिलाएँ आर्थिक रूप से सक्षम हुई है। महिलाओं से संबंधित भ्रांतियॉ कम हुई है।
3. चिकित्सा व्यवस्था की उपलब्धता एवं जागरूकता के कारण मातृत्व मृत्युदर व कन्या भ्रूण हत्या में कमी आई है।

देवास जिले की विभिन्न ब्लॉक वाईज़ लिंगानुपात का अध्ययन करने पर निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुये जो इस प्रकार से है –

* सहायक प्राध्यापक, महारानी पुष्पमाला राजे पवार शासकीय कन्या महाविद्यालय,देवास (म.प्र) भारत

तालिका क्रं. 02

देवास जिले में लिंगानुपात की स्थिति (प्रति एक हजार पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या)

क्रं.	ब्लॉक	लिंगानुपात 1991	लिंगानुपात 2001	लिंगानुपात 2011
1.	देवास	925	932	942
2.	टोंकखुर्द	927	936	947
3.	सोनकच्छ	924	938	950
4.	बागली	938	948	961
5.	कन्नौद	936	932	944
6.	खातेगाँव	916	915	924
	कुल	**925**	**932**	**942**

Source Census 1991,2001,2011 (Dewas District)

1. देवास जिले में 1991 में लिंगानुपात स्त्रियाँ प्रति 1000 पुरूष 925 2001 में, प्रति 1000 पुरूष 932 व 2011 में प्रति 1000 पुरूष पर 942 थी। यानि देखने पर ज्ञात होता है कि तीनों जनगणनाओं में लिंगानुपात की स्थिति में सुधार आया है। तीनों जनगणनाओं में देवास जिले की सबसे कम लिंगानुपात वाला ब्लॉक खातेगाँव है।
2. टोंकखुर्द में लिंगानुपात स्त्रियाँ प्रति 1000 पुरूष 1991 में 927, 2001 में 936 तथा 2011 में 947 है। इस प्रकार लिंगानुपात में लगातार वृद्धि हुई है।
3. सोनकच्छ में लिंगानुपात स्त्रियाँ प्रति 1000 पुरूष 1991 में 924, 2001 में 938 एवं 2011 में 950 थी। 1991 के तुलना में 14 स्त्रियों तथा 2001 की तुलना में 12 स्त्रियों की वृद्धि हुई।
4. बागली में लिंगानुपात स्त्रियाँ प्रति 1000 पुरूष 1991 में 938 थी जो 2001 में 948 थी। 1991 की तुलना में 2001 में 10 स्त्रियों की वृद्धि हुई तथा तीनों जनगणनाओं में सर्वाधिक लिंगानुपात वाला ब्लॉक रहा।
5 कन्नौद में लिंगानुपात प्रति हजार पुरूष पर 1991 में 936 व 2001 में 932 था। 1991 की तुलना में 4 स्त्रियों की कमी हुई लेकिन 2011 में यह अनुपात 944 था जिसमें 12 स्त्रियों की संख्या में वृद्धि हुई।
6. खातेगाँव में लिंगानुपात प्रति हजार पुरूष पर 1991 में 916, 2001 में 915 था जो, कि बढ़कर 2011 में 924 हो गया। 2001 की तुलना में 09 स्त्रियों में वृद्धि हुई।

देश-प्रदेश तथा जिले में लिंगानुपात

तालिका क्रं. 03

क्रं.	स्थान	लिंगानुपात 1991	लिंगानुपात 2001	लिंगानुपात 2011
1.	भारत	927	933	942
2.	मध्यप्रदेश	932	920	931
3.	देवास	925	932	942

स्त्रोत : भारतीय जनांकिकी (1991,2001,2011)

यदि भारत व मध्यप्रदेश से देवास जिले की तुलना की जाए तो 1991 में भारत का लिंगानुपात प्रति 1000 पुरूष पर स्त्रियों की संख्या 927, मध्यप्रदेश में 932 तथा देवास जिले में 925 था यानि लिंगानुपात देवास जिले में कम था। इसी प्रकार 2011 में लिंगानुपात 942 था जो, कि भारत व मध्यप्रदेश की तुलना में बढ़ा है।

इसी प्रकार 2011 में भारत का लिंगानुपात प्रति 1000 पुरूष पर स्त्रियों की संख्या 933, मध्यप्रदेश में 920 व देवास जिले में 632 था। देवास जिले का लिंगानुपात मध्यप्रदेश की तुलना में अधिक था। 2011 की स्थिति में भारत में लिंगानुपात 940, मध्यप्रदेश में 931 व देवास जिले में 942 था, यानि देवास जिले का लिंगानुपात की स्थिति में वृद्धि हुई है।

निष्कर्ष - देवास जिले की लिंग संरचना की स्थिति का विश्लेषण करने पर पाया कि आज भी स्त्रियों की तुलना में पुरूषों को महत्व दिया जाता है। पिछले तीन सालों की स्थिति देखने पर ज्ञात होता है कि म.प्र. से देवास जिले की स्थिति बेहतर है। इसका कारण है कि जिले में चिकित्सा व्यवस्था में सुधार एवं भ्रूण हत्या कानून के प्रति जागरूकता व साक्षरता से सामाजिक सोच में सकारात्मक बदलाव आया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. पंत जीवन चन्द्र, जनांकिकी, पेज नंबर 386, गोयल पब्लिकेशन हाउस, मेरठ 1989-90
2. कुमार वी., जनांकिकी, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा 1998
3. श्रीवास्तव एस.सी., जनांकिकी अध्ययन के प्रारूप, हिमालय पब्लिकेशन हाउस, मुंबई 1990
4. भारत की जनगणना 2011,घटनाचक्र (सम-सामायिक)
5. दैनिक पत्र-पत्रिकाएँ
6. जिला सांख्यिकी पुस्तिका, देवास म.प्र.

****

कुटीर एवं लघु उद्योगों में रोजगार की संभावनायें

डॉ. मीना जैन *

शोध सारांश – भारतीय अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी एक प्रमुख राष्ट्रीय समस्या है। प्रतिवर्ष बेरोजगारी में होने वाली वृद्धि ने अर्थव्यवस्था के सामने चुनौती खड़ी कर दी है, साथ ही आर्थिक विकास की नियोजित प्रक्रिया पर भी प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही केन्द्र एवं राज्य सरकारें इस समस्या के समाधान हेतु प्रत्यनशील है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा भी रोजगार वृद्धि की कोशिश की गई हैं, लेकिन अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं हो पा रही ।

प्रस्तावना – 1991 में भारत सरकार द्वारा आर्थिक उदारी करण नीति को अपनाया गया पर इससे बेरोजगारी की समस्या और अधिक जटिल हो गयी है। क्योंकि एक ओर शासकीय उपक्रमों में निजीकरण को बढ़ावा तथा सरकारी व्यय में कटौती करके सरकारी नौकरियों में कमी की जा रही है। वहीं दूसरी तरफ आधुनिकी करण व कम्प्यूटरीकरण के कारण निजी क्षेत्र में भी नौकरियों की कमी होती जा रही है। ऐसी स्थिति में स्वरोजगार ही स्वरोजगार का एकमात्र विकल्प हो सकता है। देश में जो विभिन्न तरह की बेरोजगारी पाई जाती हैं जैसे चक्रीय बेरोजगारी मौसमी बेरोजगारी, प्रच्छन्न बेरोजगारी इनका समाधान भी स्वरोजगार या ग्रामीण उद्योगों द्वारा ही संभव हो सकता है। इस संदर्भ में योजना आयोग के अनुसार –'ग्रामीण उद्योगों को विकसित करने का प्राथमिक उद्देश्य रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना, आय एवं रहन–सहन के स्तर को ऊँचा उठाना तथा एक संतुलित एंव समन्वित अर्थ–व्यवस्था का निर्माण करना है।'

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी कहा था कि–'भारत का मोक्ष उसके कुटीर उद्योगों में ही निहित है।'

उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिये या अधिकाधिक रोजगार के अवसरों के सृजन हेतु ग्रामोद्योगों को पर्याप्त व समुचित संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिये। तभी इस क्षेत्र की रोजगार संभावनाओं का पूर्ण उपयोग किया जा सकेगा।

ग्रामीण क्षेत्र के उद्योगों की अवधारणा को स्पष्ट करना होगा। लघु उद्योगों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –पारंपरिक लघु उद्योग एवं आधुनिक लघु उद्योग ।

पारंपरिक लघु उद्योगों में खादी व हथकरघे, हस्तशिल्प, रेशम उद्योग व नारियल उद्योग शामिल किये जाते है जबकि आधुनिक लघु उद्योगों में परिमार्जित वस्तुएं, टी.वी सेट, इलेक्ट्रानिक उपकरण विभिन्न इंजीनियरिंग वस्तुएं आदि शामिल हैं।

पांरपरिक लघु उद्योग या ग्रामोद्योग अधिक श्रम–प्रधान हैं जबकि आधुनिक लघु उद्योग बहुत ही परिमार्जित मशीनरी व उपकरणों का प्रयोग करते हैं। एक अनुमान के अनुसार 1990–91 में पारंपरिक लघु उद्योगों द्वारा कुल उत्पादन का 13 प्रतिशत उपलब्ध कराया गया तथा कुल रोजगार में इनका योगदान 56 प्रतिशत था जबकि आधुनिक लघु उद्योगों का कुल उत्पादन में 74 प्रतिशत तथा कुल रोजगार में केवल 33 प्रतिशत का योगदान रहा।इससे स्पष्ट है कि इन उद्योगों की उत्पादकता अपेक्षाकृत अधिक है।

पांरपरिक ग्रामीण उद्योगों की कुछ विशेषताएं है–

1. सबसे बड़ी विशेषता यह कि ग्रामीणों को सहायक रोजगार उपलब्ध करा सकते है।
2. ग्रामीण उद्योगों का संचालन उन व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जो गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करते है।
3 ग्रामीण क्षेत्र में पाई जाने वाली प्रच्छन्न व मौसमी बेरोजगारी के समाधान का प्रभावपूर्ण विकल्प है।
4. ग्रामीण उद्योगों द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को पूर्ण रोजगार के लक्ष्य की प्राप्ति की ओर गतिमान किया जा सकता है।

भारत में जिस आर्थिक सुधार प्रक्रिया को लागू किया गया उसके कारण ग्रामीण उद्योगों की उपेक्षा हुई परिणाम स्वरूप बेरोजगारी व मँहगाई में लगातार वृद्धि हुई।खाडसारी व गुड़ निर्माण उद्योगों के कम होने से चीनी पर निर्भरता बढ़ी।

दीर्घकाल में ग्रामीण बेकारी को कम करने तथा ग्राम उद्योगों की गति को तेज करने हेतु आधुनिक लघु उद्योगों के विस्तार में तेजी लाना होगी। निष्कर्ष यह निकलता है कि परंपरागत ग्राम या लघु उद्योगों एवं आधुनिक लघु उद्योगों के बीच समन्वय स्थापित करने की आवश्यकता है।

ग्रामोद्योग क्षेत्र में कौन–कौन सी तथा किस तरह की वस्तुओं का उत्पादन हो सकता है इस पर विचार करना आवश्यक है। इन उद्योगों को स्थापित करने के लिए सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं के माध्यम से वित्तीय सहायता दी जाती है और प्रशिक्षण विपणन व अन्य सुविधायें भी उपलब्ध कराई जाती है।

इन उद्योगों को निम्नलिखित वर्गो में रखा जा सकता है–

1. खाद्य सामग्री से संबंधित उद्योग –अनाज व दाल प्रशोधन उद्योग, ताड़ एवं ताड़ वस्तु उद्योग, गुड व खांडसारी उद्योग, ग्रामीण तेलधानी उद्योग, मधुमक्खी पालन व फल प्रशोधन उद्योग।
2. खनिज व रसायन आधारित उद्योग –आखाद्य तेल व साबुन उद्योग, ग्रामीण कुम्हारी उद्योग, हाथ कागज, कुटीर चूना उद्योग, दिया सलाई उद्योग, अगरबत्ती उद्योग।
3. वनोपज आधारित उद्योग–लाख उत्पादन गोंद उत्पादन, कत्था, चिरोंजी उत्पादन, बांस व बेत का उद्योग तथा औषधीय प्रयोजनों के लिए जंगली जड़ी–बूटियों एवं फलों का संचय।
4. अन्य वस्त्र उद्योग – सूती, उन्नी, रेशमी एवं पोली नाज।

* प्राध्यापक व विभागाध्यक्ष (अर्थशास्त्र) शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिंदवाडा (म.प्र.) भारत

5. अन्य उद्योग – चर्मोद्योग, जैव गैस, लुहारगिरी व बढ़ईगिरि, बर्तन उद्योग आदि।

ग्रामोद्योगों में उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं के उपरोक्त वर्गीकरण से यह स्पष्ट होता है कि ये सभी वस्तुएं श्रम प्रधान हैं व सामान्य उपभोग की हैं। श्रम प्रधान होने के कारण इन उद्योगों में रोजगार की संभावनायें अधिक हैं।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास की अनंत संभावनाओं व पूंजी की कमी को ध्यान में रखते हुये ग्रामीण औद्योगिकरण की नीति ऐसी होनी चाहिए जिसमें इनके विस्तार पर अधिक बल/जोर हो क्योंकि ये उद्योग श्रम प्रधान होते हैं तथा कम पूंजी एवं सामान्य प्रशिक्षण के बाद किसी भी उद्यमी /व्यक्ति द्वारा शुरू किये जा सकते है। ये औद्योगिक इकाईयाँ अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के साथ अधिक से अधिक लोगों को रोजगार प्रदान करने में सक्षम होती है। आज सारे विश्व में इन ग्रामीण/कुटीर / लघु उद्योगों का महत्व निर्विवाद रूप से स्थापित हो चुका है एवं माना जा चुका है कि भारी निवेश पर आधारित उद्योगों की बजाये अल्पनिवेश पर आधारित छोटे–छोटे उद्योगों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए ताकि 'हर हाथ को रोजगार एवं हर मुख को आहार' की परिकल्पना चरितार्थ की जा सके। ग्रामोद्यागों के विकास से एक ओर जहाँ रोजगार के अधिकाधिक अवसरों का सृजन होता है नहीं दूसरी ओर इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आत्मनिर्भरता भी बढ़ती है। अतएव रक्षा संबंधी वस्तुओं के उत्पादन को छोड़कर अन्य वस्तुओं के उत्पादन के लिए लघु व कुटीर उद्योग क्षेत्र को ही प्रोत्साहन देना सही होगा।

ग्याहरवी पंचवर्षीय योजना कुटीर/सूक्ष्म एवं लघु उद्योग क्षेत्र को उद्योग का एक महत्वूपर्ण अंग मानती है। क्योंकि इसके द्वारा कुल औद्योगिक का 40 प्रतिशत एवं कुल निर्यात का 34 प्रतिशत योगदान है। 2003–2004 में इस क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में 6.7 प्रतिशत भाग था। पिछले 5 वर्षो में कुटीर एवं लघु उद्योग क्षेत्र में वृद्धि दर 12 प्रतिशत रही है। निम्नलिखित तालिका से सूक्ष्म/कुटीर उद्योगों का अर्थव्यवस्था में उत्पादन एवं रोजगार में योगदान की स्थिति स्पष्ट हो जायेगी–

विभिन्न वर्षो में सूक्ष्म/कुटीर एवं लघु उद्योगों में उत्पादन एवं रोजगार

वर्ष	उत्पादन(चालू कीमतों पर करोड़ रूपयों में)	रोजगार (लाख व्यक्ति)
2006–2007	5,85,112	312.5
2007–2008	6,82,613	322.3
2008–2009	8,16,705	338.4
2009–2010	9,77,144	355.3
2010–2011	11,69,112	373.1
2011–2012	13,98,803	391.7

स्त्रोत–योजना आयोग, ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना 2007–2012

रोजगार में वृद्धि के साथ –साथ ग्रामोद्योगों के विकास से सामाजिक / आर्थिक असमानता हटेगी और देश को समग्र आर्थिक समृद्धि की दिशा में आगे बढने में सफलता हासिल होगी। इन उद्योगों के विकास के महत्व को नि.लि. तर्को से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. रोजगार–इन उद्योगों में श्रम प्रधान तकनीक का प्रयोग किया जाता है अत: देश में उपलब्ध प्रचुर जनसंख्या का सार्थक उपयोग हो सकता है । इनकी स्थापना में बहुत कम पूंजी की आवश्यकता होती है। स्थापना के तुरंत बाद ही लोगों को रोजगार उपलब्ध हो जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों की प्रच्छन्न बेरोजगारी की समस्या का समाधान होता है।
2. भारत में 1991 में लघु व कुटीर उद्योगों में 61.4 लाख लोग कार्यरत थे, मार्च 2007 में यह आंकडा 3.12 करोड तक पहुंच चुका था।
3. कम पूंजी में अधिक उत्पादन –इन क्षेत्रों की उत्पादकता इसमें विनियोजित पूंजी के अनुपात में बहुत अधिक होती है। भारत में लघु उद्योग क्षेत्र का उत्पादन वर्ष 1994–95 में 122,210 करोड़ रू.था जो कि वर्ष 2006–07 तक बढ़कर 471,663 करोड रू हो गया। वर्तमान में कुल उत्पादन का लगभग 40 प्रतिशत इसी क्षेत्र से आता है।
4. आर्थिक समानता –ग्रामोद्योग समाज की आर्थिक असमानता को दूर करने में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं। ये उद्योग छोटे पैमाने पर चलाये जाते है। इसलिए लाभ की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है लेकिन इससे आर्थिक केन्द्रीकरण नहीं होता।
5. अर्थव्यवस्था का विकेन्द्रीकरण–लघु व कुटीर उद्योग देश में विकेन्द्रीकरण का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं क्योंकि ये स्थानीय कच्चे माल एवं आवश्यकतानुसार देश के कोने –कोने में फैले होते हैं।
6. कलात्मक वस्तुओं का उत्पादन –इन वस्तुओं का उत्पादन ग्रामोद्योग में ही संभव है।वर्तमान मे राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी ऐसी वस्तुओं के विशाल बाजार उपलब्ध है।
7. छिपे हुये संसाधनों का उपयोग लघु व कुटीर उद्योगों में अपसंचित धन व छुपे हुए कौशल का उपयोग भी होता है। इन उद्योगों द्वारा संसाधनों एवं संपदा का प्रकटीकरण व समुचित उपयोग होता है।
8. शहरी करण एवं औद्योगीकरण के दुष्प्रभावों से मुक्ति–लघु व कुटीर उद्योग छोटे–छोटे क्षेत्रों में स्थापित होते हैं इसलिए शहरीकरण व औद्योगिक प्रदूषण की समस्याएं उत्पन्न नही होती।

उपर्युक्त तथ्यों /तर्को से लघु व कुटीर उद्योगों का महत्व पूर्णत: स्पष्ट है। इस संबंध में प्रसिद्ध राजनीतिक व सामाजिक चिंतक डॉ.श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने कहा था –'भारत गाँवों का देश है अत: सरकार को संतुलित अर्थव्यवस्था की दृष्टि से कुटीर व लघु उद्योगों के विकास को सर्वाधिक महत्व प्रदान करना चाहिये।'

लघु व कुटीर उद्योगों का महत्व होने के बाबजूद इन उद्योगों को बहुत–सी समस्यायों का सामना करना होता है उनमें मुख्य है कच्चे माल की अपर्याप्त उपलब्धता, कम उत्पादकता, उत्पादन लागत का अधिक होना, पूंजी की कमी, निर्मित वस्तुओं के विपणन में कठिनाई, बडे उद्योगों से प्रतिस्पर्धा तथा इस क्षेत्र मे कार्यरत श्रमिकों के लिए पर्याप्त कानूनी व्यवस्था का अभाव आदि।

इन समस्याओं को प्रभावशाली ढंग से हल करके ग्रामोद्योगों विकास की गति को तेज किया जा सकता है। वर्तमान वैश्विकरण के परिदृश्य में इन ग्रामोद्योगों के विकास की रणनीति में निम्नलिखित तत्वों को शामिल करना आश्यक हो जाता है–

1. ग्रामोद्योगों को ऐसी प्रौद्योगिकी/तकनीक उपलब्ध कराई जाए जिससे परंपरागत उद्योगों को पुनर्जीवित किया जा सके तथा नवीन औद्योगिक इकाईयों की स्थापना एक व्यवस्थित नियोजन नीति के अतंर्गत संभव हो सके।
2. कुटीर व लघु उद्योगों की मुख्य समस्या पूंजी की है अत: इस क्षेत्र को पर्याप्त मात्रा मे एवं प्रतिस्पर्धा में बने रहने के लिए कम ब्याज दर पर पूंजी उपलब्ध कराई जानी चाहिए ।
3. कच्चे माल की खरीदी व उत्पादन का विपणन इनकी स्वयं की सहकारी समितियों के माध्यम से किया जाना चाहिए। इस प्रकार इनकी लागत में पर्याप्त रूप से कमी आ सकती है।

4. लघु व कुटीर उद्योगों के लिए आवश्यक होगा कि उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार आवे तथा इस पर नियंत्रण हेतु प्रत्यन किये जाये जिससे ये उद्योग भी राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में अपना हिस्सा प्राप्त कर सकेंगे।
5. लघु व कुटीर उद्योगों को अनुसंधान व अन्वेषण पर व्यय करना चाहिए जिससे उत्पादन का उन्नयन हो व लागत में कमी आये।
6. लघु व कुटीर उद्योगों के प्रबंधकों व कारीगरों के लिए शासकीय व अर्द्धषासकीय संस्थाओं द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रम समय-समय पर चलाये जाये ताकि एक ओर उत्पादक की गुणवत्ता में सुधार हो और इन्हें बाजार की तकनीक का भी ज्ञान हो सके।
7. बहुत आवश्यक है कि लघु उद्योगों व वृहद उद्योगों का कार्यक्षेत्र अलग-अलग हो जिससे दोनों अलग-अलग वस्तुओं का निर्माण करें तथा राष्ट्रीय संसाधनों का उपयोग समन्वित विकास में हो सके।
8. बहुत आवश्यक है कि लघु उद्योगों को बडे उद्योगों की सहयोगी इकाई के रूप में कार्य करना चाहिए ताकि व्यर्थ की प्रतिस्पर्धा में राष्ट्रीय संसाधनों का दुरूपयोग न हो।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास हेतु बनाई गई रणनीति में यदि उपर्युक्त तत्वों का समावेश किया जाये तो ग्रामोद्योग देश के संतुलित एवं रोजगारोन्मुख विकास में अपनी सक्रिय व महत्वपूर्ण भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वहन कर सकते है। इसके अतिरिक्त ग्रामोद्योग क्षेत्र को अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ रोजगार के अधिक से अधिक अवसरों के सृजन प्रक्रिया में रोजगार विषयक रणनीति को उन क्षेत्रों मे निर्धनता एवं बेरोजगारी के समाधान/निवारण हेतु चल रहे अन्य कार्यक्रमों के साथ भी जोड़ना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ.व्ही.सी.सिन्हा -औद्यौगिक अर्थशास्त्र
2. रूद्रदत्त एवं सुदंरम-भारतीय अर्थव्यवस्था
3. मिश्र व पुरी भारतीय अर्थव्यवस्था
4. गंगाधर कराले-ग्रामीण विकास के लिए समन्वित प्रयास कॉन्सेप्ट पब्लिकेशिग कंपनी, नई दिल्ली
5. डॉ.वीणा पाणि सिंह - ग्रामीण स्वास्थ संरक्षण, क्लासिकल पब्लिकेशिंग कंपनी, नई दिल्ली।

****

भवन निर्माण श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का अध्ययन (इन्दौर शहर में कार्यरत् श्रमिकों के विशेष संदर्भ में)

मिसर नरगावें * डॉ. आशा साखी गुप्ता * *

प्रस्तावना – किसी देश के आर्थिक विकास में श्रमिकों की महत्वपूर्ण तथा निर्णायक भूमिका होती है। राष्ट्र का संपूर्ण विकास एवं समृद्धि राष्ट्र के मानवीय पूंजीगत तथा प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहता है। श्रम या मानवीय संसाधन एकमात्र ऐसा माध्यम है, जो उपभोगकर्ता होने के साथ–साथ उत्पादक भी है। आधुनिक युग औद्योगीकरण का युग है, जो आर्थिक विकास का आधार होता है, विकास के साथ–साथ भवन निर्माण कार्य भी एक सतत् प्रक्रिया है। श्रमिकों की कुशलता एवं दक्षता पर ही आर्थिक विकास का ढाचा खड़ा किया जा सकता है। आधुनिकीकरण के युग में भवन निर्माण कार्य का विकास हुआ है।वर्तमान में वैज्ञानिको ने ऐसे संयंत्रो मशीनों का निमार्ण किया है, जिनके द्वारा किसी भी वस्तु का उत्पादन किया जा सकता है। इसी प्रक्रार भवन निर्माण कार्य भी बिना श्रम सहायता से संभव नहीं है।

भारत में असंगठित श्रमिकों का प्रतिशत संगठित श्रमिकों की तुलना में कई गुना अधिक है। सामान्यतया वे समस्त श्रमिक जो लघु स्तरीय उद्योगों, होटलों, दुकानों निर्माण कार्यों जैसे–भवन निर्माण, सड़क निर्माण आदि में लगें हुए असंगठित श्रमिक है देश के कुल श्रमिकों में से 90 प्रतिशत से अधिक असंगठित क्षेत्र में कार्यरत् है, जबकि संगठित क्षेत्र में 10 प्रतिशत सें कम श्रमिक कार्यरत् है।

सामाजिक सुरक्षा से अभिप्राय उस सुरक्षा से है, जो समाज द्वारा अपने सदस्यों को उनके जीवन काल में आकस्मिक रूप से घटित होने वाली घटनाओं के विरूद्ध प्रदान की जाती है। जिसके अन्तर्गत वृद्धावस्था, बीमारी, दुर्घटना, मृत्यु, बेरोजगारी, आदि के लिए सुरक्षा प्रदान करना ही सामाजिक सुरक्षा कहलाती है। शासन द्वारा कार्यरत् श्रमिकों के विकास हेतु अनेक प्रकार की सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का क्रियान्वयन किया गया है। इन योजनाओं को लागू करने के बावजूद भी इन श्रमिकों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। वार्षिक रिपोर्ट वर्ष 2008–09 के अनुसार म.प्र. के निर्माण कार्य में कार्यरत श्रमिक 9.53 लाख हैं, जिसमें लगभग 6.16 लाख श्रमिक पंजीकृत हैं। इसी प्रकार इन्दौर जिले में पंजीकृत श्रमिकों की कुल संख्या 17.2 हजार है, जिन पर शासन द्वारा लगभग 11.20 लाख इन विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत सन् 2008–09 के अनुसार व्यय किये जा चुके हैं।

भवन एवं अन्य संनिर्माण कर्मकार (नियोजन तथा सेवा शर्ते विनियमन) अधिनियम 1996 एवं उपकर नियम 1998 के अन्तर्गत निर्माण श्रमिकों के लिए वर्ष 2008 में गठित 'म.प्र. भवन एवं अन्य संनिर्माण कर्मकार कल्याण मण्डल' को 01 जनवरी 2011 तक 436.34 रु. करोड़ की राशि उपकर के रूप में प्राप्त हुई है। निर्माण श्रमिकों के लिए गठित भवन अन्य अन्य संनिर्माण कर्मकार कल्याण मण्डल द्वारा स्थापना से 01 जनवरी 2011 तक 14.18 लाख हितग्राही निर्माण श्रमिकों का पंजीयन किया जाकर उन्हें परिचय पत्र वितरित किए गये हैं तथा 3 लाख से अधिक हितग्राहियों को विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं में लगभग 66 करोड़ रु. के हित लाभ वितरित किये गये हैं। वर्ष 2010–11 में 2.13 लाख श्रमिकों का पंजीयन किया जाकर जनवरी 2011 तक 1.54 लाख हितग्राहियों को रु. 29.76 करोड़ के हित लाभ दिये गये हैं इस प्रकार प्रदेश, निर्माण श्रमिकों के पंजीयन एवं हित लाभ वितरण करने में देश के अग्रणी राज्यों में सम्मिलित हैं।

अत: स्पष्ट है कि भवन निर्माण श्रमिकों की संख्या अन्य स्रोतो की तुलना में अधिक है। इन श्रमिकों सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्तर अति निम्न है। अत: प्रशासन के साथ साथ अनेक गैर सरकारी संगठनों ,सामाजिक संस्थाओं के सहयोग से श्रमिकों की दशा का उत्थान हो सकता है।

अध्ययन के उद्देश्य –

1. इन्दौर शहर के भवन निर्माण श्रमिकों में कार्यरत् श्रमिकों को प्रदत्त सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का अध्ययन।
2. इन्दौर शहर में भवन निर्माण क्षेत्र में पंजीकृत श्रमिकों का अध्ययन करना।

अध्ययन की उपकल्पना –

1. इन्दौर शहर में भवन निर्माण में लगे श्रमिक के लिए विभिन्न सामाजिक सुरक्षा योजनाऐं संचालित हो रही है।
2. पंजीकृत श्रमिक विभिन्न सामाजिक सुरक्षा योजनाओं से लाभान्वित हो रहे है।

अध्ययन क्षेत्र–प्रस्तुत शोध का अध्ययन क्षेत्र मध्यप्रदेश का इन्दौर शहरी क्षेत्र है। जिसकी कुल जनसंख्या 32.7 लाख है,वर्तमान समय में शहरीकरण एवं जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप इन्दौर शहर में भवन निर्माण कार्य में निरन्तर वृद्धि हो रही है। अत: निमार्ण श्रमिकों की अधिकता होने तथा शासन द्वारा संचालित सामाजिक सुरक्षा के बारे में जानकारी हेतु प्रस्तुत शोध का अध्ययन **क्षेत्र** इन्दौर शहर को चुना है।

अध्ययन पद्धति–प्रस्तुत अध्ययन में द्वितीयक संमको का प्रयोग किया गया है। इसमें तथ्यों सूचनाओं का संकलन, द्वितीयक संमको के माध्यम से किया गया है।

द्वितीयक स्रोतो में मुख्य रूप से भवन निर्माण श्रमिकों के संबंध में उपलब्ध श्रम की वार्षिक रिपोर्ट क्रेन्द्र एवं शासन की कल्याणकारी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं तथा म.प. भवन अन्य संनिर्माण कर्मकार कल्याण मण्डल तथा श्रमायुक्त कार्यालय इन्दौर ,इसके अतिरिक्त पुस्तकों सरकारी अभिलेखों, समाचार– पत्रों, मासिक पत्रिकाऐं, पूर्व शोध द्वारा सूचनाए एकत्र की गई है। इन्दौर शहर में कार्यरत भवन निर्माण श्रमिकों को प्रदान सामाजिक सुरक्षा

* शोधार्थी, शहीद भीमा नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत
** प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (अर्थशास्त्र) शहीद भीमा नायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

योजनाओं का विवरण निम्न है।-

वर्ष 2011 के अर्न्तगत इन्दौर शहर में शासन द्वारा संचालित योजनाएं प्रसूति सहायता योजना, चिकित्सा एवं दुर्घटना सहायता योजना, शिक्षा (छात्रवृत्ति) सहायता योजना, मेधावी विद्यार्थियों के लिए नगद पुरस्कार योजना, विवाह सहायता योजना, मृत्यु की दशा में अन्त्येष्टि एवं अनुग्रह राशि भुगतान योजना,आदि योजनाओं से शहर में निर्माण कार्य में कार्यरत श्रमिक हितलाभ का विवरण निम्न है -

1. **प्रसूति सहायता योजना -** निर्माण श्रमिक चाहे पुरुष हो या महिला, पति या पत्नी में से कोई भी निर्माण श्रमिक के रूप में पंजीकृत हैं, को दो प्रसूति तक के लिए मातृत्व एवं पितृत्व अवकाश के एवज में रु. 5000/- एवं जननी सुरक्षा योजना के अन्तर्गत नगद राशि नहीं मिलने की दशा में रु. 1000/- का लाभ प्रसूति उपरातं 60 दिन के अंदर करना अनिवार्य होता है।

2. **चिकित्सा एवं दुर्घटना सहायता योजना -** योजना अन्तर्गत रू. 3 लाख तक की सीमा तक उपचार सहायता के अतिरिक्त दुर्घटना की स्थिति में चिकित्सा सुविधाएँ तथा रु. 1000/- तक की मजदूरी की क्षतिपूर्ति का भुगतान किया जाता हैं।

3. **शिक्षा (छात्रवृत्ति) सहायता योजना -** इस योजना के अन्तर्गत कक्षा 1 से स्नातकोत्तर स्तर की तथा व्यवसायिक परीक्षा में अध्ययनरत्, पी-एच.डी. या शोध कार्य करने पर छात्र या छात्रा को रु. 500/- से 5000- रु. तक सहायता प्रदान की जाती है।

4. **मेधावी विद्यार्थियों के लिए नगद पुरस्कार योजना -** इस योजना के अन्तर्गत निम्नानुसार राशि दी जाती है। कक्षा 5 वीं से स्नातकोत्तर स्तर की कक्षा जैसे एम.ए./एम.कॉम आदि के लिए छात्र एवं छात्रा को रु. 500- से 3000/- रु. तक सहायता दी जाती है।

5. **विवाह सहायता योजना -** पंजीबद्ध महिला श्रमिकों के स्वयं के विवाह, एक बार पुनर्विवाह एवं पंजीबद्ध श्रमिकों की दो पुत्रियों की सीमा तक न्यूनतम पांच महिला श्रमिकों के सामूहिक विवाह अथवा एकल विवाह के आयोजन की दशा में रु. 15000/-प्रति विवाह तथा आयोजक को रु. 1000/- तक सहायता आवेदन विवाह के एक दिन पूर्व तक प्रस्तुत किया जा सकता है।

6. **मृत्यु की दशा में अन्त्येष्टि एवं अनुग्रह राशि भुगतान योजना-** मृतक के परिवार को अन्त्येष्टि सहायता के रूप में रु. 2000/- रु.. 25000/- तक अनुग्रह राशि उत्तराधिकारी को भुगतान दुर्घटना की स्थिति में मृत्यु होने पर रु. 100000/-,तथा अपंगता की स्थिति में रु. 75000/ - की सहायता मृत्यु उपरांत आवेदन 90 दिन के अन्दर प्रस्तुत करना अनिवार्य है।

इन्दौर शहर में भवन निर्माण श्रमिकों हेतु योजनान्तर्गत पंजीकृत श्रमिकों की संख्या वर्ष 2011-14

योजनाएं	हितगाही सख्या
प्रसूति सहायता योजना	3437
चिकित्सा/दुर्घटना की स्थिति में चिकित्सा सहायता योजना	74
शिक्षा सहायता योजना	31080
मेधावी छात्र/छात्राओं को नगद पुरस्कार योजना	3542
विवाह सहायता योजना	646
मृत्यु की दशा में अन्त्येष्टि एवं अनुग्रह भुगतान योजना	455
कुल योग	5825.74

स्त्रोत - कार्यालय सहायक श्रम आयुक्त, इन्दौर 2013

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है । कि भवन निर्माण श्रमिकों को शासन द्वारा संचालित योजनाओं के अंतर्गत श्रमिकों की संख्या दर्शाई गई है। जिसमें से शिक्षा सहायता योजना अंतर्गत सर्वाधिक 31080 हितग्राही श्रमिक है।तथा चिकित्सा सहायता योजना के अंतर्गत 74 श्रमिक ही पंजीकृत हुऐ है। अत: इस योजना के अंतर्गत कम श्रमिक पंजिकृत होने के कारण श्रमिकों को अधिकांश योजनाओं के बारे में पूर्ण जानकारी नहीं होती है। वर्तमान समय में पंजिकृत प्रक्रिया होने से कई श्रमिक जानकारी के अभाव में पंजीयन करवाने में असमर्थ रहते है।

सुझाव -भवन निर्माण क्षेत्र में कार्यरत् श्रमिकों की स्थिति में सुधार हेतु प्रमुख सुझाव निम्न है।

शिक्षा तथा प्रशिक्षण हेतु सुझाव- शहर में भवन निर्माण क्षेत्र में कार्यरत् कारीगरी, सीनेटरी, लुहारी, प्लम्बर आदि श्रमिकों को निर्माण संबंधी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। शहर में शिक्षा तथा प्रशिक्षण के महत्व से ही श्रमिक अपनी स्थिति को सुधार सकते है। श्रमिक परिवारों में शिक्षा हेतु जागरूकता तथा प्रचार प्रसार की अधिक आवश्यकता है। शिक्षा के स्तर में सुधार की महती आवश्यकता है, ताकि श्रमिक प्राप्त सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों के प्रति जागरूक हो सके।

मजदूरी बढ़ाना - शहर में भवन निर्माण क्षेत्र में कार्यरत् श्रमिकों को उनकी मजदूरी अनुसार कार्य के घंटे स्थाई रूप से निश्चित किए जाए, साथ ही मजदूरों को सिर्फ जीवन निर्वाह मजदूरी न देकर इनको इतनी पर्याप्त मजदुरी दी जाए, कि वह कम से कम अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। जिससे उनका जीवन स्तर ऊँचा उठ सके।

नियोक्ता वर्ग से संबंधित सुझाव - शासकीय योजनाओं की जानकारी होने के साथ ही दायित्व है,कि श्रमिको को योजनाओं की जानकारी देवें। तथा नियोक्ता सदव्यवहार करते हुए श्रमिकों को शिक्षा तथा स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जागरूक करे। यथा संभव स्वच्छ आवासीय नगरों का विकास करें।

पंजीयन तथा सरकारी कार्यक्रम की जागरूकता अभियान की आवश्यकता - शहर में शासन को कल्याणकारी योजनाओं का क्रियान्वयन करना चाहिए। शासन द्वारा भवन निर्माण श्रमिकों के सशक्तिकरण, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, मजदूरी, रोजगार आदि संबंधी कल्याणकारी योजनाएं चलानी चाहिए। जिससे उनकी आर्थिक स्थिति का अधिक से अधिक विकास हो सके। इन्दौर शहर में भवन निर्माण श्रमिकों को योजनाओं की जानकारी उपलब्ध कराने के लिए कार्यशाला, सेमिनार, मार्गदर्शन एवं शिविर शहर में आयोजित की जाए।

श्रमिकों की मनोवृति - श्रमिकों की मनोवृति इस प्रकार परिवर्तित करना चाहिए,कि वे तकनीकी परिवर्तनों का उपयोग करे। उन्हें आधुनिक तकनीकों के बारे में पूर्ण जानकारी दी जाए।

स्पष्ट है, कि भवन निर्माण श्रमिकों आर्थिक सामाजिक स्थिति ,शिक्षा के स्तर में सुधार, मजदूरी के स्तर में वृद्धि तथा जागरूकता का विस्तार, सरकारी योजनाओं की जानकारी के माध्यम से ही भवन निर्माण कार्य में संलग्न श्रमिकों की आर्थिक, सामाजिक स्थिति को बेहतर किया जा सकता है।

निष्कर्ष - अत: निष्कर्ष है कि भवन निमार्ण श्रमिकों की संख्या सर्वाधिक है, शासन के द्वारा कार्यरत श्रमिकों के विकास हेतु अनेक प्रकार की सुरक्षा योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है। सामाजिक सुरक्षा योजनाओं से

पंजिकृत श्रमिक लाभान्वित भी हो रहे है। अनेक श्रमिक अभी पंजीकृत नहीं है। श्रमिकों की स्थिति दयनीय है। इसका सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्तर अति निम्न है। अत: प्रशासन के साथ-साथ अनेक गैर सरकारी संगठनों सामाजिक संस्थाओं को इस क्षेत्र में आगे आना चाहिए। ताकि निर्माण श्रमिकों का नैतिक उत्थान हो सके।शासन को अधिकतम योजनाएँ क्रियान्वित करना चाहिए ताकि भवन निर्माण श्रमिकों का उचित सामाजिक एवं आर्थिक विकास हो सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. के. प्रताप (1992)- भारत में ग्रामीण श्रमिक समस्या एंव कल्याण योजनाएँ, दीप एड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली पृ. क्रं 5
2. ए. आहुजा राम (2008) समाजिक समस्याएँ सामाजिक रावत पब्लिकेशन सत्यम, अपार्टमेंन्ट सेक्टर 3 जैन मंदिर रोड जवाहर नगर जयपुर 302004 पृष्ठ क्रंमाक 111
3. डॉ. आर.एन. त्रिवेदी, डॉ. डी.बी. शुक्ला (2006) रिसर्च मेथ्डोंलॉजी काँपी प्रकाशन College Book Repot 83 Tripoliy Bazar Jaipur Page No. 55
4. म.प्र. भवन एंव अन्य संनिर्माण कर्मकार कल्याण मण्डल 2010-11
5. वार्षिक प्रशासकीय प्रतिवेदन श्रम विभाग रिपोर्ट 2013-14
6. कार्यालय सहायक श्रमायुक्त संभाग इंदौर 2013-2014 तक
7. जिला सांख्यिकीय पुस्तिका इन्दौर 2010-11

****

लिंग असमानता - कारण और निवारण

डॉ. सरोजनी टोपनो *

प्रस्तावना – 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमन्ते तत्र देवता हमारे धर्मग्रन्थों का यह वाक्य आज के संदर्भो में अप्रासंगिक हो गया है। संभवत: भारत विश्व में अकेला ऐसा देश है जहां नारी को दुर्गा, सीता, सावित्री के रूप में प्रतिष्ठित किए जाने के साथ-साथ पुत्री के जन्म को शोकपूर्ण नजरिए से देखा जाता है। आज तथाकथित रूप से अपने को अत्याधुनिक और विकसित कहने वाला वर्ग भी पुत्री के जन्म को आर्थिक बोझ के रूप में निरूपित करता है। पुत्रियों के प्रति हमारी यह सामाजिक सोच ही हमें स्त्रियों के प्रति उदासीन बनाती है। भारत में लिंग असमानता का एक प्रमुख कारण हमारी यही सोच है जो हमें कन्या भ्रूण की हत्या जैसे जघन्यतम अपराध के लिए प्रेरित करती है। जनसंख्या की लिंग संरचना एक अनुपात द्वारा व्यक्त की जाती है। भारत ही नहीं विश्व स्तर पर यह अनुपात प्रति हजार पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या के रूप में दर्शाया जाता है। इस अनुपात को प्राप्त करने के लिए स्त्रियों की संख्या में पुरूषों की संख्या से भाग देकर 1000 से गुणा किया जाता है। स्त्री पुरूष अनुपात में प्राय: सभी स्थानों पर विषमता पायी जाती है। इसका मुख्य कारण पुरूषों का रोजगार तथा बेहतर आर्थिक अवसरों की तलाश में प्रवास करना भी है। जनसंख्या वृद्धि में स्थिजनिक विषमता का भी यह एक कारण है।

एक अध्ययन के अनुसार देश में प्रति वर्ष होने वाली 1000 भ्रूण हत्याओं में 995 कन्या भ्रूण होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में जन्म लेने वाली नवजात कन्याओं को नमक मिला दूध पिलाकर, शराब पिलाकर या सीधे जंगल में लावारिस फेंक कर मार डाला जाता है। नगरों में गर्भ में पल रहे भ्रूण के लिंग को जानने हेतु आधुनिक चिकित्सीय तकनीकों को प्रयोग किया जाता है और मादा भ्रूण होने की स्थिति में गर्भपात करवा दिया जाता है। जनगणना के आंकड़ों का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट होता है कि इस इक्कीसवीं सदी में जहां हर क्षेत्र में मानव अधिकारों, स्वतंत्रता और समानता और महिला सशक्तिकरण की चर्चा बैठकों सम्मेलनों में हो रही है। वहीं भारत में स्त्रियों के लिए घरेलू स्तर पर विपरीत धारणा दृष्टिगोचर होती है। आज भी ग्रामीण और महानगरीय समाज में समान रूप से पुत्र प्राप्ति की कामना ही की जाती है। यह असंतुलन पुरूष सत्ता समाज की सामंतवादी सोच को दर्शाता है साथ ही यह भी दर्शाता है कि पिछले दशक में भारत में तेजी से प्रसारित हुई लिंग परीक्षण तकनीक कन्या भ्रूण हत्या, गर्भपात जैसे लैंगिक असंतुलनकारी कार्यों में प्रेरक तत्व की भूमिका निभा रहे है।

वर्ष 2011 की जनगणना के अंतिम आंकडों के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या लगभग 121 करोड़ है जिसमें पुरूषों की संख्या 62.3 करोड़ तथा महिलाओं की संख्या 58.6 करोड़ है। 1901 में प्रति 1000 पुरूषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या 972 थी। जो वर्ष 2011 में 940 हो गयी है। इस प्रकार 100 वर्षो में प्रति 1000 पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या में 32 की कमी आई है। राज्यों के आंकड़ों में भी विभिन्नता पाई जाती है। केरल में लिंगानुपात सर्वाधिक 1084 है। जबकि हरियाणा में न्यूनतम 877 है। राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों पर एक साथ विचार करें तो न्यूनतम लिंगानुपात दमन एवं दीव का है। देश में केवल केरल प्रांत ऐसा है जहां अनुकुल लिंगानुपात पिछले कई दशकों से कायम है। ये 1981 में 1032, 1991 में 1036 तथा 2011 में 1084 है, जो लगातार वृद्धि को प्रदर्शित करता है। सर्वाधिक आश्चर्यजनक स्थिति आर्थिक रूप से समृद्ध प्रांतो की है जहां लिंगानुपात लगातार घट रहा है। जैसे पंजाब 892 है तो हरियाणा में मात्र 877 है। विभिन्न सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों द्वारा किये गये सर्वेक्षणों में ये तथ्य उभर कर आया है कि जिन देशों में अनुकुल लिंगानुपात जैसे रूस (1140), जापान (1041), अमेरिका (1028), ब्राजील (1025) है। वहां स्त्रियों की सामाजिक स्थिति सम्मानजनक है तथा इन देशों की आर्थिक गतिविधियों में भी महिलाओं की भागीदारी अपेक्षाकृत अधिक है। यूनिसेफ की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष लगभग 4 से 5 करोड़ बालिकाओं की हत्या की जाती है।

भारत में लिंगानुपात कमी के लिए किसी एक कारण को गिना कर इतिश्री नहीं की जा सकती है, इसके अनेकानेक कारण है और सभी आंतरिक रूप से एक दूसरे से इस प्रकार गुथे हुए है कि किसी एक कारण को दोषी ठहराया जाना संभव नही है। दहेज प्रथा, स्वास्थ्य समस्या जिसके अंतर्गत मातृत्व मृत्युदर, शिशु मृत्युदर, कुपोषण इत्यादि समस्याएं भी है। इसे अतिरिक्त शिक्षा का अभाव, जागरूकता, लड़कियों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण, गरीबी इत्यादि अनेक कारण है जो स्त्रियों की संख्या में निरंतर गिरावट के लिए जिम्मेदार है। देश में शिक्षा के क्षेत्र में हुये सुधारों तथा सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र में तेजी से विकास के बावजूद महिलाओं के प्रति हमारी सोच में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। इन सब के बीच लिंग परीक्षण तकनीक के अविष्कार ने इस समस्या को बद से बदतर बना दिया है। एमिनियों सेंटोसिस, कोरियोनिक बिलंस बायोप्सी, सोनोग्राफी, अल्ट्रासाउंड तथा इमेजिंग तकनीक से गर्भ में पल रहें भ्रूण की स्थिति जानी जा सकती है। यह ऐसी तकनीक है जो भ्रूण अवस्था में ही विभिन्न रोगों के संकेत देती है। जिससे शिशु के पैदा होने के पूर्व ही उसका ईलाज किया जा सके। यह वास्तव में एक अच्छी तकनीक है किन्तु आज यहीं तकनीक बालिकाओं के लिए अभिशाप बन चुकी है। लिंग परीक्षण के लिए इस तकनीक के बढते इस्तमाल को देखते हुए जनवरी 1996 से प्रसव पूर्व निदान तकनीक (नियंत्रण एवं दुरूपयोग) अधिनियम 1994 को केन्द्र सरकार द्वारा लागू किया गया। इस कानून के प्रावधान काफी कड़े है किन्तु इसका अनुपालन ठीक से नहीं किया जा रहा है। 2006 में हरियाणा में इस अधिनियम के अन्तर्गत डॉ. अनिल सयानी और उसके सहायक को 2 वर्ष कैद तथा 5 हजार रूपये जुर्माने की सजा सुनाई गई। पिछले कई वर्षो से इस कानून के अंतर्गत सजा नहीं हुई है।

गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वालों की संख्या देश की कुल जनसंख्या का लगभग 26 प्रतिशत हैं। देश में आज भी पांच वर्ष तक की उम्र के कुल बच्चों में से आधे कुपोषण के शिकार है। देश की कुल आबादी में

* सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

महिलाओं और बच्चों की संख्या 65 प्रतिशत से अधिक है। माँ बनने योग्य महिलाओं में 24 प्रतिशत महिलायें ऐसी है जिनका स्वास्थ्य गर्भवती होने के लिए तय किए गए मानक के अनुरूप नहीं रहता है। मातृत्व मृत्यु दर में अपेक्षित सुधार न होने के पीछे यह एक महत्वपूर्ण कारण है। आंकड़ों से पता चलता है कि शहरी क्षेत्र के सम्पन्न वर्ग में लिंगानुपात तेजी से कम हो रहा है। भारत में शिक्षा के क्षेत्र में हुए सुधार, विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति, वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण के बावजूद लड़कियों के प्रति विकसित समाज की सोच में कोई परिवर्तन नहीं आया है। यहीं कारण है कि कन्या भ्रूण हत्या के सर्वाधिक मामले सम्पन्न वर्ग से आते है। छोटा परिवार सुखी परिवार की धारणा के साथ ही तथाकथित आधुनिक वर्ग एक अदद पुरूष संतान का मोह नहीं छोड़ पाता है और इसी मोह के चक्कर में कन्या भ्रूण हत्या की ओर उन्मुख होता है। सेंटर फार एडवांस स्टडी ऑफ इंडिया यूनिवर्सिटी ऑफ पेनसिल्वेनिया, अमेरिका द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में लैंगिक असंतुलन में सुधार हेतु महिलाओं की शिक्षा, पोषण एवं स्वास्थ्य तथा उनकी आर्थिक सहभागिता में व्यापक सुधार किए जाने की आवश्यकता है। रिपोर्ट में भारतीय समाज में महिलाओं तथा लड़कियों के प्रति तेजी से बढ़ती उदासीनता पर चिंता व्यक्त करते हुए कहा गया है कि इसके लिए व्यापक रूप से जागरूकता अभियान चलाए जाने की आवश्यकता है। अत: हमें सचेत होना होगा, महिलाएँ अपनी परम्परागत मान्यताओं से निकलकर अपने अस्तित्व को दृढ़ता प्रदान करें तथा पुरूष अपनी द्वेषपूर्ण सोच में परिवर्तन लाये। क्योंकि घटती कन्याओं की संख्या से हानि उन्हें अधिक होगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. भारत की जनगणना - 2011
2. सामान्य अध्ययन यूनिक प्रकाशन, ईलाहाबाद - 2014
3. समाजशास्त्र - गुप्ता एवं शर्मा
4. समसामयिकी विशेषांक - विवास पनोरमा प्रकाशन
5. विधिक एवं समसामयिक निबंध संस्करण - 2012 - मुकेश नाथ, हिमांशु शर्मा
6. भारतीय महिलाओं का समाजशास्त्र - डॉ. एम.लवानिया, शशि जैन
7. Women in Hindu Civilization – A.S. Altekar

****

आदिवासी विकास परियोजनाओं का खेतिहर महिला श्रमिकों पर प्रभाव (बड़वानी जिले के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. अरूणा कुसुमाकर *

प्रस्तावना – भारत एक कृषि प्रधान देश है। जीवकोपर्जन के लिए महिलाएँ भी पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खेत-खलियानों में वर्ष भर काम करती हैं। विकास के प्रत्येक पक्ष- शिक्षा, संस्कृति, विज्ञान, कला, व्यवसाय तथा कृषि में महिलाओं ने प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान तक उसे उन्नति के शिखर तक पहुँचाने में अपनी सराहनीय भूमिका निभायी है। अत: सरकार के द्वारा विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन किया गया है जो देश के विकास की राह को अग्रसर कर सके। उसी क्रम में विभिन्न आदिवासी विकास परियोजनाएँ है जो विकास एवं उत्थान के लिए क्रियान्वित हैं। प्रस्तुत शोध पत्र आदिवासी खेतिहर महिला श्रमिकों पर आधारित है।

अध्ययन के उद्देश्य –

1. आदिवासी विकास परियोजनाओं का खेतिहर महिला श्रमिकों पर आर्थिक एवं सामाजिक प्रभावों का अध्ययन करना।
2. आदिवासी खेतिहर महिलाओं के विकास में बाधक तत्वों का अध्ययन करना।
3. बाधक तत्वों को दूर करने हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

अध्ययन विधि – प्रस्तुत शोध पत्र प्राथमिक समंको पर आधारित है। इस हेतु निदर्शन पद्धति से 400 खेतिहर महिला श्रमिकों का चयन कर सर्वे द्वारा समंको का संकलन किया गया तथा प्रतिशत विधि एवं विश्लेषणात्मक पद्धति से निष्कर्ष प्राप्त किए गए हैं।

बड़वानी जिला आदिवासी जनसंख्या बहुल जिला है। जिसमें 79,352 हजार खेतिहर महिला श्रमिक हैं। आदिवासी खेतिहर महिला श्रमिक अशिक्षित, असभ्य, रूढ़ीवादी, धार्मिक व सामाजिक परम्पराओं एवं कुरीतियों में जकड़ी हुई हैं।

आदिवासी विकास परियोजनाओं का खेतिहर महिला श्रमिकों के आर्थिक सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं कार्य करने की दशाओं पर प्रभाव पड़ा है।

आर्थिक प्रभाव – बड़वानी जिले में प्रधानमंत्री रोजगार योजना में 37 प्रतिशत, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना में 82 प्रतिशत, प्रधानमंत्री सड़क योजना से 40 प्रतिशत, काम के बदले अनाज योजना में 40 प्रतिशत, राजीव गांधी जल ग्रहण मिशन में 65 प्रतिशत तथा 24 प्रतिशत महिला श्रमिक स्व-सहायता समूह की सदस्य बनकर रोजगार चला रही हैं। इसके अतिरिक्त ड्वाकरा योजना के तहत पापड़ उद्योग, अगरबत्ती उद्योग, मसाला व्यवसाय, रस्सी बनाना आदि व्यवसाय चलाए जा रहे है जिससे खेतिहर महिला श्रमिको का आर्थिक जीवन उन्नत हुआ है।

खेतिहर महिला श्रमिको द्वारा विभिन्न स्रोतों से आय प्राप्त की जा रही है। जिनमें कृषि मजदूरी, स्वयं के खेत से, पशुपालन से, घरेलू व्यवसाय आदि प्रमुख हैं। इसमें सर्वाधिक 36.39 प्रतिशत स्वयं के खेतो से, 22.22 प्रतिशत मजदूरी से प्राप्त होती है।

महिला रोजगार में वृद्धि होने से उनकी आय में वृद्धि हुई है। आय में वृद्धि होने से कृषि व्यवसाय में भी सुधार हुआ है। अब महिला श्रमिक भी अपने खेतों में रासायनिक खाद, अच्छे किस्म के बीजों का उपयोग, कीटनाशक दवाओं का उपयोग, नवीन यंत्रो का प्रयोग आदि करने लगे है। वर्तमान समय में विभिन्न शासकीय योजनाओं के क्रियान्वयन से खेतिहर महिला श्रमिकों के आय स्रोतों में वृद्धि हुई है परिणामस्वरूप उनका उपभोग स्तर बढ़ा है, रहन-सहन के स्तर में वृद्धि हुई है, शिक्षा का स्तर बढ़ा है, मनोरंजन के साधनों का उपयोग बढ़ा है तथा संचार एवं परिवहन के साधनों के स्तर में भी सुधार आया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि इन योजनाओं का खेतिहर महिला श्रमिकों के आर्थिक जीवन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। वास्तव में शासकीय योजनाओं के कारण खेतिहर महिला श्रमिकों का आर्थिक जीवन सुखमय एवं समृद्धिशील हुआ है। इन योजनाओं ने महिला श्रमिकों के जीवन में चमत्कारिक परिवर्तन कर उन्हें मुख्य धारा से जुड़ने के लिए प्रेरित किया है।

सामाजिक प्रभाव – सरकार द्वारा संचालित विभिन्न विकास परियोजनाओं से देश का आर्थिक एवं सामाजिक विकास हुआ है। इन योजनाओं के संचालन से खेतिहर महिला श्रमिकों की शिक्षा के प्रति रूचि बढ़ी है उनकी साक्षरता दर में वृद्धि हुई है। सर्वेक्षित 400 खेतिहर महिला श्रमिको में 51.25 प्रतिशत महिलाएँ साक्षर हैं। शिक्षा के विकास के साथ समाज में महिलाओं के सम्मान में भी वृद्धि हुई है। 87 प्रतिशत खेतिहर महिलाओं के रहन-सहन के स्तर में वृद्धि हुई है। लगभग 88 प्रतिशत खेतिहर महिलाओं का मानना है कि उन पर आधुनिकता का प्रभाव पड़ा है तथा वे भी शहरी जीवन के विभिन्न तरीको को अपना रही है।

परियोजनाओं के क्रियान्वयन से सामाजिक जागरूकता बढ़ी है। शिक्षा में विकास के कारण इन महिलाओं ने विभिन्न सामाजिक कुरूतियों एवं रूढ़ियों को त्यागा है। समाज में सामूहिक विवाह का प्रचलन बढ़ा है। दहेज प्रथा, बाल-विवाह, सती-प्रथा, मृत्यु भोज एवं अनेक अपव्ययों पर रोक लगा कर सामाजिक उत्थान का प्रयास किया है।

शासकीय परियोजनाओं के संचालन से इन महिलाओं के घरों में शौचालयों का निर्माण किया गया है जिससे घरों से बाहर खुले में शौच करना कम हुआ है।

परियोजनाओं के कारण खेतिहर महिला श्रमिकों की आवास व्यवस्था बेहतर हुई है जिससे सामाजिक स्तर में वृद्धि हुई है। शासन की इंदिरा आवास कुटीर योजना के क्रियान्वयन से सर्वेक्षित महिला श्रमिकों में से लगभग 15 प्रतिशत को आवास कुटीर प्राप्त हुए है तथा 76 प्रतिशत महिलाओं के घरों में

* प्राध्यापक (अर्थशास्त्र), शासकीय संस्कृत महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

एक बत्ती कनेक्शन प्राप्त हुआ है। ये परिवार वर्तमान में शुद्ध पेयजल का प्रयोग कर रहे है।

योजनाओं के प्रभाव से शिक्षा के प्रचार-प्रसार एवं जनजागृति के कारण समाज में व्याप्त शराब एवं अन्य नशें की प्रवृत्ति कम हुई है।

परियोजनाओं के क्रियान्वयन से खेतिहर महिला श्रमिकों के स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पड़ा है। स्वास्थ के प्रति जागरूकता बढ़ने एवं शासकीय स्वास्थ्य योजनाओं के लाभ प्राप्त होने से मृत्युदर में कमी आई है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विभिन्न विकास परियोजनाओं के संचालन से खेतिहर महिला श्रमिकों के सामाजिक जीवन स्तर में सुधार आया है तथा उनकी जीवन शैली उत्कृष्ट हुई है।

खेतिहर महिला श्रमिकों के विकास में बाधक तत्व -

- खेतिहर महिला श्रमिकों की अशिक्षा एवं तकनीकी ज्ञान का अभाव इनके विकास में बड़ी बाधा है।
- वर्तमान में कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है किन्तु ग्रामीण खेतिहर महिला श्रमिक कृषि की उन्नत विधियों के ज्ञान से अनभिज्ञ हैं।
- देश में ग्रामीण स्तर पर गरीबी बहुत अधिक है अत: खेतिहर महिला श्रमिको के पास वित्तीय संसाधनों का अभाव है।
- सामाजिक रूढ़िया, अन्धविश्वास तथा परम्पराएँ भी खेतिहर महिलाओं के विकास में बाधक हैं।
- सामाजिक व्यवस्था के अनुसार इन खेतिहर महिलाओं पर पारिवारिक जिम्मेंदारी का दायित्व भी इनके कार्य में बाधा है क्योंकि इन पर दोहरी जिम्मेंदारी हो जाती है।
- गंदगी एवं कार्यस्थल पर उचित वातावरण न मिलने से शारीरिक एवं मानसिक रूप से अस्वस्थता एवं कुपोषण इनकी कार्यक्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।
- शासकीय नियमों के अनुसार सम्पत्ति पर महिला का भी अधिकार होता है किन्तु आज भी महिलाओं को भू-स्वामित्व एवं सम्पत्ति के उत्तराधिकार से वंचित रखा जाता है। जिसके कारण भी इनके विकास में बाधा आती है।
- सामाजिक असमानता एवं शोषण के कारण खेतिहर महिलाओं के विकास में बाधा उत्पन्न होती है।
- अशिक्षा एवं जन चेतना के अभाव के कारण महिलाओं को लघु एवं कुटीर उद्योग तथा अन्य विकास योजनाओं की उचित जानकारी इन्हें प्राप्त नहीं हो पाती है।
- महिला श्रमिक संगठनों के अभाव के कारण खेतिहर महिलाएँ अपने अधिकारों के लिए आवाज नहीं उठा पाती हैं जिसके कारण उनका विकास बाधित होता है।
- खेतिहर महिला श्रमिकों को औसतन वर्ष भर में केवल 159 दिन ही काम प्राप्त होता है अर्थात 206 दिन वे मौसमी बेरोजगारी की शिकार रहती है जो कि उनके विकास में बड़ी बाधा है।
- खेतिहर महिला श्रमिक अपने विभिन्न कार्यो के सम्पादन हेतु ऋण लेती हैं जो कि आय कम होने के कारण वे चुका नहीं पाती है। परिणामस्वरूप उनका शोषण किया जाता है।
- खेतिहर महिला श्रमिकों की खेतों में एवं अन्य कृषि कार्यो को करने की दशाएँ अनुकूल नहीं होती हैं जो कि उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं।
- खेतिहर महिला श्रमिकों की उचित आवास व्यवस्था न होना भी उनके विकास में बाधा उन्पन्न करती है।

यद्यपि सरकार की आदिवासी विकास परियोजनाओं का खेतिहर महिला श्रमिकों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है किन्तु दूसरी ओर आदिवासी खेतिहर महिलाओं के विकास में अनेक बाधक तत्व है, यदि इन बाधक तत्वों को दूर कर लिया जाए तो इन योजनाओं का प्रभाव कई गुना बढ़ जाएगा।

प्रमुख सुझाव इस प्रकार हैं -

- खेतिहर महिला श्रमिकों के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा व्यवस्था की जाए।
- खेतिहर महिला श्रमिकों को आवश्यक मात्रा में सरलता एवं सहायता से वित्तीय साधन उपलब्ध कराए जाए।
- महिला श्रमिको के पारिवारिक दायित्वों को कम करने का प्रयत्न किया जाए।
- राष्ट्रीय कृषि नीति में महिला कृषि श्रमिकों को उचित सम्मान व स्थान दिया जाए।
- महिला विकास कार्यक्रमों का उचित एवं वास्तविक कार्यान्वयन होना चाहिए।
- खेतिहर महिला श्रमिकों के कार्य के घण्टो का नियमन किया जाना चाहिए।
- न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का कठोरता से पालन किया जाए।
- खेतिहर महिला श्रमिकों के बीमा को अनिवार्यत: पालन किया जाए।
- औद्योगिक श्रमिकों के समान खेतिहर महिला श्रमिकों के संगठन को सशक्त बनाए जाने हेतु कदम उठाए जाए।
- खेतिहर महिला श्रमिकों को अन्य व्यवसायों के नि:शुल्क प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाना चाहिए।

निष्कर्ष- निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि आदिवासी खेतिहर महिला श्रमिकों के उत्थान हेतु विभिन्न विकास परियोजनाएँ एक महत्वपूर्ण एवं सशक्त माध्यम है केवल आवश्यकता है उनके विकास में बाधक तत्वों का समाधान करने की। योजना आयोग का मत है 'कृषि श्रमिकों की समस्याएँ हमारे लिए एक चुनौती है और इन समस्याओं का समुचित निदान खोजने की जिम्मेंदारी सम्पूर्ण समाज पर है।'

वास्तव में महिला शक्ति का उचित प्रबंधन एवं उपयोग कृषि तथा उससे सम्बन्धित व्यवसायों में किया जाए तो महिला शक्ति अन्नपूर्णा के रूप में देश को कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने में अमूल्य योगदान दे सकती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. जैन प्रकाशचन्द त्रिवेदी मधुसूदन - आदिवासी विकास योजनाएँ (दशा एवं दिशा) शिवा पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, उदयपुर
2. शर्मा बह्मदेव, आदिवासी विकास एक सैद्धान्तिक चिन्तन, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
3. धरामी अजयकुमार, शर्मा ए. एन, जनजातीय क्षेत्रों में रोजगार भी समस्या, भारतीय आदिम जाति सेवक संघ, नर्ह दिल्ली
4. प्रतियोगिता दर्पण, अतिरिक्तांक, भारतीय अर्थव्यवस्था, उपकार प्रकाशन, आगरा, 2013

****

उद्यमियों के लिए भुगतान प्रणाली की जानकारी एवं महत्व

डॉ. प्रीति श्रीवास्तव *

प्रस्तावना – दैनिक जीवन में 'भुगतान' का बहुत महत्व है भुगतान नियमित एवं समय पर हो जाने पर व्यक्ति अपने आप को चिन्ता मुक्त पाता है। सामान्यत: एक व्यक्ति को रोजमर्रा के बिल जैसे – बिजली, टेलीफोन, मोबाइल बिल, मकान, वाहन आदि के ऋण की किस्तें, बच्चों के स्कूल कॉलेज की फीस, मकान किराया, क्रेडिट कार्ड बिल, मकान का सम्पत्ति कर, जल कर आदि का भुगतान मासिक आधार पर करना पड़ता है। इसके अलावा विभिन्न संस्थाओं यथा बैंक, बीमा, डाकघर एवं अन्य व्यवसायिक इकाईयों को भी अपना व्यवसाय चलाने के लिए कई तरह के भुगतान करने होते है। यह भुगतान उनके द्वारा नकद, चैक अथवा राशि स्थानांतरण आदि के माध्यम से किये जाते हैं।

भुगतान प्रणाली मूल रूप से मुद्रा का अंतरण है और इसके अंतर्गत भुगतान से संबंधित संस्थाऐं जैसे – समाशोधन गृह नियम, तकनीकी प्रणालियां व संस्थाओं में कार्यरत् कर्मचारी इस मुद्रा अंतरण को सफल बनाते है किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में भुगतान प्रणाली की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। भुगतान एवं निपटान प्रणाली के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा भी गया है कि 'शरीर में रक्त संचार के लिए जो महत्व नसों का होता है वही महत्व भुगतान का आर्थिक जगत एवं अर्थव्यवस्था में होता है। '

यदि किन्हीं कारणों से भुगतान प्रणालियों में व्यवधान आ जायें अथवा वह अवरूद्ध हो जायें तो अर्थद्धव्यवस्था का चक्र भी अवरूद्ध हो जाता है।

चैक एवं समाषोधन, गृहों के माध्यम से भुगतान – पूर्व में भारत में अधिकतर भुगतान नकद होता था इसके अलावा एक और विकसित साधन केवल चैक था जिसे संस्थाएँ व व्यक्ति दोनों ही थोक व खुदरा दोनों प्रकार के लेनदेन में उपयोग में लाते है। खुदरा का आशय वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए छोटे भुगतान से है जबकि थोक के अंतर्गत संस्थाओं के बीच में होने वाले बड़े भुगतान से है। चैक से भुगतान में एक ही बुराई थी की इसके माध्यम से भुगतान की प्रक्रिया धीमी होती है एवं कई बार भुगतान भी प्राप्त नहीं होता जो अंतर नगरीय स्थानांतरणों में और अधिक होती है चैक द्वारा भुगतान भारत में 95 प्रतिशत से अधिक हो रहा है।

इलैक्ट्रॉनिक क्लीयरिंग प्रणाली (ई. सी. एस.) – भुगतान प्रणाली में नया प्रयोग इलैक्ट्रॉनिक क्लीयरिंग सर्विस क्रेडिट के रूप में आरंभ हुआ। चैक प्रणाली एवं धीमी एवं खर्चीली प्रणाली है साथ ही चैक प्रणाली में जोखिम भी अधिक रहता है क्योंकि चैक प्रेषण के दौरान गुम जाते है। जिसका कई बार धोखाधड़ी के रूप में उपयोग ई. सी. एस. क्रेडिट ने इस सब तरह की जोखिमों को कम करते हुए राशि को प्राप्तकर्ता के खाते में सीधे जमा करने की सुविधा दी।

क्रेडिट–डेविट स्मार्ट कार्ड प्रणाली –भुगतान प्रणाली में क्रेडिट–डेविट व स्मार्ट कार्ड आने के बाद बड़ा परिर्वतन आया है भारतीय रिर्जव बैंक ने इनके बढ़ते प्रयोग ग्रहकों के अधिकारों के संरक्षण, इस प्रणाली पारदर्शिता तथा अचार संहिता के लिए आर. गांधी की अध्यक्षता में एक कार्यकारी दल की स्थापना की । जिसकी सिफारिसों के आधार पर 21 नवम्बर 2005 को भारतीय रिजर्व बैंक ने मार्गदर्शी सिद्धांत एवं निर्देश जारी किये। इसी के साथ ग्रहकों को इन कार्यो के विषय में लोकपाल में शिकायत करने के अधिकार भी दियें।

अंतर्राष्ट्रीय निपटान बैंक ने वर्ष 1990 में भुगतान एवं निपटान प्रणालियों पर एक कर्मेटी की स्थापना की थी। जिसका मुख्यालय बासल में है इस कर्मेटी ने जोखिम के क्षेत्र में शोध करते हुए यह पाया कि खुदरा भुगतान प्रणाली की आपेक्षा थोक भुगतान प्रणालियां जैसे कि–अंर्त बैंक व हाईवैल्यू क्लीयरिंग में जोखिम ज्यादा रहती है। इसलिए शुद्ध निवल निपटान प्रणाली में एक समय बिन्दु पर सभी लेनदेन की राशि को एकत्रित कर प्रणाली में शामिल सभी संस्थाओं के बीच एक नियत समय पर निबल निपटान किया जाता है।

तत्काल सकल निपटान प्रणाली – प्रणाली के अंतर्गत डेबिट या क्रेडिट के स्थान पर प्रत्येक सौदें का भुगतान अलग–अलग होता है तथा भुगतान या उसकी वापसी वास्तविक समय में अर्थात् तुरंत की जाती है, क्योंकि इस प्रणाली में प्रत्येक भुगतान के सौदों की प्रविष्टियां सीधे केन्द्रीय बैंकों द्वारा वित्तीय संस्थानों के खाते में वास्तविक समय में की जाती है इसलिए जोखिम नहीं रहता है। इस प्रणाली को इलेक्ट्रॉनिक प्रणाली द्वारा चलाया जाता है जिससे वित्तीय संस्थान आपस में तुरंत भुगतान कर सके, इसके लिए एक केन्द्रीय सर्वर होता है तथा निजी नेटवर्क (जिसमें केन्द्रीय बैंक व वह वित्तीय संस्थान सदस्य जिन्हें केन्द्रीय बैंक द्वारा अनुमति दी गई है) द्वारा केन्द्रीय बैंक व सभी सदस्य संस्थान जुडे रहते है, इसलिए इसे तत्काल सकल निपटान प्रणाली कहते है, इस प्रणाली में सौदों का आपस में समायोजन नहीं होता, अत: वित्तीय संस्थानों की अधिक तरलता की जरूरत पड़ती है, जिसे केन्द्रीय बैंकों द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों की जमानत के बदले दिया जाता है। इसके लिए सभी सदस्य वित्तीय संस्थान सदस्य अपनी आवश्यकता के अनुसार प्रतिभूतियों जमानत के तौर पर रखते है, इसके बाद भी यदि किसी संस्थान सदस्य को तरलता की जरूरत पड़ती है तो प्रणाली स्वयं यह कार्य कर देती है। इस प्रणाली का उद्देश्य यही है कि भुगतान रूक न जायें। इस प्रणाली से जुड़े सदस्यों को दिन की समाप्ति के पहले राशि का समायोजन करना होता है। यह प्रणाली अंतरबैंकीय तथा बैंको द्वारा ग्राहकों को निमित दोनों ही प्रकार के लेनदेन के लिए प्रयोग की जा सकता है।

विविध डिलिवरी चैनल – बैंकिग सेवाओं एवं उत्पादों के विविध डिलिवरी चैनल सव्यवहार बैंकिंग की आत्मा है। संसाधनों की लागत घटाने हेतु बैंकों के लिए आवश्यक है कि वह बड़ी संख्या में ग्राहक के बैंक से जुड़ने पर

* अतिथि विद्वान (अर्थशास्त्र विभाग) संजय गांधी स्मृति महाविद्यालय, गंजबासौदा (म.प्र.) भारत

मानवीय संसाधनों द्वारा उनको संतोषजनक सेवाएं देना व्यवहारिक नहीं है, ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि बैंकिग सेवाओं को डिलिवरी के साधनों में वृद्धि हो। आज एटीएम, एसएमएस, सेवाएं, कॉल सेन्टर, इन्टरनेट बैंकिग एवं मोबाइल बैंकिग जैसे अनेक चैनल है, जिनके माध्यम से बैंकिग सेवाओं की मानकीकृत एवं संतोषजनक डिलिवरी संभव है, आज के ग्राहक खासकर उच्च आयवर्गी थे बैंकिग सेवाओं की आवश्यकता तो है किंतु शाखाओं की लम्बी पंक्तियों में खड़ी होकर समय नष्ट करना न तो उनकी पंसद है, और न ही उनके लिए संभव।

नकदी प्रबंधन प्रणाली – नकदी प्रबंधन प्रणाली से संबधित उत्पादों के द्वारा बैंकों ने व्यावसायिक वर्ग के लिए नकदी प्रबंधन अत्यंत आसान एवं मितव्ययी बना दिया है। अपने व्यवसाय के अनेक केन्द्रों एवं शाखाओं से भुगतान एकत्रित करने, एवं उन तक भुगतान पहुँचाने की प्रक्रिया को आसान करते हुए नगदी प्रबंधन उत्पादों ने न सिर्फ व्यवसायिक गतिविधियों में तीव्रता ला दी है, बल्कि उसे अत्यंत कुशल बनाते हुए व्यापारी की सव्यवहार लागत में भी बचत की है दूसरी ओर डोर-स्अेप बैंकिग में व्यावसायिक एवं व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के लिए नकदी की मांग एवं निस्तारण संबधी लेनदेनों को अत्यंत सुविधाजनक बना दिया है। अपने प्रतिष्ठान पर ही एकत्रित नकदी का निस्तारण या जरूरत की राशि को प्राप्त करने संबधी त्वरित सेवाओं इस उत्पाद के अंतर्गत उपलब्ध है।

उपहार कार्ड – जहां उपधर देने की परम्परा और शैली में एक क्रांति लाया है, वहीं पे-रोल कार्ड नामक उत्पाद ने बड़े-बड़े प्रतिष्ठानों की सुविधा के लिए उनके कर्मचारियों का वेतन, भत्ता, यात्रा अग्रिम, प्रोत्साहन राशियों आदि के भुगतान हेतु नयी एवं आकर्षक सुविधा प्रदान की है।

मर्चेन्ट बैंकिंग – मर्चेन्ट बैंकिंग के तहत बैंको ने व्यवसायिक जगत को ईशू प्रबंधन, ऋण प्रबंधन, पोर्टफोलियों, मैनेजमेंट, वित्तीय सलाह, आस्तियों एवं देयताओं के प्रबंधन आदि से संबंधित विनियोग वित्त की सेवायें प्रदान करके उनकी वित्त प्रबंधन संबंधी जटिलताओं को सुलझाया है।

चैनल फाईनेंस – जैसे नवोन्वेशी उत्पाद के जरिये ग्राहकों से प्राप्त बिलों की डिस्कांउटिंग एवं डीलेश द्वारा माल की खरीद के वित्त पोषण हेतु क्रेता बिल डिस्कांउटिंग संबधी सुविधाएं प्रदान की जाती है, ताकि लघु एवं मध्यम उद्योगों की तरलता संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करते हुए उनके व्यवसाय को तरलता अवरोधों से मुक्त रखा जा सके व्यवसायों में वित्तीय तरलता को बनाये रखने में सहायक इस प्रकार के उत्पादों की प्रासंगिकता एवं आवश्यकताओं पर संदेह नहीं किया जा सकता है।

एसबा (एप्लीकेशन सपोर्टेड बाई ब्लॉक्ड एमाउंट)– यह एक ऐसी सुविधा है, जिसके तहत शेयर मार्केट के इनीशियल पब्लिक ऑफर में शेयर के लिए आवेदन करने वाले विनियोगकर्ता के खाते से भुगतान राशि तब तक डेबिट नहीं होती जब तक उसके डी-गैर खाते में आंवटित शेयर क्रेडिट न हो जाये। आवेदित शेयरों की क्रय राशि आवंटन की तिथि तक उसके खाते में ब्लॉक करके रखी जाती है एवं आवंटन की तिथि को कुल आवंटित शेयरों की मूल्य राशि हो खाते से डेबिट की जाती है न कि कुल आवेदित शेयरों की राशि इस प्रकार विनियोगकर्ता न सिर्फ आवेदन एवं आवंटन के बीच की अवधि पर मिलने वाले ब्याज का लाभ उठाता है बल्कि रिफड आदि की औपचारिकताओं से भी बरी रहता है, डी-मैट एवं ऑनलाईन ट्रेडिंग संबंधी सव्यवहार बैंकिंग उत्पादों ने शेयर एवं मयूचुअल फंड बजारों की गुत्थियों को आम विनियोगकर्ता के लिए आसान बनाते हुए उनको इन बाजारों में विनियोग करके लाभ कमाने हेतु प्रेरित किया है। आज का निवेशक इंटरनेट बैंकिग के जरिये ऑनलाईन ट्रेडिंग करते हुए शेयर एवं म्यूचुअल फंड बाजारों से सीधे बिना किसी दलाल की मध्यस्थता के, खरीद फरोख्त कर सकता है। इन बाजारों रहस्य एवं पेंचीदगियों को उसके लिए अंजान बनाने वाले इस प्रकार के उत्पाद निश्चित रूप से प्रासंगिक एवं आवश्यक है।

उपसंहार – वास्तव में भुगतान एवं निपटान प्रणाली में क्रमवद्ध तरीके से आये बदलाव एवं इसके वर्तमान स्वरूप के कारण सबसे ज्यादा फायदा उद्यमियों के साथ-साथ ग्राहकों को भी हो रहा है। इलेक्ट्रॉनिक समाशोधन सेवा से बड़े कारपोरेट निकायों को डिविडेड एवं ब्याज का तत्काल भुगतान करने में सुविधा हुई है। देश में एटीएम मशीन बड़े पैमाने पर लगायी गई है, इससे अब ग्राहक 24 घंटे पैमाने पर लगायी गई है, इससे अब ग्राहक 24 घंटे आसानी से अपने समीय के एटीएम से पैसे निकाल सकते है।

ईसीएस सुविधा में कारण ग्राहकों को विभिन्न बिल जैसे- बिजली/ टेलीफोन/ महानगरीय गैस/नगर पालिका का संपत्ति कर/ जलकर बच्चों की स्कूल/ कॉलेज की फीस, बैकों एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं से लिये गये ऋण की किश्तों आदि के भुगतान में बहुत सुविधा हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Departmental Rules, Local Fund Audit Department, Rajasthan, Jek Printers, Jaipur 1993.
2. Times of India, New Delhi
3. Economic time, New Delhi
4. उद्यमिता विकास केन्द्र मध्यप्रदेश, वर्ष 22 अंक 11 मार्च 2014

****

औद्योगिकरण, रोजगार एवं आर्थिक विकास

डॉ. अनीता कौशल * डॉ. मुकेश कौशल **

शोध सारांश – द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् विश्व के अधिकांश देशों में आर्थिक जागरण की एक सशक्त लहर उत्पन्न हुई जिसने आर्थिक विकास का रूप धारण कर लिया है। वर्तमान में दुनियाँ का प्रत्येक राष्ट्र अपने आर्थिक विकास के लिये बहुआयामी प्रयत्न कर रहा है। औद्योगिकरण मानव का एक ऐसा प्रयास है जिसने राष्ट्रीय आय एवं औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि कर मानवीय जीवन को उच्च स्तर तक पहुँचाया है। अत: औद्योगिकरण आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण मार्ग है। विश्व के आर्थिक अनुभवों से यह प्रकट होता है कि केवल औद्योगिकरण से ही आज के विकसित राष्ट्रों ने इतनी समृद्धि प्राप्त की है, क्योंकि इनकी आय का अधिकांश भाग औद्योगिक उत्पादन से प्राप्त हो रहा है। भारतीय परिपेक्ष्य में यदि हमारे देश को अन्य विकसित देशों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना है तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि हमें औद्योगिकरण की विशेष आवश्यकता है। भारत के उच्चतर जीवन स्तर प्राप्ति हेतु सुख समृद्धि और सेवाओं की प्रचुर मात्रा में उपलब्धि नितांत आवश्यक है एवं देश के नियोजित आर्थिक विकास सामाजिक न्याय, राजनैतिक स्थिरता, बढ़ती हुई जनसंख्या, वर्गभेदविहीन तथा लोकतंत्रात्मक समाजवाद इन सभी की यह आवाज है कि देश का भावी विकास उनके पूर्ण औद्योगिकरण में निहित है।

प्रस्तावना – औद्योगिकरण शब्द उद्योग शब्द से बना है। उद्योग की परिधि में वे समस्त उपक्रम सम्मिलित हैं, जिनमें नियोजकों एवं नियोजितों के सहयोग से मानवीय आवश्यकताओं तथा आकांक्षओं की संतुष्टि के लिये एक व्यवस्थित गतिविधि के रूप में वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन का कार्य संपन्न किया जाता है।[1] अत: प्राकृतिक प्रसाधनों में उपयोगिता बढ़ाने वाली संपूर्ण क्रियोओं को हम उद्योग कह सकते है। आधुनिक युग में उद्योग का अर्थ विज्ञान एवं तकनीकि की सहायता से नवीन उपयोगिताओं अथवा मूल्यों का निर्माण करने से है। उद्योगों की यह श्रृंखला जब व्यापक रूप धारण कर लेती है तो यह एक प्रक्रिया बन जाती है, जिसे औद्योगिकरण कहा जाता है।[2]

औद्योगिकरण ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत किसी देश की अर्थव्यवस्था की संरचना में तकनीकी एवं यंत्रीकरण के द्वारा आमूल परिवर्तन किये जाते हैं जिनके द्वारा देश के प्राकृतिक साधनों का अधिकतम विदोहन किया जा सके। नवकरण औद्योगिकरण की प्रक्रिया का एक प्रमुख लक्षण है जिससे पूंजी का गहन एवं विस्तृत विनियोग संभव होता है।

फलस्वरूप देश में उत्पत्ति के साधना प्राथमिक क्षेत्र से द्वितीयक क्षेत्र और तृतीयक क्षेत्र को स्थानांतरित होने लगते है और एक ऐसी वृहत् प्रक्रिया को जन्म देती है जो एक श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न करने में सक्षम होती है। प्रति इकाई उत्पादन में अधिक पूंजी के उपयोग के कारण प्रति श्रमिक उत्पादकता में वृद्धि होती है। और इसके कारण प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के कारण बचत करने की क्षमताओं में वृद्धि होती है और इस प्रकार अंतत: पूंजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है जिसके कारण औद्योगिकरण की गति को अधिक तीव्र बनाया जा सकता है। औद्योगिकरण का प्रादुर्भाव किसी अवरूद्ध अर्थव्यवस्था में विकास की ऐसी प्रक्रिया को जन्म देती है जो इस देश के आर्थिक स्तर को अधिकाधिक ऊँचे आयाम प्रदान करती है।

औद्योगिकरण एवं आर्थिक विकास का संबंध – औद्योगिकरण की अवधारणा के विश्लेषण से स्पष्ट है कि औद्योगिकरण ही आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण उत्तर है। वास्तव में आर्थिक विकास एक सतत् प्रक्रिया है जिससे देश की राष्ट्रीय आय में निरंतर वृद्धि, साथ ही सामाजिक, संस्थागत एवं संगठन संबंधी परिवर्तन आर्थिक विकास द्वारा ही किये जाते है। स्मिथ से लेकर आधुनिक अर्थशास्त्रियों के मतों का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि आर्थिक विकास के अंतर्गत उत्पादन में वृद्धि या राष्ट्रीय आय में वृद्धि से है और यह लक्ष्य औद्योगिकरण द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

आर्थिक विकास में लिये औद्योगिकरण पर बल दिया जाता है। एशिया के राष्ट्रों के आर्थिक विकास के संबंध में गुन्नार मिर्डल ने लिखा है – "जब बुद्धिजीवी वर्ग यह कहता है कि उनका राष्ट्र अर्द्ध विकसित है तो उनका प्रथम आशय यह है कि उनके यहाँ उद्योग कम है।"[3] यदि वास्तव में देखा जाये तो अधिक उन्नत देशों में कार्यरत जनसंख्या का व्यापक हिस्सा निर्माण उद्योगों में लगा रहता है, इनका औद्योगिक उत्पादन भी विश्व उत्पादन का एक बड़ा भाग रहता है जिससे प्रति व्यक्ति आय एवं राष्ट्रीय आय कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था की तुलना में अधिक रहती है अत: औद्योगिकरण से ही आर्थिक विकास को प्राप्त किया जा सकता है।

औद्योगिकरण अल्प विकसित राष्ट्रों के आर्थिक विकास की कुन्जी है क्योंकि इससे ऐसे देशों की अर्थव्यवस्था में व्यापक रूप से दीर्घकालीन जड़ता अथवा अवरोध को दूर करके ही हलचल पैदा की जा सकती है जो वहाँ के सुशप्त समाज को चिरकालीन निद्रा से जगाकर आर्थिक विकास की ऊषा बेला में औद्योगिकरण की प्रक्रिया को प्रारंभ करने की प्रेरणा प्रदान करती है।[4] फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, बचत में वृद्धि, विनियोग में वृद्धि, उत्पादकता में वृद्धि, निर्यात में वृद्धि आदि की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है जिससे आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है।

औद्योगिक विकास के बिना आज कोई राष्ट्र न तो अपने देशवासियों के जीवन में प्रचुर साधन प्रदान कर सकता है न ही ऐसा राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय मंच पर अपनी भूमिका का भली प्रकार से निर्वाह कर सकता है। उद्योगों के विकास द्वारा ही अल्पविकसित राष्ट्र अपनी निर्धनता, बेरोजगारी, जनाधिक्य की

* सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) राजमाता सिंधिया शासकीय कन्या महाविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र) भारत
** सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) राजमाता सिंधिया शासकीय कन्या महाविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र) भारत

समस्याओं को समाप्त कर सकते है। विश्व में सभी विकसित राष्ट्र औद्योगिकरण के बल पर ही प्रचुरताप एवं संपन्नता के उच्च स्तर पर पहुँचने में सफल हुये है। औपेक देशों को छोड़कर विश्व के सभी विकसित देशों की आय में वृद्धि औद्योगिकरण संपन्नता का प्रतीक है तो संपन्नता आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण मापक है। अत: आर्थिक विकास एवं औद्योगिकरण का घनिष्ठ संबंध है।

औद्योगिकरण एवं आर्थिक विकास के साथ इसके व्यवहारिक पहलू एवं काल की प्रमुख समस्या बेरोजगारी को हल करने से इसका संबंध स्थापित करना आवश्यक है। बढ़ता हुआ जनाधिक्य, उसमें भी बढ़ता हुआ युवाओं का प्रतिशत, ने बेरोजगारी रूपी राक्षस को विकारलता प्रदान कर रहा है। जिससे कभी कभी ऐसा लगता है कि सारा औद्योगिक एवं आर्थिक विकास बढ़ती हुई बेरोजगारी के स्वत: विलीन होता चला जा रहा है। युवाओं की आकांक्षायें शक्ति उनकी आवश्यकताओं को तो बढ़ा रही है पर जब उन्हें रोजगार नहीं मिल पा रहा है तो अनेक आर्थिक सामाजिक समस्यायें मानवीय भूख तथा जहरीली व अनैतिक चेतनाओं का जन्म हो रहा है। जिससे तरूण वर्ग जो राष्ट्र की रीड़ है इन कटीली राहों में उलझा हुआ है। यही कारण है कि आज जगह–जगह रोजगार के लिये आंदोलन, तोड़फोड़, लूटमार, अगजनी आदि घटनाओं के लिये आये दिन पढ़ा सुना एवं देखा जाता है।

हमारे देश में रोजगार का परंपरागत साघन कृषि है परन्तु कृषि में भी खेतिहर मजदूरों एवं काश्तकारों को वर्ष में कुछ समय ही कार्य मिलता है, बाकी समय व्यर्थ में ही गुजारना पड़ता है। जनसंख्या वृद्धि एवं पारिवारिक विघटन के कारण लगातार कृषि योग्य भूमि में कमी आ रही है, कृषि पर पूर्ण रूप से जीवन निर्वाह करना संभव नहीं हो पा रहा है ऐसी स्थिति में उनका पलायन हो रहा है और वह गाँवों को छोड़कर नगरों की तरफ आकर्षित हो रहे है। अर्थव्यवस्था में रोजगार देना एक चुनौती बनता जा रहा है। इस समय एक ऐसी औद्योगिक नीति की आवश्यकता है जो उद्योगों में शरीरिक एवं मानसिक श्रम दोनों के लिये रोजगार के भरपूर अगसर उपलब्ध कराये। आर्थिक विकास एवं तीव्र औद्योगिकरण की दौड़ में हमें पूंजी गहन तकनीक के साथ प्रधान तकनीक का समन्वय करना बेरोजगारी को देखते हुये आवश्यक है। भारत में बेरोजगारी की समस्या है औद्योगिक एवं आर्थिक विकास की दौड़ में आगे बढ़ते हुये हमें यहाँ पर व्याप्त बेरोजगारों को काम देने की संभावनाओं पर ध्यान देना आवश्यक है अन्यथा बेरोजगारी की आंधी विकास को समाप्त कर देगी।

निष्कर्षत – औद्योगिकरण आर्थिक विकास का आधार है, तो अर्थव्यवस्था में रोजगार में स्थायित्व एवं बेरोजगारी कम होने से आर्थिक विकास की गति त्वरित एवं स्थायी रह सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Supreme court Judgment on Bangalore, Water Supply and Sewage Board Case Given on February 21, 1978
2. डॉ. आर. एस. कुलश्रेष्ठ – औद्योगिक अर्थषास्त्र
3. Gunnar Myrdal – Asian drama, vol – II
4. डॉ. आर. सी. गुप्ता – औद्योगिक संगठन एवं प्रबंध
5. राय एवं भारती – आर्थिक विकास के सिद्धांत
6. विपिनचन्द्र – भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव एवं विकास
7. निदेश चंद्र शर्मा – भारतीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था

****

महिला उद्यमिता एवं भारत

डॉ. कृष्णा अग्रवाल *

शोध सारांश – उद्यमिता अथवा उद्यम किसी वर्ग, जाति या लिंग भेद की बैसाखियों का मोहताज नहीं होता है, उसके लिए आवश्यक उद्यमियों के गुण ही सर्वथा व सर्वदा पर्याप्त होते है, और इन्हीं गुणों की पहचान कर उद्यमिता का विकास करना हर उद्यमी का कर्तव्य होता है। स्वयं का यह आत्म अवलोकन व विकास की भूख ही उद्यमिता के सर्वोपरि उपकरण होते है।

प्रस्तावना – यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि कोई भी देश उपलब्ध मानव संसाधन का पूर्ण उपयोग करके ही आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। चूँकि मानव शक्ति का आधा भाग महिलाएँ हैं, इसलिए कोई भी राष्ट्र महिलाओं की सहभागिता के बिना आर्थिक विकास का सपना पुरा नहीं कर सकता है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है यहाँ पर आदिकाल से महिलाएँ उपेक्षित रही हैं, उनका कार्यक्षेत्र का दायरा केवल घर-परिवार तक ही सीमित रहा है, जबकि सत्यता यह है कि महिलाएँ अपने घर परिवार का प्रबंध व संचालन अत्यंत कुशलतम ढंग से करती है।

अनेक अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने यह सुझाव दिया है कि भारत को गरीबी से ऊपर उठाने का एक मात्र तथा सही तरीका देश की महिलाओं को शिक्षा देना तथा उनके स्तर को ऊँचा उठाना है। इसका एक मात्र हल है महिला उद्यमिता। श्री जवाहरलाल नेहरू ने इस संबंध में कहा हैं – 'जब औरत आगे बढ़ती है, तो परिवार आगे बढ़ता है, गाँव आगे बढ़ता है और देश आगे बढ़ता है।' रोजगार महिला को स्तर तथा आर्थिक आजादी देता है।

भारत में महिला उद्यमिता की संभावना – वर्तमान संदर्भ में महिला उद्यमी विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में आसानी से दिख सकती है। चाहे वह परंपरागत क्षेत्र हो या गैर परंपरागत, चाहे वह इंजीनियरिंग या इलेक्ट्रॉनिक उद्योग की बात हो या फिर रेडिमेड गारमेंट, फेब्रिक हस्त कलाएँ या खिलौना निर्माण से लेकर मुर्गीपालन, प्लास्टिक उद्योग, साबुन निर्माण, सेरेमिक छपाई, टेक्सटाइल, डिजायनिंग, दवाएँ, बुनाई आदि क्षेत्र हो। भारतीय महिलाओं ने अपने साहस के बल पर उद्यम से जोखिम उठाने, चुनौतियों का सामना करने जैसे कार्यो में भी प्रवेश किया है। महिलाओं के पास विस्तृत उद्यम का गुण है जो उन्हें काम ढूँढने वालों से काम देने वाला बना सकता है। **महिला उद्यमिता सम्बन्धी योजनाएँ –** स्वतन्त्र भारत में महिलाओं को समाज में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टि से पुरूषों के समकक्ष समानता का दर्जा प्राप्त है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं का योगदान बढ़ रहा है। और उन्हें स्वावलम्बी बनाने के लिए अनेक प्रशिक्षण एवं स्वरोजगार योजनाओं को केन्द्र स्तर पर एवं राज्य स्तर पर चलाया जा रहा है।

केन्द्र सरकार में पृथक रूप से महिला एवं बाल विकास विभाग की स्थापना की गई है तथा यह विभाग अपनी नोडल क्षमतानुसार सकारात्मक कार्यवाही कर महिला आर्थिक सशक्तिकरण एवं महिला रोजगार विषयक अनेक कार्यक्रमों का संचालन कर रहा है। महिलाओं को पुरूषों के समान सामाजिक दर्जा दिलाने हेतु निम्नलिखित कार्यक्रम प्रमुखत: भारत में केन्द्र सरकार द्वारा निर्मित कर राज्य सरकारों की सहायता से सम्पूर्ण देश में चलाए जा रहे है –

स्वयं सिद्धा स्वरोजगार योजना – स्वयंसिद्धा स्वरोजगार योजना महिलाओं के सशक्तिकरण की एक एकीकृत स्कीम है। इस स्कीम का उद्देश्य जागरूकता विकास, आर्थिक, सशक्तिरकण एवं विभिन्न स्कीमों के संकेन्द्रण के माध्यम से महिलाओं का समग्र सशक्तिकरण करना है। यह स्कीम महिलाओं के स्वसहायता दलों के गठन पर आधारित है। सभी चालू क्षेत्रीय कार्यक्रमों के संघटन एवं अभिसरण की सतत् प्रक्रिया के माध्यम से संसाधनों तक महिलाओं की प्रत्यक्ष पहुँच एवं उन पर महिलाओं का नियंत्रण सुनिश्चित करते हुए महिलाओं को सर्वांगीण सशक्तिकरण करना इस कार्यक्रम का दीर्घकालीन उद्देश्य है।

इस कार्यक्रम के अंतर्गत 238 इंदिरा महिला योजना ब्लाकों सहित देश भर के 650 ब्लॉक शामिल होगे। प्रत्येक ब्लॉक में 15-20 महिला सदस्यों के 100 स्वसहायता दल होगे। इन दलों की कुल संख्या 65000 होगी, जिनमें से 53,100 दल नए होगे।

इस कार्यक्रम की कुल अनुमानित लागत 116.30 करोड़ रूपए है, जिसमें से 92.30 करोड़ ब्लॉक स्तर पर, 16.00 करोड़ रूपए राज्य स्तर पर तथा 8.00 करोड़ रूपए, राष्ट्रीय स्तर पर व्यय किए जाएँगे।

स्व. शक्ति परियोजना– स्व.शक्ति परियोजना, जिसे ग्रामीण महिला विकास एवं सशक्तिकरण परियोजना के नाम से भी जाना जाता है, एक केन्द्रीय प्रायोजित परियोजना है। इसका अनुमानित परिव्यय 186.21 करोड़ रूपए है। इसके अतिरिक्त, लाभार्थी, दलों को, मुख्यत: उनके गठन की आरंभिक अवधि के दौरान ब्याजधारी ऋण प्रदान करने हेतु चक्रीयन निधि की स्थापना को सुकर बनाने के लिए 5.00 करोड़ रूपए की राशि प्रदान की गई।

विश्व बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय कृषि विकास कोष द्वारा संयुक्त रूप से सहायता-प्राप्त स्व-शक्ति परियोजना की परिचालन अवधि जून 2008 तक थी। इस परियोजना का उद्देश्य कार्य में लगने वाले कठिन श्रम तथा समय में कमी करने वाले साधनों के प्रयोग, स्वास्थ्य, साक्षरता एवं आत्मविश्वास में वृद्धि से बेहतर जीवन स्तर के साधनों तक महिलाओं की पहुँच में वृद्धि करना, तथा कौशल विकास एवं आय अर्जहन कार्यकलापों में उनकी भागीदारी के माध्यम से आय पर उनके नियंत्रण में वृद्धि करना है।

यह परियोजना महिला विकास निगमों समितियों के माध्यम से बिहार, हरियाणा, गुजरात, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ एवं उत्तराखण्ड राज्यों के 57 जिलों के 335 ब्लॉकों तथा 7521 गॉवों में क्रियान्वित की जा रही है।

मध्यप्रदेश सरकार के अन्य संगठन एवं योजनाएँ –

1. आदिवासी महिला सशक्तिकरण
2. म.प्र. स्वर्णिम योजना।

यह निर्विवाद है कि कोई भी पक्षी एक पंख से उड़ नहीं सकता है, राष्ट्र का बहुमुखी विकास तभी होगा जबकि सभी नागरिकों का उसमें परस्पर सहयोग हो। महिलाओं के आर्थिक स्वावलम्बन की दशा में स्वरोजगार ही मूलमंत्र है। महिलाओं ने विभिन्न कार्य क्षैत्रो की चुनौतियों को स्वीकार कर अपनी उपयोगिता स्थापित की हैं। उद्योग और व्यवसाय के क्षेत्र में महिलाओं की निरन्तर बढती भागीदारी एवं सफलता से भारत के सकल घरेलू उत्पादन में लगातार वृद्धि हो रही है। जिससे देश के आर्थिक विकास को एक नवीन दिशा मिली है। उद्यमिता के क्षैत्र में महिलाओं को सहभागिता निश्चित रूप से भारत के औद्योगिक व आर्थिक विकास में सहयोग सिद्ध होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. उद्यमिता विकास – म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी
2. युवाम ज्ञान – दर्पण।
3. प्रतियोगिता दर्पण।
4. दैनिक भास्कर समाचार – पत्र।

* अतिथि व्याख्याता(अर्थशास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, सैलाना (म.प्र.) भारत

शोध प्रविधि की वैज्ञानिक पद्धति और राजनीति विज्ञान

डॉ. अनिल कुमार जैन *

शोध सारांश – वैज्ञानिक पद्धति तथ्यों का अवलोकन, वर्गीकरण और निर्वचन हैं। तथ्यों को किसी भी विधि से प्राप्त किया जावें, उसकी मौलिक शर्त होती है प्राप्त आंकड़ों की सत्यापन योग्यता। वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से जो तथ्य प्राप्त होते है वे निष्पक्ष और यथार्थ होने के कारण उनके सत्यापन की जाँच हो सकती हैं। कार्ल पियर्सन ने वैज्ञानिक पद्धति के महत्व को स्पष्ट किया है ' सत्य की ओर कोई सरल मार्ग नहीं हैं, ब्रह्माण्ड का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक पद्धति के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।'

सभी सामाजिक अनुसंधानों के समान ही राजनीति विज्ञान की शोध जैसा कि इसे शास्त्र की जगह पर विज्ञान की संज्ञा दी गई है की प्रकृति तथा उद्देश्य वैज्ञानिक ही हैं। किन्तु विद्धानों के मत में कुछ समस्याऐं अवश्य है जो इसे वैज्ञानिक नहीं बनने देती है। यथा – अवधारणाओं की अस्पष्टता, घटनाओं के अनेक कारक होने से जटिलता, वस्तुनिष्ठता में कठिनाई जैसे अनुसंधानकर्ता के गुण, उसके समाज के मूल्य तथा 'क्या होगा' ? के स्थान पर 'क्या होना चाहिए' आदि प्रश्न अनुसंधान को दूषित बना देते हैं। मापन की समस्या–क्योंकि मानव स्वभाव व समाज के विभिन्न पक्षों के विविध लक्षणों का अध्ययन असंभव है। राजनीति विज्ञान के अनुसंधानों व निष्कर्षो की पुन: जाँच व परीक्षण कठिन होने से इसकी प्रामाणिकता संदिग्ध बनी रहती है। इस शोध के लिये प्रयोगशाला पद्धति संभव नहीं होने से इसमें निरीक्षण, परीक्षण आदि संभव नहीं है।

राजनीतिक शोध प्रक्रिया में शत–प्रतिशत वैज्ञानिक विधि से, कारण व कार्य का सार्वभौमिक आकंलन संभव नहीं होता है, क्योंकि मनुष्य और उसकी संस्कृति व संस्कार जड़ नहीं होते हैं। राजनीति विज्ञान में संवेदनशील सचेतन प्राणी मनुष्य से जुड़े कार्य व्यवहार का अध्ययन होता है, अत: स्वाभाविक रूप में चुनौतियाँ तो सामने होगी। वैज्ञानिक विधि एक प्रक्रिया मात्र है तथा वर्तमान में विज्ञान ने अपनी क्षमता में अपूर्व वृद्धि की है, अत: शोध प्रक्रिया में इस पद्धति से अध्ययन में विश्वसनीयता तथा प्रामाणिकता का तत्व आएगा जो अनुसंधान की आत्मा है।

प्रस्तावना – राजनीति विज्ञान के लिए यह प्रश्न विवादास्पद रहा है कि क्या वैज्ञानिक शोध प्रविधि को, राजनीति विज्ञान के अध्ययन के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। परम्परागत चिन्तको का प्राय: यह मत रहा है कि चूंकि राजनीति विज्ञान विज्ञान नहीं है, इसलिये राजनीतिक घटनाओं का अध्ययन वैज्ञानिक विधि से संभव नहीं है। इसके विपरीत आधुनिक राजनीतिक विचारकों का यह विश्वास हैं कि अनुसंधान जैसे जटिल एवं गंभीर विषय को तभी ठीक से समझा जा सकता है, जब इसकी अध्ययन की विभिन्न प्रणालियों को वैज्ञानिक रूप में ठीक से प्रस्तुत किया जाये। अध्ययन प्रणाली में वैज्ञानिकता के बदले प्रमाण से आज सामाजिक विज्ञान के अनुसंधान भी अछूते नहीं रहे हैं। अत: राजनीति विज्ञान के अध्ययन की प्रणालियाँ भी तद्नुसार काफी परिवर्तित हुई है। अत: राजनीति विज्ञान शोध प्रविधि में वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन समय की मांग है तथा विषय के प्रति शोध प्रविधि सम्यक न्याय का कारण बन गया है। शोध कार्य में वैज्ञानिक विधि से ही विश्वसनीय व प्रमाणित तथ्यों का संकलन संभव है तथा निष्पक्ष व्याख्या से जटिल मानव संबंधों की प्रकृति को आसानी से समझा भी जा सकता है।

वैज्ञानिक प्रविधि में, कारण और परिणामों के सह संबंधों को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। भौतिक और रसायन आदि विज्ञानों के नियमों में सार्वकालिकता होती है। अत: परिणामों की भविष्यवाणी करना आसान होता है। इनके नियम भी प्रत्येक स्थान परिस्थिति व समय के लिए सत्य होते हैं। राजनीतिक घटनाऐं अनिश्चित होती है, इनके नियम भी स्थिर नहीं होते हैं, अत: इनके संबंध में प्राय: परिणाम की निश्चित घोषणा भी नहीं की जा सकती है। इसका कारण यह है कि राजनीतिक वातावरण, परिस्थितियों और घटनाओं में गतिशीलता होती है। अत: जब सिर्फ घटनाओं के मुख्य कारण को ध्यान में रखकर तथा अन्य कारकों पर ध्यान न देकर परिणामों की घोषणा की जाती है तो वह असत्य प्रमाणित हो जाती है। हाल ही में सन् 2014 के लोकसभा चुनावों के, अप्रत्याशित परिणाम जिन घटनाओं व कारणों से प्रभावित माने गये थे, उन्हीं घटनाओं समय व परिस्थिति में तत्पश्चात् हुए उप चुनावों के परिणाम विपरीत गये। इससे स्पष्ट होता है कि किसी विषेश राजनीतिक घटना व परिस्थिति के आधार पर किये गये पूर्वानुमान भी सत्य हो वह आवश्यक नहीं है।

राजनीतिक घटनाओं में भी कारण और कार्य का अन्योन्याश्रित संबंध होता है जहाँ राज्य में पक्षपात व शोषण व्याप्त है वहाँ का प्रशासन लोकप्रिय नहीं हो सकता। जहाँ प्रशासन में भ्रष्टाचार व्याप्त है वहाँ शासन में गतिशीलता नहीं आ सकती है। यह कारण व कार्य की परिणिती है, परन्तु भौतिक व रसायन विज्ञान के सुनिश्चित सत्य की तरह यहाँ भी कारण की सत्यता हर स्थिति में समान व स्थिर नहीं रह सकती है, तभी तो बाहुबली, दबंग तथा दस्यु सुन्दरी फूलनदेवी जैसे लोग अलोकप्रियता में ही सांसद निर्वाचित हो जाते है। इस स्थिति में निष्चित रूप में यह नहीं कहा जा सकता कि किस कारण से कोई घटना घटित होगी। भौतिक घटनाओं में भी ऐसे विरल उदाहरण मिल जाते हैं, जब वैज्ञानिक के लिये निश्चित रूप में कारण बतलाना संभव नहीं हो पाता। मौसम विज्ञान में इसका उदाहरण है। अत: राजनीति में भी अंतनिर्भरता के सिद्धान्त को सामान्य स्थिति में प्रयुक्त किया जा सकता है।

राजनीतिक शोध में वैज्ञानिक पद्धति के उपयोग के विरूद्ध तर्क दिया जाता है कि राजनीति से संबंधित कोई भी दो इकाईयां समान नहीं होती। यह स्वीकार कर लें, तब यह भी स्वीकार करना होगा कि वे राजनीति के प्रत्येक क्षेत्र में भिन्न भी नहीं होती है। इनमें प्राय: पाई जाने वाली राजनीतिक प्रवृत्तियाँ लगभग समान व स्थिर होती है। जिस प्रकार सामान्य मनुष्य अपनी प्रकृति नहीं बदल सकता है, उसी प्रकार राजनीतिक घटनाओं की प्रकृति व प्रवृत्ति को नहीं बदला जा सकता है। अध्ययन सुविधा के लिये उनको वर्गीकृत अवश्य किया जा सकता है। पूर्ण सजातीयता तो मनुष्यों, पशुओं, प्राकृतिक जगत व जड़ भौतिक सामग्री में भी नहीं पाई जाती है। एक समान दिखने वाले तथा एक कंपनी के, एक जैसे उपकरणों वाले एवं परस्पर पूर्जा बदलने वाले एक टी.वी.का सम्प्रेषण दूसरे से थोड़ा बहुत भिन्न ही होता है, जिसे सामान्य दर्शक भी अनुभव कर लेता है। अत: सजातीयता को आधार

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

बनाकर राजनीति को वैज्ञानिक पद्धति के अनुपयुक्त मानना भ्रामक हैं।

राजनीतिक घटनाऐं कई बार व्यक्ति पर अर्थात् सब्जेक्टीव होती है, जैसे भारत के सन् 2014 के लोकसभा चुनाव श्री नरेन्द्र मोदी के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए है, जबकि इन चुनावों पर महंगाई व भ्रष्टाचार वाले सत्तारूढ़ कुशासन के विरूद्ध प्रतिक्रिया से भी इंकार नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिक पद्धति की तो विशेषता ही यह है कि अनुसंधनकर्ता तटस्थता से पक्षपात एवं पूर्वाग्रह से मुक्त होकर कारण और कार्य के परिणामों की मीमांसा करता है। मनोवैज्ञानिकों ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि भौतिक व सामाजिक तथ्यों की जानकारी की प्रक्रिया समान है। अत: वस्तुनिष्ठता के अभाव का दोषारोपण उचित नहीं है। वैज्ञानिक जिस प्रविधि से भौतिक घटनाओं के बीच कार्य करण के संबंध का पता लगाता है, उसी प्रकार राजनीतिक शोधार्थी भी मानवीय व्यवहार में भी कुछ ऐसे संबंधों का पता अवश्य लगा लेता है जिससे परिणाम की पूर्व कल्पना व नियंत्रण संभव है।

राजनीति में विद्यमान वास्तविकता की प्रचुरता प्रयोगशाला की पहुँच के बाहर होने से, वैज्ञानिक शोध के विरूद्ध सबसे महत्वपूर्ण तर्क यह है कि विज्ञान की आधारभूत प्रणाली प्रयोग की अनुपस्थिति में प्रणाली को कैसे स्वीकार किया जावें। यदि हम प्रयोग की परिभाषा करें तो इसका अर्थ होता है कि नियंत्रित निरीक्षण तथा दोहराने की प्रक्रिया। इसे मानवीय व्यवहार के अध्ययन में लागू नहीं किया जा सकता है। राजनीति में घटनाओं के संदर्भ में प्रयोग विधि असंभव है। राजनीतिक घटनाओं के संबंध में प्रमुख व्यक्तियों, नेताओं और सरकारी अधिकारियों से विश्वसनीय जानकारी प्राप्त करना बहुत मुश्किल है। कुछ बातें ऐसी होती है कि चाहते हुए भी उन्हें सार्वजनिक नहीं किया जा सकता। अत: वास्तविक जगत से संबंधित विचार का प्रयोगशाला में परीक्षण संभव नहीं है। साथ ही कुछ लोगों का निरीक्षण कर, अधिक लोगों के व्यवहार के बारे में नहीं बताया जा सकता है। इसके विरूद्ध यह तथ्य है कि वैज्ञानिक साक्षात्कार प्रणाली से चुनाव आदि में मताता के व्यवहार के बारे में, यांत्रिक विधि और संरचनात्मक की विविधता से भाग लेने वालों की संख्या का महत्व नहीं होता है तब भी भविष्यवाणी संभव होती है, जो सत्य सिद्ध होती है।

वैज्ञानिक अध्ययन में निश्चित आधार पर निश्चित तथ्य जानने का प्रयास होता है। राजनीति में सैद्धान्तिक और व्यवहारिक दोनों दृष्टिकोण से निश्चित आधारों पर निश्चित तथ्यों का निर्धारण कठिन हैं। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति हो या देश की विदेश नीति समय-समय पर बदलती परिस्थिति और स्वदेश हित की प्राथमिकता के कारण निर्णयों में तरलता और परिवर्तन के लिये संभावना का आश्रय लिया जाता है। इस पर यह तो स्पष्ट है कि राजनीति का सिद्धान्त पक्ष में परिवर्तन संभव नहीं है। इसी प्रकार ग्लोबल विश्व व मानवता की दुहाई देने पर भी अंतर्राष्ट्रीय व विदेश नीति निर्धारण में राष्ट्रहित स्पष्ट निश्चित आधार है। अध्ययन प्रणालियों में भी नवाचार का समावेश निश्चित आधार व तथ्यों की खोज में सहायक है।

राजनीतिक तत्वों में परिवर्तनशीलता का गुण मूलत: अनिवार्य है। इसका कारण मानवीय तत्व है। समाज में बदलते मूल्य, आर्थिक परिस्थितियाँ, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक विकास तथा प्रगति के कारण परिवर्तन आता है। परिवर्तन तो सृष्टि का भी प्राकृतिक नियम है। स्थिरता को समाप्त का सूचक कहा जाता है। बदलती परिस्थितियों में राजनीतिक दर्शन के तत्वों में भी परिवर्तन अनिवार्य रूप में रहता है। स्थिरता के अभाव के कारण ही इसके नियम सिद्धान्त शाश्वत नहीं रहते है। अत: यहाँ वैज्ञानिक पद्धति असहाय सिद्ध होती है। यह सच है। परन्तु रूढ़ि और परम्परा से चिपके रहने की अपेक्षा नई प्रणालियों को आत्मसात कर प्रगति की दिशा निर्धारित करना क्या वैज्ञानिक अध्ययन की दिशा में, विश्व में हो रहे नित्य नये आयाम के साथ कदम मिलाकर चलना ही है। राजनीति हो या विज्ञान मौलिक सिद्धान्तों में कभी परिवर्तन नहीं होता। बाह्य रूप से निरन्तर परिवर्तन होते रहते है जो विकास के सूचक है। सिर्फ उनकी दशा दिशा का आकंलन ही है। वैज्ञानिक अध्ययन की श्रेणी में आएगा।

यह माना जाता है कि सभी सामाजिक विज्ञानों की सामग्री गुणात्मक होती है, क्योंकि सामाजिक विकास का आकंलन संख्यात्मक नहीं होता है। यही कारण है कि हम राजनीतिक चेतना या जागृति को माप नहीं सकते। जब हम कहते है कि भारत में लोकतंत्र की जड़े काफी गहराई तक पहुँच गई है तो क्या यह बताया जा सकता है कि गहराई 10 फीट या 20 फीट तक हो गई है। स्पष्ट है कथन का गुणात्मक भाव है, संख्यात्मक नहीं। वैज्ञानिक अनुसंधान के संदर्भ में सच्चाई तो यह है कि गुणात्मक और संख्यात्मक का वर्गीकरण अप्रासंगिक है। विज्ञान की प्रगति ने हमें जो उपकरण दिये है यथा कम्प्यूटर, टेलीविजन, रेडियो और इंटरनेट आदि इन माध्यमों पर आज सभी अनुसंधान की विधियां निर्भर है। इनके परिणाम संख्यामूलक ही होते है। भौतिक हो या सामाजिक विज्ञान किसी घटना का प्रथम परिचय गुणात्मक ही होता है। अनुसंधान उसे संख्यात्मक रूप दे देता है।

सारांश यह है कि विज्ञान क्रमबद्ध ज्ञान का नाम है। अत: इसमें तथ्यों की खोज व्यवस्थित ढंग से की जाती है। इस प्रक्रिया में वैज्ञानिक विधि से समंको का क्रमबद्ध अवलोकन, वर्गीकरण तथा व्याख्या सम्मिलित है। अत: वैज्ञानिक विधि की प्रक्रिया में मुख्य चरण है - समस्या का विश्लेषण, उप कल्पना का निर्माण, निरीक्षण या प्रयोगीकरण, तथ्य संकलन,सामग्री का वर्गीकरण तथा विश्लेषण तथा सामान्यीकरण और निष्कर्ष।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यह प्रश्न ही दकियानूसी तथा असंगत है कि राजनीति विज्ञान के शोध अध्ययन के लिये वैज्ञानिक पद्धति सार्थक है अथवा नहीं ? सच तो यह है कि आज के युग में प्रत्येक समस्यामूलक तथ्य की परीक्षा वैज्ञानिक देश से ही की जाती है। सामाजिक अनुसंधनों में तो इसका महत्व और भी अधिक है। आज का सर्व विदित तथ्य यह है कि विज्ञान व तकनीक ने आज वैश्वीकरण के माध्यम से, संसार को मुट्ठी में बंद कर दिया है। अत: सामाजिक अनुसंधानों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनीति जिसमें तथ्य और घटना की प्रवृत्ति बड़ी ही विचित्र, परिवर्तनशील एवं जटिल प्रकृति की होती है, के अध्ययन में वैज्ञानिक प्रविधि का उपयोग न करने पर अध्येता भ्रम में भटक सकते है। उनके निष्कर्षों की विश्वसनीयता संदिग्ध ही रहेगी। फिर भी सावधानी यह रखना होगा कि इसका प्रयोग सतर्कता, जागरूकता, निष्पक्ष तटस्थता और आत्म विश्वास से करने पर ही उद्देश्य प्राप्ति संभव है। अन्यथा असफलता व नैराष्य का सामना करना पड़ सकता है। सच तो यह है कि किसी भी विधि की उपयुक्तता प्राय: प्रयोक्ता की योग्यता और क्षमता पर निर्भर है। कार्ल पियर्सन ने ठीक ही लिखा है 'सत्य को पाने के लिये कोई संक्षिप्त मार्ग नहीं हैं, संसार के ज्ञान को पाने का कोई मार्ग नहीं है। सिवाय उसके कि जो वैज्ञानिक विधि के द्वार में से होकर गुजरता हो।'

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. यंग पी.बी. : साइंटिफिक सोशल सर्वे एण्ड रिसर्च : प्रेंटिस हॉल ऑफ इण्डिया प्रा.लि. नईदिल्ली.
2. जैन डॉ.बी.एम. : शोध प्रविधि एवं क्षेत्रीय तकनीक : रिसर्च पब्लिकेशन्स जयपुर
3. महाजन व महाजन : सामाजिक अनुसंधान की पद्धतियाँ : विवेक प्रकाशन दिल्ली
4. मुकर्जी रवीन्द्रनाथ : सामाजिक शोध व सांख्यिकी : विवेक प्रकाशन दिल्ली
5. खत्री हरीशकुमार : शोध प्रविधि : कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल.
6. महाजन व महाजन : सामाजिक अनुसंधान का प्रणाली विज्ञान : विवेक प्रकाशन दिल्ली

गांधीवादी दर्शन के परिपेक्ष्य में भारतीय प्रजातंत्र

डॉ. रजनी दुबे *

शोध सारांश – भारत को विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश कहलाने का गौरव प्राप्त है, किन्तु भारतीय लोकतंत्र की वर्तमान दशा किसी से छिपी नहीं है। गांधीजी और उनके विचार भारत के लिये सदैव प्रासंगिक रहेगें।

प्रस्तावना – महात्मा गांधी का लोकतंत्र राज्य विहीन लोकतंत्र है। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में गांधीजी ने राजनैतिक क्षेत्र में सन्त तथा धार्मिक क्षेत्र में राजनीतिज्ञ की भूमिका का निर्वहन किया है। उनका उद्देश्य राजनीति को धार्मिक एवं आध्यात्मिक बनाना था। गांधीजी के अनुसार मनुष्य का सबसे बड़ा लक्ष्य अपनी आत्मा का विश्वास करना है। यह तब तक नहीं हो सकता जब तक कि व्यक्ति अपने आपको समूचे मानव समाज के साथ अभिन्न न समझे और समस्त व्यक्तियों के हित का ध्यान रखे। गांधीजी वर्तमान राज्य को समाप्त कर उसके स्थान पर राज्य विहीन लोकतंत्र को स्थापित करना चाहते थे। ऐसे राज्य में व्यक्ति सामाजिक जीवन का अपनी इच्छाओं से नियमन करते हैं। गांधीवादी आर्दश अराजकता, लोकतंत्रीय समाज है। इस समाज (लोकतंत्र) का आधार विकेन्द्रीकरण है। गांधीजी की लोकतंत्र की कल्पना थी कि समाज के सभी व्यक्ति अनिवार्य रूप से शारीरिक श्रम करेगें, आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति नहीं रखेगें और इस प्रकार के लोकतंत्र में किसी प्रकार का शोषण नहीं होगा। उनका यह लोकतंत्र सत्य, अहिंसा और न्याय के सिद्धांतों पर आधारित था, जिससे एक आर्दश समाज की स्थापना होगी।

गांधी प्रशासन की बुनियाद 'लोक' में देखते थे और मानते थे कि जब तक सत्ता और सरकार में जनता के निचले तबके की भागीदारी नहीं होगी तब तक स्वराज नहीं आ सकता। स्वराज के सवाल पर गांधीजी ने लिखा है, 'कुछ लोग कहते है कि स्वराज ज्यादा संख्या वाले समाज का यानि हिन्दुओं का होगा। अगर यह सही सिद्ध होता है तो मैं उसे स्वराज मानने से इनकार कर दूंगा और अपनी सारी शक्ति लगाकर विरोध करूंगा। मेरे लिये हिंदू स्वराज का अर्थ सब लोगों का राज्य, न्याय का राज्य है।' कहने का आशय है कि वह जितना किसी राजा का होगा, उतना ही किसान का, जितना किसी जमींदार–धनवान का होगा, उतना ही भूमिहीन खेतिहर का। उसे जाति पाति धर्म अथवा दर्जे के भेदभाव के लिये कोई स्थान नहीं होगा। गांधी आगे बताते हैं स्वराज का अर्थ है सरकारी नियंत्रण से मुक्त होने के लिये लगातार प्रयत्न करना, चाहे वह नियंत्रण विदेशी सरकार का हो या स्वदेशी सरकार का। गांधी के पास स्त्रियों, अल्पसंख्यकों, दलितों और वंचितों के हर तबके के लिये एक सम्पूर्ण दृष्टि थी और स्पष्ट समाधान भी। संघर्षो की पाठशाला में उनके द्वारा ईजाद किये गये असहयोग आन्दोलन और अहिंसा को व्यापकता में देखे तो वह सिर्फ अंग्रेजों से मुक्ति का रास्ता भर नहीं था, बल्कि उसमें एक जीवन दर्शन और भविष्य के भारत की तैयारी का मूलाधार भी था। उस मूलाधार में प्रयोग का हठ है, पीछे हटने की विनम्रता है, धर्मनिरपेक्षता का स्तम्भ है और सत्य का साया है।

भारत के सामाजिक जीवन में गांधीजी के प्रवेश के बाद जो परिवर्तन आया वह निश्चित रूप से क्रांतिकारी था। वह ऐसी सामाजिक व्यवस्था चाहते थे जिसमें सभी के लिये सर्वाधिक भलाई की व्यवस्था हो, गांधी एक ऐसे समाज का निर्माण चाहते थे जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को बराबरी का दर्जा प्राप्त हो, जिसमें आर्थिक प्रगति और सामाजिक न्याय साथ–साथ चल सके। सामाजिक समानता की स्थापना के लिये गांधीजी ने कुछ खास मुद्दों को लेकर रचनात्मक कार्य आयोजित किये थे इनमें से हरिजनों एवं जनजातियों का सामाजिक उद्धार, अस्पृश्यता के खिलाफ और नारी स्वतंत्रता के समर्थन में संघर्ष, विदेशी कपड़ो एवं शराब का बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा, खादी तथा हिन्दु–मुस्लिम एकता को बढ़ावा देना आदि शामिल थे। गांधीजी के इन रचनात्मक कार्यक्रमों से एक बात स्पष्ट है कि वे विदेशी सत्ता से संघर्ष के साथ–साथ भारतीय समाज में व्याप्त अनेक बुराइयों का भी उन्मूलन करना चाहते थे।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी महिलाओं की मुक्ति के अधिक पक्षधर थे। यह वह देश है जहां करोड़ों लोग अर्धनारीश्वर की पूजा करते हैं और जहां आदि पुरूष मनु ने अपने समय में घोषणा की थी कि जहां नारी का सम्मान होता है वहां देवता प्रसन्न रहते हैं। उसी देश में भारतीय महिलायें आज भी अधिकतर पिछड़ी हुई हैं, जिनकी आवाज संसद या विधानमण्डलों में मुश्किल से ही सुनाई देती है। गांधीजी शिक्षा के माध्यम से महिलाओं की मुक्ति में विश्वास रखते थे और उन्होंने भारतीय समाज के कायाकल्प की दिशा में चलाई गई राजनीतिक, सामाजिक अथवा विकास संबन्धी गतिविधियों में महिलाओं के प्रति कोई भेदभाव भी नहीं रखा। उन्होंने एक बार कहा था कि ' महिलाओं की शिक्षा प्रणाली बिगलित है।' यंग इण्डिया में 23 मई 1929 को लिखे गांधीजी के एक लेख से पता चलता है कि उन्हें निरक्षरता, स्कूल सुविधाओं का अभाव, भूस्वामियों के शोषण का शिकार होने और ऐसी ही अन्य सामाजिक, आर्थिक अक्षमताओं की कितनी जानकारी थी, जिनका सामना ग्रामीण महिलाओं को करना पड़ता है। उन्होने लिखा था, 'जरूरी यह है कि शिक्षा प्रणाली को दुरूस्त किया जाये और उसे व्यापक जनसमुदाय को ध्यान में रखकर तय किया जाये।'

गांधीजी किसी एक क्षेत्र में सीमित नहीं किये जा सकते, इसी कारण मत या सम्प्रदाय विशेष के उद्भावक के रूप में उनका कोई परिचय नहीं दिया जा सकता। वे एक साथ समग्र जीवन का स्पर्श करते हैं। अत: जीवन के एक क्षेत्र की विषमता दूर करने के लिये दूसरे क्षेत्र के नियमों का उपयोग उनके लिये सहज और स्वभाविक हो जाता है। धर्म के सिद्धांतों की परीक्षा वे

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत

राजनीति में करते हैं, राजनीति के नियमों की दर्शन में, दर्शन की मान्यताओं की समाज में और सामाजिक आचार की साहित्य में। इस प्रकार जीवन के हर क्षेत्र की विषमता के साथ उनकी विद्रोही स्थिति है।

गांधीजी की अधिकांश शक्तियां और साधन देश को विदेशी दासता से मुक्त करने में लगे रहे, परन्तु उनकी दूरदर्शिनी दृष्टि भारतीय जीवन में व्याप्त विषमता की ओर भी रही। समाज, आचार, धर्म, भाषा, शिक्षा, साहित्य आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में उनका मौलिक योगदान है। यदि राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र भारत में गांधीजी का जन्म होता तो उनके सार्वभौम व्यक्तित्व द्धारा देश का जीवन कल्प अनिवार्य था। सत्य, अहिंसा और प्रेम के त्रिगुणात्मक तत्व ही जीवन रचना करते हैं, उनके अभाव में ध्वंस का अंधकार विश्व जीवन को निगल जायेगा, इस मानव नियति का साक्षात्कार गांधीजी ने चिन्तन के असीम विस्तार में ही नहीं अनुभूति की अतल गहराई में भी किया और अपने कर्म में उसे साकारता दी।

गांधीजी सत्ता के विकेन्द्रीकरण के प्रबल समर्थक थे। शासन के कार्यो और अधिकारों का बंटवारा केन्द्र से राज्य, राज्य से जिला, जिला से क्रमश: तहसील, पंचायत स्तर तक होना चाहिये। जो ग्राम स्वराज्य का आधारभूत स्तम्भ होगा, वह शक्ति का भी अर्थात वह आधारभूत स्तम्भ होगा। गांधीजी के लोकतंत्र में उन्होंने कल्पना की थी कि पूंजीवादी अपने आपको जमीन, सम्पत्ति, कारखानों आदि का स्वामी न समझकर, इन्हें समाज की धरोहर समझकर उनका संचालन, अपने लाभ के लिये नहीं बल्कि समाज के लाभ हेतु करें। वर्तमान समय में विभिन्न देशों में आर्थिक विषमता मिटाने के लिये उत्पादन के साधन पूंजीपतियों से छीनकर उन्हें राज्य के अधीन संचालित किया जाता है। गांधीवादी विचारधारा इस संदर्भ में एक नई दिशा प्रदान करती है। समाज में आर्थिक असमानता तथा शोषण की समाप्ति के लिये संरक्षण या न्याय सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। गांधीवादी विचारधारा में राष्ट्रवाद और अन्तर्राष्ट्रीयवाद का अद्भुत समन्वय पाया जाता है। गांधीजी के लोकतंत्र में मनुष्य स्वदेश प्रेम और विश्वबन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत होगा। गांधीजी का लोकतंत्र सत्य, अहिंसा एवं न्याय के सिद्धांतों पर आधारित है।

भारतीय गणतंत्र को मजबूती देने के लिये हमें गांधी की ओर देखना चाहिये। मौजूदा समय की कई समस्याओं का हल गांधी दृष्टि में मौजूद है। हमें गांधी की तरह ही मौलिक विचार चाहिये ताकि देश को दिशा दे सके। मौलिक चिंतन और विचार का अभाव देश की सबसे बड़ी कमजोरी है। देखादेखी बनी नीतियों से भारत का निर्माण कभी नहीं होगा। गांधी विचार किसी एक पक्ष तक ही सीमित नहीं बल्कि उन विचारों में हमें संस्कृति, पर्यावरण और जीवन से जुड़े हर पक्ष का उत्तर मिलता है। इस संदर्भ में गांधी से प्रभावित भारत के पर्यावरणीय आंदोलन को देखने की जरूरत है। यह आन्दोलन 1973 में चिपकों आन्दोलन के साथ शुरू हुआ। गांधी के असर ने ही हिमालय के वृक्षों को बचाया है। तब से महात्मा गांधी पर्यावरणीय आंदोलन के संरक्षक संत की भांति माने जाते रहे हैं। चिपको आन्दोलन से नर्मदा बचाओ आन्दोलन तक पर्यावरणीय आन्दोलन पर सर्वाधिक एकमात्र महत्वपूर्ण प्रभाव गांधी के जीवन और व्यवहार का है। गांधी की दृष्टि में विकास की जो परिभाषा है वह समावेशी, टिकाऊ और हितकारी है।

गांवों और गरीबों के विकास के लिये गांधीजी ने जो स्वप्न देखा था वह आज भी प्रासंगिक हैं। उन्होंने स्वाभिमानी और स्वावलम्बी भारत के लिये जो सपने बुने थे, वह हमेशा मार्ग दर्शक की तरह दिखाई देते हैं। गांधी प्रत्येक व्यक्ति से लेकर देश तक आत्मानुशासन अर्थात स्वानुशासन की बात करते थे, उनका स्वप्न था कि देश की राजनीतिक व्यवस्था में सुराज और स्वराज्य का स्थान हो और जो बिना स्वानुशासन के नहीं आ सकता। स्वप्न, आत्मानुशासन, स्वानुशासन और फिर स्वराज..... यह प्रक्रिया है विकास की। गाँधीजी के दर्शन का मूल यही है कि विकास बाहर से नहीं भीतर से आना है। हम सुधरेंगे, जग सुधरेगा।

गांधीजी ने कहा था 'मैं संत के वेश में राजनेता नहीं हूं, लेकिन चुंकि सत्य सर्वोच्च बुध्दिमता है, इसलिये कभी –कभी मेरे कार्य किसी शीर्षस्थ राजनेता के से कार्य प्रतीत होते हैं, मैं समझता हूं कि सत्य और अहिंसा की नीति के अलावा मेरी कोई और नीति नहीं है। मैं अपने देश या धर्म तक के उद्धार के लिये सत्य और अहिंसा की बलि नहीं दूंगा। वैसे इनकी बलि देकर देश या धर्म का उद्धार किया भी नहीं जा सकता। यदि हम धर्म, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि से 'मैं' और 'मेरा' निकाल सके तो हम सीधे ही स्वतंत्र हो जायेगे और पृथ्वी पर स्वर्ग उतार सकेगें।'

हमारे देश में भले ही महात्मा गांधी को उनकी जयन्ती और पुण्यतिथि पर रस्मी श्रद्धांजलियों तक सीमित कर दिया गया है लेकिन यह भी हकीकत है कि गांधी पूरी दुनिया में शांति और अहिंसा के प्रतीक बन गये हैं। संसार के हर हिस्से में उनके दिखाये रास्ते के प्रति नई जिज्ञासा और आकर्षण बढ़ रहा है और सत्याग्रह आज भी कई आन्दोलनों–अभियानों का अस्त्र बना हुआ है।

डॉ. राधाकृष्णन का कथन है कि – 'गांधीजी को सदैव एक नैतिक और आध्यात्मिक क्रांति के मसीहा के रूप में याद किया जाता रहेगा क्योंकि उनके बिना अशान्त विश्व को शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।'

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. रचना मई जून 2003 पृष्ठ 30
2. अहा जिन्दगी अक्टूबर 2003 पृष्ठ 56
3. ए जर्नल ऑफ एशिया फॉर डेमोक्रेसी एण्ड डवलपमेंट पृष्ठ 365
4. समाज कल्याण अक्टूबर 2010 पृष्ठ 38
5. रचना वर्ष 1 अंक 2 पृष्ठ 5
6. वही पृष्ठ 5
7. रचना मई जून 2003 पृष्ठ 31
8. नवदुनिया दिनांक 26 जनवरी 2014 पृष्ठ 1
9. अहा जिन्दगी अक्टूबर 2013 पृष्ठ 53
10. Dr. S. Radha Krishnan : Mahatma Gandhi- 100 years P 1.

****

भारतीय शिक्षा व महिलाओं की स्थिति

डॉ. सिंधु लाहोरिया *

प्रस्तावना – शिक्षा समाज की आधारशिला है। शिक्षा ही योग्य नागरिकों का निर्माण करती है जिनके द्वारा समाज अथवा राष्ट्र का उत्थान और सुरक्षा हो सकती है। उपनिषद् में कहा गया है कि विद्या वह है, जिसके द्वारा अमृत की प्राप्ति होती है। प्लेटों के अनुसार – ' शिक्षा बालक के शरीर और आत्मा के सभी सौन्दर्य और पूर्णता का विकास करती है जिसके वह योग्य है '। अरस्तु के अनुसार – 'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण होता है।'

स्वामी विवेकानंद के अनुसार – 'मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है।' उपर्युक्त समस्त परिभाषाओं में शिक्षा से जो कुछ हम प्राप्त करना चाहते है अर्थात् उसके उद्देश्य की ओर इंगित किया गया है। मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना उसे चरित्रवान एवं सुयोग्य नागरिक बनाना शिक्षा के मुख्य उद्देश्य हैं।

भारतीय समाज महिला व पुरूष के समान व्यक्तित्व समान अधिकार और पुरूष से पृथक महिला के जीवन, व्यक्तित्व, स्वतंत्रता और सत्ता को स्वीकार नहीं करता वरन् इस बात पर बल देता है कि जीवन के प्रत्येक चरण और स्थिति में उसे पुरूष की सत्ता को स्वीकार करना तथा पुरूष के अधीन रहते हुए अपना जीवन व्यतीत करना है। पुरूषवाद पुरूष की श्रेष्ठता के पूर्वाग्रह और सामन्ती मानसिकता और महिलाओं को हीन समझने वाले सामन्ती संस्कार पर आधारित है। पुरूषवाद ने अपने उग्र रूप में जमीन, मकान और पशु धन की तरह स्त्री को भी अपनी संपत्ति माना तथा परिवार की सीमा में तथा उसके बाहर उस पर सभी प्रकार के अत्याचार किए तथा उसे मात्र उपभोग योग्य वस्तु माना। पुरूषवाद शालीनता का आवरण ओढे हुए परिष्कृत रूप में भी सामने आया। इस रूप में पुरूषवाद ने पुरूष को सत्ता और शक्ति का प्रतीक मानते हुए नारी को दया, करूणा, ममता और माधुर्य की मूर्ति बताया, जिसका एकमात्र धर्म है पतिव्रता। पतिव्रता के नाते उसे पति की प्रत्येक आज्ञा का पालन करना है तथा घर की चारदीवारी उसकी लक्ष्मण रेखा है। इसके बदले में उस पर गहनों और कपड़ो का बोझ भी लाद दिया गया, जिससे वह अधीनता में ही अपने जीवन को धन्य समझे। वस्तुत: इससे महिला विकास व शिक्षा अवरूद्ध हुई। परिणामत: महिलाएं समाज में वह स्थान नहीं बना पाई जो स्थान उन्हें बनाना चाहिए था।

शिक्षा प्राप्त करना हर मनुष्य का अधिकार है परंतु महिलाओं के लिये इसका उपयोग सुनिश्चित कम ही हो पाता है वह विविध कारणों से भेदभाव से ग्रस्त हुआ है उन्हें आज तक शिक्षा प्राप्त करने के लिये जितने अवसर मिल रहे है उतने पहले कभी नहीं मिले। सदियाँ पुरानी गलत अन्यायवादी सामाजिक मान्यताओं एवं परम्पराओं ने महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को रोका। परंतु महिलाओं की स्थिति उनके समाज की सभ्यता और प्रतिष्ठा को प्रतिबिंबित करती है। जेक्केलारन केर्बोड ने यूनेस्को द्वारा, प्रकाशित पुस्तक 'द एजुकेशन एंड एडवांस मेन ऑफ वुमेन' लिखा है कि स्त्रियों को सुशिक्षित करने के सारे प्रयत्नों की असफलता अब निश्चित रूप से महिलाओं, मानवता व समाज में अनेक परिवर्तन लाएगी। यह जीवन की एक सतत् आवश्यकता है व मानव समुदाय की प्रगति की निर्धारक है। शिक्षित महिलाएं परिवार, प्रगतिशील समाज, स्वच्छ प्रशासन तथा विकासशील भारत का निर्माण कर सकती है। प्राचीन भारत में भी गार्गी, मदालसा, घोसा आदि विदुषी महिलाओं ने वेदाध्ययन कर महिला शिक्षा को बढ़ावा दिया था।

सूचना और संचार क्रांति के इस दौर में शिक्षा का बहुत महत्व है। महिलायें इस समाज का आधा हिस्सा है। उनकी शिक्षा एवं बेहतरी से ही कहते है कि यदि एक पुरूष को शिक्षित किया जाये, तो केवल एक व्यक्ति को शिक्षित होता है। लेकिन अगर एक महिला को शिक्षित किया जाए, तो पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है। अभिप्राय यह है कि एक महिला के शिक्षित होने से पूरे परिवार का अशिक्षा एक भयंकर समस्या है। वहाँ स्त्रियों की शिक्षा का महत्व और बढ़ जाता है। विशेष करके ग्रामीण क्षेत्र में जहां आज महिलाएँ भी जागरूक नहीं है। हमारे संविधान में स्त्री और पुरूष दोंनों को समानता का अधिकार प्राप्त है। कोई भी व्यक्ति चाहे जिस जाति, वर्ग, लिंग, संप्रदाय का हो उसे शिक्षा पाने का अधिकार है। फिर स्त्रियां इससे क्यों वंचित रहे। गांवों में आज भी पुरूषों को ही शिक्षा प्राप्त करने की प्राथमिकता दी जाती है। स्त्रियों की शिक्षा को अनावश्यक समझा जाता है। इसका कारण है कि वे स्त्री शिक्षा से अनभिज्ञ है। मानव अधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा पत्र में शिक्षा को प्रत्येक मनुष्य के मूल अधिकारों में से एक माना गया है। जब महिला शिक्षा की चर्चा की जाती है, तो स्पष्टत: देखा जा सकता है कि इस संदर्भ में भी वांछित लक्ष्यों को प्राप्त किया जाना शेष है। परंतु यह भी सच है कि स्त्री शिक्षा की आवश्यकता उपयोगिता के प्रति मानव समाज की समझ क्रमश: बढ़ रही है। विश्वभर में स्त्रियों के स्थिति सुधारने के लिए किए गए आंदोलनों में उनकी निम्न स्थिति को बदलने के लिए, शिक्षा को एक महत्वपूर्ण साधन माना गया है।

19 वीं शताब्दी के भारतीय समाज सुधारकों का भी ऐसा ही मत था, परंतु प्रारंभिक काल में महिला शिक्षा का उपयोग, महिला को एक पत्नी व माता के परम्परागत कर्तव्यों के और अधिक कुशलतापूर्वक निर्वाह करने के योग्य बनाना था, न कि सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक विकास प्रक्रिया में उनकी अधिक दक्ष व कुशल भागीदारी हेतू उन्हें सक्षम करना था। धीरे–धीरे स्थिति में परिवर्तन आया तथा विशेष रूप से स्वतंत्रता के पश्चात् स्त्री शिक्षा के महत्व को उसके विस्तृत व विविध आयामों में शामिल है, शिक्षा के प्रयास के माध्यम से महिलाओं की समानता व सशक्तिकरण के अर्थ पूर्ण प्रयासों की संभावना। अत: स्पष्टत: माना जाने लगा कि शिक्षा ही वह उपकरा है, जिससे महिला, समाज में अपनी सशक्त, सामान व उपयोगी भूमिका दर्ज करा सकती है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान द्वारा प्रदत्त समानता के अधिकारों ने राजनीति, अर्थव्यवस्था और समाज के बहुविधि भूमिका

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) राजमाता सिंधिया शासकीय कन्या महाविद्यालय,छिंदवाड़ा (म.प्र.) भारत

निर्वाह करने के लिए महिलाओं का आवाहन करने उनकी स्थिति सुधारने हेतू नए-नए आयाम प्रस्तुत किए। संविधान की धारा 45 में प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के उद्देश्य से, नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा को राज्य का एक नीतिनिर्देशक सिद्धांत घोषित किया गया है - इसमें कहा गया है कि - 'राज्य इस संविधान के कार्यान्वित किये जाने के समय से दस वर्ष के अंदर सब बच्चों के लिए जब तक वे 14 वर्ष आयु पूर्ण नहीं कर लेंगें, नि:शुल्क एंव अनिवार्य, शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेंगें।'

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वर्षो में अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने भी एक ऐसे उपकरण के रूप में शिक्षा की भूमिका पर बल दिया, जो नई समाज व्यवस्था का निर्माण करने के लिए स्त्रियों को सक्षम बना सके। आज महिलाओं के मानवीय अधिकारों तथा समाजों व राष्ट्रो के विकास, दोनों ही संदर्भो में महिला शिक्षा की अनिवार्यता को स्वीकार किया जाने लगा है। यही कारण है कि आज भारत में भी लड़कियों व महिलाओं की शिक्षा प्रमुख नीति विषयक तत्व माना गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (एन.ई.पी. 1986) में न केवल महिलाओं के लिए शैक्षिक अवसरों की समस्या की चर्चा की गयी है बल्कि साथ ही शिक्षा के माध्यम से महिला सशक्तिकरण का भी मुद्दा उठाया गया है। इस हेतू लैंगिक विषमताओं की समाप्ति को भी मुख्य प्राथमिकता देने की इस शिक्षा नीति में चर्चा है। अब 93 वें संविधान संशोधन (2001) के द्वारा शिक्षा को मौलिक अधिकार मान लिया गया है।

गांधी जी ने स्त्री शिक्षा के महत्व को स्वीकारा उन्होंने महसूस किया कि स्त्रियों में अद्भुत नैतिक दृढ़ता एवं सहनशीलता है। उनकी यही विशेषता उन्हें पुरूषों से भी उच्च स्थान प्रदान करती है। उन्होंने इसे स्त्री शक्ति कहा और यह अनुभव किया कि यही शक्ति भारत को गुलामी की जंजीरों से आजाद कराने के लिए किए जा रहे शांति पूर्ण सत्याग्रह आंदोलन में महिलाओं ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया व स्वाधीनता प्राप्ति में पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर योगदान दिया। इस आंदोलन में महिलाओं की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता।

लैंगिक समानता, विकास व महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में शिक्षा की निश्चित व महत्वपूर्ण भूमिका मानी गयी है, परंतु यह कहना भी कठिन है कि केवल शैक्षिक स्तर में सुधार से ही महिला सशक्तिकरण सुनिश्चित होगा, कारण यह है कि लैंगिक विषमता व पक्षपात की वर्तमान स्थिति मुख्यत: अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक कारको व पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना का परिणाम है। अत: केवल शैक्षिक स्तर में वृद्धि के आधार पर इसके समाप्त किए जा सकने का दावा नहीं किया जा सकत, तो भी शिक्षा की उपयोगिता को कम करके नहीं देखा जा सकता। वस्तुत: शिक्षा ही वह मुख्य उपकरण है - जिसका महिलाओं की स्थिति व सशक्तिकरण पर दीर्घकालीन प्रभाव पड़ने की संभावना रहती है। अत: महिलाओं की साक्षरता दर एवं उनके शैक्षिक स्तर के विश्लेषण व विवेचना के आधार पर उनकी स्थिति का आकलन करना संभव है।

सरकार विभिन्न योजनाओं के माध्यम से शिक्षा का स्तर, बढ़ाने का प्रयास कर रही है, विभिन्न योजनाओं के द्वारा महिलाओं और अन्य वर्गो को शिक्षित करने का कार्य किया जा रहा है। महिलाओं की राजनैतिक सहभागिता से भी महिलाओं और समाज की सोच में परिवर्तन हुआ। इसके लिये सरकार द्वारा विभिन्न राजनीतिक संस्थाओं में महिलाओं की सहभागिता सुनिश्चित करने हेतू स्थान आरक्षित किये गये है। मानव अधिकार आयोग ने भी महिलाओं के शोषण को रोकने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त कई स्वायत्तशासी संस्थायें भी नारी चेतना के लिये कार्य कर रही है। यह निर्विवाद सत्य है कि देश बहुमुखी प्रगति के लिए महिला शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हो रही है।

आज महिलाएं 21 वी शताब्दी में प्रवेश कर रही है विभिन्न क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। उपलब्धियों अर्जित कर रही है। हाल के दिनों में आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक स्तर पर पुरूषों के अभेद किलो को भेद रही है बहुत सारे देश ऐसे है ,जो महिलाओं को राष्ट्र प्रमुख के रूप में भी स्वीकार कर चुके है जैसे श्रीलंका में श्रीमति भंडार नायके और चंद्रिका कुमार तुंगा, लाइबेरिया की राष्ट्रपति एलन जॉनसन सरलीफ किसी अफ्रीकी देश की राष्ट्रपति चुनी जाने वाली पहली महिला है। भारत में श्रीमति प्रतिभा पाटिल महिला राष्ट्रपति चुनी गई। श्रीमति इंदिरा गांधी पहली महिला प्रधानमंत्री चुनी गई। पाकिस्तान की दिवंगत श्रीमति बेनजीर भुट्टो पहली प्रधानमंत्री चुनी गई। शेख हसीना, खालिदा जिया तथा इण्डोनेशिया में सुकोर्णो की पुत्री मेधावती ने महत्वपुर्ण पदों को सुशोभित किया इसके अलावा कई क्षेत्रों में महिलाएं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सफलता अर्जित कर रही है जैसे कल्पना चांवला, मेघा पाटकर, इंदिरा नुई, सानिया मिर्जा, मानसी प्रसाद, किरण प्रसाद, मन्नू भंडारी, किरण बेदी आदि इन्होंने विज्ञान, समाज सुधार , उद्योग, व्यवसाय, खेल साहित्य लेखन और प्रशासन के क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित कर अपने नाम के साथ देश का नाम भी रोशन किया है आज महिलाओं ने अपने आपको सिद्ध किया है कि महिलाएं केवल घर पर ही नहीं बल्कि देश की बागडौर भी संभाल सकती है। महिलाएँ किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं है। अत: वृहत्तर राष्ट्रीय आयामों के मद्देनजर स्त्री शिक्षा एवं स्त्री सशक्तिरण वक्त की जरूरत है। हमारा राष्ट्र इस लक्ष्य को अवश्य ही देर-सबेर प्राप्त कर लेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कुरूक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय-भारत सरकार।
2. योजना, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय-भारत सरकार।
3. भारत-2006-सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय-भारत सरकार।
4. समाचार स्त्रोत-मानव संसाधन विकास मंत्रालय-भारत 2002।
5. जनगणना रिपोर्ट, 2001, भारत सरकार।
6. लेख देवेश कुमारण त्रिपाठी-महिला सशक्तिकरण।
7. डॉ. गावा, ओ.पी. -समकालीन राजनैतिक सिद्धांत।
8. डॉ. जैन पुखराज - भारतीय राजनीतिक विचारक।

****

भारत में नारी सशक्तिकरण का यथार्थ तथा महिला आन्दोलनों की भूमिका

डॉ. अनिल कुमार जैन *

शोध सारांश – वर्तमान समय में आन्दोलन शब्द व्यापक अर्थ में प्रचलित हैं। यह राजनीति की देन हैं। नर्मदा बचाओ जैसा व्यापक जनभागीदारी वाला आन्दोलन अथवा अन्ना हजारे का लोकपाल लाओ, देश में नव क्रांति का सूत्रपात्र करने वाला आव्हान, आन्दोलन ही हैं। दूसरी ओर कुलपति हटाओं या मोहल्ले की शराब की दुकान बन्द करने का महिलाओं का घेराव भी आन्दोलन की परिभाषा में आता हैं।

महिला आन्दोलन भी आज ऐसा ही अस्पष्ट शब्द हो गया हैं। महिला सशक्तिकरण सरकारी कार्यक्रम हैं जो दुर्बलवर्ग के उत्थान के लिये चलाये गये कार्यक्रम की सूची में एक हैं। शताब्दियों से समाज नारी को पुरूष ने वस्तु बनाकर अपनी सम्पत्ति की तरह घर की चार दिवारी में बन्द कर रखा हैं। 19 वीं शताब्दी के मध्य में समाज सुधार के भारत में कई आन्दोलन प्रारम्भ हुए। इनमें स्त्री समस्या को भी स्थान मिला। सती प्रथा, विधवा विवाह, बाल विवाह, स्त्री शिक्षा पर्दा प्रथा आदि इनमें महत्वपूर्ण प्रश्न रहे। परन्तु इनको महिला आन्दोलन माना गया हैं। भारतीय नेतृत्व तथा पश्चिम की शिक्षा, ब्रिटिश शासन की भूमिका तथा नवजागरण का भी इस सोच पर प्रभाव था। स्वयं भारतीय समाज भी इस कारण समाज की अपनी बर्बरता का संज्ञान लेने लगा था। ये आन्दोलन मूलत: समाज सुधार के थे, इनकी दृष्टि मूलत: ब्राह्मणवादी थी तदापि सभी को समाज में एक पृथक मुद्दे के रूप में पहली बार देश में पहचान मिली। गांधीजी को महिला उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान के लिए श्रेय दिया जा सकता हैं। उन्होंने स्त्री को पर्दा व घर की चौखट से बाहर आकर पुरूष से कंधा मिलाकर खड़े होने का मनोबल व साहस प्रदान किया। यह नारी सशक्तिकरण का श्री गणेश कहा जा सकता हैं। इसका परिणाम यह हुआ हैं कि नारी को भारत में पुरूष की समकक्षता में बराबरी के सभी संवैधानिक अधिकार प्राप्त हो गये हैं। सामाजिक व आर्थिक समानता व न्यायपूर्ण स्थिति घर की बात हैं जो आज भी अधूरी हैं।

प्रस्तावना – आन्दोलन शब्द के अर्थ का हमारे लोकतन्त्र में आजकल अपूर्व विस्तार हो गया हैं। लोग अपने-अपने प्रयोजन समझ या सुविधा के अनुसार इसका प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार आंदोलन का स्वरूप भी अनिर्वचनीय है, नर्मदा बचाओ आंदोलन जैसा व्यापक जनभागीदारी वाला आंदोलन हो या किसी शराब की दुकान को हटाये जाने के लिए, उस गाँव या मोहल्ले की महिलाओं का अपना विरोध प्रदर्शन हो, सभी एक स्वर में आन्दोलन की संज्ञा पा जाते हैं।[1]

महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में महिला आन्दोलन भी लगभग ऐसा ही अस्पष्ट शब्द हैं। प्रश्न यह उठता हैं कि क्या महिलाओं की भागीदारी वाले किसी भी आन्दोलन को महिला आन्दोलन कहा जा सकता है या महिलाओं के मुद्दे के लिए किये गये संघर्ष को ही महिला आन्दोलन कहा जा सकता हैं ? या केवल महिलाओं द्वारा किये जाने वाले आन्दोलन को महिला आन्दोलन कहना चाहिए। आन्दोलन का मुद्दा कुछ भी हो अगर नेतृत्व महिलाओं द्वारा किया जा रहा है तो क्या इसे महिला आंदोलन कहा जा सकता हैं ? किसी आन्दोलन में भागीदारी का मुद्दा मुख्य हैं, अथवा उसके पीछे निहित विचार या दृष्टि महत्वपूर्ण हैं ? प्रश्नों का उत्तर अपेक्षित हैं। केवल महिलाएँ या केवल पुरूष वर्ग ही आन्दोलन करता हैं या कर सकता हैं। ये कई सवाल है, जो भारत में महिला सशक्तिकरण के मुद्दे तथा महिला आन्दोलनों के यथार्थ के चिन्तन में उठते हैं।[2]

19 वीं शताब्दी अर्थात् भारत के नवजागरण काल में, समाज सुधार के कई आन्दोलन प्रारम्भ हुए, जिनमें सती प्रथा, विधवा विवाह, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, स्त्री शिक्षा, अस्पृश्यता निवारण आदि हैं। ये सभी विशेष महत्व रखते हैं। सच यह भी हैं कि इन सामाजिक सुधारों के लिए नेतृत्व पर पश्चिम का दबाव था साथ ही ब्रिटिश शासकों को इनमें भूमिका भी महत्वपूर्व रही हैं तथा शिक्षित भारतीय जनता स्वयं भी समाज की बर्बरता को महसूस करने लगी थी। अत: इनका महिला सशक्तिकरण से कोई संबंध नहीं हैं। याद रहे कि इन आन्दोलनों की दृष्टि सिर्फ सुधारवादी थी। साथ ही नारी के प्रति इनका दृष्टिकोण परम्परावादी ही था । स्त्री के प्रति एक मानव अर्थात् नारी व्यक्तित्व की गरिमा से उनका सुधारवाद प्रेरित नहीं था। इनकी दृष्टि में स्त्री इसलिये शिक्षित हो, क्योंकि वह समाज को शिक्षित कर सकती है। उसके प्रति बर्बरता नहीं होना चाहिए, क्योंकि इससे हमारा देश असभ्य कहलाएगा। इसलिये नारी को व्यक्ति के रूप में नहीं, एक पत्नी या माँ या बहन के रूप में उसकी भूमिका का आंकलन किया जाता रहा हैं। तात्पर्य यह कि हमारे यहाँ समाज निमार्ण में, उसकी उपयोगिता की दृष्टि से ही नारी का उत्थान को जरूरी माना गया हैं। यह एक तरह से ब्राह्मणवादी दृष्टि हैं जो स्त्री को सीता, सावित्री की छवि को ही बढ़ावा देती थी तथा सिर्फ समाज की प्रगति व व्यवस्था की दृष्टि से स्त्री-उत्थान चाहती थी। स्त्री शिक्षा को उसका जन्म सिद्ध अधिकार के रूप में महत्व न देकर आने वाली पीढ़ी के संस्कार के लिये, उपयोगी होने से स्त्री शिक्षा का समर्थन किया जाता था। निष्कर्ष यह कि स्त्री को केवल स्त्री होने के नाते, महत स्वीकृति केवल सैद्धान्तिक अर्थ में रही हैं नारी पूजा देवी रूप में सिर्फ सम्पत्ति लक्ष्मी ज्ञान सरस्वती अथवा शक्ति दूर्गा की आराधना के प्रतीक रूप में भले प्रतिष्ठित रही हो, समाज के मूर्त व्यवहारिक संबंधों में, ऐसी स्वीकृति के सबूत दुर्लभ रहे हैं। विडम्बना यह है कि आज तक दुर्लभ है।[3] यहाँ यह उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा कि भारत में दलित उत्थान की समस्या को भी सर्वप्रथम सुधारवादी दृष्टिकोण से ही देखा गया था। दलितों के प्रति सदियों से हो रहे अन्याय के अमानवीय रूप को

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

निर्मम होकर चुनौति देते हुए जब डॉ भीमराव अम्बेडकर ने हिन्दू समाज को आड़े हाथों लिया तब जाकर स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रीय एकता की दुहाई देकर महात्मा गांधी ने भी अस्पृष्यता निवारण, मंदिर प्रवेश तथा 'हरिजन' संज्ञा से दलितों को संबोधनों के रूप में लालीपाप देकर हिन्दू समाज से जोड़े रखने का प्रयत्न किया । दलितों के लिए मानवाधिकार तथा विद्यमान सामाजिक-आर्थिक अन्याय व शोषण के विरूद्ध बाबा साहब ने तब आर पार की लड़ाई का शंखनाद किया तभी इस वर्ग को सामाजिक न्याय के रूप में संविधान में सभी मानवीय अधिकार प्राप्त हुए हैं। देश में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक न्याय में सदियो से दुर्बल पक्ष होने के कारण, आरक्षण का वह शस्त्र भी प्राप्त हुआ जिससे भारत की राजनीति के स्वरूप को बदल कर रख दिया हैं। काश महिलाओं को ऐसा आन्दोलन और बाबा साहब जैसा नेता मिल जाता तो भारत की नारियों के लिए हमें सशक्तिकरण प्रयासों की आवश्यकता ही नहीं होती। पुरूष प्रधान समाज में नारी अतीत से लगाकर आज तक अपने लिये लड़ते दिखाई नहीं देती हैं। उसे समाज के लिये सिर्फ त्याग, बलिदान और समर्पण का पाठ, पढ़ाया गया हैं।

19 वीं सदी में जो सुधारवादी कार्य हुए उनका सुखद परिणाम यह हुआ कि महिलाओं के लिये घर से बाहर निकलने के दरवाजे खुल गये। गांधी के आव्हान पर भारत की सभी वर्ग की महिलाओं ने बढ़-चढ़कर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया। गांधीवादी अहिंसक आन्दोलन में महिला आन्दोलन का बीजारोपण हो गया। आजादी की लड़ाई का समय भारत में नवजागरण काल था-शिक्षा के प्रकाश ने, सारे देश को जगा दिया था। मद्रास में रामास्वामी पेरियार ने ब्राह्मणवादी परम्पराओं के विरूद्ध स्त्री के लिये अनिवार्य मंगलसूत्र को स्त्री दासता का सूचक बताते हुए इसका बहिष्कार किया। ताराबाई शिन्दे, पंडित रमाबाई, काशीबाई कानढ़ेकर तथा रखमा बाई आदि अनेक उल्लेखनीय नाम रहे हैं, जिन्होंने स्त्री अस्मिता के लिये व्यक्तिगत रूप से भी जो प्रयास किये वे किसी आन्दोलन या संस्थागत प्रयासों के, विनम्र निवेदन, ज्ञापन, प्रदर्शन आदि से अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। महाराष्ट्र की रखमाबाई ने तो पति से बौद्धिक मेल नहीं खाने के आधार पर, उस समय की परिस्थिति में अपने विवाह को वैध मानने से न्यायालय के आदेश के बाद भी इन्कार कर दिया। इसी प्रकार बंगाल में लड़कियों ने तो क्रान्तिकारी आन्दोलन में भी सहयोग किया। ये महिला आन्दोलन की दशा व दिशा की ओर संकेत करने वाले, मार्गदर्शक प्रयास रहे हैं।[4]

महिलाओं के अपने ही संगठन बनाने की शुरूआत बीसवीं सदी के प्रथम चरण में हुई। जब सरला देवी चौधरी ने स्त्री मण्डलों की स्थापना की। सन् 1926 में अखिल भारतीय महिला परिवार की स्थापना उच्च वर्ग की महिलाओं द्वारा की गई। धीरे-धीरे मध्यम और निम्न वर्ग की महिलाऐं भी अपनी समस्याओं के लिये संगठन के जुड़ने लगी। इस तरह देश में महिलाओं की संस्थाओं की स्थापना का कार्य बढ़ता गया। सन् 1942 में बंगाल में जापानी हमले से बचने के लिए जो संगठन बना था, वह नारी सेवा संघ में परिवर्तित होकर, स्त्रीवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि के रूप में सामने गया। आजादी की लड़ाई में महिलाओं की व्यक्तिगत भागीदारी का प्रसंग गौरवपूर्ण हैं। इसके समान्तर इस अवधि में राष्ट्रीय स्तर पर भी कई महिला संगठन जैसे 'ऑल इण्डिया वूमेन्स कान्फ्रेन्स', 'नेशनल फेडरेशन ऑफ इण्डिया वूमेन और वूमेन्स इण्डिया' ऐसोसिएशन इत्यादि संगठन सामने आये। इनकों नारीवादी आन्दोलन का दूसरा चरण कहा जा सकता हैं। इन संगठनों ने महिलाओं की शिक्षा मताधिकार, पर्दा प्रथा और व्यक्तिगत अधिकारों आदि से संबंधित कई प्रश्न अपने ऐजन्डे में सम्मलित किये।[5]

महिला आन्दोलन का तीसरा चरण यथार्थ में आजादी प्राप्त होने के बाद ही प्रारम्भ होता हैं। इसकी उपलब्धियाँ आजादी पूर्व के नारी के प्रति सुधारवादी कार्यक्रम की तुलना में भी यद्यपि न्यून रही हैं। इसका कारण संभवत: यह हैं कि भारत में स्त्रियां सोचने लगी की उनकी समस्याओं का समाधान अब स्वत: नेतृत्व करेगा। 'ऑल इण्डिया वूमेन्स कान्फ्रेन्स' जैसी संस्था ने राजनीतिक मुद्दों पर ध्यान न देकर सामाजिक कल्याण के परम्परागत आदर्श की दिशा में कार्य प्रारम्भ कर दिया। अपवाद स्वरूप देश में ही आन्ध्रप्रदेश की महिलाओं का, राजनैतिक तेलंगाना आन्दोलन के संदर्भ में गठित आन्ध्र महिला सभा, आन्ध्र युवती मंडल और महिला संगम का उल्लेख किया जा सकता हैं, जिसमें वहां की महिलाओं की अपूर्व संगठन क्षमता तथा प्रभावी नेतृत्व का परिचय मिलता हैं, इन्होंने सत्ता व शक्ति का दृढ़ता से सामना किया। इन संगठनों ने नारी अस्मिता के प्रति मुख्य रूप में सजगता का परिचय देते हुए भी लिंग असमानता, घरेलु हिंसा, बाल विवाह, बहू विवाह, भ्रूण हत्या तथा पारिवारिक परम्परागत बंधनों के विरूद्ध लड़ाईयाँ लड़ी।[6]

महिला सशक्तिकरण की दिशा में महिला आन्दोलनों की भूमिका का यथार्थ, तभी स्पष्ट हो सकेगा जबकि हम इस प्रश्न को सत्ता तथा समाज द्वारा महिलाओं के प्रति समाज सुधार की अवधारणा के अंतर्गत सहानुभूति की दृष्टि से किये गये प्रयासों से पृथक करके देखें। महिला सशक्तिकरण वस्तुत: ऐसी प्रक्रिया हैं, जिसमें महिलाओं को पुरूषों के समकक्ष खड़ा करना हैं। उनके प्रति होने वाले सभी प्रकार के भेदभाव समाप्त कर उन्हें आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से सक्षम बनाया जाना हैं। नारी स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर बने इस दिशा में किये गये सभी प्रयास नारी सशक्तिकरण के प्रयास होते हैं। दूसरे शब्दों में नारी सशक्तिकरण का तात्पर्य सामाजिक सुविधाओं की उपलब्धता, राजनीतिक-आर्थिक नीति निर्धारण में भागीदारी, समान कार्य के लिये समान वेतन के तहत् सुरक्षा एवं प्रजनन अधिकारों की उपलब्धता से हैं। इससे जुड़ी नारी सशक्तिकरण की प्रक्रिया चौथी पंचवर्षीय योजना के बाद स्पष्ट हुई हैं। इस योजना में महिलाओं के विकास मुद्दे के स्थान पर महिला सशक्तिकरण का प्रादुर्भाव हुआ ।[7]

आजादी के बाद लम्बे समय तक स्त्रियों की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया। इसका कारण पितृ सत्ता समाज हैं। महिलाओं के सामने अब सिर्फ राजनीति में समान अवसर तथा दहेज हत्या तथा बलात्कार ये दो ही मुख्य समस्याऐं थी। जिनके लिये नारी ने संघर्ष का शंखनाद किया। इसकें लिये सामने आये संगठनों ने नये रूप में शुरूआत की। ये संगठन न तो सरकारी थे, न किसी राजनीतिक संगठन से जुड़े थे न किसी दान दाता ऐजेन्सी के खर्च से चलते थे। इन्होंने विशेष रूप में अपने संगठन में सीढ़ीदार नेतृत्व की जगह सामूहिक नेतृत्व को स्वीकार किया। स्त्री मुक्ति संगठन, सबला संघ, सहेली, स्त्री जागृति, बलात्कार-विरोधी मंच, नारी केन्द्र, नारी दक्षता मंच, स्त्री षक्ति संगठन, पुरोगामी महिला संगठन, स्त्री आधार केन्द्र आदि कई संगठन दिल्ली, मुम्बई, हैदराबाद, पूना, कलकत्ता, अहमदाबाद आदि शहरों में बनाये गये। सन् 1970 के बाद बने इस संगठनों द्वारा किये गये संघर्ष को, हम महिला आन्दोलन के रूप में पहचान करें तो यह स्पष्ट होता हैं कि इन्होंने सर्वप्रथम महिलाओं को संगठित करने के उद्देश्य से कार्य किया तथा संगठन और आन्दोलन दोनों को महिला नेतृत्व दिया। सबसे महत्वपूर्ण अंतर यह हैं कि स्त्री को वस्तु और पुरूष को सम्पत्ति माने जाने का विरोध करते हुए उसकी प्रतिष्ठा एक व्यक्ति के रूप में की हैं। स्त्री को दुर्बल बनाने वाली मानसिकता यौन सुचिता को स्त्री की सामाजिक स्थिति के लिए आवश्यक मानने की

धारणा का विरोध किया। इस प्रकार इन महिला आन्दोलनों ने समान में एक नये सोच को विकसित किया।[8]

वर्तमान में बहुत सारे संगठन जो छोटे-छोटे मुद्दों को लेकर स्वत: स्फूर्त ढ़ंग से बने हैं इनमें वैचारिक दृढ़ता से दूर तक जाने का माद्दा कम मिलता हैं। शुरूआती दौर में बलात्कार और दहेज हत्या ही मुख्य रहे, तब भी अन्य मुद्दे भी बढ़ते घटते रहे। सफलता असफलता की बात करें तो बलात्कार आज भी निर्भया के नाम से नारी सशक्तिकारण की दिशा में कानून, सत्ता और समाज के लिये ज्वलन्त प्रश्न बना हुआ हैं।

महिला आन्दोलन को संगठित रूप देने के लिए कुछ महिला संगठनों ने प्रयास किये। सन् 1980 में बम्बई में पहला महिला राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। इसके बाद दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवा, छठा, सातवां सम्मेलन क्रमश: सन् 1985 में बम्बई में , सन् 1988 में पटना में, सन् 1990 में कालीकट, सन् 1995 में तिरूपति में, सन् 1997 में राँची में, सन् 2006 में कलकत्ता में हुए। इनमें महिला प्रतिनिधियों और देश के महिला संगठनों की उल्लेखनीय भागीदारी रही। जिससे पूरे देश से इनमें महिला सशक्तिकरण के लिये नये नये विविध विषय जुड़ते चले गये। राजनीतिक दलों की महिलाएँ भी व्यक्तिगत रूप से इनमें शामिल होती रही। क्षेत्रीय संगठनों के एक साथ होने से इसके माध्यम से पूरे देश की सभी वर्गो की महिलाओं की एक जैसी पीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति का यह महत्वपूर्ण प्रसंग रहा।[9]

राष्ट्रीय महिला संगठन के साथ प्रदेशों के स्वायत्त महिला संगठन भी सामने आये, तभी राजनीतिक दलों ने भी अपने महिला संगठन बना लिए। इन्होंने महिलाओं को अपने-अपने क्षेत्रों में इकट्ठा कर उनको अपना वोट बैंक बनाकर छोड़ दिया। महिला आन्दोलन की चुनौतियों आज भी थमी नहीं। समाज की बर्बरता वर्तमान में नये-नये रूप लेकर नित्य प्रति प्रकट हो रही हैं। इससे यद्यपि सारा समाज भी क्षुब्ध हैं। कहा जाने लगा कि महिला मुक्ति के शोर के समान्तर स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों में वृद्धि हुई हैं।

महिला आन्दोलन मूलत: यथास्थितिवाद पर सीधे आक्रमण करता हैं। जिसे स्वीकार ने में समाज की अपनी चूले हिलाती हुई प्रतीत होती हैं। एक तरह से यह अनूठा आंदोलन हैं। जिसमें प्रतिपक्ष में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में पुरूष वर्ग ही है, जिसे समाज नाम दिया जाता हैं। महिला अपनी पहचान अपने व्यक्तित्व का परिचय देना चाहती हैं। परन्तु साथ ही वह श्रीमती पारस जैन के स्थान पर श्रीमती कमलाबाई कांठेड़ के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करने लिए छटपटा रही हैं, परन्तु साथ ही घर और दुनिया में स्त्री और पुरूष पति और पत्नी के सृष्टि के सनातन सहयोगी रूप में भी अभिन्न हैं। यही नारी आन्दोलन का यथार्थ हैं। दूसरी तरफ पुरूष भी सामान्य रूप में उपभोग का साधन व वस्तु या सम्पत्ति के रूप में स्त्री पर परम्परा से पाये अपने स्वामित्व को छोड़ना नहीं चाहता। सेक्स भी एक समस्या ही हैं। स्त्री में परमात्मा प्रदत्त जो नैसर्गिक सौन्दर्य होता हैं, उसका चुम्बकीय आकर्षण स्त्री को मूल्यवान बना देता हैं। अपनी इस शक्ति को नारी पहचानती भी हैं। इसीलिये इस दिशा में सतर्कतापूर्वक वह इसका पूरा लाभ उठाने के लिये सचेष्ट भी हैं। यह उसकी बड़ी दुर्बलता हैं।

नारी समस्या के समाधान और सशक्तिकरण का एक मात्र उपाय स्त्री का आर्थिक स्वावलम्बी होना हैं। वर्तमान के भौतिकवादी युग में, अर्थ ही सबसे महत्वपूर्ण शक्ति व साधन हैं। जिसके आगे राजनीतिक, शारीरिक, सामाजिक तथा धार्मिक शक्तियाँ नतमस्तक होती हैं। नारी आन्दोलन तथा स्वयं नारी के पास, जब तक अर्थबल नहीं होगा तथा उसमें पैरों पर खड़ा होने का सामर्थ्य नहीं होगा। संविधान भी उसकी मदद नहीं कर सकेगा।

वस्तुत: भारत की आम नारी बेजुबान है। जो पिया से भी नहीं कहती हैं कि मेरी देह दुखती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कश्तकार रेखा : स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ - राजकमल प्रकाशन दिल्ली (2006) पृष्ठ 98)
2. कश्तकार रेखा : स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ - राजकमल प्रकाशन दिल्ली (2006) पृष्ठ 98)
3. कुमार कृष्ण: विचार का डर - राजकमल प्रकाशन दिल्ली 1996, पृष्ठ 30
4. त्रिपाठी कुसुस : सब स्त्रियों ने इतिहास रचा - नव जागरण प्रकाशन, नागपुर 2004, पृष्ठ 19
5. हसनैन नदीम : समकालीन भारतीय समाज, समाजशास्त्री परिदृष्य : भारत बुक सेंटर, 2004 लखनऊ पृष्ठ 440
6. सिंह एम.एन. आधुनिक समाज शास्त्रिय : विवेक प्रकाशन (2008) दिल्ली पृष्ठ 120
7. शर्मा प्रज्ञा : महिलाओं के प्रति अपराध : कालेज बुक डिपो (2006) पृष्ठ 102-103.
8. अनामिका : कहती हैं औरते : इतिहास बोध प्रकाशन (2007) इलाहाबाद पृष्ठ 20
9. हम सबला: जागीरी : दिल्ली जुलाई दिस. 2006.

****

लोकसभा-अध्यक्ष के गौरवशाली पद का महत्व - भारतीय संसदीय शासन प्रणाली के संदर्भ में

डॉ. सीताराम गोले *

प्रस्तावना – भारत में लोकसभा अध्यक्ष का पद प्रतिष्ठा, गौरव एवं गरिमा का पद है। अध्यक्ष का पद संसदीय शासन प्रणाली में बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विश्व में जहां पर भी संसदीय पद्धति की सरकार हैं, वहां संसद के निम्न सदन के स्पीकर को विशेष महत्व और दर्जा प्राप्त होता है। लोकसभा के सभी अध्यक्षों ने अभी तक अपनी निष्पक्षता और गरिमा को बनाए रखा। अध्यक्ष वस्तुत: किसी राजनीतिक पक्ष से जुड़ा हुआ व्यक्ति होता है, परन्तु संसद में अध्यक्ष चुने जाने के बाद दल की सदस्यता से त्यागपत्र दिये जाने के भी उदाहरण देखे गए हैं। वर्तमान भारत में अध्यक्ष शासक दल से और उपाध्यक्ष विपक्ष से बनाये जाने की परम्परा विकसित की जा रही हैं। इसका उद्देश्य अध्यक्ष की निष्पक्षता को बनाये रखना है। 12 वीं लोकसभा (1998-99) में केन्द्र में भाजपा के नेतृत्व में गठबंधन सरकार थी, जिसे तेलगूदेशम पार्टी का बाहर से समर्थन प्राप्त था। अत: शासन दल ने तेलगूदेशम पार्टी के अध्यक्ष जी.एम.सी. बालयोगी को अध्यक्ष निर्वाचित करवाया था। 13 वीं लोकसभा में भी वहीं सर्वसम्मति से पुन: निर्वाचित हुए।[1]

लोकसभा अध्यक्ष अपनी शक्तियों और प्रभाव में ब्रिटिश House of Commons के अध्यक्ष से भी अधिक शक्तिशाली है, वास्तव में लोकसभा अध्यक्ष सभा की शक्तियों का प्रतीक माना जाता है। लोकसभा का अध्यक्ष पर जिसे 1947 से पहले सभापति कहा जाता था, वह पद 1921 से चला आ रहा है, जब माण्टेग्यू चैम्सफोर्ड सुधारों के अन्तर्गत पहली केन्द्रीय विधानसभा बनी थी, उससे पहले विधान परिषद की बैठकों की अध्यक्षता गवर्नर जनरल किया करते थे। भारतीय संविधान में अनुच्छेद 93 में लोकसभा और उपाध्यक्ष के चयन की व्यवस्था की गई है।[2]

भारत में निश्चित तिथि पर अध्यक्ष का निर्वाचन राष्ट्रपति के आदेश पर लोकसभा के सदस्य करते हैं। इसके पूर्व प्रस्तावक अनुमोदक तथा प्रत्याशी की सहमति के साथ नामांकन किया जाता है और निर्वाचन बहुमत के आधार पर होता है। बहुमत दल अर्थात् शासक दल की ओर से प्रधानमंत्री प्रस्तावक होता है। बहुमत दल का समर्थन प्राप्त व्यक्ति निर्वाचित घोषित हो जाता है। इस संदर्भ में यह स्मरणीय तथ्य है कि चाहे प्रत्याशी एक ही हो, प्रस्ताव विधिवत पारित होता है और निर्वाचन की घोषणा की जाती है। निर्वाचन के उपरान्त प्रधानमंत्री और मुख्य विरोधी दल के नेता मनोनीत अध्यक्ष के पास जाते है, उसका अभिवादन करते हैं तथा उसे अध्यक्ष के आसन तक ले जाते है। पद ग्रहण करने के बाद से लेकर वह अगली लोकसभा की पहली बैठक से फौरन पहले तक अपने पद पर रहता है। वह दुबारा भी चुना जा सकता है। अध्यक्ष को अपना पद संभालने पर शपथ नहीं लेनी पड़ती और न ही प्रतीक्षा ही करना पड़ती हैं। वह लोकसभा के सदस्य होने के नाते ही शपथ ग्रहण करता है।

लोकसभा का औपचारिक प्रधान लोकसभा का अध्यक्ष है। सभा में उसका प्राधिकार सर्वोच्च है। अध्यक्ष निष्पक्षता का प्रतीक है और उसे अपने प्राधिकार का प्रयोग निष्पक्ष न्यायाधीश की तरह तटस्थता से करना चाहिए। निष्पक्ष रहने की जिम्मेदारी संविधान ने उस पर डाली है। अत: साम्य की अवस्था में उसका निर्णायक मत होगा और उसका प्रयोग करेगा। अध्यक्ष के कठिन कर्तव्यों में निर्वहन में उसे न्याय तथा औचित्य की भावना से प्रेरित होकर सभा को यह विश्वास होता है कि वह अपने को सत्ता की अन्तरात्मा और रक्षक समझता है। सभा का प्रमुख वक्ता होने के नाते वह अपनी सामूहिक आवाज है और बाहर की दुनिया के लिए सत्ता का एकमात्र प्रतिनिधि है।

अध्यक्ष की अपनी कोई राजनीति नहीं होती उसे संसदीय शासन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना होता है। उसके पास और कुछ नहीं होता है, अध्यक्ष सम्पूर्ण सदन का प्रमुख होता है तथा सदन की सम्पूर्ण शक्ति उसके पीछे होती है। श्री जी.वी. मांवलकर भारत के प्रथम लोकसभा अध्यक्ष बनाए गए। वह 15 मई 1952 से फरवरी 1956 तक अध्यक्ष पद पर रहे। उन्होंने विधानसभा के पीठासीन अधिकारियों को निष्पक्ष रहने का परामर्श दिया। एम. अनंतशयम् आयंगर को 8 मार्च 1956 को अध्यक्ष के पद पर निर्वाचित किया गया। वह अपने व्यवहार में कर्तव्य-पालन के विषय में बहुत कठोर थे। फिर बाद में सरदार हुकुमसिंह को अध्यक्ष बनाया गया चौथी लोकसभा अध्यक्ष के रूप में नीलम संजीव रेड्डी ने कार्यभार संभाला। उन्होंने कांग्रेस से अपना संबंध विच्छेद कर लिया तथा राष्ट्रपति पद का चुनाव लड़ने के लिए इन्होंने लोकसभा की अध्यक्षता से त्यागपत्र दे दिया। उनके बाद गुरुदयालसिंह ढिल्लन को लोकसभा का अध्यक्ष बनाया गया। परन्तु जब ढिल्लन ने मंत्री पद ग्रहण कर लिया तो उनके स्थान पर बलीराम भगत को अध्यक्ष बनाया गया। बलीराम भगत लोकसभा में छठे अध्यक्ष माने जाते है। उन्होंने भी पूर्व में स्थापित परम्पराओं का अनुष्ठान किया। फिर नीलम संजीव रेड्डी व के.एस. हेगड़े ने भी अध्यक्ष का पद संभाला। 1980-89 के बीच बलराम जाखड़ को अध्यक्ष बनाया गया। बोफोर्स मुद्दें पर जब राजीव गांधी सरकार दबाव में आई तो उसको बचाने के लिए बलराम जाखड़ ने जेहादी उत्साह दिखाया। उन्होंने लोकसभा समिति जिसका अध्यक्ष विपक्ष से होता था उस 19 साल पुरानी परम्परा को तोड़ दिया और इंदिरा कांग्रेस के एक सहयोगी दल से उसका अध्यक्ष चुना गया। 1989 में रविराय को अध्यक्ष चुना गया। 1991 के बाद शिवराज पाटिल को लोकसभा अध्यक्ष चुना गया। 1996 में पी.एस. संगमा को निर्विरोध इस पद के लिए चुन लिया गया।

* अतिथि विद्वान (राजनीति शास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, निवाली, जिला - बड़वानी (म.प्र) भारत

अपनी निष्पक्षता योग्यता व लोकप्रियता के कारण उन्होंने अध्यक्ष पद की गरिमा में अभूतपूर्व वृद्धि की। 12 वीं – 13 वीं लोकसभा में अध्यक्ष बालयोगी रहे फिर मनोहर गजानन जोशी को अध्यक्ष चुना गया। 14 वीं लोकसभा में सोमनाथ चटर्जी को लोकसभा अध्यक्ष चुना गया जो कि मार्क्सवादी, साम्यवादी पार्टी के वरिष्ठतम नेता थे। भारत में पहली लोकसभा अध्यक्ष होने का गौरव मीरा कुमार को प्राप्त है, जिन्होंने लम्बे समय तक संसद के अन्दर लोकसभा के अध्यक्ष पद को संभाला तथा अपनी निष्पक्ष छवि से अध्यक्ष पद की गरिमा को बनाये रखा। वर्तमान लोकसभा में म.प्र. की इन्दौर शहर की श्रीमती सुमित्रा महाजन को 6 जून 2014 को नवनिर्वाचित सरकार में निर्विरोध रूप से लोकसभा अध्यक्ष के रूप में चुना गया।

नि:संदेह रूप से स्पीकर का पद बहुत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली है। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लोकसभा के स्पीकर पद का महत्व बताते हुए कहा था कि– स्पीकर सदन का प्रतिनिधि है, वह सदन का गौरव, सदन की स्वतंत्रता का प्रतिनिधित्व करता है इसलिए उचित ही है कि उसका पद सम्मानित तथा स्वतंत्र होना चाहिए और उच्च योग्यता वाले व्यक्तियों द्वारा ही सुशोभित किया जाना चाहिए।[3]

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. त्रिवेदी डॉ. आर.एन. एवं राय डॉ. एम.पी.–भारतीय सरकार एवं राजनीति प्रकाशन कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, पृ.117.
2. श्रीवास्तव प्रदीप– भारतीय राज व्यवस्था, प्रकाशन पी.एस. पब्लिकेशन प्रा.लि. इन्दौर, पृ.9
3. पुरी एस.–भारतीय राजनैतिक व्यवस्था– प्रकाशक मंजीतसिंह, न्यू एकेडेमी पब्लिशिंग कं. माहिरागेट जालन्धर, पृ. 195.

****

आदिवासी क्षेत्रो में पंचायत राज व्यवस्था की भूमिका (बालाघाट जिले के बैहर तहसील के विशेष संदर्भ में)

तरूण कुमार शेण्डे * विनोद कुमार शेण्डे **

प्रस्तावना – 'बीस आदमी केन्द्र में बैठकर सच्चे लोकतंत्र को नहीं चला सकते, इसे चलाने के लिये प्रत्येक गॉव के निवासियों को नीचे से प्रयास करना है। मेरे सपनो का स्वराज गरीबो व ग्रामीणों का स्वराज होगा। गॉव का शोषण खुद एक संगठित हिंसा है। अगर हमें स्वराज की रचना अहिंसा के पाये जाने पर करना है तो गॉव को उनका उचित स्थान देना होगा।' राष्ट्रपिता महात्मा गांधी परंतु दूसरी ओर आदिवासी क्षेत्रो में सामाजिक भेदभाव,जातिवादी,जमींदारी प्रथा,लोकतंत्रीय भावना का अभाव एवं विकास कार्यो में सहभागिता भावना की कमी जैसे कारणों के परिणामस्वरूप वर्तमान में वैश्वीकरण के इस युग में आर्थिक एवं तकनीकि विकास के बावजूद जनजातियो में परम्परावादी व रूढ़िवादिता उनमें कूट – कूट कर भरी है।

ग्रामीण अंचलो में गरीबी,अहिंसा,शोषण,जातिवाद, बहुपत्नी विवाह आदि बुराईयॉ व्याप्त रही है। सहभागिता के अभाव में सामाजिक – आर्थिक रूप से पिछडी जाति को विकास कार्यक्रम भी प्रभावित नहीं कर पाये है। पंचायती राज व्यवस्था से इन्हें जानने का प्रयास किया गया है। यह एक प्रयास है जिसके माध्यम से ग्रामीण अपनी समस्याओं का समाधान आपसी सूझ – बूझ व भाई चारे से करने के लिये साहसिक एवं व्यवहारिक कदम उठाया है।आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा के प्रति पूर्णत: सकारात्मक रूख न होने से असंख्य जनजातीय आबादी निरक्षर ही रह जाती है। चूँकि वे कम पढे लिखे या निरक्षर होते है। परिणाम यह होता है कि ये लोग मजदूरी या अन्य कार्यो से अपना जीवन व्यापन करते है अतएव रोजगार आदि का अभाव पाया जाता है। आर्थिक रूप से कमजोर होने की वजह से समाज में भी संपन्न व प्रतिष्ठित लोगों की बराबरी नहीं कर पाते है। आदिवासी क्षेत्रो में अलग – अलग स्थानों पर लोग घर बनाते है उनके समूह को फलिया कहते है। इन सभी फलियाओ को एक गॉव का नाम दिया जाता है। गॉव का मुखिया पटेल सरपंच कहलाता है। गॉव के सामाजिक – धार्मिक आदि एवं अन्य मुद्दो पर पटेल ही प्रमुख माना जाता है। वर्तमान में राजनीति में प्रत्येक फलिया से लोग अपनी उम्मीदवारी करते है एवं अपने – अपने स्तर से प्रचार – प्रसार करते है। परंतु चुने जाने के पश्चात् भी निरक्षर सीधे – सीधे प्रतिनिधियो को शासकीय कार्यो के अनुभव का अभाव एवं शासन की प्रक्रियाओ को नही समझ पाते एवं गॉवो की आधारभूत समस्याओ को हल करने मे असफल होते है ।

शोध समस्या का चयन – वर्तमान समय में देश एवं प्रदेश की सरकार द्वारा विकास के आयाम में सबसे निम्न स्तर पर खडे व्यक्ति की ओर ध्यान दिया जा रहा है। इसी तारतम्य में मध्य प्रदेश सरकार ने भी 73 वे संविधान संशोधन के अंतर्गत नवीन पंचायती राज की स्थापना की है। इस नवीन प्रक्रिया के अंतर्गत आदिवासी क्षेत्रो मे पंचायती राज संस्थाऍ किस प्रकार अपने उद्देश्यो में सफल हो रही है ? क्या पंचायती राज आदिवासी समुदाय के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है ? इन प्रश्नो पे समाधान हेतु शोधकर्ता द्वारा प्रस्तुत शोध समस्या के रूप में आदिवासी क्षेत्रो मे पंचायती राज की भूमिका नामक शोध समस्या का चयन किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य – प्रस्तुत शोध अध्ययन निम्न उद्देश्यों को लेकर किया गया है – 1. ग्राम पंचायत में आदिवासी लोगों की भागीदारी और शासकीय योजनाओकी प्रगति का अध्ययन करना ।

2. पंचायतराज व्यवस्था का ग्रामीण विकास कार्यक्रम पर पडने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन का क्षेत्र – मध्य प्रदेश के बालाघाट जिले के बैहर तहसील की पॉच ग्राम पंचायतों को उद्देश्यपूर्ण विधि द्वारा चयन किया गया चयनित ग्राम पंचायतो से प्रत्येक ग्राम पंचायत से 10 – 10 साक्षात्कार अनुसूचियॉ भरी गयी है। इस प्रकार कुल 50 वयस्क उत्तरदाताओ से साक्षात्कार अनुसूचियॉ भरी गयी ।

तथ्यों का विश्लेषण एवं अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष – प्रस्तुत शोध में पंचायत राज आदिवासी लोगों के विकास में किस प्रकार सहभागी है। पंचायती राज का उनके विकास में पडने वाले प्रभावो का अध्ययन कर निम्न निष्कर्ष निकाले गए है–1. 57.8 प्रतिशत उत्तरदाता पंचायते उनके विकास में सहायक मानते है, जबकि 14.1 प्रतिशत उत्तरदाता ने कोई जवाब नहीं दिया।

2. 57.8 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते है कि वास्तविक हितग्रहियो को लाभ मिल रहा है।

3. 71.2 प्रतिशत उत्तरदाताओ ने माना है कि नये पंचायती राज्य में महिलाओ की स्थिति में सुधार आया है। जबकि 28.2 प्रतिशत उतरदाताओं के अनुसार महिलाओ की स्थिति में कोई सुधार नहीं आया है।

4. 57.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार स्थानीय समस्याओं के निराकरण मे पंचायतें सार्थक भूमिका निभा रही है। वही 42.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार पंचायते अपनी भूमिका सार्थकरूप से नही निभा रही है।

5. अध्ययन क्षेत्र में 46.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास कृषि भूमि है जबकि 55.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास गैर कृषि व्यवसाय पर निर्भर है और जिनके पास कृषि भूमि तो है परंतु सिंचाई की सुविधा मात्र 36 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास उपलब्ध है जबकि 64 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास सिंचाई हेतु कोई सुविधा नही है।

सुझाव – 1. ग्रामीण विकास का लक्ष्य आर्थिक ही नहीं बल्कि सामाजिक न्याय का होना चाहिए। गॉव में रहने वाले निर्धन व्यक्ति का जीवन स्तर सुधारकर तथा उसे पूरी गरिमा के साथ लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भागीदारी के अवसर मिलना चाहिए।

2. लघु एवं कुटीर उद्योगों को पुन: स्थापित कर जिस वस्तु का कच्चा माल अधिक मात्रा में हो उत्पादित होता है। वहा छोटी मिले व फेक्ट्रियॉ विकसित की जाए।

3. राज्य को चाहिए कि भूमि व भूमि से सम्बंधित उपकरण,ऋण की सुविधा एवं खाद बीज की सुविधाऍ उपलब्ध कराए।

4. ग्रामीण अंचलो में सहयोग एवं सद्भावना का माहौल तैयार करना चाहिए।

5. मूलभूत सुविधाओ की पूर्ति करते हुए योजना बनाते समय ग्रामीणों और उनकी समस्याओ को केन्द्र बिन्दु मानकर बनाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. चौहान आर.एस. (1989) 'पंचायती राज सत्ता विकेन्द्रिकरण का माध्यम' रघुनाथ प्रिटिंग, आगरा।
2. अवधप्रसाद (1988) 'गॉवो मे सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक परिवर्तन ' रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
3. श्री शरण (1995) 'पंचायती राज और लोकतंत्र' पाण्डूलिपी प्रकाशन कृष्णा नगर नई दिल्ली ।

* अतिथि विद्वान (राजनीति शास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, बरघाट जिला - सिवनी (म.प्र.) भारत
** अतिथि विद्वान (राजनीति शास्त्र) स्वामी विवेकानन्द शासकीय महाविद्यालय, लखनादौन, जिला - सिवनी (म.प्र.) भारत

महिला नेतृत्व और सशक्तिकरण : समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. बसंत नाग *

शोध सारांश – महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता आज चारों ओर महसूस किया जा रहा है। किसी भी समाज का स्वरूप वहाँ की नारी की स्थिति पर निर्भर करता है, यदि उसकी स्थिति सुदृढ़ एवं सम्मानजनक है, तो समाज की सुदृढ़ एवं मजबूत होगा। महिलाओं का नेतृत्व राजनीति, प्रशासन, खेल, जगत, कूटनीति, व्यापार, उद्योग कला प्रशासन आदि प्राय: हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही है, लेकिन ऐसी महिलाओं का प्रतिशत भाग बहुत ही कम है। अधिकांश महिलाएं तो हर तरफ भेदभाव की ही शिकार हो रही है। ऐसे में प्रश्न उठता है कि इस विरोधाभासपूर्ण स्थिति के आखिर कारण क्या है ? इन परिस्थितियों में परिवर्तन के लिए क्या किया जा सकता है ? परिवर्तन के मार्ग में बाधाऐं क्या है ? इन सभी प्रश्नों के उत्तर ढूंढना समय की मांग है।

प्रस्तावना – महिला नेतृत्व और सशक्तिकरण का अर्थ –सशक्तिकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है। यह महिला में इतनी जागरूकता लाती है कि वह शक्ति को प्राप्त करे एवं उसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीति संसाधनों पर नियंत्रण प्राप्त करने की नेतृत्व क्षमता का विकास हो। यह अपने जीवन को स्वयं निर्देशित करने के लिए प्रेरित है तथा घर एवं बाहर के निर्णय में उसकी भागीदारी सुनिश्चित करती है। यह शक्ति संबंधों को चुनौती देती है यहाँ पुरूष संप्रभुता के स्थान पर महिला सुप्रभुता स्थापित करने का प्रयास नहीं बल्कि समानता के आधार पर एक सामंजस्यपूर्ण भागीदारी की मांग है। यह संसाधनों तक महिलाओं की पहुंच को संभव बनाती है। महिला को हाशिए से हटाकर समाज की मुख्य धारा में लाना एवं निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना सशक्तिकरण है। उसे अपनी वाजिब हक मिले, देश की प्रगति में इसका पर्याप्त योगदान हो तभी हम कह सकते है कि महिला सशक्त हो गई है। सबलता एवं सुयोग्यता नारी नेतृत्व सशक्तिकरण की प्रमुख पहचान है।

यदि महिलाओं की स्थिति को भारतीय संदर्भ में देखे तो वैदिक व उत्तर वैदिक काल में भारतीय समाज में महिला का गरिमामय पद था, स्मृति काल में भी नारी का सम्मान था, पौराणिक काल में भी नारी शक्ति के रूप में आराधना की जाती थी, मध्यकाल में प्रतिरक्षण शक्ति की आवश्यकता नारी को पुरूष से प्राप्त हुई और उसने नारी के जीवन को अशांत व हिंसक कर दिया। मुगलकाल में विलासिता देखी गई और ब्रिटिश काल में फलने-फुलने का अवसर मिला। धीरे-धीरे उसकी स्थिति में ह्रास हुआ और आज स्थिति यह है कि हम महिला नेतृत्व सशक्तिकरण की चर्चा कर रहे है। नेपोलियन बोनापार्ट ने नारी की महत्ता को बताते हुए कहा था कि 'मुझे एक योग्य माता दे दो मैं तुमको एक योग्य राष्ट्र दूंगा।'

आज हवा की दिशा बदली है। नारी प्रबुद्धता के साथ नारी के भौतिक कल्याण उन्नति व विकास की आवश्यकता पुरूष जाति महसूस करती है। ऐसे में नारी का सहयोग कैसे संभव है। प्रसिद्ध लेखिका मृदुला गर्ग का विचार है-वर्तमान में नारीवाद की नहीं चेतना की बात की जानी चाहिए ताकि वह स्वयं के रूप को पुनर्परिभाषित कर सके। कारण यह है कि स्त्री केवल देहमात्र ही नहीं है, वह देह के अलावा मन, आत्मा, प्रज्ञा, चेतना का विचार भी है इन सभी से मिलकर नारी रूप बनती है। साहित्य के सत्ता द्वारा जिन मूल्यों का प्रतिपादन किया जाता है, साहित्य के माध्यम से उन्हें जांचा-परखा जाता है। हमारा सामाजिक ढांचा ही स्त्री और पुरूष के लिए अलग-अलग भूमिकाएं निर्धारित करता है। स्त्री और पुरूष का आचरण स्वाभाविक अंतर के बजाय सामाजिक, सांस्कृतिक अपेक्षाओं से अधिक निर्धारित होता है। स्त्री और पुरूष के लिए मूल्यों का जो अंतर स्थापित किया गया उसके दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम निकले। आज हर स्तर पर महिलाओं के साथ भेदभाव किया जाता है चाहे वह राजनीति, कला, साहित्य, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक हर क्षेत्र में विकास की जो संभावना बना है । अकेला पुरूष आज हार चुका है, स्वयं के निर्मित मायाजाल में फंसकर शक्तिहीन हो गया है उसके अहंकार ने उसको तोड़ दिया है। वर्तमान में स्त्री तृतीय विश्व की भांति है जहां अधिकार सीमित और कर्तव्य असीमित है उससे अपेक्षाऐं बहुत है इस विचार के आधार पर ही इस वर्तमान विषमता से पुरूष का उद्धार संभव है।

राजनीति सत्ता स्थायित्व के अभाव में भारतीय समाज का विकास, उन्नति व समृद्धि संभव नहीं है। नारी नेतृत्व सबलीकरण व सशक्तिकरण से बिना राजनीति सत्ता भागीदारी के नारी नेतृत्व सबलीकरण संभव नहीं है। फिर भी लम्बे संघर्ष के बाद भारतीय महिलाओं ने समाज में अपने लिए कुछ जगह बनाई है। महिलाओं में हर क्षेत्र में बदलाव आ रहा है, बदलाव की दिशा सकारात्मक है, किन्तु इसकी गति बहुत धीमी है, लोकतांत्रिक व्यवस्था का तकाजा यही है कि समाज के सभी वर्गो को स्वतंत्रता और समानता का अधिकार मिले एवं इसका सर्वांगीण विकास हो। महिलाओं के सशक्तिकरण का प्रश्न ही सामाजिक न्याय लोकतंत्र और समेकित सामाजिक विकास के दर्शन पर आधारित है। यहां सशक्त का उत्थान कैसा ? निर्बल का सुख संसार कैसा ? पात्र की कुछ कर सकता है। सबल ही उन्नति के शिखर को छू सकता है। सुदृढ़ ही नभ में उड़ सकता है, धरती की दुरूहता को शस्य-श्यामला में बदल सकता है, विकराल समुद्र की सीना चीरकर अपनी राह बना सकता है, तुफानों को सुर और ताल में बदल सकता है।

यही कारण है आज सबलीकरण की आवश्यकता आर्थिक व राजनीति सत्ता सहभागी नारी पहले सबलता पाठ पढ़कर जीवन संघर्ष में अपनी राह स्वयं बनाने के लिए प्रेरित हो रही है, अन्यथा वह वादों की रेत के ढेर में छिपी चिंगारी की तरह दबकर रह जायेगी, सर्वशक्तिमान वह है जो इच्छानुसार रूप बदल ले, अवतार ले, वह अणु बन जाये, पहाड़ बन जाये, नरसिंह से लेकर युगपुरूष राम-श्याम रूप में धरती के किसी भी वस्तु में किसी मूर्त में अमूर्त में किसी माध्यम से प्रकट हो जाये। नारी का शांत व रौद्र रूप परिस्थितिगत शक्ति सम्पन्न होने पर ही संभव है। नारी स्वयं ही शक्ति स्वरूपिणी है आवश्यकता है उसके केवल पहचानने व सामाजिक रूप से स्वीकृत करने की चाहे वह देवलोक की शक्तिदेवी दुर्गा हो या आज ही इंदिरा, दुर्गावती हो या

* सहायक प्रध्यापक (समाज शास्त्र) भानुप्रतापदेव शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कांकेर (छ.ग.) भारत

चांद बीबी अब नारी उर्मिला बनकर रोयेगी नहीं, सुलोचना बनकर अहंकारी मेघनाथ रूप में पुरूष के लिए स्त्री नहीं रहेगी बाली की पत्नी बनकर सुग्रीव की भार्या होते हुए भी उसके इशारे पर नहीं नाचेगी। सभी ने अपने अंदर की सुशुप्त नारी को जगाया एवं नई मंजिलें हासिल की।

प्रश्न है कि स्वतंत्र भारत के पुरूष शासक वर्ग के नारी को सशक्त व सबल क्यों नहीं बनाया ? उसको कानून की वैसाखियों का सहारा क्यों दिया गया ? उसको अपने पैरों पर खड़ा होकर हर विषमता का सामना करने का साहस जुटाने का अवसर क्यों नहीं दिये ? उसका आत्मविश्वास बढ़े वह आत्मनिर्भर बने ? कानून में ऐसा प्रावधान क्यों नहीं दिये ? समाज में लिंग के आधार पर राजनीति व आर्थिक सत्ता भागीदारी के समान अवसरों के संदर्भ में आरक्षण का प्रावधान क्यों नहीं किया ?

धार्मिक चेतना प्रश्न करती है कि सीता के सत् की रक्षा किस कानून ने की ? क्या सीता के सतीत्व का तेज का प्रताप नहीं था कि अशोक वाटिका में बार-बार जाने वाला रावण नतमस्तक होकर लौटता था। क्या रूकमणी को कृष्ण के साथ जाने में कोई कानून रोक पाया था। यदि कृष्ण द्रोपदी के चीरहरण के पश्चात् पहुंचते तो क्या वे द्रोपदी के लज्जा रक्षक भक्त वत्सल कृष्ण कहलाते है ? आज कानून तो नारी की लज्जा के अनावृत्त होने के बाद उस पर चादर डालने के लिए ही पहुंचता है। फिर न्यायालय में रहा-रहा लज्जा का आवरण प्याज के छिलके की भांति खुलकर रह जाता है।

भारत में विकास हो मानवता फले-फूले यही भारतीय राष्ट्रीयता चाहती है। कोई भी शासन व्यवस्था अधिक दिन स्थायी नहीं रहती जब तक वह जनहित में प्रतिबद्धता व सत्यनिष्ठा से कार्य नहीं कर पाता है। भारत के शासकों से भी इस राष्ट्र की यही अपेक्षा है। आज पुरूष की प्रजातांत्रिक व्यवस्था का सूरज बादलों की ओट में है। नारी का मत व्यवस्था समीकरण बदल रहा है। नारी को बहकाना तो एक घटना है किन्तु नारी को भटकाना उससे भी दुर्घटना है। यदि गहराई से आकलन किया जाए तो एक आश्चर्य मिश्र के पिरामिड सा सामने आयेगा कि पुरूष ने सत्ता का किला बनाकर शासन द्वार का स्वयं को अधिपति घोषित कर लिया और स्वयं के लिए ही सत्ता आरक्षण कर राजनीतिक परिदृश्य पर एकाधिकार स्थापित कर लिया इस पुरूष राजनीतिक मूल्यांकन पतन का दोष किसको देना चाहिए। पुरूष अपने को दोष क्यों देगा कैसे देगा क्योंकि उसने टिकिट वितरण अधिकार तो अपने पास रखा है। सत्ता की गणित अपने पास रखी है, पुरूष का कहना है कि राजनीति तो बहुत बड़ा चतुराई व चटुकारिता से भरा व शतरंज का खेल है। जिसमें कूटनीतिक कुटिलता का महत्ती योगदान है। नारी अपने सहज व सरल स्वभाव के कारण यह खेल नहीं खेल सकती । वह स्वयं नायिका हो सकती है, स्वामिनी नहीं। यहां सहज का अर्थ यह है कि पुरूष ने राजनीति के सर को इतना गंदा कर दिया है कि उसमें कोई शीलवती महिला कठिनाई से ही स्नान कर अपने को पवित्र रख सकती है। इस राजनीति रूपी गंगा को मैला किसने किया। इसको अमर्यादित पूतना व शूर्पणखा किसने बनाया। इसको मंथरा व होलिका किसने बनाया। इसको अमर्यादित अनैतिक व लम्पट जन की अंतिम शरण स्थली किसने बनाया ? क्या यह सब कुछ करने वाला पुरूष तो नहीं है ? इस आर्यवर्त की सदाचारणी नारी कब तक इस पुरूष की कलुशता के पाप का बोझ अपने कोमल कंधों पर ढोती रहे वह क्या कर सकती है, जो भी नारी प्रयास करती है, पराजित हो जाती है जहां पुरूष नामधारी ही एकमात्र सत्य है।

अंतर संसदीय परिषद् द्वार 1996 में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार करीब 100 देशों में 10 प्रतिशत राजनीतिक पार्टियों का नेतृत्व की महिलायें करती है। दुनिया में भले ही लैंगिक समानता की बात पुरजोर तरीके से की जाती हो भले ही विकसित देश महिला अधिकारों के लिए अपना बखान करते नहीं थकते हो लेकिन सच तो यह है कि विश्व स्तर पर 75 फीसदी संसदों में तीन चौथाई से अधिक पुरूष सासंद है। विकसित देशों की प्रजातांत्रिक संस्थाओं में भी महिलाओं का उनकी संख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व नहीं है। हालांकि हाल के वर्षो में कुछ महिलाओं ने सत्ता की बागडोर सम्हाली है। इस विकास की नई कड़ी में ब्राजील की डिल्मा रोडसेफ जो जनवरी 2011 में राष्ट्रपति पद संभालने वाली लेटिन अमेरिका के इस सबसे बड़े देश की पहली महिला होगी एक नजर डालते है वर्तमान में कहां-कहां शीर्ष पदों पर महिलायें विराजमान है। जुलिया गिलार्ड आस्ट्रेलिया की पहली प्रधानमंत्री, श्री एंजिला जर्मनी की पहली महिला चांसलर, शेख हसीना वाजेद बांग्लादेश की प्रधानमंत्री, प्रतिमा पाटिल जी भारत के राष्ट्रपति रही है। मैरी मैक्एलिसी आयरलैंड के राष्ट्रपति, किस्टीना फर्नाडिस डि किश्र्नर अर्जेटीना के इतिहास में पहली महिला राष्ट्रपति, तारजा हेलोनेन फिनलैण्ड की पहली राष्ट्रपति, जोहाना सिगुरदारदोतिर आइसलैण्ड की प्रधान मंत्री, जाद्रांक कोसोर क्रोएशिया की पहली महिला प्रधानमंत्री है। यह सब पर्याप्त नहीं है फिर भी एक प्रयास तो है राजनीति में नेतृत्व क्षमता का क्यों नहीं बढ़ पाई महिला सत्ता सहभागिता के शीर्ष संस्थान में जो भी राजनीतिक परिणाम है वह हतोत्साहित करने वाली है। 1952 के प्रथम लोकसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व 4.2 प्रतिशत था और 15वीं, लोकसभा में युवा नेताओं का नया उफान देखने को मिला ये युवा नेता अपने नेतृत्व के बल पर बदलाव लाना चाहते है। इस चुनाव में युवाओं के वोट ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है 25 साल में पहली बार इतनी अधिक संस्थान में युवा सांसद में पहुंचे है। यह प्राफेशनलों, शासक परिवारों और राजनैतिक पत्नियों का बेहद दिलचस्प मिश्रण है वे युवा उत्साही है और भारत के सबसे ताकतवर संस्था की दहलीज तक पहुंच गये, हालांकि उनमें कुछ अभी तक अपना पब्लिक स्कूल वाला लहजा नहीं छोड़ पाए है, लेकिन लंबे और कष्टसाध्य चुनाव प्रचार ने उन्हें भाषण देने की कला सिखा दी है। डॉ. ज्योति मिर्घा, जिनके संवाद का पंसदीदा साधन इंटरनेट है, कहती है - वे बालिकाओं और ग्रामीण स्वास्थ्य के लिए कुछ करना चाहती है, जबकि ऊर्जा से लबरेज श्रुति चौधरी कहती है वे ओबामा की तरह परिवर्तन लाना चाहती है। मीनाक्षी नटराजन गैर शासक परिवार से चुनी गई है। संकेत करती है कि हालांकि उन्हें अपना चुनाव जाति के आधार पर लड़ने की सलाह दी गई थी लेकिन उन्होंने ऐसा करने से इंकार कर दिया वे विकास को मुद्दा बनाकर चुनाव लड़ी और जीती भी। इस प्रकार संसद के निचले सदन में इस बार पहले की मुकाबले ज्यादा युवा, अमीर, ज्यादा महिला उम्मीदवार चुन कर आई, जिससे देश में सकारात्मक परिवर्तन की उम्मीद मजबूत हुई है। इनमें है श्रुति चौधरी, जे शांता कर्नाटक, मौसम नूर पं. बंगाल सुप्रिया सुले महाराष्ट्र मीनाक्षी नटराजन म.प्र., दीपादास मुंशी पश्चिम बंगाल, हर सिमरत कौर पंजाब, विजयाशांति आनध्रप्रदेश, उमा भारती, मीरा कुमार बिहार, ममता बनर्जी बंगाल अम्बिका सोनी राज्य सभा पंजाब, मायावती आज भारतीय राजनीति में दूसरी सबसे महत्वपूर्ण महिला एवं ताकतवर गठबंधन के नेता के रूप में सत्ता स्थापित ढांचे को झटका देने को तैयार है। जयललिता जुझारू महिला है। भारतीय राजनीति के टूटे सपनों को मानवीय विकास के पथ पर अग्रसर करने का भार श्रीमती इंदिरा गांधी के कंधों पर डाल दिया गया 1980 के बाद पंजाब में अलगाववाद हावी हो गया। भिण्डरवाले ने खलिस्तान का नारा देकर देश में आंतरिक सुरक्षा को खतरे में डाल दिया इस समस्या ने 1948 में गांधी जी का प्राणान्त कर दिया इसके बाद देश पुन: अनिश्चिता की स्थिति में आया और अब सोनिया के नेतृत्व वाले कांग्रेस सरकार सत्ता सम्भाले हुए थी।

सामाजिक राजैनतिक व आर्थिक मुद्दों पर शोध करने वाले इंस्टीट्यूट आफ सोसल सांईस के डायरेक्टर डॉ जार्ज मैथ्यू का कहना है कि पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी की तस्वीर बदल रही है और इसमें उस फैसले की अहम भूमिका है, जिसके मुताबिक पंचायतों और नगर निकायों के अनुच्छेद 243 में संशोधन किया जाएगा, खुशी की बात है कि बिहार, म.प्र., उत्तर प्रदेश छत्तीसगढ़ और हिमाचल प्रदेश जैसे राज्य इसकी पहल कर चुके है। महिला सशक्तिकरण में काम कर चुके मैथ्यू कहते है – 'बात बराबरी की है उन्हें उनका हक मिलना चाहिए मगर इस राह में पुरूष मानसिकता सबसे बड़ा अड़ंगा है' तटबंध तोड़ने को है पंचायत से लेकर कॉर्पोरेट तक हिन्दी प्रदेश की महिलायें परचम लहरा रही है पर उत्पीड़न और उपेक्षा उनके मार्ग में बाधक बन रहा है। डॉ. परम नवदीप सिंह विधायक राजस्थान का कहना है – 'जन्म से लेकर स्कूल और विवाह से लेकर नौकरी और सत्ता तक में उनकी बराबरी की हिस्सेदारी पक्की करनी होगी'। समाज को महिलाओं की स्थिति सुधरे आत्मावलोकन करना चाहिए। दर असल ग्रामीण ही नहीं शहरी क्षेत्र की महिलाओं के सामने भी यही चुनौती है, क्योंकि आबादी में तकरीबन आधी हिस्सेदारी करने वाली महिलाओं को लगभग हर मोर्चे पर खुद को साबित करने के लिए बड़ी मशक्कत करनी पड़ रही है। जन सांख्यिकी से लेकर तमाम आंकड़े उनके खिलाफ है। फिर भी अपनी उद्यम शीलता से लेकर नेतृत्व क्षमता और मेघा का इंतजार कर ही है।

1990 के दशक के बाद बेशक बदलाव आया जब उदारीकरण के लिए दरवाजे खोज दिये गए। आइटी क्रांति को इस दिशा में दूसरा बड़ा कदम कहा जा सकता है, जिसका लाभ उठाकर लड़किया आज इंजीनियरिंग और दूसरे प्रोफेशनल कोर्स के जरिये अपनी राह बना रही है। प्रशासन में नारी नेतृत्व और सशक्तिकरण का और सकारात्मक उपायों का यदि सन् 2000 में आकलन करें तो उस समय महिलाओं की संख्या 59वीं थी और अब 2008 में यह संख्या बढ़कर 166 हो गई है। 2008 के टॉप तीन छात्राओं को ही ले, आई.आई.टी. रूड़की से ग्रेजुएट शुभा सक्सेना ने एक फर्म में साफ्टवेयर इंजीनियरिंग की चार साल की नौकरी छोड़ी और आज प्रशासनिक पद पर काबिज है। भटिंडा ने एक सम्पन्न किसान की बेटी शरणदीप कौर ने पंजाबी को माध्यम बनाया तो रायपुर की छत्तीसगढ़ लोकसेवा अधिकारी किरण कौशल ने हिन्दी को चुना अब ऐसे प्रत्याशियों की संख्या दिनों–दिन बढ़ रही है। यह उल्लेखनीय परिवर्तन है और महिलाओं को अवसरो के मामले में पुरूषों के बराबर लाने के विभिन्न उपायों की कहानी कहता है यह गजब प्रतिभातंत्र है यह तो अब नए उभरते भारत के अनुरूप ही आकार होती जा रही है और यह भारत के जातिगत गतिशीलता का नारी नेतृत्व और सशक्तिकरण का और सकारात्मक उपायों का फल है प्रशासनिक सेवा के लिए चुने गए 791 छात्रों में से 166 महिलायें है और उसमें से 10 टॉप 25 की सूची में है। पांच सफल प्रत्याशी इसका खुलासा करते है। सौम्यासी (कर्नाटक) कहती है, उनकी माँ अनपढ़ है पर जोनल स्तर की इस धावक को कूटनयिक बनने का सपना पूरा करने में कोई बाधा नहीं आई, टी. मिश्रा (तिरूअंनतपुरम) परीक्षा परिणाम से सिर्फ चार चार दिन पहले अनाथ हुई यह लड़की कहती है 'छात्र कार्पोरेट नौकरियों की बजाय प्रशासनिक सेवाओं को तरजीह दे रहे है। अब घड़ी पेडुलम उस ओर जा रहा है। रविंदर कुमार शर्मा पोलियों उन्हें रोक नहीं पाया न ही पंजाबी में परीक्षा देने का फैसला 2003 में सरकार ने विकलांगों के लिए 3 प्रतिशत आरक्षण कर दिया था। रूबी जसप्रीत स्कूली जीवन में अनायास सूझा केरिअर का विचार मिशन बन गया और फिर माता–पिता भी उसे नहीं बदल पाए। किरण कौशल का दृढ़ संकल्प ही इससे कड़ी परीक्षा नहीं हो सकती 'सफलता के लिए विश्लेषणात्मक अध्ययन करना नगीने पहनने या पूजा पाठ से अधिक जरूरी है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी महिला आगे है, उन्हें अवसर मिलने भर की देर होती है इंजीयनिरिंग की पढ़ाई से हो या मेडिकल की या प्रशासनिक पद हो महिलाओं के सकारात्मक विकास और व्यवहार की ही खबरें आनी चाहिए, इनकी रिपोर्ट प्रकाश में आए तभी लाखों बेटियां जो आज भी विकास की रोशनी से दूर है, विद्यालय जाने से वंचित डरी सहमी है, उनमें शक्ति का संचार होगा, उनके माता–पिता अपने बेटियों पर नाज कर सके यह काम बेटियों ने कर दिखाया है।

2001 को नारी सशक्तिकरण वर्ष मनाते हुए एक पोस्टर बनाया था, जिसमें एक ग्रामीण बालिका आसमान की ओर हाथ उठाई उधर ही देखती, चंगुल पर खड़ी थी, नीचे लिखी पंक्तियां थी– 'आसमाँ छूने की है आस गर मिल जाए थोड़ा सा विश्वास'। विश्वास ही चाहिए माता–पिता, गुरूजन, समाज और सरकार का यही विश्वास एक लड़की को आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। पर समाज में महिलाओं की यह स्थिति भी सार्वजनिक नहीं है। घर से लेकर बाहर तक अत्याचार और उत्पीड़न के मामले भी बढ़े है। परन्तु खेल के मैदान में हजारों की संख्या में युवतियों का आना स्वर्ण पदके प्राप्त करना यह दर्शाता है कि तमाम विरोधी परिवेश का धता दिखाती हमारी बेटियां अपने लिए वर्जित क्षेत्र में भी सफलता हासिल कर रही है।

आज समाचार के पन्नों में पुन: सुर्खियों में बेटियां आई है। सानिया मिर्जा व साइना नेहवाल के नाम कौन नहीं जानता। 16वें एशियाई खेलों में 10 हजार मीटर दौड़ स्पर्धा में धाविका प्रीजा श्रीधरण व कविता सुधा सिंह ने स्वर्ण पदक जीता, कामनवेल्थ चैम्पियन भारत की दीपिका कुमारी डोला बनर्जी और रिमिल ब्यूरलि ने शानदार प्रदर्शन करते हुए तीरंदाजी में कास्य पदक जीतकर इतिहास रच दिया। इस प्रकार राष्ट्रमंडल खेलों में शानदार प्रदर्शन का सकारात्मक लेख और टिप्पणियां छपा बेटियों ने बाजी मारकर देश का मान बढ़ाया उनकी इस सफलताओं के पीछे उनके पिता की भूमिका भी उजागर होती है। पिताओं का विश्वास और सहयोग मिला बेटियों को वही विकास में अवरोधक बन रही मानसिकता को धक्का लगा। हम स्त्री सशक्तिकरण की बात करते समय पुरूष को स्त्री विकास के बाधक के रूप में मानते है, जो सरासर गलत है, यह स्थिति न हमारा भूत है और न वर्तमान सम्पूर्ण समाज के लिए प्रसङ्गता की बात है। समाज में उन लोगों के हौसले भी बुलंद होते है, जो बेटियों को बढ़ाने में लगे है, पिछले दो दशकों में केन्द्र और राज्य सरकारों ने भी महिला विकास के लिये नये–नये रास्ते खोले है। आजादी के बाद महिलाओं की तीसरी पीढ़ी आगे बढ़ रही है, पिछली दोनों पीढ़ियों ने एक–एक कदम बढ़ाकर सभी के लिए मार्ग प्रशस्त किए है और फिर भी बाधा उत्पन्न हो रही है, जिसे दूर करने की मानसिकता बनाते रहना है। खेल के मैदान के साथ–साथ जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं की उपस्थिति और सफलताएं हमें आभास कराती है कि यह पुरूष प्रधान समाज नहीं है। यदि पितृ सत्तात्मक व्यवस्था है, भी तो महिला विकास में पुरूष बाधक नहीं बन रहा। समाज विकास का वातावरण बनाता है। युवतियों की उपलब्धियों को भी हमें समाज में सद्भावना और सहयोग का वातावरण बनाने का माध्यम बनाना चाहिए, विरोध का नहीं। नारी तुम केवल श्रद्धा हो का काल बीत गया वे तो आज सम्पूर्ण दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती है। अवसर मिलने भर की देरी है।

आज हमारी आर्थिक उपलब्धियों के पीछे भी महिलाओं का योगदान है सकल घरेलू उत्पादन में तो उनका श्रेय है ही तभी केन्द्र और राज्य सरकारो ने अपने बजट में महिला बजट का प्रावधान किया है। दस लाख से अधिक महिलायें स्वयं सेवा समूहों के द्वारा रचनात्मक कार्य में लगी है।

महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु उठाए गए कदम भारत के संविधान

में स्त्री-पुरूष समानता की चर्चा अनु. 14 में की गई है। 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम 1954 के विशेष विवाह अधिनियम 1956 के पुर्नविवाह अधिनियम 1956 में पारित हिन्दू दत्तक ग्रहण एवं भरण पोषण अधिनियम के द्वारा जहां नारी को सामाजिक अधिकार प्रदान किए गए वही 1956 का हिन्दू उत्तराधिकार फैक्ट्री अधिनियम 1948, पारिश्रमिक अधिनियम 1976, 1961 दहेज निषेध एक्ट 1961 प्रसूति लाभ एक्ट एवं चित्रण निवारण एक्ट 1986 भी पारित किए गए महिला सशक्तिकरण के लिए 1985 में महिला एवं बाल विकास विभाग की स्थापना की गई, 31 जनवरी 1992 को राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया सभी पंचवर्षीय योजनाओं में महिला विकास को महत्व दिया गया। भारत सरकार द्वारा 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया गया राज्य सरकारों ने अपनी ओर से प्रयास किए जैसे - छत्तीसगढ़ में दीदी बैंकं।

इतने प्रयासों के बाद भी महिलाओं की दशा सोचनीय है लड़की आज भी अनचाही संतान है यही पसंदगी या ना पसंदगी लैंगिक भेदभाव का कारण है, जो परिवार के स्तर से प्रारंभ होती है एवं महिलाओं के प्रति हिसांओ प्रोत्साहित करते है उन्हें पुरूषों के समान अधिकार एवं स्वतंत्र का उपभोग करने से बाधित करती है। कहा जा सकता है, कि अकुशल प्रबंधन के साथ-साथ समाज भी महिलाओं की बदत्तर स्थिति के लिए उत्तरदायी है, इसके लिए कुछ महत्वपूर्ण नीतिगत निर्णय लेने की आवश्यकता है।

नारी सशक्तिकरण के लिए आवश्यक उपाय -

1. महिला शिक्षा की दिशा में ठोस प्रयास किये जाये।
2. समाज की मानसिकता में परिवर्तन लाया जाए।
3. उन सामाजिक परम्पराओं का उन्मूलन किया जाय जो स्त्री की स्थिति को निम्न बनाती है।
4. महिलाओं का आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया जाए।
5. इस क्षेत्र से जुडे कानूनों का वास्तविक क्रियान्वयन हो, पुलिस एवं प्रशासन को इसके लिए मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार किया जाए।
6. उत्पीड़ित महिलाओं को सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों द्वारा पर्याप्त सहायता दी जाए।
7. महिलाओं में आत्म विश्वास एवं जागृति लायी जाए।

नारी नेतृत्व एवं सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है कि समाज का प्रत्येक वर्ग उसमें भागीदारी करे, नारी परिवार एवं समाज की नींव है। इसे सुदृढ़ करना हम सभी का कर्तव्य है, सदियों की उपेक्षा को एक दिन में बदला नहीं जा सकता किन्तु नियोजित प्रयास किया जा सकता है तो सशक्तिकरण संभव है।

समाज का असंतुलित विकास अविश्वास एवं विघटन को बढ़ावा देता है यदि पतन से बचना है तो नारी को वे सभी अधिकार एवं सुविधाएं देनी होगी, जिसकी वह अधिकारिणी है। स्वामी विवेकानंद का कहना था- 'स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाए बिना विश्व का कल्याण संभव नहीं है'। एक पंख से समाज रूपी चिड़िया उड़ान नहीं भर सकती।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अंसारी, एम.ए. - महिला और मानव अधिकार, ज्योति प्रकाशन जयपुर द्वितीय संकरण 2003।
2. श्रीवास्तव, सुधारानी - महिला और मानव अधिकार, अर्जुन पब्लिसिंग हाउस श्रीवास्तव, आशा 2009।
3. वर्मा, अम्बिका प्रसाद - छत्तीसगढ़ में मानव अधिकार 2005, ठाकुर छेदीलाल,शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय जांजगीर।
4. इंडिया टुडे - 3 जून 2009, 22 नवम्बर 2009।
5. समाचार पत्र - नवभारत एवं दैनिक भास्कर 17 नवम्बर 2010।
6. खंडेला, मानचंद - महिला सशक्तिकरण सिहवांत अविष्कार एवं व्यवहार 2008 पब्लिशर्स।
7. शर्मा रमा, मिश्रा एम.के.- महिला सशक्तिकरण अर्जुन पब्लिशिंग हाउस 2012।
8. आहुजा, राम -आधुनिक भारत की सामाजिक समस्याएं मीनाक्षी प्रकाशक मेरठ।
9. लता, मंजु -अनुसूचित जाति में महिला उत्पीड़न, अर्जुन पब्लिशिंग नई दिल्ली 2004।
10. नाटाणी पी.एन.-भारत में सामाजिक समस्याएं पोइन्टर पब्लिशर्स जयपुर 2000।

****

महिला सशक्तिकरण में बाधक सामाजिक कुप्रथाऐं

डॉ. निशा जैन *

प्रस्तावना – भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान पूजनीय एवं सम्मानजनक रहा है। निरन्तर भारतीय समाज में महिला की स्थिति श्रेष्ठ मानी गई है कहा गया है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता' यानि जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं। इतनी आदर्श परम्परा हमारे समाज में दिखाई देती है तो क्या कारण है कि भारतीय महिलाएं आज भी अशक्त समझी जा रही है। असहाय है एवं पुरूष के सहारे की आवश्यकता अनुभव करती है शायद हमारे समाज की सोच परम्परावादी है। महिलाओं को पुरूषों के समतुल्य न मानते हुए उन्हें देय समझा गया है इसमें बहुत कुछ सामाजिक कुप्रथाओं का भी योगदान है जो भारतीय स्त्री को **कमसर** बनाने में सहायक है। ग्रामीण, नगरीय एवं आदिवासी समाजों में नितप्रति जीवन में हम अनेक ऐसे रीतिरिवाजों एवं प्रयासों का पालन करते हैं जो महिलाओं के विकास एवं सम्मान में बाधक सिद्ध हो रहे हैं उनमें से प्रमुखत: इस प्रकार है –

1. **पर्दा प्रथा** – भारतीय संयुक्त परिवार में पर्दा प्रथा दिखाई देती है एवं स्त्री को हाथभर लंबा पर्दा करना होता है। यह स्त्री परिवार के महत्वपूर्ण निर्णयों में सहभागी नहीं बन जाती है। मूक प्राणी बनकर हर उचित एवं अनुचित निर्णय में अपनी सहमति देती रहती है उसे परिवार में पुरूषों के समक्ष बोलने की अनुमति नहीं होती है। नारी शिक्षित है समझदार है अपनी राय व्यक्त कर सकती है। किन्तु पर्दा प्रथा उसे दब्बू बना देती है। वह अशक्त बन जाती है। पर्दा प्रथा महिलाओं के स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है अत: इन कुप्रथाओं को समाज से उखाड़ फेंकने की आवश्यकता है। केवल पर्दा करने से ही बढ़े बुजर्गों के प्रति सम्मान प्रकट नहीं किया जा सकता वरन् विनम्रता से बात रखकर महिला अपनी स्थिति को मजबूत कर सकती है।

2. **दहेज प्रथा** – वर्तमान शिक्षित समाज में भी दहेज प्रथा हमें दिखाई देती है। विवाह की अनिवार्य शर्त कन्या की योग्यता न होकर उसके पिता द्वारा दी गई दहेज की राशि होती है। कई कन्याएं आज भी उचित जीवनसाथी प्राप्त करने से वंचित रह जाती हैं क्योंकि उसके पिता दहेज की व्यवस्था कर पाने में सक्षम नहीं होते हैं। अत: यदि महिलाओं को सशक्त बनाना है तो समाज को दहेज के अभिशाप से मुक्त करवाना होगा तभी नारी का आत्मविश्वास मजबूत होगा एवं वह सम्मानपूर्वक समाज में अपना अस्तित्व बना पाऐगी।

3. **बाल विवाह** – विवाह से जुड़ी एक अन्य प्रथा आज भी समाज में दिखाई देती है वह है बाल ववाह। शादियों के मौसम में हम आऐ दिन अखबार में पढ़ते हैं कि अनेक स्थानों पर सरकारी महकमों द्वारा बाल ववाह रूकवाये गये। जहाँ जानकारी प्राप्त हो जाती है वहाँ तो सरकारी कार्यवाही हो जाती है किन्तु जहाँ पता नहीं चल पाता है वहाँ अनेक अबोध कन्याऐं बचपन में ही विवाहित होकर अपना व्यक्तित्व विकास नहीं कर पाती है एवं पारिवारिक जवाबदारियों में बंध जाती है। यह कुप्रथा भी महिला सशक्तिकरण में बाधक है। नारी शिक्षित होकर युवावस्था में विवाह करती है तो उसका दृष्टिकोण भी परिवार के निर्णयों को प्रभावित करता है एवं वह नारी सशक्त नारी बन जाती है क्योंकि उसका व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो चुका होता है।

4. **बेमेल विवाह** – दहेज की अनिवार्यता, विलासिता की प्रवृति एवं समाज में धन की महत्वाकांक्षा ने इस प्रथा को बढ़ाने में मदद की है। कई सक्षम वृद्ध पुरूष निर्धन नवयौवता से विवाह रचा कर उसकी जिदंगी बरबाद कर देते हैं। बढ़ी उम्र का पति पत्नी के युवावस्था तक पहुँचते–पहुँचते मृत्यु को प्राप्त हो जाता है एवं वह स्त्री युवावस्था में ही असहाय हो अनाथों का जीवन यापन करने को बाध्य हो जाती है अत: महिला सशक्तिकरण में बेमेल विवाह समाज का कलंक साबित हो रही है।

5. **पुत्र संतान की अनिवार्यता** – पुरूष प्रधान समाज व्यवस्था में स्त्री पुरूष के प्रति भेदभाव निरंतर दिखाई देता है। परिवार में पुत्र संतान की चाह में कन्या भ्रूण हत्या की घटनाऐं निरंतर बढ़ती जा रही है। शासकीय कढ़े नियम कानून भी इस अपराधिक प्रवृति को रोक नहीं पा रहे हैं। जनगणना में स्त्री पुरूष अनुपात इस बात का पुख्ता प्रमाण है। महिलाऐं गर्भ में भी सुरक्षित नहीं है यह महिला सशक्तिकरण में सबसे बढ़ी बाधा है।

6. **बालिकाओं को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखना** – आज भी मध्यमवर्गीय एवं निर्धन परिवारों में कन्या शिक्षा का महत्व नगण्य समझा जाता है। पुत्र संतान की शिक्षा के प्रति माता–पिता उत्साहित होते हैं किन्तु कन्या को शिक्षित करने में उनकी रूचि कम होती है। बालिका महिला साक्षरता का प्रतिशत बालक/पुरूष साक्षरता से आधा है। विवेकानंद की मान्यता थी कि एक बालक को पढ़ाना एक व्यक्ति को पढ़ाना है जबकि एक बालिका को पढ़ाना एक परिवार को पढ़ाने के बराबर है क्योंकि माँ के रूप में वही परिवार की प्रथम शिक्षिका होती है। यदि महिला को सशक्त बनाना है तो हमें नारी शिक्षा को प्रोत्साहन देना होगा जिससे उसमें अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आऐगी एवं वह अन्याय, अत्याचार एवं शोषण के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद कर पाऐगी।

7. **विधवा के प्रति सामाजिक निर्योग्यताऐं** – आज ग्रामीण एवं नगरीय पढ़े लिखे समाजों में मांगलिक कार्यों के अवसर पर विधवा स्त्री को अपशगुनी मान कर पीछे रखा जाता है यह स्त्री का अपमान है एवं महिला सशक्तिकरण के खिलाफ है। जिस स्त्री ने अपने पति की असामयिक मृत्यु होने पर परिवार की जिम्मेदारी उठायी वही स्त्री अपनी संतानों के विवाह के अवसर पर पीछे क्यों रहे? क्या उसे उस आनंद का भागीदार बनने का हक नहीं है? इस कुप्रथा ने स्त्री को अशक्त बनाया है यदि हमें महिला सशक्तिकरण का प्रयास करना है तो विधवा महिला को भी समाज में सम्मान देना होगा।

* प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, किला भवन, इन्दौर (म.प्र) भारत

8. डायन प्रथा – आदिवासी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में डायन प्रथा प्रचलित है जिसमें विधवा एकाकी महिला को डायन मानकर उसके प्रति समाज को भयभीत किया जाता है एवं उस महिला के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। उस महिला का सामाजिक तिरस्कार एवं बहिष्कार उसे असुरक्षित बना देता है, वह डरी, सहमी जीवन यापन करती है, समाज का सामना नहीं कर पाती है एवं घुट–घुट कर जीवन यापन करने को मजबूर हो जाती है। आज के शिक्षित समाज में हमें इस भ्रम को दूर करने की आवश्यकता है कि कोई भी महिला डायन नहीं होती है वह भी सम्मानपूर्वक जीवन जीने की हकदार है। इस प्रथा को समाप्त कर असहाय नारी को सशक्त बनाया जा सकता है।

9. देवदासी प्रथा – महिला सशक्तिकरण में बाधक एक ऐसी ही प्रथा है देवदासी प्रथा जहाँ कम आयु की विधवा स्त्रियां धार्मिक स्थलों पर देवदासी का जीवन यापन कर रही हैं वहाँ उनका मनचाहा शोषण धर्म के ठेकेदारों द्वारा किया जाता है तथा वे महिलाएं लाचारी का जीवन यापन कर रही हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक कुप्रथाएं एवं अंधविश्वास आज भी समाज में व्याप्त है जो महिलाओं की स्वतंत्रता, सम्मान एवं आत्मविश्वास में बाधक है।

सुझाव –

1. कानूनों को कड़ाई से पालन हो।
2. सामाजिक जागरूकता लाने के ठोस प्रयास हो।
3. महिला शिक्षा का बढ़ावा मिलें।
4. रोजगार में महिलाओं को आरक्षण हो।
5. महिलाओं के प्रति मानवीय दृष्टिकोण हो।
6. सामाजिक कुरूतियों से समाज मुक्त हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. नवीन शोध संसार, आई.एस.एस.एन. 2320–8767
2. योजना पत्रिका।
3. इण्डिया टुडे।
4. कुरूक्षेत्र।
5. नवभारत टाईम्स।
6. पत्रिका।
7. दैनिक भास्कर।

****

वृद्धावस्था एक नजर : समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

डॉ. उमा लवानिया *

शोध सारांश –अन्तरा पीढ़ी एवं अंतर–पीढ़ी संघर्ष की भॉति वृद्धावस्था का संबंध भी आयु समूह से है। जन्म से मृत्यु तक मानव का जीवन शारीरिक विकास की एक प्रक्रिया है। जो कुछ पूर्व निर्धारित चरणों से होकर गुजरता है। ये चरण है शैशव अवस्था जिसमें जन्म से लेकर किशोरवस्था तक की प्रक्रिया तीव्र विकास या निर्माण की प्रक्रिया है। मानव शरीर असंख्य कोशिकाओं का समूह है। आयु में वृद्धि के साथ ही कोशिकाओं का क्षरण प्रारंभ हो जाता है। प्रत्येक कोशिका अपनी प्रकृति में कुछ समय तक सक्रिय रहने के बाद अपनी विशिष्टताओं को खोने लगती है, निष्क्रिय होने के पश्चात् मृत प्रायः हो जाती है। इन कोशिकाओं से बने मानवीय शरीर की भी यही स्थिति होती है। एक अवस्था वह आती है जब शरीर अपनी जैवकीय विशेषताएँ जैसे–अंगों, ज्ञानेन्द्रियों की सक्रियता सबलता, सोचने–समझने की क्षमता आदि कम होकर बहुत ही क्षीण हो जाती है। नई पीढ़ी जो स्वंय कल वृद्धावस्था के शिकार होगें, लेकिन अपने व्यवहार से वह चाहे तो आज बनाए रखने का उपाय कर सकते है और नई पीढ़ी को प्रफुल्लता के साथ जीवन के प्रति उसकी मान्यताओं और जीवन मूल्यों को भी नई दिशा मिलेगी इस प्रकार ढलती आयु में उम्र के इस पड़ाव में भी नए स्तर का आनंद उठाया जा सकता है। आध्यात्मिक और पारमार्थिक गतिविधियाँ अपनाकर जीवन के उतरार्द्ध का इतना मृदुल और सरल बनाया जा सकता है मानो नवीन जन्म ग्रहण किया है। ऐसी दशा में अतीत को खोने का पश्चाताप नहीं करना पड़ता, बल्कि उससे अधिक आनंदमयी विभूतियां उपलब्धियां प्राप्त करने का सुकून रहता है।

प्रस्तावना – अन्तरा पीढ़ी एवं अंतर–पीढ़ी संघर्ष की भॉति वृद्धावस्था का संबंध भी आयु समूह से है। जन्म से मृत्यु तक मानव का जीवन शारीरिक विकास की एक प्रक्रिया है। जो कुछ पूर्व निर्धारित चरणों से होकर गुजरता है। ये चरण है शैशव अवस्था जिसमें जन्म से लेकर किशोरवस्था तक की प्रक्रिया तीव्र विकास या निर्माण की प्रक्रिया है। मानव शरीर असंख्य कोशिकाओं का समूह है। आयु में वृद्धि के साथ ही कोशिकाओं का क्षरण प्रारंभ हो जाता है। प्रत्येक कोशिका अपनी प्रकृति में कुछ समय तक सक्रिय रहने के बाद अपनी विशिष्टताओं को खोने लगती है, निष्क्रिय होने के पश्चात् मृत प्रायः हो जाती है। इन कोशिकाओं से वने मानवीय शरीर की भी यही स्थिति होती है। एक अवस्था वह आती है जब शरीर अपनी जैवकीय विशेषताएँ जैसे–अंगों, ज्ञानेन्द्रियों की सक्रियता सबलता, सोचने–समझने की क्षमता आदि कम होकर बहुत ही क्षीण हो जाती है और कुछ समय के बाद यह समाप्त हो जाती है। यह वृद्धावस्था कहलाती है। जब सोचने समझने की तथा इंद्रियों की क्षमता कम हो जाती है तो यह वृद्धावस्था का लक्षण है। वृद्धावस्था जीवन प्रक्रिया का अंतिम चरण है यह शारीरिक एवं समाजिक दृष्टि से हास का दौर है जिसमें न व्यक्ति केवल शारीरिक व मानसिक रूप से कमजोर होता बल्कि सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से शक्तिहीन व संदर्भ हीन भी होता जाता है। मनु स्मृति में शरीरिक लक्षणों के अनुसार इसकी व्याख्या यह कहकर की गई थी कि जब बाल सफेद हो जाए चेहरे पर झुर्रिया पड़ जाएं पुत्र के पुत्र हो जाएं तो गृहस्थ को गृहस्थी त्यागकर वानप्रस्थी हो जाना चाहिए।

वृद्ध उस व्यक्ति को कहा जाता है कि जिसने 60 वर्ष की आयु पूरी कर ली है। कुछ विद्वानों ने वृद्धों को दो श्रेणियों में विभाजित किया है–युवा वृद्ध (60 से 75 के मध्य) तथा वृद्ध (75 वर्ष से अधिक) वृद्धावस्था के मानदण्डों में दो प्रकार के मानदण्ड माने जा सकते है –

शारीरिक वृद्धावस्था – प्रजनन क्षमता लुप्त हो जाना पुरूषों में यह 60 वर्ष के बाद और स्त्रिओं में रजोनिवृति के लुप्त होने के बाद माना जाता है –

- बालों का सफेद होना
- त्वचा पर झुरियां पड़ना
- मॉस पेशियों का टकराना
- शरीरिक क्षमता कम होना और रोग ग्रस्त होना
- दॉतों का क्षरण, दृष्टि का कमजोर होना तथा ज्ञानेन्द्रियों का दुर्बल पड़ना

मानसिक वृद्धावस्था –

- स्मरण शक्ति का कमजोर होना
- जीवन के प्रति उत्साह में कमी
- संवेगों आक्रोश, क्रोध, ईर्ष्या और उत्तेजना आदि का घटना
- अकेले व आत्म केन्द्रित होते जाना
- बच्चों जैसी प्रवृति

उपरोक्त लक्षण सभी वृद्धों में आवश्यक रूप से पाये जाये यह जरूरी नहीं है। कई लोग बीमारियों व विषम परिस्थितियों के कारण कम आयु में ही उपरोक्त लक्षणों से ग्रसित हो जाते है। कुछ शरीर पर अधिक ध्यान देने के कारण खान–पान का ध्यान रखने सुखद जीवन व्यतीत करने के कारण अधिक आयु के हो जाने के बाद भी वृद्ध शारीरिक लक्षणों वाले नहीं दिखाई देते किन्तु शरीर एक निश्चित समय के बाद शिथिल होता ही है भले ही किसी का अपेक्षाकृत कम आयु में हो या किसी का अधिक आयु में ।

आज हमारे जन्मदाता एक विकट सामजिक समस्या के भय में चिन्तनीय हो गये है। इसमें बड़ी विदम्बना और क्या हो सकती है जिस देश की संस्कृति में 'पित् देवो भव' और माता को स्वर्ग से भी अधिक गरिमा प्रदान की। 'जननी' और – 'जनक' के प्रति संतान के कुछ अनिवार्य कर्तव्य थे, जिन्हें पितृ ऋण एवं मातृ ऋण माना जाता या इन ऋणों को चुकाए विना मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती वृद्धावस्था जीवन का अंतिम किंतु महत्वपूर्ण पड़ाव है यह वर्तमान जीवन की संचित आस है और अगले जीवन की तैयारी है। जीवन भर के समस्त अनुभव यहॉ एकाकार हो जोते है। कडवी–मीठी

* सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला – सागर (म.प्र.) भारत

स्मृतियां पल-पल लहराती रहती है। यह अपने विषय में गंभीर चिंतन मनन की अवस्था है।

जीवन को पूर्वाद्ध भौतिक संपदा-संपत्ति अर्जन के लिए पर्याप्त है। उत्तरार्द्ध को वनप्रास्थ एवं संचार के लिए रूप में समाज के लिए समर्पित करना चाहिए। यह भारतीय संस्कृति की सुनिश्चित दिव्य दैवीय परम्परा है। इसमें गहरा मनोविज्ञान है, जिसमें समस्त समस्याओं का सार्थक समाधान समाहित है।

वृद्धो के साथ सम्मानयुक्त व्यवहार किया जाए उन्हें समुचित महत्व दिया जाए तो वे बहुत अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते है। अपने जीवन के अनुभवों से परिवार को मार्ग दर्शन दे सकते है। विपत्ति के समय में दुर्भाग्य की काली घटाओं के घिरे होने पर परिवार को स्नेह, साहस एवं संबल दे सकते हैं। उनके आशा एवं सांत्वना के स्वरों से कष्टों को सहन करने की अदभुत शक्ति मिलती है।

विश्व में वृद्धों की जनसंख्या तेजी से बढ़ी है। इसका प्रमुख कारण शिशु मृत्यु दर में कमी, चिकित्सा विज्ञानों में प्रगति तथा स्वास्थ्य की देखरेख में सुधार संबंधी सुंविधाओं में वृद्धि हुई है। भारत में वृद्ध लोगों को अब 'वरिष्ठ नागरिक' अथवा 'सीनियर सिटिजन' कहा जाने लगा है। वृद्धजनों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। खाने पीने से लेकर इलाज के लिए दवा, मनोरंजन के इन सब साधनों के बावजूद उनके मन में असंतोष है घुटन नियमित दिनचर्या का शिकंजा है, अपनापन का अभाव है। उन्हें चाहिए अपनी संतान का साथ उन्हें चाहिए स्वतंत्र जीवन जीने का परिवेश उन्हें ऐसा व्यक्ति चाहिए जो उनकी बात सुने और अमल करें। इनकी समस्याओं का समाधान कौन करेगा? वृद्धावस्था में मानसिक और शारीरिक रोग एक दूसरे से जुडे हुए रहते है। एक का प्रभाव दूसरे पर पड़े बिना नहीं रहता है।

परम्परागत रूप से समाज की यह रीति रही है कि माता-पिता बच्चों की देखरेख करते हैं। पितृसत्तामक परिवार जो दुनिया के अधिकांश समाजों में है, में लड़का और बहू तथा मातृसत्तामक परिवारों में लड़की और दामाद वृद्धों का दायित्व वहन करते है। यह रीति तब तक तो ठीक से चली जब तक कि परिवार एक जगह रहता था और अगर दूसरी जगह जाता भी था तो पूरा परिवार ही जाता था। लेकिन औद्योगिरकरण के बाद स्थिति बदल गई आगे चलकर विशेष कर उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के दौर में आज हालत यह हो गई है कि किसी वृद्ध दम्पति के यदि चार बच्चें है तो उनमें शायद ही कोई उसके पास रहता है। किन्ही प्रकरण में तो हालत यह है कि एक लड़का-बहू अमेरिका में दूसरा दुबई में एक लड़की दामाद आस्ट्रेलिया में तो दूसरे कनाड़ा में हैं। वृद्धजनों का आपस में विचार विमर्श, विचारों का आदान-प्रदान से भावनात्मक एकता को मजबूती मिलती है। बजुर्ग हमारे समाज के लिए के सिर के समान है। सिर यानी व्यक्ति की पहचान है। सिर काट दिया जाये तो पहचान गायब हो जाएगी, और हमारे समाज की पहचान आज इसलिए गुम होती जा रही है क्योंकि हमने अपने सिर को धड़ से अलग कर दिया है वृद्धों के प्रति हमें जागरूक रहना है ऐसे समाज के निर्माण के लिए कदम उठाना है जिसमें युवाओं व वृद्धों में परस्पर सहयोग हो तथा दोनों एक दूसरो की देखरेख ठीक प्रकार से कर सकें।

किसी भी समस्या का निराकरण मुश्किल नहीं है। आवश्यक है केवल सकारात्मक सोच की, युवा जन वृद्ध जनों को आर्थिक बोझ न समझें। वृद्धजनों की सेवा करना हर एक व्यक्ति का नैतिक कर्तव्य है। इस कर्तव्य के पालन से बचा नहीं जा सकता। वृद्ध होना नियति है वृद्धावस्था जीवन का आखिरी पड़ाव है, इस बात का अहसास आज के युवाओं को होना चाहिए क्योंकि किसी दिन इस स्थिति का उन्हें भी सामना करना है। जो परिस्थिति आज वे अपने माता-पिता को दे रहे है।, कल उनके बच्चे भी उनके साथ वैसा ही बर्ताव कर सकते है।

वृद्धजन सम्मान, संरक्षण, प्रेम, सेवा सुश्रुषा आदि चाहते हैं। वे परिवार में अपनी सक्रिय उपस्थिति और भागीदारी चाहते हैं। नई पीढ़ी को इस मनोवृत्ति को समझते हुए वृद्धों के प्रति सहनशील व्यवहार धारण करना चाहिए। साथ ही इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि जिस प्रकार वे अपने बच्चों से अपेक्षाएं रखते है। वैसी ही अपेक्षाएं आपके माता-पिता ने भी उनसे रखी है। माता-पिता तो भगवान की तरह होते है जिनकी सेवा करो तो ढेरों आशीर्वाद मिलते है और जीवन सफल बनता है। व्यक्ति वही पाता है। जो वह बोता है और इसलिए माता-पिता की सेवा करना, उनका ध्यान रखना, उनके अनुभवों से सीखना, उन्हें सम्मान देना, उनसें अच्छा बर्ताव करना यही तो वे मुख्य बातें है। जिनके द्धारा बच्चे स्वयं को धन्य कर सकते हैं। क्योंकि माता-पिता का जो भी ऋण बच्चों पर होता है, उसे कुछ भी करने पर चुकाना आसान नहीं होता। अपनेपन का ऋण अपनापन देकर ही चुकाया जा सकता है।

वृद्धों को भी चाहिए कि वे वर्तमान समय के अनुकूल बनकर अपनी प्रत्याक्षाओं को सहज स्तर पर ले आएं। सुख के तमाम कारणों की अवहेलना कर नकारात्मक दृष्टिकोण से बहू-बेटे के अवगुणों को देखने की बजाय सकारात्मकता से उनके गुणों और वैश्वीकरण के इस कठिन दौर में उनके जीवन को सरल करने का प्रयास करें। दोनो पीढ़ियां धेर्य और नैतिकता को संम्बल बनाकर जीवन मूल्यों को विकृत होने से बचाएँ रखें तो आज की सी समास्याएं जन्म ही नहीं लेगी। नई पीढ़ी जो स्वंय कल वृद्धावस्था के शिकार होगें, लेकिन अपने व्यवहार से वह चाहे तो आज बनाए रखने का उपाय कर सकते है और नई पीढ़ी को प्रफुल्लता के साथ जीवन के प्रति उसकी मान्यताओं और जीवन मूल्यों को भी नई दिशा मिलेगी इस प्रकार ढलती आयु में उम्र के इस पड़ाव में भी नए स्तर का आनंद उठाया जा सकता है। आध्यात्मिक और पारमार्थिक गतिविधियाँ अपनाकर जीवन के उतरार्द्ध का इतना मृदुल और सरल बनाया जा सकता है मानो नवीन जन्म ग्रहण किया है। ऐसी दशा में अतीत को खोने का पश्चाताप नहीं करना पड़ता, बल्कि उससे अधिक आनंदमयी विभूतियां उपलब्धियां प्राप्त करने का सुकून रहता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भारतीय समाज-डॉ अशोक डी पारिल, डॉ. एस.एस भदौरिया
2. आधुनिक समाजशास्त्रीय निबंध-एम.एन. सिंह
3. भारतीय समाज मुद्दे एवं समस्याएं - डॉ. धर्मवीर महाजन, डॉ. कमलेश महाजन
4. समाजशास्त्र - रामगोपाल सिंह
5. रचना-मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
6. अखण्ड ज्योति अगस्त 2014
7. युग निर्माण योजना- अगस्त 2008 , सितम्बर, अक्टूबर 2014
8. रेल राज भाषा - अप्रैल-जून 2008

****

अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की पंचायती राज में भागीदारी एवं उनका सामाजिक, आर्थिक सशक्तिकरण

डॉ. अरविन्द पाल * चमका गहलोत * *

प्रस्तावना – पंचायती राज व्यवस्था लोकतंत्र की प्रथम पाठशाला है। लोकतंत्र मूलत: विकेन्द्रीकरण पर आधारित शासन व्यवस्था होती है। शासन की ऊपरी सतहों पर कोई भी लोकतंत्र तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि निचले स्तर पर लोकतांत्रिक मान्यताएँ एवं मूल्य शक्तिशाली नहीं हों। लोकतंत्रीय राजनीतिक व्यवस्था में पंचायती राज व्यवस्था ही वह माध्यम है जो शासन को सामान्य जन तक, सामान्य जन के दरवाजे तक लाता है। पंचायती राज संस्थाऐं स्थानीय जन सामान्य को शासकीय कार्य में भागीदारी एवं हिस्सेदार बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है और इस भागीदारी की प्रक्रिया के माध्यम से लोगों को प्रत्यक्षत: एवं परोक्ष रूप से शासन एवं प्रशासन का प्रशिक्षण स्वत: होता रहता है। स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण प्राप्त कर स्थानीय जन प्रतिनिधि ही कालांतर में विधानसभा एव संसद का प्रतिनिधित्व कर राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान करते हैं।

वर्तमान पंचायती राज प्रणाली में महिला आरक्षण होने से अनूसूचित जनजाति की महिलाओं ने योजनाबद्ध एवं सही निर्णय लेने और उनके कार्यान्वयन के कारण ग्रामीण विकास में एक ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है। निर्वाचित महिलाओं द्वारा ग्रामीण पंचायतों में अधिक भागीदारी लेने से वे ग्रामीण विकास की भिन्न-भिन्न योजनाओं को लागू करने एवं सही निर्णय लेने में सुचारू रूप से हिस्सा लेने योग्य बन रही है। अनुसूचित जनजाति की महिलाओं से संबंधित समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त करने के लिए उनको एक प्रकार का अवसर और एक मंच मिल जाएगा तथा अपनी अर्हताए निर्धारित करने में अपनी इच्छाएं व्यक्त कर सकती हैं, यहाँ तक की पुरूष सदस्यों को अधिक सुचारू रूप से प्रभावित भी कर सकती है। महिला आरक्षण उनको निचले स्तर पर सक्रिय राजनीति में प्रवेश पाने का एक माध्यम है। इससे ग्रामीण अनुसूचित जनजाति की महिलाओं को अपने अधिकारों को जानने का एक अच्छा अवसर प्राप्त होता है।

पंचायत – राज व्यवस्था में महिलाओं की प्रस्थिति – भारतीय महिलाओं की अधिकारिक प्रस्थिति को ऊँचा उठाने, उनके सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन स्तर को आदर्श स्वरूप देने, जागरूकता, साक्षरता आदि में वृद्धि करने के उद्देश्य से शासन की सबसे छोटी इकाई में भागीदार किया गया जैसा कि अनुच्छेद 243 घ (1) के अनुसार प्रत्येक पंचायत में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित होंगे साथ ही प्रत्येक पंचायत चुनाव में प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरे गये स्थानों की कुल संख्या का 1/3 स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित रहेंगे।

अध्ययन के उद्देश्य –

1. अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की पंचायती राज में भागीदारी के स्तर का अध्ययन करना।
2. पंचायती राज व्यवस्था में अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की भागीदारी का उनके सामाजिक आर्थिक विकास एवं सशक्तिकरण पर प्रभाव का अध्ययन करना।
3. पंचायती राज संस्थाओं में भागीदारी का अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के नेतृत्व पर प्रभाव का अध्ययन करना।
4. अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की विकास एवं सशक्तिकरण के प्रति पुरूष वर्ग एवं शासकीय लोक सेवकों के दृष्टिकोणों का अध्ययन करना।
5. अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की पंचायती राज संस्थानों में भागीदारी एवं सशक्तिकरण में आने वाली बाधाओं का अध्ययन करना।

अध्ययन का क्षेत्र– मध्यप्रदेश का धार जिला

अध्ययन का समग्र– मध्यप्रदेश के धार जिले की पंचायती राज संस्थाओं में चुनी हुई महिला प्रतिनिधि अध्ययन का समग्र है।

अध्ययन की इकाई– पंचायती राज से चुनी हुई 50 महिला जनप्रतिनिधि अध्ययन की इकाई है।

निदर्शन प्ररचना– शोध अध्ययन हेतु उद्देश्य निदर्शन विधि का उपयोग किया, जिसमें अध्ययन हेतु ही विकासखण्ड के (5 गांवों में) 50 अनुसूचित जनजाति महिलाओं का चयन अध्ययन के लिए किया गया है।

अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की पंचायती राज में भागीदारी एवं उनका सामाजिक आर्थिक सशक्तिकरण से संबंधित निष्कर्ष– पंचायती राज में अनुसूचित जनजाति की महिला प्रतिनिधियों के आरक्षण के प्रावधान से पंचायतों में उनकी भागीदारी सुनिश्चित हुई है। महिला आज समाज में अपनी एक अलग पहचान बनाना चाहती है। वह हर क्षेत्र में पुरूष को सहयोग देना चाहती है। नारी का उत्थान करने और उसे समाज में उचित स्थान दिये जाने के लिए हमेंशा से ही केन्द्र एवं राज्य शासन के द्वारा समय-समय पर तरह-तरह के कानूनों का क्रियान्यवन हो रहे हैं। भारत मेंग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा एवं तकनीकी के अभाव के कारण अनुसूचित जनजाति की महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति सक्षम नहीं है और महिलाएँ सशक्तिकरण के ऊपर प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है।

पंचायती राज में अनुसूचित जनजाति महिलाओं की भागीदारी– महिलाओं को राजनीतिक रूप से सबल बनाने हेतु सर्वप्रथम अप्रैल 1993 में 73 वां संविधान संशोधन द्वारा त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं एवं स्थानीय निकायों में प्रत्येक स्तर पर महिला सदस्यों के लिए एक तिहाई सीटें आरक्षित कर दी गई है ताकि देश के राजनीतिक जीवन में वह सक्रिय भागीदारी निभा सके। भारत देश के ऐसे कई राज्य जहाँ पंचायत राज

* प्राचार्य, विभागाध्यक्ष(समाजशास्त्र) पी.एम.बी. गुजराती कला एवं विधि महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी (समाजशास्त्र) देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

संस्थाओं में एक तिहाई पद आरक्षण को बढ़ाकर 50 प्रतिशत कर दिया गया है। राजस्थान सरकार ने यह पहला कदम उठाकर इस व्यवस्था का क्रियान्यवन कर पूरे देश में एक सबक दिया जिससे देश के सभी प्रान्तों में अनुसूचित जनजाति की महिलाएँ आगे कदम बढ़ाते हुए पंचायतों के सभी स्तरों पर वर्तमान में प्रतिनिधियों के रूप में हजारों महिलाएँ अपनी अहम भूमिकाओं का निर्वहन कर रही है।

तालिका क्रमांक –1

पंचायती राज में अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की भागीदारी की स्थिति

क्र.	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1	अच्छी	18	36
2	साधारण	32	64
	योग	50	100

महिला सशक्तिकरण– महिला सशक्तिकरण से आशय महिला को जागरूक करके अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाना, जिससे महिला–पुरूष समानता का लक्ष्य हासिल कर सके। महिला सशक्तिकरण ऐसी प्रक्रिया है, जिसने महिला को पुरूषों के प्रति होने वाले सभी प्रकार के भेदभावों को समाप्त करके उन्हें स्वरोजगार एवं सामाजिक , आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक और स्वास्थ्य आदि क्षेत्र में महिला –पुरूष में समानता स्थापित करना।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रोफेया अर्मत्य सेन ने अपनी पुस्तक " Indian Economics Development and social Opportunity" में लिखा है कि महिला सशक्तिकरण से न केवल महिलाओं के जीवन में निश्चित रूप से सकारात्मक असर पड़ेगा बल्कि पुरूषों और बच्चों को भी इनसे लाभ होगा।

तालिका क्रमांक – 2

अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की पंचायती राज में पूर्ण भागीदारी न हाने के कारण का विवरण

क्र.	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1	पारिवारिक समस्याऐं	26	52
2	सामाजिक समस्याऐं	10	20
3	आर्थिक समस्याऐं	8	16
4	अशिक्षा	6	12
	योग	50	100

तालिका क्रमांक 3

पंचायती राज संस्थानों में अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की भागीदारी में आने वाली बाधाऐं

क्र.	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1	सामाजिक रीति रिवाज	24	48
2	निरक्षरता	17	34
3	संकोच	9	18
4	अन्य	00	00
	योग	50	100

अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की पंचायती राज में भागीदारी एवं सशक्तिकरण की प्रमुख बाधाऐं–

यह अक्षरश: सत्य है कि संवैधानिक प्रावधानों से पंचायती राज में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। परंतु अभी भी उनके समक्ष कई कठिनाईयाँ उपस्थित है जिनमें प्रमुख है–

- **महिलाएँ, पुरूषों के हाथ की कठपुतलियाँ –** जिन क्षेत्रों में महिलाओं के लिए पद आरक्षित होते है, वहां, उन पदों पर पुरूष चुनाव नहीं लड़ सकते है, अत: महिलाओं को कठपुतली के रूप में चुनाव में खड़ा कर दिया जाता है।
- **महिला प्रतिनिधियों पर अविश्वास प्रस्ताव की मार –** पुरूष वर्ग द्वारा महिला प्रतिनिधियों पर अविश्वास प्रस्ताव की मार महिला वर्ग के विकास में बहुत बड़ी बाधा बनी हुई है।
- **महिला अधिकारों के प्रति जागरूकता का अभाव –** महिला में अपने पद से संबंधित जागरूकता का अभाव अभी भी बना हुआ है।
- आत्मविश्वास का अभाव एवं पुरूषों से प्रतिस्पर्धा
- **पारिवारिक दायित्व एव समाज में दूसरा दर्जा –** भारतीय समाज में पुरूष को पहला एवं स्त्री को दूसरा दर्जा दिया गया है किंतु दायित्वों के निर्वाह में स्त्री को आगे कर दिया जाता है।
- **रूढ़िवादिता एवं सामाजिक बंधन –** वर्तमान में स्त्री के साथ बहुत सी रूढ़िवादी विचारधाराओं व सामाजिक बंधनों को जोड़ दिया गया है, जो उसकी उन्नति में बाधक हैं।
- **स्वंय निर्णय क्षमता का अभाव –** आज महिलाओं को विवाह संबंधी, शिक्षा संबंधी व अपने हितों संबंधी निर्णय लेने की इजाजत नहीं दी जाती। यह भेदभाव पूर्ण व्यवहार उसे विकास में पीछे करता है।
- **सरकारी औपचारिकताओं की पूर्ति में परेशानियाँ –** महिलाएँ चूंकि वर्तमान की भ्रष्ट औपचारिकताओं से दूर रहती है अत: उन्हें विभिन्न परेशानियों को सामना करना पड़ता है जिससे उनके द्वारा निर्मित प्रस्ताव, कार्यक्रम, योजनाऐं अटके पड़े रहते है।

सुझाव –

1. ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य की जानी चाहिए।
2. पंच, सरपंच, जनपद अध्यक्ष आदि पदों के लिए शैक्षणिक योग्यता निर्धारित की जानी चाहिए।
3. पंच, सरपंच आदि चुने हुए प्रतिनिधियों का वर्ष में कम से कम एक बार प्रशिक्षण कार्यक्रम, जागरूकता शिविर अवश्य होना चाहिए
4. पंचायत नेतृत्व में सामूदायिक भागीदारी को सुनिश्चित करना चाहिए।
5. पुरूषों में महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण, सोच, विचारधारा को बदला जाना चाहिए

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. मैत्यु जार्ज, (2003) भारत में पंचायती राज परिप्रेक्ष्य और अनुभव, वार्णी प्रकाशन नई दिल्ली।
2. जैन, महेन्द्र, (2008) , प्रतियोगिता दर्पण 211 ए.स्वेदशी बीमा, नगर आगरा।
3. सिसोदिया यतीन्द्रसिंह (2000), पंचायत राज एवं अनुसूचित जाति महिला नेतृत्व, रावत पब्लिकेशन जयपुर।
4. जैन व निकुंज, (1995) पंचायती राज व्यवस्था एक दृष्टिकोण निकुंज प्रकाशन , साईनाथ कालोनी।
5. चौहान आरएस.(1989) , पंचायती राज, सत्ता विक्रेन्द्रीकरण का माध्यम रघुनाथ प्रिंटिग प्रेस , आगरा।
6. त्रिपाटी, राजमार्ग, पंचायती राज व्यवस्था में दलितों का सशक्तिकरण, कुरूक्षेत्र दिसम्बर 2001

6. खन्ना संतोष, पंचायती राज में महिलाओं की भागीदारी का अर्थ, योजना 31 जुलाई 1989 प्रकाशन विभाग नई दिल्ली।
7. कैथवास सावित्रि नये पंचायती राज में महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी कुरूक्षेत्र मई 1997
8. महिला पंचायती राज संस्थाओं की वित्त समस्या एवं समाधान कुरूक्षेत्र, अप्रैल 1995
9. चक्रवर्ती पुरूर्षोत्तम भट्ट, (2006-07) यपर्यावरण चेतना मध्यांचल प्रकाशन प्रा.लि. भोपाल।
10. कोरव, व्हीएस.(1998) 'मध्यप्रदेश पंचायत राज अधिनियम 1993' द्विवेदी लॉ हाउस ग्वालियर
11. त्रिवेदी, हरिराम (1990) पंचायती राज और लोकतंत्र पाण्डू लिपि प्रकाश , ई.115 कृष्ण नगर, दिल्ली
12. वर्मा, रूपंचद - भारतीय जनजातियाँ अतीत के झरोखे से, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
13. प्रतियोगिता दर्पण अतिरितांक - 2012-13
14. सिंह, डॉनिशांत - भारतीय महिलाऐं, एक सामाजिक अध्ययन, ओमेंगा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2009
15. महिला एवं बाल विकास विभाग, जिला धार, कार्यालय से प्राप्त महत्वपूर्ण शोध आँकड़े एवं महत्वपूर्ण तथ्य
16. मप्र.सरकार के वेब पोर्टल से प्राप्त जानकारियाँ
17. दैनिक भास्कर , जनसत्ता, इंडिया टुडे, क्रानिकल पत्रिकाओं से प्राप्त जानकारी

****

उच्च शिक्षा चुनौतियाँ एवं संभावनाऐं

डॉ. ज्योति मेहता *

शोध सारांश – प्रदेश के लोकप्रिय एवं यशस्वी मुख्यमंत्री माननीय श्री शिवराजसिंह जी चौहान द्वारा लोक सेवाओं के गारंटी अधिनियम 2010 पारित कर नागरिकों के अधिकारों को सशक्त बनाकर अभिनव कार्य किया हैं। आमजन को याचनाभाव से मुक्त कर सशक्त बना दिया हैं एवं लोक सेवा में कोताही

शब्द कुंजी – लोक सेवा, अधिसूचित, हितग्राहियों, पदाभिहित, शास्ति ।

प्रस्तावना – उच्च शिक्षा का विकास देश के विकास एवं समाज की उन्नति का द्योतक है। उच्च शिक्षा की गुणवत्ता से हम देश में हो रहे अनेक पहलुओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इसी संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के दस्तावेज में कहा गया है, 'विशिष्ट ज्ञान और कुशलताओं के प्रसारण के द्वारा उच्च शिक्षा राष्ट्र के विकास में सहायक बनती है। इसलिए सामाजिक जीवन में उसकी निर्णायक भूमिका है, शैक्षिक पिरामिड के शीर्ष पर होने के नाते समूची शिक्षा व्यवस्था के लिए अध्यापक तैयार करने में भी इसका महत्वपूर्ण स्थान है।' निश्चित रूप से आजादी के बाद उच्च शिक्षा के क्षेत्र में एक क्रांति आई है। अपनी 600 यूनिवर्सिटीज और 32,000 कॉलेजों के साथ भारत के उच्च शिक्षा का फिलहाल चीन और अमेरिका के बाद दुनिया में तीसरा सबसे बड़ा स्थान है, आल इंडिया एसोसिएशन ऑफ टीचर एजुकेटर्स (ए.आई.ए.टी.ई.) के अनुसार आज करीब 1.7 करोड़ छात्र भारतीय यूनिवर्सिटीज में हर साल प्रवेश के लिए आते हैं जो पूरी दुनिया में यूनिवर्सिटीज के कुल रजिस्ट्रेशन का अकेले 10 फीसदी बैठता है। इसके बावजूद चीन ने जहाँ 2010 में अपने सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) के डेढ़ फीसदी शिक्षा पर खर्च किया और अपनी सेंट्रल यूनिवर्सिटीज की संख्या बढ़ाकर 2,300 के पार ला दी, उसी साल भारत में सरकार को शिक्षा पर 0.5 फीसदी से भी कम खर्च किया और पिछले तीन साल में यहाँ एक भी सेंट्रल यूनिवर्सिटीज नहीं खोली गई है फिलहाल शिक्षा से जुड़े 12 विधेयक संसद में अटके पड़े हैं और नए इंस्टीट्यूटस को खोलने और पुरानों को मान्यता दिलाने का काम अब तक पूरे नहीं हो पा रहे है। शिक्षा अधिकरण विधेयक 2010 के संबंध में मानव संसाधन विकास मंत्रालय से जुड़ी संसदीय समिति की रिपोर्ट के अनुसार शिक्षा समवर्ती सूची का विषय होने के कारण राज्य शिक्षा अधिकरणों की स्थापना के प्रस्ताव पर सभी राज्य सरकारों और संघ राज्य क्षेत्रों को शामिल करते हुए परामर्श किये जाने की जरूरत है। समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि प्रस्तावित विधेयक के संबंध में विचार-विमर्श की प्रक्रिया संतोषजनक नहीं है, और पूरी प्रक्रिया जल्दबाजी में की गई प्रतीत होती है, जिसमें महत्वपूर्ण घटकों की उपेक्षा की गई या उनकी प्रतिक्रिया नहीं मिलने को उनकी सहमति मान ली गई। भारत के 1.2 अरब लोगों में से अनुमानित रूप से आधे 25 वर्ष से कम उम्र के है, जिस कारण जन-संसाधन के लिहाज से अन्य देशों पर एक महत्वपूर्ण बढ़त प्राप्त होती है, लेकिन इतने युवाओं को शिक्षित करने व कार्यकुशल बनाने के लिए हमारे पास पर्याप्त संस्थान नहीं है, जहाँ शैक्षिक संस्थाओं की कम संख्या एक समस्या है, वहीं उनकी गुणवत्ता का सवाल इससे भी महत्वपूर्ण है। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि हमारा आर्थिक परिदृश्य तेजी से बदल रहा है, लेकिन हमारा शैक्षणिक तंत्र पुरातनपंथी बना हुआ है। शिक्षा एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें यदि उपयोगी व प्रासंगिक परिणाम न मिले तो उसमें निवेश किया गया सारा धन बर्बाद हो सकता है।

मेरा मत है कि जल्द ही भारत में आधुनिक समय की माँगों के अनुरूप पाठ्यक्रम होंगे, जो कॅरियर के बढ़ते विकल्पों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किये जाएँगे। औपचारिक और व्यवसायिक शिक्षा को एकीकृत करने के भारत सरकार के प्रयासों के साथ ही नेशनल वोकेशनल एजुकेशन क्वालिफिकेशन फ्रेमवर्क (एन.वी.क्यू.एफ.) को प्रस्तुत करने से कौशल निर्माण व व्यवसायिक शिक्षा से संबंधित अनेक पाठ्यक्रमों के लिए मार्ग प्रशस्त होगा। एनआईआईटी समूह के चेयरमेन राजेन्द्र एस. पवार कहते है, 'देश में और ज्यादा बेहतरीन यूनिवर्सिटीज खोलना कहीं ज्यादा जरूरी हो चला है। मीडिया, मनोरंजन, फैशन, हाई एंड रिटेल जैसे उभरते हुए क्षेत्रों के लिए विशिष्ट पाठ्यक्रम की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए आईआईएम ने उर्ज्रा प्रबंधन, अकादमिक संस्थान प्रबंधन, स्वास्थ्य प्रबंधन जैसे पाठ्यक्रम शामिल कर लिये हैं। इसी तरह इग्नू ने भी कृषि, शिक्षा, वाटिका प्रबंधन जैसे विषयों के पाठ्यक्रम प्रारंभ किए हैं।

एक ओर जहाँ सरकारी क्षेत्र की बड़ी यूनिवर्सिटीज जैसे दिल्ली यूनिवर्सिटीज, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटीज जामिया इस्लामिया अपने बुनियादी ढाँचे को दुरूस्त करने कैम्पस के वाइफाइ करने, सीटे बढ़ाने और ई-सुविधाओं को विस्तार देने के लिए प्रयास कर रहे है।

लेडी श्रीराम कॉलेज की प्रिंसीपल मीनाक्षी गोपीनाथ कहती है 'छोटे शहरों में उच्च शिक्षा के लिए उनके अपने मान्यता प्राप्त अपने आधुनिक सुविधाओं वाले इंस्टीट्यूट होने चाहिए।' सौ फीसदी कट ऑफ, अंकों की बाध्यता, प्रशासनिक लापरवाहियों और अपने शहरों में सरकारी यूनिवर्सिटीज की कमी की वजह से देशभर के छात्र प्रायवेट यूनिवर्सिटीज में प्रवेश लेने को बाध्य हुए हैं। ये विद्यार्थियों को उनकी पसंद की डिग्री प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। इसमें कुछ गलत भी नहीं है। वास्तव में यह तो अच्छी बात है कि निजी क्षेत्र शिक्षा के विकास में अपनी भूमिका निभा रहा है, लेकिन शैक्षिक संस्थानों की गुणवत्ता क्या है, यह एक महत्वपूर्ण बिंदु है। पिछले दशक में हजारों निजी कालेजों खुले हैं, अकेले एनसीआर (नेशनल केपीटल रीजन) में ही आज 100 से अधिक एमबीए कालेज हैं। इन कॉलेजों की माँग विद्यार्थियों की खासी तादाद को देखते हुए बनी हुई है, लेकिन वे विद्यार्थियों को क्या पढ़ा रहे हैं और विद्यार्थी उनसे क्या सीख रहे हैं, यह एक अहम् मसला है। शिक्षा की गुणवत्ताा सुनिश्चित करने के लिए सरकार ने अनुमोदन और जाँच प्रक्रियाओंकी एक प्रणाली बनाई है, लेकिन भ्रष्टाचार के कारणवह बेअसर हो जाती है। इस भ्रष्टाार के कारण का एक कारण है निजी संस्थाओं के लिए सरकार की 'नो प्राफिट अलाउड नीति। तकनीकी रूप से आप कॉलेज से धन नहीं कमा सकते। हमारे देश की उच्च शिक्षा इसी दोष पूर्ण धारणा पर आधारित है कि लोग कॉलेज खोलने के लिए तत्पर हैं और उन्हें पैसा कमाने की जरूरत नहीं है। जाहिर है इस तरह का नो-प्राफिट व्यवसाय संभव नहीं है। पैसा कमाने के दूसरे

* प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र) भारत

तरीके अख्तियार कर लिए जाते हैं। कालाधन, फर्जी भुगतान व्ययों का अधिक मूल्यांकन आदि ऐसे ही तरीके हैं, यह सुनिश्चित करते हैं कि प्रमोटर्स को उनके द्वारा किए गए निवेश का रिर्टन मिल सकें। साथ ही इसमें यह भी तय हो जाता है कि पूर्व शिक्षाविद्, विश्वस्तरीय कॉर्पोरेट्स और ईमानदार लोग, कानूनी तौर तरीको में विश्वास करने वाले लोग निजी शिक्षा की और कभी आकर्षित नहीं होंगे, क्योंकि वे हर कदम पर रिश्वत नहीं दे सकते और न ही नियमों–कानूनों की अवहेलना कर सकते हैं।

शिक्षा के व्यवसायी करण में कोई दोष नहीं है, लेकिन इसमें नैतिकता और गुणवत्ता का ध्यान रखा जाना चाहिए। एक सीधी सरल नीति यह होना चाहिए कि निजी संस्थाओं को लाभ कमाने की अनुमति दी जाए। यदि ऐसा होगा तो इन्फोसिस और रिलायंस जैसी कंपनिया बड़े पैमाने पर कॉलेज खोलेंगी और इसके लिए जरूरी निवेश में शेयर होल्डर्स का भी योगदान होगा। अगर ये कंपनियाँ कॉलेज खोलती हैं तो माना जा सकता है कि उनकी गुणवत्ता और एक निश्चित स्तर होगा। भारत को अच्छी शिक्षा की जरूरत है और केवल साझा इच्छाशक्ति और कुछ अच्छी नीतियों की सहायता से यह किया जाना चाहिए।

आई.पी.एस.ओ.एस.सम्मानित शोध संगठन है हाल ही में आईपीएसओएस ने जी न्यूज के साथ एक सर्वे किया। इस सर्वे में 298 स्टेट, 130 डीम्ड, 44 केन्द्रीय और 144 निजी विश्वविद्यालयों को शामिल किया गया था। 30 विश्वविद्यालयों की रैंकिंग उनके मौजूदा संसाधन, इंफ्रास्ट्रक्चर गुणवत्ता परक शोध इंटरनेट की उपलब्धता खेल की व्यवस्था, प्लेसमेन्ट, प्रयोग शाला वगैरह के आधार पर तय की गई थी। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय को रैंकिंग में पहला और दिल्ली विश्वविद्यालय को दूसरा स्थान मिला है। वही शुरू की। 172 रैंकिंग केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की दी गई है। इस रैंकिंग की टॉप 20 में सिर्फ तीन निजी विश्वविद्यालयों को जगह मिली है। एसोसिएशन ऑफ इंडियन यूनिवर्सिटीज एक सम्मानित संघ है, क्योंकि राष्ट्रीय महत्व के तमाम शिक्षण संस्थान, ऊर्जावान, पेशेवर और पारंपरिक विश्वविद्यालय इसके सदस्य हैं। 427 विश्वविद्यालयों को इसकी सदस्यता मिली हुई है। यदि कोई छात्र विदेशी विश्वविद्यालय में दाखिला लेना चाहता है तो उसे पहले ए.आ.यू. (एसोसिएशन ऑफ यूनिवर्सिटीज) की सदस्यता वाले विश्वविद्यालय में पंजीकरण कराना अनिवार्य है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि बहुत कम निजी विश्वविद्यालय है जो परिणाम उन्मुख शिक्षा सिद्धान्तों को अपनाते हैं और ऐसी श्रेष्ठ फैकल्टी के लिए निरंतर काम करते हैं जो शिक्षा में परिणामोन्मुखी सोच और उद्योग संबद्ध शैक्षिक संस्कृति विकसित करने के लिए परिश्रम करते हैं। अत: निजी विश्वविद्यालयों के क्रांतिकारी और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए विश्वस्तरी फैकल्टी मुख्य संसाधनके रूप अनिवार्य है, इसके साथ ही श्रेष्ठ अध्यापन शैलियों, शैक्षणिक प्रक्रियाओं और अनुसंधान की गहनता और इंण्डस्ट्रीइंटीग्रेशन में परिपक्वता हासिल होना अनिवार्य आवश्यकता है।

हालाँकि अग्रणी सरकारी संस्थानों और विश्वविद्यालयों अपना एक इतिहास और शैक्षिक विरासत रखते हैं। इसके बावजूद गुणवत्तापूर्ण ढाँचा, फैकल्टी या बेहतर शिक्षा प्रणाली उपलब्ध कराने में ये भी अफसल रहे है।

टाइम्स हायर एजुकेशन हरसाल दुनिया की यूनिवर्सिटीज की रैंकिंग जारी करते हैं। वर्ष 2012–13 की वर्ल्ड रैंकिंग के अनुसार भारत का एक भी उच्चशिक्षा संस्थान टॉप 200 में नहीं है। हाल ही में हुए एक राष्ट्रव्यापी सर्वे जो कि एम्प्लाएविलिटी साल्यूशंस कंपनी 'एक्सपायरिंगमाईंडस, की रिपोर्ट में खुलासा हुआ है कि देश के 47 फीसदी से अधिक ग्रेजुएट के पास समुचित रोजगार नहीं है। समस्या का मूल कारण रोजगार का अभाव नहीं, बल्कि रोजगार करने लायक स्किल्ड की कमी है। इकोनॉमिक डेवलपमेंट एक्सपर्ट भी मानते हैं कि हमारे यहाँ लेबरफोर्स उतनी स्किल्ड नहीं है, जितनी की होना चाहिए। सर्वे के मुताबिक 84 फीसदी ग्रेजुएट्सकी कॉग्निटिव एबीलिटी बहुत कम थी। वे एनालिस्ट के रूप में सही फैसले नहीं ले पा रहे थे। इसी वजह से वे इंटरव्यू के दौरान सही परफार्म नहीं कर पाए।

टेक्निकल राईटर व सॉफ्टवेयर ट्रेनिंग एंड कम्प्यूटर एप्लीकेशंस के स्पेशलिस्ट ऑगस्टाइन पैपाली ने 'वाय इंडियाज एजुकेशन सिस्टम विल नेवर बी लाइफ अमेरिकाज' नाम से एक एनालिसिस किया है। इसमें उन्होंने अमेरिका और भारत के एजुकेशन सिस्टम की तुलना करते हुए प्रमुख अंतर गिनाए है।

1. **सिलेबस –** भारत में यूनिवर्सिटी द्वारा सिलेबस तय किया जाता है, जिसमें अपडेशन लंबे अरसे बाद ही होता है। प्रोफेसर्स पर तय सीमा में सिलेबस पूरा करने का दबाव रहता है। इससे क्लास में डिस्कशन या डिबेट का ज्यादा समय नहीं मिल पाता है। वहीं अमेरिका में प्रोफेसर्स खुद अपना सिलेबस तैयार करते हैं और जरूरत के हिसाब से समय–समय पर उसे अपडेट करते रहते है। यहाँ तक कि टेस्ट और एग्जाम पेपर भी वे खुद ही सेट करते है।

2. **प्रोजेक्ट ओरिएंटेड सिस्टम –** अमेरिका जेसे विकसित देश प्रोजेक्ट ओरिएंटेड सिस्टम पर चलते हैं। इनके पास इसके लिए भरपूर धन होता है, लेकिन भारत के साथ ऐसा नहीं है। सीमित धन होने के कारण यहाँ पेपर बेस्ड सिस्टम चलन है। प्रोजेक्ट पर ध्यान नहीं होने के कारण यहाँ सिर्फ किताबी पढ़ाई हो पाती है। स्टूडेंट्स को प्रेक्टिकल नॉलेज नहीं मिल पाता। इसका असर जाब की संभावना पर भी पड़ता है।

भारत के युवा डिग्री हासिल कर लेने के बावजूद कोई जाब करने के लायक क्यों नहीं रहते, इसको लेकर अनेक अध्ययन हुए। इसमें कुछ प्रमुख कारण निकलकर सामने आए है, जिनमें हायर एजुकेशन की कमजोर कड़ियों के बारे में विस्तार से बताया गया है। 1: स्किल वेस्ड एजुकेशन नहीं– भारत में शिक्षा संस्थानों में स्टूडेंट्स शिक्षित तो किया जाता है लेकिन उनमें जरूरी स्किल डेवलप करने पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। परीक्षा पूरी होने के बाद स्टूडेंट्स उस साल की पढ़ाई इस वजह से भूल जाते हैं। उस वजह से डिग्री होने के बाद भी उनमें कौशल का अभाव रहता है।

3. **क्रिऐविटी इनोवेशन का अभाव –** कुछ समय पूर्व टाटा स्टील के तत्कालीन एम.डी.बी. मुथुरामन ने आईआईटी कालेजों की गुणवत्ता पर सवाल उठाते हुए कहा था कि जो इंजीनियर पैदा हो रहे हैं, उनमें इनोवेशन बिल्कुल भी नहीं है। हमारे यहाँ हायर एजुकेशन सिस्टम में क्रिऐविटी इनोवेशन व रिसर्च को उतना बढ़ावा नहीं मिलता, जितना मिलना चाहिए। इससे अनेक स्टूडेंट्स क्रिऐविटी के लेबल पर अच्छा परफार्म नहीं कर पाते और नौकरी पाने से भी वंचित रह जाते है।

4. **शिक्षकों में प्रतिबद्धता की कमी –** इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइंस के डायरेक्टर प्रो. पी. बालाराम ने कुछ समय पहले 'करंट साइंस मे लिखे अपने संपादकीय में उच्चशिक्षा संस्थानों के प्रोफेसरों की कार्यकुशलता और प्रतिबद्धता के अभाव की मुख्य वजह उनके कार्य करने का सरकारी ढर्रा बताया था। उनका कहना था कि प्रोफेसर नौकरी करते हैं, शिक्षा प्रदान नहीं करते। चूँकि उनकी नौकरी सुरक्षित रहती है, इसलिए नया करने की वे कोई जरूरत महसूस नही करते। इसी वजह से उनके स्टूडेंट्स भी केवल कोर्स पूरा करने पर अपना ध्यान केंद्रित करते है, शिक्षा अर्जित करने में नहीं। शिक्षकों का जाब अगर रिजल्ट ओरिएंटेड (रिजल्ट का मतलब स्टूडेंट्स के पास से नहीं) हो तो शायद तस्वीर बदले।

5. **टेक्नोलाजी में अपडेशन नहीं –** टेक्नीकल एजुकेशन के पास आउटस् की संख्या लगातार बढ़ रही है। दुनिया में सबसे ज्यादा इंजीनियर्स भारत में है, लेकिन रोजगार विहीन। कारण यह है कि टेक्नोलाजी तो बढ़ रही है, लेकिन उसके मुताबिक टेक्नीकल एजुकेशन में अपडेशन नहीं हो रहा है।

6. **अंग्रेजी सबसे बड़ी कमजोरी –** एस्पायरिंग माइंडस के सर्वे में कहा गया है कि आज भी हमारे देश में अंग्रेजी भाषा हौवा है। सर्वे में शामिल 60हजार ग्रेजुएट्स में से 90 फीसदी अंग्रेजी में कम्युनिकेशन करने में सक्षम नहीं थे। भारत के कुछ राज्यों

को छोड़कर कमोवेश पूरे देश का यही हाल है। उपरोक्त संदर्भ में कुछ आंकड़े : 15 लाख इंजीनियरिंग छात्र में से 70 प्रतिशत बेरोजगार है। आई.टी. इंडस्ट्री में 75.4 प्रतिशत छात्रों के पास रोजगार नहीं है। ग्लोबल उन एप्लायमेंट ट्रेड्स के मुताबिक भारत में बेरोजगारों की संख्या 2013 में 7.3 करोड़ के करीब पहुँच चुकी है। 2012 में बेरोजगारी की द 9.3 प्रतिशत थी, जबकि 1213 में 9.4 प्रतिशत के करीब पहुँच गई।

अंतरराष्ट्रीय आयाम ही श्रेष्ठ अध्ययन– अध्यापन को विकसित करने में सहायक : संस्थान बिल्डिंग और ईटिलक्चूअल कैपिटल के बड़े निवेश को महत्व देते हुए श्रेष्ठ निजी विश्वविद्यालयों जैसे सिमबोयसिस यूनिवर्सिटी पुणे, गलगोटियाज यूनिवर्सिटी ग्रेटर नोएडा, एस.आर. चेन्नई, धीरू भाई अंबानी इंस्टीट्यूट आफ इंफोसिस एंड कम्यूनिकेशन टेक्नोलाजी, निरमा यूनिवर्सिटी, मनिपाल युनिर्वसिटी में विश्वस्तरीय फैकल्टी दुनिया की सर्वश्रेष्ठ यूनिवर्सिटीज के सिद्ध मानको तक पहुँचाने का काम करती है। अपने लचीले क्रेडिट सिस्टम, उद्योग संबद्धता, मार्गदर्शित पाठ्यक्रम व एकीकरण, कक्षा आधारित अध्ययन, परियोजना आधारित और अनुसंधान एवं परिणाम आधारित अध्ययन देश–विदेश के श्रेष्ठ कारपोरेट स्पीकर्स के गेस्ट से यूनिवर्सिटी अपने स्टूडेंट्स को अध्ययन के विस्तृत परिदृष्य से रूबरू कराती है। इनमें मेधावी छात्र ही प्रवेश पाने का विकल्प अपनाते हैं। इन यूनिवर्सिटीज में तेजी से बढ़ते कट आफ के कारण एडमिशन भी कठिन होते जा रहे हैं। राष्ट्रीय मीडिया द्वारा कराए गए सर्वेक्षण में इन निजी यूनिवर्सिटीज को पुरानी सरकारी संस्थाओं से कहीं बेहतर बताया है। हाल में हुए आउट लुक–एमडी आरए सर्वे आफ इंडिया में सर्वश्रेष्ठ प्रोफेशनल कालेज का स्थान गलगोटियाज यूनिवर्सिटी को मिला है। इसने प्रतिष्ठित और दशकों पुरानी विरासत वाले मदन मोहन मालवीय इंजीनियरिंग कालेज को भी पीछे छोड़ दिया है।

सर्वेक्षणों के मुताबिक हर साल 100 प्रतिशत प्लेसमेंट रिकार्ड ने इस संस्थानकी गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा के प्रमाण प्रस्तुत किए है। इकानामिक टाइम्स की हाल ही में आई रिपोर्ट में 47 प्रतिशत ग्रेजुएट भातीय छात्र बेरोजगारहै। ये निराश करने वाला एक सत्य है कि भारत के विश्वविद्यालयों और संस्थानों के छात्र सफलता हासिल करने के लिए पाठ्य पुस्तकों का सहारा ले रहे हैं।

विदेशी यूनिवर्सिटीज में यह आंका जाता है कि बच्चे अपने ज्ञान का प्रयोग परीक्षा की स्थिति में कर पाते हैं या नहीं, साथ ही उनकी विश्लेषण क्षमता और समस्या निदान क्षमता पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। इन्फोसिस, टीसीएस और विप्रो जैसे अग्रणी कार्पोरेट्स छात्रों की सैद्धान्तिक क्षमता और रोजगार की कुशलताओं के बीच की दूरी कम करने के लिए कार्पोरेट समकक्ष स्कूल स्थापित करने की तैयारी कर चुके हैं। अधिकतर कार्पोरेट्स विनिर्देशनों तक एक स्तरीय प्रबंध पाने के लिए उन्मुखी और प्रशिक्षण कार्यक्रमों का समावेष कर चुके हैं। सरकारी विश्वविद्यालयों और संस्थानों ने दृष्टिकोण प्रक्रियाओं और सार्वभौमिक विश्लेषक कुशलताओंके निर्माण के बजाए मौलिक अध्ययन पर जोर देते हुए उत्पादकता पर ध्यान केन्द्रित किया है। निजी शिक्षा संस्थान में जो श्रेष्ठ है, इन लोगों में विरोधाभास यह रहा है कि इस क्षेत्र में उच्चशिक्षा क्षमता की अतिरिक्तता रही, इसी कारण से बेहतर शिक्षा की आपूर्ति का अभाव रहा है।

वर्तमान पीढ़ी की उच्चशिक्षा उस समाज और उद्योग जगत का पक्ष लेती है, जहाँ छात्र अपने अध्ययन काल में बाजार के लिए तैयार होते है और इसके लिए उद्योग संबंध पाठ्यक्रम और शिक्षा व्यवस्था को गहनता से आत्मसात करते हैं। अत: आवश्यक है कि सरकारी और निजी यूनिवर्सिटी संयुक्त रूप से शिक्षा की एक ऐसी प्रणाली विकसित करे जिसमें पूरे शैक्षिक वर्ष में परिणाम आधारित शिक्षा और मजबूत गहन ज्ञान का विकास छात्रो में किया जाये, इस लक्ष्य को पूरी तरह हासिल करने में विभिन्न स्तरो पर छात्रो के मार्गदर्षन के लिये उद्योग जगत कि संबधंता का भी भरपूर योगदान लिया जावें,

वैसे उच्चशिक्षा के निजि और सरकारी संसथान दोनों क्षेत्रो में आमूलचूल परिर्वनत की आवश्यकता है। इसमें व्यापत विसंगतियों को दूर करने की आवश्यकता है ना कि सरकारी संस्थान के स्थान पर निजि संस्थानो को विकसित कर उच्चशिक्षा को केवल निजी क्षेत्र के हवाले कर देने से वास्तविक लक्ष्यो की पूर्ति किया जाना सम्भव नही है।

विश्लेषण कर्ताओं ने गुणवत्ता की सूची में भारत के विश्वविद्यालयों एवं शैक्षिक संस्थाओं के पिछड़ेपन का महत्त्वपूर्ण कारण छात्र अध्यापक अनुपात का उँचा होना, वित्त साधनों की अपर्याप्तता, अनुसंधान की कमी एवं शोध का निम्नस्तर तथा नवाचारिता का अभाव बताए है। ग्लोबल रैंकिंग में रिसर्च खासकर इंटर डिसिपिल्नरी रिसर्च पर काफी जोर दिया जाता है। अपने विदेशी समकक्षों की तुलना करे तो हम हर वर्ष प्रकाशित होने वाले रिसर्च पेपर जर्नल और प्रोजेक्ट की संख्या के मामले में काफी पीछे है। 'साइंस और टेक्नोलाजी विभाग 2010 में प्रकाशित अध्ययन से पता चलता है कि ग्लोबल रिसर्च में भारत का हिस्सा महज 3.5 प्रतिशत है। दूसरी ओर इस मामले में चीन की हिस्सेदारी 19 प्रतिशत तक है। रिसर्च को प्रोत्साहित करने के लिए हमें बेहतर फंडिग, उद्योगों की भागीदारी, इन्फ्रास्ट्रक्चर और विभागीय सहयोग की जरूरत है। दिल्ली यूनिवर्सिटी को 2013 में विभिन्न फंडिग स्त्रोतों से करीब 90 करोड़ रु. हासिल हुए, इसी वर्ष मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलाजी (एमआईटी) में 21,000 रिसर्च पेपर प्रकाशित हुए और 773 करोड़ रुपए खर्च किए गए। इसी तरह भारत के टाप विश्वविद्यालयों को भी रिसर्च में योगदान सराहनीय नहीं रहा है। रिचर्स के लिए फंडिग के मौके बढ़ाने के लिए सरकार, उद्योग और अकादमिक जगत के बीच संपर्क मजबूत करने की आवश्यकता है। हमारे विश्वविद्यालयों को अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों की साझेदारी करने की आवश्यकता है। इससे फेकल्टी और छात्रों की उच्चस्तरीय विदेशी संसाधनों तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त होता है। हमारे शिक्षा संस्थानों को रिसर्चर्स (शोध छात्रों) को उनके कैरियर की शुरुआती दौर में ज्यादा महत्वपूर्ण आवश्यक रिसर्च इंफ्रास्ट्रक्चर के साथ ही इनोवेशन कर रचनात्मकता के लिए पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध कराने पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। इसके साथ ही उच्चशिक्षा पाठ्यक्रमों को समसामयिक बनाने के लिए लगातार बेहतर प्रयास करने होंगे तथा आवश्यक रूप से कुछ शैक्षणिक अकादमिक संस्थानों को वैश्विक स्तर के संस्थानों के समकक्ष गुणवत्तापूर्ण बनाने की ईमानदार कोशिश करनी होगी। इसके अभाव में बहुत से अच्छे छात्र विदेश जाते हैं। 200 करोड़ भारतीयों में से अभी तक सिर्फ 9 वैज्ञानिकों को ही नोबल पुरस्कार मिला है। हमारे युवा छात्रों/वैज्ञानिकों में नोबल पुरस्कार प्राप्त करने की क्षमता है, पर उन्हें सही मार्गदर्शन और प्रोत्साहन की जरूरत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. उच्च शिक्षा पत्रिका, नई दिल्ली।
2. इंडिया टुडे – अगस्त 2013
3. दैनिक भास्कर – अक्टूबर 2011
4. दैनिक भास्कर – जून 2013
5. नवीन शोध संसार, नीमच आई.एस.एस.एन.2320–8767, विशेषांक भाग – 1 एंव भाग – 2
6. उच्च शिक्षा विभाग भोपाल के कार्यालयीन आदेश

****

कानून के दायरे में महिलाऐं

डॉ. राजश्री शाह *

शोध सारांश – भौतिकता आधुनिकता के इस युग में लोगों की मानसिकता उनके सोचने के तरीके और कार्यशैली में निरन्तर परिवर्तन आ रहा है। आज व्यक्ति रातो–रात अमीर बनकर सभी सुख–सुविधाओं को जुटाना चाहता है। सुख–सुविधाओं को प्राप्त करने में आज का व्यक्ति साम–दान दण्ड भेद सभी का उपयोग कर अपनी इच्छाओं को पूरा करता है।

प्रस्तावना – व्यक्ति की मानसिकता में आज निरन्तर बदलाव आने से समाज में अपराध बढ़ रहे हैं, विभिन्न अपराधों में महिला के प्रति अपराधों की दर भी बढ़ती जा रही है।

प्रतिदिन हम विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में मुख्य पृष्ठ पर महिलाओं के साथ घिनौने अपराधों को पढते है, लेकिन उनके साथ हुए अपराधों की रेखाचित्र बता पाना कितना कठिन है। कुछ अपराध तो ऐसे है। जो प्रकाश में आ ही नहीं पाते है। बलात्कार, यौन, उत्पीड़न, आदि तो सामाजिक प्रतिष्ठा के डर से सामने ही नहीं आ पाते। कुछ की रिपोर्ट थाने तक पहुँचती है लेकिन वहीं दफन कर दी जाती है।

एक समय था जब समाज में व्यवस्था स्थापित करने का काम धर्म प्रथाएं रीतियॉ करती थी। उसी से सामाजिक व्यवस्था सुचारू रूप से चलती थी किन्तु राज्य नामक संस्था की उत्पत्ति के बाद समाज में नियंत्रण स्थापित करने का उत्तरदायित्व राज्य पर आ गया यह नियन्त्रण दो प्रकार से होता था औपचारिक और अनौपचारिक।

सामाजिक विधान औपचारिक सामाजिक नियंत्रण का एक साधन है इसके माध्यम से सरकार अपने नागरिकों को कानून के माध्यम से अपने आदेशों के पालन के लिए विवश करती है। भारतीय संविधान में प्रत्येक नागरिकों को मूल अधिकार दिऐ है यह मूलभूत अधिकार संविधान के भाग–3 में है। इन मूल अधिकारों में महिलाओं के लिए सबसे प्रमुख समता का अधिकार – यह संविधान के अनुच्छेद 14–18 तक में समता के अधिकार का वर्णन है। जिनके अनुसार धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म, स्थान के आधार पर व्यक्तियों में विभेद नहीं किया जा सकता।

भारतीय संविधान स्त्री–पुरूषों में किसी प्रकार का कोई भेद नहीं करत। महिलाओं के पक्ष में बने कानून पुरूषों के समान दर्जा दिलाकर उनके लिए समुचित न्याय का प्रबंध करते है। लेकिन वास्तविकता तो यह है कि कानून की नजर में महिलाओं की स्थिति दोयम दर्जे की है। सरकार द्वारा बनाये गये कानून अधिकांश महिलाओं पर कोई प्रभाव नहीं डालते। भारी भरकम कानूनो के होते हुए महिलाओं में असुरक्षा की भावना है वे न तो सड़क पर सुरक्षित है, और नहीं घर, दफ्तर में।

फिर भी महिलाओं के साथ हुऐ अपराधों को रोकने, महिलाओं के हितों की रक्षा के लिए विशेष प्रावधान किये गये है। अंग्रेजी शासन काल में भी कुछ महिला संबंधी अधिनयिम बनाये गये थे, जिनके कारण महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ था। पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं की शोषण से बचाने के लिए सन् 2001 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया, लेकिन वास्तविकता तो और कुछ ही है। स्वतंत्रता के बाद 1955, 1956, में स्त्रियों को विवाह, परिवार, और सम्पत्ति में पुरूषों के समान अधिकार देने के कानून बनाये 1967 में स्त्रियों के विरूद्ध भेदभाव समाप्त करने के कानून बनाये 1975 में अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में घोषित किया गया। 1955 में विश्व महिला सम्मेलन का आयोजन भी किया गया। लेकिन सरकार ने कुछ कानून बनाकर महिलाओं की स्थिति में थोड़ा सुधार किया।

स्मृतिकाल में लेकर आज तक दहेज के नाम पर महिलाओं को उत्पीड़न, मारपीट, जैसी घटनाऍ समाज में दिखाई देती है। आज के युग में औरत एक दोहरी घरेलू हिंसा का शिकार है, एक तरफ प्राचीन परम्पराऐं तो दूसरी तरफ वर्तमान विचारों से पुरूषों का नहीं बदलना। पुत्र जन्म आज भी प्रसन्नता का विषय वैज्ञानिक विकास के साथ बालिका को भ्रुण में ही मारने की घटनाऐं। यह स्थिति न केवल गॉवो में बल्कि शहरो में भी है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार दहेज के कारण प्रत्येक दिन 16 स्त्रियों की दहेज के कारण मौत होती है, महिलाओं के विरूद्ध होने वाली घरेलू हिंसा में बिहार म.प्र. उत्तर प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश सबसे आगे है, कानून बन जाने के बाद आज भी ग्रामो से लेकर नगरो तक महिलाओं के साथ, छेड़छाड़ उनकी हत्याऐं बहिन या बेटी के रूप में अपमान आम बात है, अपमानित जीवन जीने के लिए उन्हें बाधित किया जाता है। महिलाओं से संबंधित अधिनियम बनाये गये उनमें कुछ प्रमुख अधिनियम निम्नांकित थे –

1. भारतीय दण्ड संहिता 1860 – इसके अन्तर्गत महिलाओं पर होने वाले अत्याचार एवं निर्दयता के विरूद्ध सजा देने की व्यापक रूप से व्यवस्था की गई है।

दण्ड संहिता की धारा 354 के तहत् स्त्री की लज्जा भंग करने पर उसे दो वर्ष की सजा, जुर्माना अथवा दण्डित करने का प्रावधान है।

2. हिन्दु उत्तराधिकार अधि. 1956, मुस्लिम विवाह विच्छेद अधि. 1939, महिलाओं एवं लड़कियों के (अनैतिक व्यापार रोक) अधिनियम 1956 भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1879, बाल विवाह अवरोध अधिनियम 1929 हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1956 सती निवारक अधिनियम 1987 विशेष विवाह अधिनियम 1954, चालचित्र अधि. 1952, अपराधिक कानून (संशोधन) अधिनियम 1986, मातृत्व लाभ अधि. 1961 आदि बनाये गये है।

* प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

समाज कानूनों ने महिलाओ की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए भरपूर कार्य किया है, लेकिन आज भी सरकार द्वारा बनाये गये कानून अधिकांश महिलाओं पर कोई प्रभाव नहीं डालते । अच्छे कानून होने के बावजूद भी महिलाओं में असुरक्षा की भावना बढ़ती जा रही है । घर से लेकर बाहर तक महिला असुरक्षित ही है ।

कानूनी व्यवस्था भी पितृसत्तात्मक समाज के पक्ष में है, अधिकांश ग्रामीण महिलाओं को कानून की जानकारी भी नहीं है, और जिनाके कानून की जानकारी है, वह उसकी हुई कानूनी प्रक्रिया, भ्रष्टाचार के कारण वे इसके दायरे में आना ही नहीं चाहती है । महिलाओं की अशिक्षा, अज्ञानता, जागरूकता में कभी यह सभी महिलाओं के विकास में बाधक है ।

आज आवश्यकता है कठोर कानूनों के साथ ही महिलाओं की हिम्मत और जागरूकता की ताकि समाज, देश का चहुमुंखी विकास हो सके । मात्र कानून बना देना उनकी उन्नति का परिचायक नहीं है बल्कि महिलाओं की स्थिति समाज में इतनी उन्नत हो सके कि उनको कानून का दरवाजा ही नहीं खटखटाना पड़े । इसके लिए महिलाओ को स्वयं समाज में अपनी स्थिति को बनाना होगा । शिक्षा के साथ पुरूषों की मानसिक सोच में बदलाव उसे स्वयं ही लाना होगा । परिवार, समाज में अपनी भूमिका निभाते हुऐ अपनी कर्तव्यों के साथ अधिकारों की मांग करनी होगी, अपनी छवि इस प्रकार बनानी होगी कि इस समाज में अपने खोये हुऐ अधिकार वैधानिक तरीके से नहीं बल्कि सामाजिक तरीके से प्राप्त कर सके ।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. स्वप्निल सारस्वत, डॉ. निशांत सिंह.
   समाज राजनीति और महिलाएं
2. डॉ. एस.एल. वरे - भारतीय इतिहास में नारी.
3. डॉ. डी.एस. वघेल - भारतीय समाज और संस्कृति.

****

समर्पण के अभाव में बिखरते भारतीय परिवार

डॉ. निशा जैन *

शोध सारांश – आधुनिक युग में औद्योगिक तथा नगरीयकरण के परिणाम स्वरूप समाज और सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अत्याधिक परिवर्तन हुआ है। यहां तक कि आज समाज के सामाजिक मूल्य आदर्श तथा प्रतिमान भी परिवर्तित होते जा रहे हैं। इन समस्त पक्षो में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव परिवार और पारिवारिक जीवन पर स्वाभाविक रूप के बड़ा है। यही कारण है कि पहले परिवार की जो संरचना के कार्य स्वरूप आदि थे वे आज उन रूप में नहीं रह गए हैं। परिवार के अंतर्गत व्यक्ति सामाजिक व्यवहारो से अनूकूलन करता है तथा रहन–सहन की कला, प्यार, प्रेम, कर्तव्य परोपकार, सद्भावना सहानुभूति सेवा अनुशासित, आज्ञा पालन, अनुमय विनय करूणा आदि अनेक सामाजिक गुणो को सीखता है। जो व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के आधार स्तम्भ होते हैं ।

प्रस्तावना – परिवार की संरचना में पति पत्नि वह महत्पूर्ण केन्द्र बिन्दु हैं जो परिवारिक एकता को बनाए रखने के लिए दोनों अपनी भूमिका का निर्वाह करते हुए अपने प्रेम स्नेह से परिवार के हर सदस्य को एक सूत्र में पिरोकर रखने का प्रयास करते हैं। किन्तु स्नेह की यह डोर उस समय कमजोर हो जाती है जब उनमें समर्पण की भावना का अभाव होने लगता है। जिससे पति पत्नि के रिश्तो में बदलाव आ जाता है। परिवार में प्रांय: तनाव के वातावरण का असर सीधे बच्चों पर होता है। ऐसी स्थिति में बच्चा अपराध में लिप्त हो जाता है तथा कभी हीन भावना में ग्रस्त हो जाता है। और उसका विकास वहीं रूक पाता है। इस तरह परिस्थितिनुसार ही उनका पालन पोषण होता है। इस तरह के पारिवारिक वातावरण अक्सर परिवार को विखेर कर रख देता है।

आधुनिक सभ्यता के फलस्वरूप सामाजिक ढांचे, मूल्यो, आदर्शो प्रयासो, विश्वासो रहन सहन और आचार व्यवहार में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए है इसके फलस्वरूप परिवार के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ है। एकांकी परिवार का प्रचलन तेजी से बढा है। बदलती हुई परिस्थिति के अनुसार जब परिवार में अनुकूलन नहीं होता है तो परिवार का विघटन स्वाभाविक है। वर्तमान में परिवार के सदस्यों में मतैक्य का अभाव होता जा रहा है। भावात्मक एकता की कमी परिवार में तनाव व्यक्तिवादिता के बढ़ने से परिवार बिखर रहे हैं। परिवार में पति–पत्नि बच्चो तथा अन्य सदस्यो में आपकी प्रेम सहयोग तथा हितो व उद्देश्यो की एकता के अभाव में उनमें आत्म त्याग की भावनाऐं खत्म होती जा रही हैं।

जिससे पारिवारिक जीवन सुखी नहीं रहा। परिवारो के बिखरने का एक एक सबसे बडा कारण तनाव है आज के युग में नगरीकरण, औद्योगीकरण, जनसंख्या वृद्धि, शिक्षा स्त्री का अर्थोपार्जन के क्षेत्र में आना आदि ऐसे कारण है जो पति पत्नि के बीच संतुलन को अव्यवस्थित रखते हैं । आज के युग में पारिवारिक लक्ष्यो की अपेक्षा व्यक्तिगत स्वार्थ ज्यादा महत्वपूर्ण होते जा रहें हैं। पति पत्नि की पारस्परिक सेवाओ में कमी और भावात्मक प्रवृत्तियों में विरोध का उत्पन्न होना पारिवारिक तनाव को जन्म देता है। जब पति पत्नि एक दूसरे के विरोधी स्वभाव वाले होते हैं। तो उनमें आपस में जो एक दूसरे के प्रति स्नेह नहीं रह जाना । विरोधी स्वभाव के कारण वे कभी भी एक दूसरे के साथ अनुकूलन नहीं कर पाते जिसके फलस्वरूप संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और परिवार विघटित होने लगते हैं। कभी–कभी समझदार पत्नि घर की आप सी बातों को घर तक की सीमित रखना चाहती है और पति अपने अन्य संबंधियों एवं मित्रों से अपनी पत्नि की शिकायत करते फिरते है तो ऐसी स्थिति में भी तनाव उत्पन्न हो जाता है। एक दूसरे की इच्छानुसार कार्य न करना तथा एक दूसरे के प्रति उदासीन रहने से परिवार में तनाव का वातावरण बन जाता है। ये कुछ ऐसे व्यक्तिगत कारक थे जो पति पत्नि के बीच उनके स्वभाव सामाजिक मूल्यों, जीवन दर्शन एवं विचारों तथा मनोवृत्तियों में विरोध होने से परिवार का वातावरण बिगडता है एवं परिवार बिखरने की कगार पर आ खड़ा होता है। यदि हम परिवार के अन्य सदस्यों की बात करे तो सास ससुर का अनावश्यक हस्तक्षेप भी परिवार में तनाव का कारण बनता है व्यवहारिक जीवन में अक्सर सास द्वारा बहु की बुराई पडोसियों से करना कलह का कारण बनती है।। परिवार के विभिन्न सदस्यों के बीच मानसिक असंतुलन या खिचाव से परिवार में तनाव अंकुरित होता है। पति पत्नि में लैंगिक असंतोष व्यवहारिक विपरीतता, आर्थिक और सामाजिक कठनाइयों के बीच जब स्व परिवार के सदस्यों मे एक दूसरे के प्रति समर्पण की भावना खत्म हो जाती है जब दूसरे के प्रति समर्पण की भावना खत्म हो जाती है तब परिवार बिखरने लगता है।

आधुनिक युग की स्त्री जो परिवार का आधार स्तम्भ है पहले पत्नि बहू माँ की भूमिका निभाते हुए परिवार को सम्हाले एवं सहेजे रखती थी वर्तमान में स्त्रियों के कर्म क्षेत्र में बदलाव आया वह घर तक ही सीमित नहीं रह गई बल्कि वह पुरूषो के समान अर्थोपार्जन भी करने लगी साथ ही उन्हें सामाजिक राजनैतिक अधिकार भी प्रदान किए गए है। इसका परिणाम यह निकला कि जहां एक ओर महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ उनके व्यक्तित्व में निखार आया वहीं दूसरी ओर परिवार के संगठन पर बुरा असर पडा वे अपने पारिवारिक कर्तव्य भूल गई । बाहरी जीवन के अधिकारो में अपना सफल जीवन समझने वाली स्त्रियां अपने पति के लिए अच्छी पत्नि, बच्चो के लिए अच्छी माँ ,गृहस्थी के लिए सदग्रहणी तथा समाज के लिए नारी के रूप में अनुकूलन स्थापित नहीं कर पाई बहुत कम महिलाएं होगी जो बाहरी समाज एवं परिवार के बीच संतुलन स्थापित कर अपना बजूद बनाये रखती है। आज महिलाओं के लिए यह एक चुनौती पूर्ण कार्य हो गया है। औद्यौगीकरण नगरीयकरण एवं संचार के साधनो से परिवार की संरचना एवं मूल्यो के बदल कर रख दिया है।

* सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला–सागर (म.प्र) भारत

लोगों की भावनाऐं आज परिवार एवं विचार के महत्व के संबंध में बदल गई है। सदियों से प्रचलित यह धारणा कि पुरूष सभी दृष्टिकोण में स्त्रियों से ऊँचे हैं। परिवर्तित हो चुकी है। इससे वैचारिक संघर्ष उत्पन्न हुआ और एक दूसरे के प्रति समर्पण की भावना पूरी तरह से खत्म हो गई।

व्यक्तिवादी एवं भौतिकवादी विचार धाराओं के कारण व्यक्तिगत सुख एवं स्वार्थ में जो परिवार स्नेह त्याग समर्पण की भावना के सिंचित के इसके अभाव में परिवार टूटते चले गए। आज सिर्फ पत्नि ही नहीं पति भी अपने कर्तव्यों से विमुख होता जा रहा उसमें भी परिवार के प्रति समर्पण की भावना खत्म होती जा रही है। पति की आदतें कटु व्यवहार, अहं भरी बातें विचारो में टकराव उत्पन्न करती है। जैसे पति शराब या सिगरेट पीता है जिसे पत्नि पसंद नहीं करती आदि उससे दूर होने की प्रयास करती है। इससे परिवार मे तनाव उत्पन्न हो जाता है। कई बार परिवार के प्रति पत्नि पति के बीच छोटी–छोटी बातों के कारण अहं टकराता है। एक दूसरे की बुरी आदतो आदि कार्य शैली के साथ अनुकूल एवं व्यवस्थापन करने में असमर्थ महसूस करते हैं। तो तनाव उत्पन्न होता है और परिवार बिखरने की कगार पर आ जाता है।

आधुनिक भारत में परिवार के बिखरने के कई छोटे बडे कारक है जो परिवार में तनाव उत्पन्न करते हैं और तनाव जब चरम सीमा पर पहुंचते है। तो परिवार बिखरने लगते हैं। समाजशास्त्रियों, समाज सुधारको, द्वारा किए गए शोध और न ही कोई वैधानिक उपाय इस तनाव पूर्ण परिवार से तनाव खत्म करने में सफल हुए हैं क्योंकि यह परिवार के महत्वपूर्ण स्तम्भ जिन पर परिवार खड़ा है पति पत्नि के मध्य पति पत्नि के विचार, भावनाऐं और दृष्टिकोण आदि के द्वारा ही परिवार को बिखरने से बचाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त आज परिवार में जिस भावना की कमी है वह है समर्पण एवं आपसी समझ की भावना यदि वह भावना पुन: जागृत हो जाए तो परिवार का वातावरण सुखद हो जाएगा। इसके अतिरिक्त आज युवक और युवतिया जीवन की वास्तविकता से पूर्ण परिचित हो जाए। भावावेश में आकर कोई गलत कदम न उठाये और अपना परिवार बनाने की पहल करे तो 'मैं' की भावना को त्याग कर 'हम' की भावना को अपनाए तथा एक दूसरे के प्रति विश्वास श्रृद्धा, प्रेम, सहानुभूति सहनशीलता तथा समर्पण का भाव रखे तो शायद परिवार बिखरने से बच जायें समर्पण की मजबूत भावना से बनी परिवार के ईद गिर्द दीवार को कोई भी अहं या व्यक्तिवादी भावना परिवार के इस सुरक्षा कवच को नहीं तोड पाएगी और समाज में इसका स्थायित्व हमेशा बना रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. परिवाद विवाह नातेदारी – ईरावली।
2. सामाजिक व्यवस्था – राम आहूजा।
3. सामाजिक विघटन – सरला दुबे।
4. भारतीय सामाजिक समस्याऐं – जी. आर. मदान।
5. भारतीय समाज मुद्दें एवं समस्याऐं – महाजन व महाजन।

****

महिला सुरक्षा - सरकार के लिये बड़ी चुनौती (बलात्कार के विशेष संदर्भ में)

डॉ. रश्मि दुबे *

शोध सारांश – बलात्कार की समस्या सभी देशो में गंभीर मानी जाती है। हर उम्र की लड़की बलात्कार का शिकार हो सकती है। गरीब, अमीर, मध्यम, सभी वर्ग की लड़कियों के साथ छेड़खानी या बलात्कार का मामला सामने आता है। यहां तक की बहरी, गूंगी, पागल,अंधी और भिखारियों को भी नहीं छोड़ा जाता। बलात्कार की शिकार महिलाओं का जीवन जिंदा लाश की तरह बन जाता है। एक महिला का जबरदस्ती शील भंग करना बर्बर हिंसा का सूचक है। बलात्कार की शिकार महिला सामान्य ढंग से अपना जीवन यापन कर सकती है बस आवश्यकता है उसे इंसाफ दिलाने की अपराधियों को कठोर दंड देने की।

प्रस्तावना – जब भी चुनाव होते है बड़ी-बड़ी घोषणाओं के साथ वोट हासिल किये जाते है। चुनाव के बाद अक्सर उन्हें भुला दिया जाता है। भाजपा के घोषणा पत्र में भी देश की आधी आबादी यानि महिलाओं के कल्याण के लिये बढ़ चढ़ कर दावे किये गये। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरों की 2012 की रिर्पोट के अनुसार अगर मुबंई, कोलकत्ता, बैंगलूर, चेन्नई की बलात्कार की घटनाओं को जोड़ा जाए तो तब भी उनका संयुक्त आंकड़ा राजधानी दिल्ली से कम बैठता है। दिल्ली में दिन रात खूंखार अपराधी महिलाओं के शिकार की ताक में रहते है। राजधानी में महिला सुरक्षा से देश की महिला सुरक्षा का अंदाज लगाया जा सकता है।

अब यदि इस बात पर विचार किया जाये कि इस प्रकार के अपराध के लिए जिम्मेदार कौन है। हमेशा से समाज में नारी को दोयम दर्जे में रखा जाता है बाते भले ही बहुत बड़ा चढ़ा कर की जाती हो पर हकीकत से सभी परिचित है। महिलाओं की इस दुर्दशा के लिये समाज के साथ-साथ परोक्ष रूप से कानून व्यवस्था भी जिम्मेदार है। महिलाओं को दशकों तक न्याय नहीं मिलता है तारीख पर तारीख बढ़ती रहती है। पीड़िता को ऐसा प्रतीत होता है कि उसने कानून का दरवाजा खटखटा कर मानों बहुत बड़ी गलती कर दी हो। अदालत में बयान देते वक्त उसे हर वक्त यह याद रखना होता है कि उसके साथ बलात्कार कब, कैसे और किन हालातो में हुआ मेडिकल जॉच की कष्टप्रद प्रक्रिया से पीड़िताको गुजरना होता है।

राजनैतिक दल जनता को घोषणाओं की लम्बी सूची से परिचित करवा रहे है लेकिन उसमें महिलाओं की सुरक्षा के कोई ठोस आश्वासन नहीं है। फिर महिलाओं की सुरक्षा का आधार क्या हो इसका कोई ठोस उपाय किसी भी राजनैतिक दल के पास नहीं है। जब देश के कर्णधार राजधानी को ही सुरक्षित नहीं रख पाते तो उनसे लम्बी चौड़ी अपेक्षाए व्यर्थ है। अगर पार्टी का यह नारा 'अच्छे दिन आने वाले है' को लेकर देखे तो 100 दिनों में महिला सुरक्षा से संबंधित ऐसा कोई भी काम दिखाई नहीं देता जिससे महिलाऐं बैखोफ घर से निकल पाये आजादी से अपनी जिन्दगी जी पाये। आज सरकार के सामने विकास, विदेशनीति, और अर्थव्यवस्था आदि के साथ महिला सुरक्षा बहुत अहम् मुद्दा है।

अनेक दलों द्वारा लव जेहाद जैसी बातों को लेकर सांम्प्रदायिक तनाव फैलाने की कोशिश भी की जा रही है अब ऐसी स्थिति में केन्द्र सरकार को तय करना होगा कि वो अपने सहयोगियों का समर्थन करेगी या आम औरतों को आजादी से फैसले लेने का अधिकार देगी। दिसम्बर 2012 के निर्मम सामूहिक बलात्कार के बाद महिलाओं के खिलाफ यौन हिंसा के मुद्दे पर कड़े कानून की मांग पर सभी राजनैतिक पार्टियां साथ आई पर सवाल यह है कि क्या सरकार की जवाबदारी बहस और जवाबों के बाद खत्म हो जाती है।

मौजूदा लोकसभा में 543 में से 62 सांसद महिलायें है क्या वे इस बात का अहसास सरकार को करा पायेगी की आम और खास महिलाओं की सुरक्षा में बहुत अंतर होता है यदि किसी पद को प्राप्त कर लेने पर हमें इतनी सुरक्षा मिलती है तो आम महिला क्या सुरक्षा की अधिकारिणी नहीं है यह बहुत विचार करने का प्रश्न है। सुरक्षा के नाम पर महिलाओं के अधिकारों का हनन भी अपराध है। देश या राज्य के सर्वोच्च पद पर महिला का आसीन हो जाना महिला सुरक्षा का आधार कतई नहीं है।

महिला जो सृष्टि की रचना करती है उसे सजाती है, संवारती है अपनी भूख और हवस को शांत करने के लियें उसके ही साथ यौन दुर्व्यव्हार करने वाले अपराधियों को तत्काल मौत की सजा सुनाई जानी चाहिये न कि 16 दिसम्बर 2012 से 2 वर्ष पूर्ण हाने पर भी उन दरिंदों को बचाने की कोशिश करना चाहिये ये कैसा अन्याय है सृष्टि की रचियता के साथ महिला सशक्तिकरण और महिला सुरक्षा की आवाजे तो सभी मंचो से सभी राजनेता उठाते है इसके कुछ सकारात्मक परिणाम भी सामने आये है महिला अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों से लड़ने के लिये सक्षम हो रही है लेकिन सत्ता की भूमिका संदेहास्पद है महज महिला बैंक देने से, मेट्रों में डिब्बा आरक्षित करवा देने से महिला हेल्पलाईन की शुरूआत करवा देने से महिलाओं की सुरक्षा की तस्वीर बदलने वाली नहीं।

समाज में ऐसे बदलाव की जरूरत है कि परंपरा की आड़ में किसी स्त्री का अपमान न हो। पुरूष महिलाओं के प्रति अपनी धारणा बदले। इन 100 दिनों में बहुत से मुद्दे पर पहल जरूर हुई है पर महिला सुरक्षा के क्षेत्र में सरकार को कई मामलों में कठोर निर्णय लेना अभी बाकी है। आज महिला सुरक्षा राष्ट्र की सबसे बड़ी व प्रमुख समस्या के रूप में सरकार के सामने चुनौती है। इस चुनौती को सरकार के द्वारा स्वीकारने के साथ साथ उससे निपटने के प्रयास भी युद्धस्तर पर करने होगे जिससे आजाद देश में महिला भी आजादी का अनुभव कर सके। दरअसल मुश्किल यह है कि किसी भी अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने में देखा गया है कि विभिन्न पार्टियों के लोग या तो अन्याय के पक्ष में या फिर विपक्ष में खड़े हो जाते है। जब देश में आसाराम बाबू के ऊपर

* प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत

बलात्कार का आरोप लगा तो एक पार्टी कह रही थी आसाराम ऐसा कर सकते है वही दूसरी पार्टी का कहना था आसाराम ऐसा नहीं कर सकते। जब तेजपाल का बलात्कार का मामला आया तो जो पार्टी कह रही थी आसाराम ऐसा नहीं कर सकते वो ही अब यह कह रही थी तेजपाल दोषी है। आसाराम का विरोधी दल तेजपाल को निर्दोष बताने में लग गया। अपराधी वर्ग ने सपने में भी नहीं सोचा होगा कि घृणित कार्य करने के बाद उनके समर्थकों और अनुयायियों की संख्या जरा भी कम नहीं हुई है। बलात्कार शायद कानून की नजर में अपराध है नारी विरोधी समाज की नजर में वह अब भी अपराध नहीं है।

बलात्कार के मामले में किशोर बच्चों का शामिल होना फिर उन्हें सुधारगृह में संरक्षण हेतु भेज देना बहुत ही चिन्तनीय और निन्दनीय है बाल अपराध - कानून को बहुत सख्त बनाने की जरूरत है यदि बलात्कारी को नाबालिग कहकर उसकी सजा माफ कर दी जाती है तो हादसे के शिकार लोगों के साथ इससे बड़ा और क्या अन्याय होगा उम्र के बजाय अपराध की गंभीरता को देखकर न्याय होना चाहिये। ऐसी स्थिति में सरकार और मंत्रालय तथा दुनिया भर के कानून इस बात पर गंभीरता से विचार करे कि महिलाओं के प्रति यौन हिंसा के अपराधों में व्यस्कों के साथ-साथ किशोरो की बढ़ती भूमिका पर काबू किस प्रकार पाया जाये। कौन से सख्त कानून बनाये जायें आदि चुनौतियां सरकार के सामने है। विपक्ष की पार्टी के पूछने पर वर्तमान सरकार यह भले ही बार-बार कह रही है कि जो 60 वर्षो में नहीं हुआ वो 60 या 100 दिन में कैसे संभव है बात निश्चित विचार करने वाली है परंतु महिला सुरक्षा को लेकर कोई ठोस योजनाओं पर विचार मंथन भी नहीं दिखाई दे रहा है जिससे महिलाओं को राहत महसूस हो। किसी बलात्कार या छेड़खानी की घटना के बाद तात्कालीन असर तो अवश्य दिखाई देता है फिर वही सब देश की अर्थव्यवस्था, विदेशनीति, आदि मुद्दों के सामने महिला सुरक्षा की योजना उसी तरह दब जाती है जैसे बड़ा पहाड़ खिसकने से कोई गांव दब जाता है फिर कभी उसे खुदाई द्वारा निकालने की कोशिश की जाती है और तब तक उस गांव का नामों निशान खत्म हो जाता है तो आज सरकार के सामने बडी चुनौती है, कि गांव की तरह महिला की इज्जत को न दबने दे बल्कि उसके पहले की कुछ ऐसे कारगार उपाय हो जाने चाहिये कि इस देश की महिला की इज्जत को कोई आंच न आ पाये।

अब प्रश्न यह है कि क्या महिलाओं द्वारा पुलिस में रिर्पोट दर्ज कराने से, आक्रोशित जन आन्दोलन, पीड़ित महिला की मेडिकल जॉच, विपक्षी पार्टी पर दोषारोपण, मीडियावार्ता, लम्बे वादे, लम्बे भाषणों से क्या किसी महिला की इज्जत को लुटने से रोका जा सकता है इस प्रश्न का जवाब सरकार को कुछ कारगर कदम उठाकर देना होगा, इस चुनौती को स्वीकार करना होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. आहूजा राम - क्राइम अगेन्स्ड वूमेन, रावत पब्लिकेशन जयपुर, 1987
2. आहूजा राम - वायलेंस अगेन्स्ड वूमेन, रावत पब्लिकेशन जयपुर, 1998
3. लियोनार्ड ई.बी. - वूमेन क्राइम एण्ड सोसायटी, लांगमेन, न्यूयार्क 1982
4. इंडिया टुडे - लिविंग मीडिया इंडिया लिमिटेड नोएडा, सितम्बर 2014(पत्रिका)
5. इंडिया टुडे - तदैव- सितम्बर 2013 (पत्रिका)
6. फॉलोअप -जी. के. पार्ट2 नई दिल्ली सितम्बर 2014 (पत्रिका)

****

भिलाला जनजातिय विवाह और वधू पक्ष का प्रभुत्व

डॉ. के. एस. बघेल *

प्रस्तावना – भारत की प्राचीन जनजातियों मे मध्यप्रदेश की धरती पर धार, झाबुआ, अलीराजपुर जिले में निवासरत भिलाला जनजाति है। प्रत्येक जातियों की अपनी विशेषता होती है उसी प्रकार भिलाला जनजाति में अनेक अनुकरणीय विशेषताएँ मौजूद है।

भारत के अनेक धर्मावलम्बी , सम्प्रदाय, जाति एवं जनजातियों में विवाह की अनेक प्रथाएँ भिन्न–भिन्न है। कुछ जातियों में विवाह अवसर पर दहेज, प्रथा और भैतिकवादी व्यय के कारण समाज में कुण्ठित, पीड़ित एवं भ्रुण हत्या जैसी ज्वलंत समस्याएँ उभरी है जिससे निपटने के लिए शासन, प्रषासन द्वारा महिला सशक्तिकरण जैसे कदम उठाना पडा है। भिलाला जनजातीय विवाह में वधूपक्ष की प्रभुत्ता दिखाई देती है। विवाह अवसर पर उनके रीतियों, गीतों कहावतों में 'स्त्री पक्ष' को ही महत्व दिया जाता है। विवाह की परम्परा में लड़की (वधू) एवं वधूपक्ष की महत्ता देखी जा सकती है।

भिलाला समाज में विवाह तय करने के लिए लड़के वाले (वरपक्ष) को ही बातचीत के लिए पहल करनी पडती है। लड़के वाले लड़की को देखने जाते हैं। लड़की पसंद आ जाती है तो सर्वप्रथम सगाई (मंगनी) की रस्म होती हैं। सगाई भिलालों में सर्वप्रथम लड़का पक्ष से लड़की वालों के घर तक प्रस्ताव रखने के लिए एक व्यक्ति को चुना जाता है जो दोनों परिवार से परिचित एवं विश्वसनीय होता है। दोनों परिवार का मध्यस्थता करता है जिसे 'भंनगड़िया' कहते हैं। भंनगड़िया लड़का–लड़की के माता–पिता से विवाह के समस्त कार्यो को सुचारू रूप से सम्पन्न करने में मदद करता है।

मंगनी करने के लिए शुभ दिन एवं आकाशीय तारे के अनुसार ही तय किया जाता है। लड़के पक्ष के लोग लड़की पक्ष के घर के आंगन में रात्रि तीन से पाँच बजे के बीच 'आग' जलाकर चारों ओर बैठ जाते हैं। लड़की पक्ष के लोग सुबह सभी रिश्तेदारों, गांववालों को सगाई करने की सूचना दी जाती है। सगाई के दौरान लड़के के पक्षकार को लड़की के पक्षवालों को राशि बीस हजार से साठ हजार, गुड, तेल, गेहूँ आदि देने के लिए तय किया जाता है। अत: भिलालों में सगाई के दौरान लडकी पक्ष को सहयोगरूपी दान देना महिला सशक्तिकरण का अनुकरणीय उदाहरण है। प्रत्येक माता–पिता को लड़की की शादी को लेकर चिंता जैसी कोई विषय नहीं होता है।

सगाई के कुछ दिनों के बाद लड़की वालों के यहाँ सगाई में तय राशि, अनाज, गुड़, तेल, दाल आदि लेकर 'साऊँग' ले जाते है जिन्हें 'सांवग्या' कहते हैं। इस सामग्री से लड़की के माता–पिता लड़की के विवाह समय भोज के आयोजन में उपयोग करते हैं तथा प्राप्त राषि से लड़की हेतु चाँदी या सोने के जेवर बनवाते है ताकि लड़की के घर जाने पर विपत्ति के समय उस जेवर का उपयोग वर और वधू कर सके। इस राशि पर केवल वधू का अधिकार होता है।

अत: भिलाला समाज में विवाह हेतु लड़की के माता–पिता के लिए विवाह सामग्री वर पक्ष देता है जिससे वधू की महत्ता बढ़ जाती हैं। ऐसी स्थिति में कोई भी माता–पिता पुत्री को बोझ नहीं समझता है और भ्रुण हत्या जैसी भावनाएँ भी पैदा नहीं होती हैं जबकि कुछ उच्च जाति मानने वालों में दहेज का बोलबाला हैं, वहॉ माता–पिता अपनी पुत्री का विवाह कैसे करेंगे, यही सोचकर उनमें भ्रुण हत्या जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती है।

साऊँग भरने के पश्चात विवाह के कार्यक्रम दोनों पक्षों की सहमति से होता है। विवाह के समय भी वधू हेतु वर पक्ष की और से कपड़े भेजे जाते हैं जिन्हें वधू विवाह के दिन उसे ही धारण करती है। वर पक्ष यानी बारात जब वधू के घर पहुँचती है तो वर पक्ष पर वधू पक्ष की स्त्रियाँ व्यंग्य गीत गाती हैं जबकि वर पक्ष की स्त्रियाँ निर्मल भाव से गीत गाती है। वर पक्ष की महिलाएँ वधू पक्ष पर व्यंग्य गीत नहीं गा सकती क्योंकि यहॉ वधू पक्ष भारी एवं प्रभावशाली माना जाता है।

भिलाला समाज में विवाह जैसी प्रथाओं में वधू पक्ष से दहेज नहीं लिया जाता है। वर पक्ष की ओर से वधू पक्ष को विवाह सामग्री एवं कुछ आंशिक राशि दी जाती है। यह स्वभाविक भी लगती हैं क्योंकि लड़की के माता–पिता बचपन से लड़की का पालन पोषण करते हैं साथ ही, वे लड़की को सक्षम बनाकर वर पक्ष के साथ भेजते हैं। वे बडे होने के कारण स्वयं भी जीविकोपार्जन कर सकते हैं। किन्तु माता–पिता प्रौढ़ अवस्था में नहीं कर सकते हैं। निश्चय ही, भिलाला समाज के विवाह प्रथाएँ अनुकरणीय है क्योंकि ऐसी व्यवस्था से कभी भ्रुण हत्या नहीं होगी। लिंगानुपात में अन्तर नहीं होगा। वर्तमान में भिलाला पुरूष और स्त्रियों में लिंगानुपात में अन्तर नहीं है लड़की के माता–पिता लड़की को लेकर किसी प्रकार की चिंता नहीं करते हैं भिलाला समाज में गरीबी जरूर है किन्तु महिला पक्ष सशक्त है। अधिकांश उच्च और सम्पन्न शिक्षित वर्ग में भ्रुण हत्या, दहेज प्रथा अैर अनेक विकार पैदा होने से इन्हें रोकने हेतु करोड़ों रूपये व्यय के साथ समाज, राष्ट्र को हानि पहुँच रही हैं। इस हानि से बचने हेतु भिलाला समाज की विवाह प्रथा में वधू पक्ष की महत्ता अनुकरणीय एवं प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. डॉ. कपिल तिवारी – सम्पदा – मध्यप्रदेश की जनजातीय सांस्कृतिक परम्परा का साक्ष्य।
2. बसन्त निरगुणे – निमाड़ी संस्कृति और साहित्य।
3. गोमती प्रसाद विकल – बघेली संस्कृति और साहित्य।
4. डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित – मालवी संस्कृति और साहित्य।
5. डॉ. कुंवरसिंह बघेल – भिलाली लोक साहित्य का अध्ययन (शोध प्रबंध)
6. सक्षात्कार।

* प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, पानसेमल, जिला–बड़वानी (म.प्र.) भारत

पर्यावरण प्रतिबल – समस्याएँ एवं प्रबंधन

श्रीमती सुधा शाक्य *

शोध सारांश – प्रस्तुत शोध आलेख पर्यावरण असंतुलन से उत्पन्न पर्यावरणीय प्रतिबल से संबंधित शारीरिक एवं मानसिक समस्याओं, विकृतियों से मुक्त होने हेतु प्रतिबल का प्रबंधन, पर्यावरण संरक्षण एवं जागरुकता लाने के उद्देश्य से किया गया एक प्रयास है। व्यक्ति के आसपास जो कुछ भी है वही उसका वातावरण या पर्यावरण कहलाता है। एनेच एनास्टसी के अनुसार पर्यावरण वह प्रत्येक वस्तु है जो जीन्स के अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करती है। जन सामान्य के शब्दों में हमारी सारी धरती और उस पर उपस्थित प्रत्येक वस्तु हमारा 'पर्यावरण' है। प्रत्येक जीव अनुवंशिकी और पर्यावरण का संयुक्त प्रतिफल है, पर्यावरण का, जीव की शारीरिक संरचना स्वास्थ्य और मन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण को निर्मित करने में वायुमंडल, जल एवं थल का महत्वपूर्ण योगदान है। बदलते हुए पर्यावरण का प्रभाव वहां निवास करने वाले जीवधारियों और भौतिक पदार्थो पर होता है। जब जैविक एवं भौतिक पर्यावरण में उचित सामन्जस्य होता है तो प्रकृति अपना कार्य संतुलित ढंग से करती है। जब मानव असभ्य, अशिक्षित और अंजान था तो संतुलित था परन्तु जैसे जैसे सभ्यता का विकास हुआ वैज्ञानिक उपलब्धियां बढ़ी मानव सभ्य होता गया परन्तु पर्यावरण असंतुलित होता गया। आज पर्यावरण–असंतुलन की समस्या विज्ञान और प्रौद्योगिकी की देन है। अंतर्राष्ट्रीय संस्था डारा ने–2030 तक 10 करोड़ लोगों की मौत की चेतावनी दी है। उसने पर्यावरण असंतुलन पर, 20 देशों के कहने से सर्वे कराया था, जिसमें 184 देशों को शामिल किया गया। 2010 से 2030 के बीच के बीच, असंतुलन पर पड़ने वाले प्रभावों बावत्, रिपोर्ट में बताया गया कि इससे हर वर्ष, विश्व में 50 लाख लोगों की मौत होती है। हालात न सुधरे, तो यह संख्या 2030 तक हर वर्ष 60 लाख पर पहुंच जाएगी।

पर्यावरण असंतुलन के कारण प्राकृतिक आपदाएं, विस्थापन का दबाब, पेशे का दबाब, नगरीय भीड़, कोलाहल अन्य प्रदूषण, जनसंख्या विस्फोट, प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास, औद्योगिक प्रदूषण, तकनीकी आपदाएं आदि विभिन्न समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। इनसे व्यक्ति के जीवन के अनेक प्रकार के संकट और व्यवधान उत्पन्न हो रहे हैं। इन्हें प्रतिबलक कहा गया है, और इन्हीं प्रतिबलकों के प्रभाव से व्यक्ति में प्रतिबल (Strees) उत्पन्न होता है। प्रतिबल के दुष्परिणाम स्वरुप कई प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक समस्याएं जन्म लेती हैं। व्यक्ति कई शारीरिक समस्याएं जैसे उच्च रक्त चाप, सिरदर्द, शारीरिक कमजोरी, दृष्टि एवं श्रवण दोष, त्वचा एवं श्वास संबंधी बीमारियां, अस्थमा, पाचन संबंधी विकार आदि उत्पन्न होती हैं। कोटम (1986) ने अध्ययन में पाया कि शांत स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों की अपेक्षा कोलाहलपूर्ण स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों के रक्त चाप का स्तर अपेक्षाकृत अधिक था। कई प्रकार की मनोवैज्ञानिक समस्याएं जैसे चिन्ता, विषाद, भय, अनिद्रा, चिड़चिड़ापन, स्मृति दोष एवं ह्रास, आत्महत्या, मनोदैहिक विकृति, व्यवहार विकृति, मानसिक स्वास्थ्य में गिरावट, नकारात्मक प्रवृत्ति, आक्रामकता, हिंसक प्रवृत्ति आदि समस्याएं उत्पन्न होती हैं। पास्कर (1977) ने अध्ययन में पाया कि प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित व्यक्ति में से 25–30% से अधिक लोग मनोवैज्ञानिक समस्याओं से ग्रस्त दृष्टिगत होते हैं। 2013 की उत्तराखंड की प्राकृतिक आपदा अभी हाल ही में सितम्बर 2014 की जम्मू कश्मीर की बाढ़ आपदा इनका साक्षात प्रमाण है। पर्यावरणीय प्रतिबल से बचने के लिए पर्यावरण शिक्षा और मूल्यों को विकसित करना होगा, शिथलीकरण की तकनीक को अपनाना, सकारात्मक चिंतन विकसित करना, मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य को उन्नत करन की प्रविधियों को अपनाना, आपदा प्रबंधन एवं तनाव प्रबंधन का प्रशिक्षण प्रदान करना, मनोचिकित्सा आदि सुरक्षात्मक उपाय अपनाना जरुरी हैं। काव्नर (1982) ने अध्ययनों से निष्कर्ष निकाला कि 'यदि लोग पर्यावरण के अवयवों को मूल्यवान और उसका विवेकपूर्ण उपयोग करना कर्तव्य मानने लगे तो स्वत: प्रेरित होकर उनके संरक्षण के लिए प्रयास करेंगे।' आज हर व्यक्ति का उत्तरदायित्व है कि हम पर्यावरण असंतुलन को समाप्त कर पर्यावरण संरक्षण करें जिससे संपूर्ण मानवजाति, वन्य प्राणी, वनस्पति और प्राकृतिक धरोहर सुरक्षित रहे।

प्रस्तावना – मनुष्य के चारों ओर फैले हुए वातावरण को पर्यावरण की संज्ञा दी गई है। जन्म के पश्चात् वह पूरे जीवन पर्यन्त पर्यावरण में ही रहता है, और इसी पर्यावरण में उसका संपूर्ण व्यक्तित्व विकसित होता है। उसका सामाजिक, वैयक्तिक, मानसिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सौन्दर्यात्मक, शैक्षिक विकास होता है। अच्छे, स्वच्छ तथा स्वस्थ्य पर्यावरण में व्यक्ति का विकास भी स्वस्थ्य होता है। इसलिए कहा गया है कि व्यक्ति को चारों ओर से ढकने वाला आवरण ही पर्यावरण है। इसके अभाव में जीवन असंभव है। तभी गॉस महोदय ने कहा है कि पर्यावरण वह बाह्य शक्ति है, जो हमें प्रभावित करती है। बदलते हुए पर्यावरण का प्रभाव उसमें निवास करने वाले प्रत्येक जीवनधारियों और वनस्पतियों पर होता है।

जब जैविक और भौतिक पर्यावरण के मध्य सामन्जस्य होता है तो प्रकृति अपना कार्य संतुलित तरीके से करती है, जैसे–जैसे वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी विकास होता गया वैसे–वैसे पर्यावरण अंसुलित होता गया। अंतर्राष्ट्रीय संस्था डारा ने–2030 तक 10 करोड़ लोगों की मौत की चेतावनी दी है। उसने पर्यावरण असंतुलन पर, 20 देशों के कहने से सर्वे कराया था, जिसमें 184 देशों को शामिल किया गया। 2010 से 2030 के बीच, असंतुलन पर पड़ने वाले प्रभावों बावत्, रिपोर्ट में बताया गया कि इससे हर वर्ष, विश्व में 50 लाख लोगों की मौत होती है। हालात न सुधरे, तो यह संख्या 2030 तक हर वर्ष 60 लाख पह पहुंच जाएगी। पर्यावरण संतुलन के कारण प्राकृतिक आपदाएं, विस्थापन का दबाब, पेशे का दबाब, नगरीय भीड़, कोलाहल

* सहायक प्राध्यापक (मनोविज्ञान) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत

अन्य प्रदूषण, जनसंख्या विस्फोट, प्राकृतिक संसाधनोंका ह्रास, औद्योगिक प्रदूषण, तकनीकि आपदाएं आदि विभिन्न समस्याओं के कारण व्यक्ति के जीवन में कई प्रकार के संकट और व्यवधान उत्पन्न हो रहे हैं, इन्हें प्रतिबलक कहा गया है और इन्हीं प्रतिबलकों के प्रभाव से व्यक्ति में प्रतिबल उत्पन्न होता है। लैनारस (1966) तथा मैकगर्थ (1978) का दृष्टिकोण है कि पर्यावरणीय प्रतिबल, पर्यावरणीय मांग तथा प्राणी की अनुक्रिया करने की क्षमता में असंतुलन होने के कारण उत्पन्न होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यक्ति जब पर्यावरणीय उद्दीपक का मूल्यांकन अपनी व्यक्तिगत क्षमता से अधिक करता है तो प्रतिबल उत्पन्न होता है। बाम, सिंगई तथा कैप्लान (1982) ने कहा कि पर्यावरणीय प्रतिबल का जन्म पर्यावरणीय अवसरों तथा व्यक्ति के लक्ष्य तथा सामना करने की क्षमता के बीच असंतुलन के लिए खतरा उत्पन्न करने वाली घटनाओं के प्रति व्यक्ति विभिन्न प्रकार की अनुक्रिया करता है इसे ही प्रतिबल अनुक्रिया कहा गया है। **पर्यावरणीय प्रतिबलक का सम्प्रत और समस्याएं –** मनुष्य में जिन पर्यावरणीय घटनाओं के कारण प्रतिबल उत्पन्न होता है उसे 'पर्यावरणीय प्रतिबल' कहा गया है। ऐसी पर्यावरणीय घटनाएं जो व्यक्ति में सांवेगिक परिवर्तन जैसे भय, क्रोध, विभिन्न समस्याएं, कुंठा, चिन्ता, चिड़चिड़ापन, मनोदशा को खराब करना, विषाद, आशंका, विकृत विचार, नकारात्मकता आदि को उत्पन्न करती हैं वे 'पर्यावरणीय प्रतिबलक' कहलाती हैं। लैजारस और कोहन (1977) प्रतिबलकों के प्रलयकारी घटनाएं संबंधी प्रतिबलक व्यक्तिगत प्रतिबलक और अन्य प्रकार के प्रतिबलक इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया है। प्रलयकारी घटनाओं के अंतर्गत प्राकृतिक आपदाएं, युद्ध, नाभिकीय दुर्घटनाएं आदि अप्रत्याशित तथा अत्याधिक भय उत्पन्न करने वाली घटनाएं आती हैं। दूसरी श्रेणी के प्रतिबलक के अंतर्गत बीमारी, व्यावसायिक क्षति, किसी प्रियजन की मृत्यु, तलाक आदि आते हैं। तृतीय श्रेणी में प्रतिदिन की दिनचर्या में घटित होने वाली घटनाएं बहुत देर तक बने रहने वाले तथा बार-बार घटित होने वाली घटनाएं आती हैं। इसके अलावा भी और कई प्रकार के प्रतिबलक हैं जिनका मनोवैज्ञानिक प्रभाव व्यक्ति पर होता है।

1. प्राकतिक आपदाएं – प्राकृतिक पर्यावरण में घटित होने वाली किसी भी भय, चिन्ता, अवसाद आदि उत्पन्न करने वाली घटनाओं को प्राकृतिक आपदा कहा जाता है। ये अचानक घटिक होती हैं। ज्वालामुखी का फटना, हिमपात, अत्याधिक गर्मी व ठंड, शीतलहर, सूखा पड़ना, चक्रवात लू का चलना, भूकम्प बाढ़ आदि प्राकृतिक आपदा की श्रेणी में आते हैं। इन आपदाओं की विनाशकारी शक्ति बहुत तीव्र होती है। ये क्षणिक अवधि की हो सकती है जैसे भूकम्प, तूफान, बवन्डर आदि तथा अधिक समय की भी हो सकती हैं, जैसे शीतलहर, सूखा, लू, बाढ़ आदि। इनसे प्रभावित व्यक्तियों में चिन्ता, भय, अवसाद व अन्य प्रकार के प्रतिबल से संबंधित सांवेगिक विकृतियां पाई जाती हैं। पारकर (1977) ने अध्ययन में पाया कि प्राकृतिक आपदाओं के घटित होने के एक माह बाद तक प्रभावित व्यक्तियों में से 25-30% से अधिक मनोवैज्ञानिक समस्याओं से ग्रस्त होते हैं, और मानसिक क्षति पहुंचती है। व्यक्ति को समायोजन करने में अधिक प्रयास की आवश्यकता होती है। दैनिक भास्कर (5 अक्टूबर 2014) आंकड़े बतलाते हैं कि जम्मू कश्मीर में आई बाढ़ से पर्यटन उद्योग को रोजाना लगभग 1 करोड़ रु. से ज्यादा का नुकसान हो रहा है जो अब तक 70 करोड़ रुपये से ज्यादा पहुंच गया है।

2. तकनीकी विपदाएं – दैनिक भास्कर 5 अक्टूबर 2014 आंकड़े बतलाते हैं कि जम्मू कश्मीर में हाल ही आई बाढ़ से पर्यटन उद्योग को रोजाना लगभग 1 करोड़ से ज्यादा का नुकसान हो रहा हे जो अब तक 70 करोड़ रु. से ज्यादा पहुंच गया है। आज जीवन की गुणवत्ता में सुधार, औसत आयु में वृद्धि, असाध्य बीमारियों पर विजय, मंगलग्रह पर मंगलयान का पहुंचना, संचार साधनों का विकास, इंटरनेट आदि तकनीकि एवं प्रोद्योगिक क्षेत्र में विकास की ही देन है। परंतु कभी-कभी मनुष्य की अकुशलता, अप्रशिक्षण और लापरवाही तथा मशीनों में तकनीकी खराबी के कारण तकनीकी दुर्घटनाएं घटित हो जाती हैं। ये अत्याधिक तीव्रता के साथ या अकस्मात घटित होती हैं। जैसे बांध का टूटना, बिजली की खराबी, कोयले की खान में घटित दुर्घटना, नाभिकीय दुर्घटना, सड़क दुर्घटना आदि तकनीकी विपदाओं की श्रेणी में आते हैं। ये विपदाएं अल्पकालिक भी होती हैं, जैसे बिजली सयंत्र का अचानक खराब हो जाना आदि तथा दीर्घकालिक भी होती हैं जैसे थ्री माइल्स आइलैंड तथा चेरनाबुल में होने वाली नाभिकीय दुर्घटना, भोपाल की गैस त्रासदी, उत्तराखंड त्रासदी, जम्मू कश्मीर की बाढ़ आदि परंतु इसके दुष्प्रभाव घातक और दीर्घकालीन होते हैं। इन घटनाओं के कारण व्यक्ति में नियंत्रण का प्रत्यायीकरण कम हो जाता है, बेचैनी, तनाव, आशंका, सांस की बीमारी, अस्थमा, चिन्ता, भय, विषाद आदि विकृतियां आ जाती हैं। वाम एवं सहयोगियों (1983) ने थी माइल्स आइलैंड की नाभिकीय दुर्घटना के पश्चात् निवासियों में दुर्घटना के डेढ़ वर्ष तक प्रतिबल के विभिन्न दुष्परिणाम पाए। भोपाल में 1984 की गैस त्रासदी की दुर्घटना से प्रभावित लोगों में दैहिक और मनोवैज्ञानिक समस्याएं पाई गई।

3. पर्यावरणीय प्रदूषण – जनसंख्या एवं पर्यावरण का आपस में गहन संबंध है। जनसंख्या आज एक बहुत बड़ी राष्ट्रीय समस्या बनती जा रही है। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण भूमि पर अतिक्रमण हो रहा है, जिससे कृषि योग्य भूमि की कमी, आवासियों कालोनियों का विकास एवं प्रसार, वनों का विनाश, भूमिगत जल का दोहन आदि समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। जनसंख्या वृद्धि का नकारात्मक प्रभाव पशुओं पर भी देखा जा रहा है। खाने-पीने के पर्याप्त साधन होने के बावजूद सघन पर्यावरण में रहने वाले पशुओं में आक्रमण, शारीरिक रोग, नरभक्षण आदि नकारात्मक प्रभाव देखे जा रहे हैं मनुष्य भी भीड़-भाड़ के स्थानों में जाने से घबराता है, साथ ही प्रत्यक्षीकरण, अवधान, विवेक, चिंतन तथा निर्णय क्षमता पर भी नकारात्मक प्रभाव होता है। कोहन (1996) ने अध्ययन में पाया कि नकारात्मक प्रभाव तंत्रिका, व्यवहार संबंधी, हार्मोन्स से संबंधित परिवर्तन लाते हैं, जो प्रतिरक्षा प्रणाली की कार्यात्मकता को अवरुद्ध करते हैं। कोलाहल या ध्वनि प्रदूषण एक कम शक्तिशाली प्रतिबलक है, किसी भी तेज, अर्थहीन, अरुचिकर तथा असंतुष्टिकारक आवाज को कोलाहल कहा जाता है। यह निरन्तर भी हो सकता है, और अनिरंतर भी कोलाहल पूर्ण परिस्थितियों में व्यक्ति तनाव, चिन्ता, चिड़चिड़ापन, निर्णय लेने में अक्षम तथा आक्रमण हो जाता हैं सीगेल एवं स्टील (1980) ने अध्ययन में पाया कि शोरगुल व्यक्ति को अपने पर्यावरण के संकुचित एवं संकीर्ण मार्ग पर अपने ध्यान को केन्द्रित करने पर बाध्य करते हैं, जिसके परिणामस्वरुप दूसरे लोगों के संबंध में उनके निर्णय अपेक्षाकृत अधिक उग्र एवं अविचारित होते हैं। मीचेन एवं स्मिथ (1977) ने अध्ययन में पाया कि कोलाहल से मानसिक रोगों में वृद्धि होती है। ताप भी एक पर्यावरणीय प्रतिबलक है, भूमंडलीकरण के कारण आज वातावरण के ताप में अचानक वृद्धि हो रही है, इसका प्रभाव व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार, स्वास्थ्य तथा निष्पादन पर पड़ता है, साथ ही क्रोध, खीज, आक्रामक व्यवहार में वृद्धि तथा सहायतापरक व्यवहार में कमी, अन्तवैयक्तिक आकर्षण में कमी तथा निष्पादन में कमी आदि आती है। बेल एवं ग्रीक (1982) में अध्ययन

में पाया कि अत्याधिक समय तक गर्मी की स्थिति में काम करते रहने पर निष्पादन में सार्थक रुप से कमी आती है।

वायु प्रदूषण का प्रभाव सभी लोगों पर होता है। वायु में कार्बनडाय आक्साइड, कार्बन मोनोआक्साइड, सल्फर डाय ऑक्साइड, नाइट्रोजन डाय ऑक्साइड आदि गैसों की अधिकता के कारण वायु प्रदूषित हो जाती है। इन प्रदूषकों के कारण अनेक प्रकार के लक्षण व्यक्ति के दृष्टिगत होते हैं, जिसे वायु प्रदूषण संलक्षण कहा गया है, जिससे व्यक्ति में सिरदर्द, थकान, चिड़चिड़ापन, विषाद, आंखों मे जलन, स्मृति दोष आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। प्लॉटर (1975) ने अध्ययन में पाया कि वायु प्रदूषण से व्यक्तियों में शारीरिक एवं मन: चिकित्सकीय समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

जल प्रदूषण भी एक गंभीर प्रतिबलक है, क्योंकि जल के बिना कुछ भी संभव नहीं है, घरों का कूड़ा, कारखानों का गंदा पानी, बर्तन कपड़े का पानी, पशु स्नान व शौच का पानी आदि जल को प्रदूषित कर देते हैं, जिससे अनेक हानिकारक जीवाणु जल में उत्पन्न हो जाते हैं, और जल गंदा हो जाता है। प्रदूषित जल शरीर के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है, जिससे पीलिया, डायरिया, आंव, दाद खुजली आदि बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं। अध्ययनों से स्पष्ट है कि विश्व में गंदा पानी पीने के लिए मजबूर लोगों की संख्या लगभग 1 अरब से अधिक है। जल प्रदूषण से मरने वालो की संख्या 1.5 करोड़ से अधिक है तथा भारत में प्रतिलाख मरने वालों की संख्या 60 से अधिक है। मृदा प्रदूषण भी एक पर्यावरणीय प्रतिबलक है। वनों का विनाश, वनों को जलाना, दोषपूर्ण सिंचाई, उर्वरकों का दोषपूर्ण उपयोग, ठोस अपशिष्ट पदार्थो का मलवा, रसायनों का उत्सर्जन तथा कीटनाशकों का प्रयोग आदि से भूमि की उर्वरक शक्ति तथा गुणवत्ता कम होती जा रही है। इससे जो फसल, सब्जियां और फल उत्पन्न होते हैं, उसके दुष्प्रभाव के कारण व्यक्तियों में कैंसर, टी.बी. दमा आदि रोग उत्पन्न हो रहे हैं। अध्ययनों में पाया कि डी.डी.टी. का प्रभाव आज जानवरों और महिलाओं के दूध तक में पहुंच गए हैं, और डी.डी.टी. की सूक्ष्म मात्रा माताओं के दूध में पाई गई है।

प्रतिबल प्रबंधन – पर्यावरण से उत्पन्न होने वाले प्रतिबल व्यक्ति में कई प्रकार के शारीरिक और मानसिक समस्याओं और बीमारियों को जन्म दे रहा है, और इनसे मुक्त होने के लिए व्यक्तियों को कई प्रयास करने होंगे। व्यक्ति पर्यावरणीय प्रतिबलकों का प्रत्यक्षीकरण कर उसमें संज्ञानात्मक, भावात्मक, व्याख्यात्मक तथा मूल्यांकनपरक पक्षों पर ध्यान देता है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति किसी भी परिस्थितियों का प्रत्यक्षीकरण करने के उपरांत उसे कैसा समझता है? किस प्रकार की सूचनाओं को एकत्रित करता है? सूचनाओं का स्वरुप क्या है ? यह संज्ञान की महत्ता को स्पष्ट करते हुए कैप्लान (1982) ने आंतरिक प्रक्रमों जैसे मनन करना या मात्र बैठना तथा सोचना के महत्व को रेखांकित किया है। सर्वप्रथम संज्ञान के लिए व्यक्ति को अपनी सोच बदलनी होगी। सकारात्मक सोच से व्यक्ति बहुत से प्रतिबलों से मुक्त हो सकता है। व्यक्ति में व्यक्तित्व विशेषताएं भी जैसे वेल एवं वैरन ने इसे शामक की संज्ञा दी है, खतरे के बाद में होने वाली क्षति को कम करने के प्रयास से संबंधित पाया ऐसे लोग आपदाओं के प्रति अधिक सावधानी रखते हैं और आपदा के कारण होने वाली क्षति को नकार कर अपने आप को दूसरों से अच्छी स्थिति में महसूस करते हैं। जिस प्रकार तीव्र कोलाहल के प्रति व्यक्ति अपना अनुकूलन कर लेता है वैसे ही आपदाओं के खतरों के प्रति भी व्यक्ति अपना अनुकूलन कर लेता है। विश्व के कई देशों जैसे चीन, जापान, कैलीफोर्निया तथा ईरान आदि में प्राय: भूकम्प आते रहते हैं। इस प्रकार बाढ़, भूकम्प, खान दुर्घटनाओं, वायुयान दुर्घटना तथा अन्य आपदाओं के क्षेत्र में रहने वाले लोग इनके साथ ही रहना सीख लेते हैं, और अपना अनुकूलन कर लेते हैं, और प्रतिबल से मुक्त रहते हैं।

'सामाजिकता सीखने' के द्वारा ही व्यक्ति पर्यावरण के प्रति अभिवृत्ति को विकसित करता है। जैसे प्रदूषण मार डालता है 'या धूम्रपान से कैंसर होता है' आदि सूचनाएं व्यक्ति में भय उत्पन्न करती हैं, और अभिवृत्ति परिवर्तन कर लेता है। टिम्नी (1969) ने अध्ययन में पाया कि भय अपील के कारण वास्तव में अभिवृद्धि परिवर्तन की गति तीव्र हो जाती है। साथ ही व्यक्ति पुरस्कार एवं दण्ड के द्वारा भी अभिवृत्ति परिवर्तन कर लेता है, जैसे वर्तमान में 2 अक्टूबर 2014 से प्रारंभ स्वच्छता अभियान में विशेष श्रमदान एवं योगदान के लिए प्रधानमंत्री जी द्वारा जनता से अपील की गई है और इसके लिए नगर पालिकाओं ने भी स्वच्छता रखने हेतु कई ईनामों की घोषणा की है। इसके अलावा कोलाहल, ताप, वायु, जल प्रदूषण की स्थिति में व्यक्ति उस स्थान, परिस्थिति से अलग कर अन्यत्र किसी स्थान का चयन का उत्पन्न प्रतिबल से स्वयं को मुक्त कर सकता है।

आत्म क्षमता प्रत्याशा अर्थात प्रतिबलक के प्रभाव को घटाने या कम करने का उपाय अपनी क्षमता को समझ कर करना। इससे वह चिन्ता, भय, घबराहट का समाधान अपनी क्षमता के अनुरुप कर लेता है। साथ ही मनोवैज्ञानिक साहस भी प्रतिबल के प्रभाव से बचने का एक उपाय है। कोबसा (1979) ने अपने अध्ययन में पाया कि जो लोग मानसिक स्तर पर साहसी होते हैं वे प्रतिबल से कम प्रभावित होते हैं। प्रतिबल को दूर करने तथा कम करने में सामाजिक सहारा भी महत्वपूर्ण उपाय है। सामाजिक सहारे में प्रतिबल से ग्रसित व्यक्ति के साथ समाज के लोग सहानुभूति, आश्वासन, चिन्ता करना, आर्थिक सहायता करना, बचाव की सूचना देना, बातचीत करना तथा साथ काम करके उसके प्रतिबल को कम कर देते हैं।

इसके अलावा भी और कई उपायो जैसे ध्यान, चिन्ता, मनन, वैदिक मंत्र, योग, शिथलीकरण, शारीरिक एवं मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य को उन्नत कर आदि से प्रतिबल का प्रबंधन कर सकते हैं।

सुझाव –

1. आपदाओं एवं विपदाओं से निपटने के लिए सुरक्षात्मक उपायों को अपनाना तथा स्वयं को सजग और जागरुक रखना आवश्यक है।
2. भारतीय संस्कृति परम्परा जैसे वृक्षों का पूजन, रोपण तथा सुरक्षा, नदियों, कुओं का पूजन आदि को जीवित रखा जाए जिससे आने वाली पीढ़ी भी इससे अनभिज्ञ न रहे।
3. शहरों, गांव, विद्यालय एवं महाविद्यालय में पर्यावरण, जागरुकता, पर्यावरण चेतना तथा पर्यावरण शिक्षण, पर्यावरण स्वच्छता, पर्यावरण संवर्धन, पर्यावरण नैतिकता आदि कार्यक्रम निश्चित रुप से चलाए जाएं।
4. पर्यावरणीय प्रतिबलकों से प्रभावित व्यक्तियों के परामर्श हेतु परामर्शदातओं की नियुक्ति की जाए साथ ही परामर्श केन्द्रों की स्थापना की जाए।
5. प्रत्येक व्यक्ति में आपदा प्रबंधन एवं अन्य प्रतिबल प्रबंधन के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित कर प्रशिक्षित किया जाए जिससे वे स्वयं एवं अन्य लोगों की मदद कर सकें।
6. शासन द्वारा आपदा प्रबंधन, पर्यावरण प्रदूषण एवं तकनीकि विपदाओं के लिए किए जा रहे प्रयासों में सहयोग प्रदान करना अपना कर्तव्य माने, और हर व्यक्ति को सकारात्मक सोच रख कर ही सहभागिता सुनिश्चित करना है।

7. पर्यावरण संबंधी न्यायिक प्रावधानों को सशक्त बनाने की जरुरत है। औद्योगिक इकाइयों को आवासीय क्षेत्र से अलग बसाने, यातायात को सी.ए.जी. जैसे प्रदूषण मुक्त करने की दिशा में किए गए प्रयासों को सशक्त बनाया जाना चाहिए।
8. जैविक खेती को प्रोत्साहन तथा प्रशिक्षण दिया जाना आवश्यक है तथा वृक्षारोपण के लिए प्रेरित किया जाए।
9. नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्र तथा जन सामान्य के लिए पर्यावरण संरक्षण, जागरुकताआदि संबंधी सेमीनार, कार्यशाला आदि का आयोजन समय-समय पर होना चाहिए।
10. पर्यावरण में हित में कार्य करने पर पुरस्कार तथा क्षति पहुंचाने पर दंड का प्रावधान क्रियान्वित करना अति आवश्यक है।
11. वन्य जीव संरक्षण अधिनियम (1972) के अनुसार वन्य प्राणियों का संरक्षण कर व्यक्ति को शाकाहारी होने पर बल दिया जाए।

निष्कर्ष - निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आज पर्यावरण से उत्पन्न प्रतिबल एक गंभीर समस्या बनती जा रही है। जिससे मानव जाति के साथ पशु जगत तथा वनस्पति जगत भी प्रभावित हो रही है। विभिन्न उपायों का उपयोग कर हम पर्यावरण को स्वच्छ एवं स्वस्थ्य बना सकते हैं, क्योंकि स्वच्छ तथा स्वथ्य पर्यावरण में ही रहकर व्यक्ति पशु तथा वनस्पति लंबे समय तक जीवित रह सकते हैं, और हमारी धरोहर सुरक्षित रह सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अग्रवाल, लीना (2014) पर्यावरण प्रदूषण से, जैव समुदाय पर उत्पन्न संकट के निवाराणार्थ, संबैधानिक प्रावधान एवं न्याय निर्णय : एक विश्लेषण, नवीन शोध संसार इंटरनेशनल जर्नल Vol II Issue VI. April to June 2014. पृ.क्र. 212
2. बैरन ए. राबर्ट एवं डौन (2004)- सामाजिक मनोविज्ञान (प्रथम हिन्दी अनुवाद) साथी प्रकाशन सागर (म.प्र.) पृ.क्र. 474-475
3. चतुर्वेदी अंजना (2014) तनाव तथा स्वास्थ्य प्रबंधन-जीवन शैली जनित स्वास्थ्य समस्याएं एवं समाधान 'कृष्णा कम्प्यूटर एंड प्रिंटर्स सागर म.प्र. पृ.क्र. 60-61
4. Dubey, Rachana (2004) - Envinnmental Education And Awareness- Research Link Journal Issue- 14, Vol. III (4) July 04.
5. दैनिक भास्कर समाचार पत्र जबलपुर संस्करण दिनांक 5 एवं 9 अक्टूबर 2014.
6. परवाल लक्ष्मण (2013)- जल प्रदूषण की समस्या : कारण, प्रभाव एवं निदान नवीन शोध संसार-इंटरनेशनल जर्नल Vol. I, Issue III July - Sep 2013
7. तिवारी प्रेमसागर नाथ (2000) पर्यावरणीय मनोविज्ञान-मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली-पृक्र. 121
8. ठाकुर, कविता (2014)-पर्यावरणीय समस्या : लोगों का विस्थापन एवं पुनर्वास Vil. II, Issue VI April to June 2014 पृ.क्र.-248-249
9. उके, बी.सी. (2005) प्रकृति व पर्यावरण के संतुलन की प्रासंगिता : एक अध्ययन, रिसर्च लिंक जर्नल Issues 22 Vol IV (5) सितम्बर-नवम्बर - 2005 पृ.क्र. 78

****

जेट्रोफा : ऊर्जा का नवीन विकल्प

प्रो. अर्चना भार्गव *

प्रस्तावना – मानव सभ्यता के विकास में ऊर्जा सहयात्री है। आज दुनिया में जहां विकास की दौड़ है तो साथ में यह चिंता भी कि यदि ऊर्जा के स्त्रोतों को नहीं बढ़ाया गया तो विष्व का भविष्य क्या होगा? इसके साथ यह भी चुनौति है कि बढ़ती ऊर्जा खपत से कार्बन उत्सर्जन में बढ़ोत्तरी के चलते पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है। अजीब मुश्किल है– विकास की गति को रोक नहीं सकते, बगैर ऊर्जा के विकास हो नहीं सकता। विकास और पर्यावरण के इस संतुलन को बनाए रखने के लिये ऊर्जा के ऐसे स्त्रोतों पर विचार किया जाना आवश्यक है जो कि नव्यकरणीय हो साथ ही कार्बन का उत्सर्जन कम करे।

आजकल वैकल्पिक ऊर्जा के रुप में बायोडीजल चर्चा में है। बायोडीजल पेड़ पौधों से निकाले गये रसायनों को पेट्रोईधन में मिश्रित कर बनाया जाता है। इसका प्रमुख स्त्रोत कार्बोहाइड्रेट है जो पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के फलस्वरुप बनाया जाता है। वैज्ञानिकों ने ऐसे 100 पौधों की पहचान की है जो बायोडीजल निष्कर्षण के लिये उपयुक्त हैं। कुछ प्रमुख प्रजातियां कॉर्न, काजू, ओट, पाम, रबर, सोयाबीन, रेपसीड, जैतून, अरण्डी, रतनजोत, कॉफी, लिनसीड, तिल, पंपकिन, धान, मूंगफली, सूरजमुखी हैं।

सारणी– बायोडीजल के प्रयोग से प्रदूषण में होने वाली कमी

बायोडीजल की मिलाई गई मात्रा %	पार्टीकुलेट पदार्थ	कार्बनमोनो ऑक्साइड	नाईट्रोजन ऑक्साइड	कुल हाईड्रो कार्बन
जीवाष्मी डीजल में 40% बायोडीजल मिलाने पर	7.77 % से कम	28.23 % से कम	14.89% से अधिक	4.0 28% से कम
जीवाष्मी डीजल में 20 %बायोडीजल मिलाने पर	11.17% से कम	12.58 % से कम	5.44 % से अधिक	22 % से कम

आज ऊर्जा संकट के परिप्रेक्ष्य में पूरे विश्व का ध्यान जैट्रोफा करकस/ रतनजोत/जंगली अरंडी/ फिजिक नट पर है। यह एक बहुउद्देशीय सूखा सहझाड़ी है। यह मेक्सिको मूल का पौधा है परन्तु वर्तमान में पूरे अफ्रीका एवं एशिया में फैला है। जैट्रोफा के सूखे बीजों में 30–35 प्रतिशत तेल होता है। इस तेल का उपयोग मोमबत्ती, साबुन, सौंदर्य प्रसाधन बनाने एवं मिट्टी के तेल के विकल्प के रूप में किया जा रहा है। इस प्रक्रिया में 100 लीटर जैट्रोफा के तेल से 100 लीटर बायोडीजल तथा 10 लीटर ग्लिसरीन मिलती है। यह बायोडीजल की श्रेणी में रखा गया है। आमतौर पर 20 प्रतिशत बायोडीजल के साथ 80 प्रतिशत पेट्रोलियम डीजल मिलाने की संस्तुति की गई है।

बहुउपयोगी जेट्रोफा –

1. यह गैर परम्परागत ऊर्जा का स्त्रोत है। यह एकमात्र ऐसा वैकल्पिक स्त्रोत है जिसे पारम्परिक डीजल इंजन में बिना कोई परिर्वतन किये प्रयोग किया जा सकता है। इसे कहीं भी संग्रहीत किया जा सकता है।
2. इसके प्रयोग एवं शुद्धिकरण की विधि बहुत सरल है।
3. इसमें 10 से 11 प्रतिशत ऑक्सीजन होती है अत: पूर्ण रूप से जल जाता है।
4. इसमे सल्फर की मात्रा बहुत कम होती है।
5. बायोडीजल प्रयोग करने से इंजन में से धुंआ कम निकलता है जिससे वायु प्रदूषण नहीं बढ़ता।
6. जैट्रोफा जनित जैव खाद द्वारा मृदा की उर्वरता में सुधार होगा। यह भूमि क्षरण रोकने में सहायक है।
7. जैट्रोफा की पत्तियां, तने की छाल और बीजों के छिलकों से अन्य उपयोगी रासायनिक पदार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं।
8. इसे पशु नहीं खाते इसलिये बाड़ के रूप में लगाने पर अन्य महत्वपूर्ण खाद्य फसलों की जंगली पशुओं से सुरक्षा होती है।
9. प्रतिवर्ष 10 टन प्रति हेक्टेयर कार्बन डाइऑक्साइड का अवशोषण करने में सहायक होता है।
10. बायोडीजल के प्रयोग से इंजिन की आयु बढ़ती है क्योंकि यह पेट्रोलियम डीजल की अपेक्षा अच्छा स्नेहक भी है।
11. कृषक अपनी बंजर भूमि का उपयोग कर आय व स्वरोजगार प्राप्त कर सकते हैं।

सारणी– (देखे अगले पृष्ठ पर)

भारत के प्रयास – भारत सरकार ने जैट्रोफा के विकास के लिये एक महत्वाकांक्षी योजना बनाई है। इस पूरे अभियान का संचालन योजना आयोग कर रहा है। इस अभियान के लिये 7500 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया है। इस योजना को साकार करने के लिये योजना आयोग ने 18 राज्यों के 200 गांवों में जैट्रोफा की खेती की परियोजना प्रारम्भ की है। ये राज्य हैं– अरूणाचल प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडू, उत्तरांचल और उत्तरप्रदेश। केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय 1000 किसानों की पहचान कर इन राज्यों में जैट्रोफा की खेती प्रारम्भ कर रहा है। केन्द्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, कृषि एवं सहकारिता तथा पेट्रोलियम मंत्रालय को भी इस अभियान में शामिल किया गया है।

जैट्रोफा की खेती को बढ़ावा देने के लिये भारतीय रेल तथा अन्य संस्थाऐं अनुपजाऊ भूमि पर जैट्रोफा रोपड़ करवा रही है ताकि भविष्य में भारतीय रेल भी डीजल चलित रेलवे इंजिन का प्रचालन भी जैट्रोफा से प्राप्त बायोडीजल से करे। ऐसे में न केवल हमारा देश डीजल के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो सकेगा बल्कि किसान भी बेकार पड़ी बंजर भूमि का उपयोग कर आय एवं रोजगार प्राप्त कर सकेंगे।

विवादों के घेरे में जैट्रोफा – कुछ पर्यावरणविद जैट्रोफा से बायोडीजल का उत्पादन विपत्तिकारक मानते हैं। उनके अनुसार मैक्सिको मूल का यह

* सहायक प्राध्यापक (भूगोल) शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र.) भारत

पौधा केंसरकारी है और आस-पास की वनस्पतियों पर इसके प्रभाव, रोग कारकता, मृदा परीक्षण और परिस्थितिकीय प्रभाव की जांच होनी चाहिये। इसके बजाय देशज पौधे करंज और महुआ की खेती को बायोडीजल प्राप्ति के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। जैट्रोफा की अनेक प्रजातियां हैं जिनमें विषकारक नहीं पाये जाते हैं। होहेनहीम विश्वविद्यालय में इस सम्बन्ध में अनुसंधान हुआ है। इसमें भारत के तीन संस्थान सहयोग कर रहे हैं-

- सहकारी कृषि वानिकी परिसंघ, नासिक
- केन्द्रीय नमक एवं अनुसंधान संस्थान, भावनगर
- तिलहन अनुसंधान संगठन, हैदराबाद

इन संस्थाओं ने अपने निष्कर्ष में बताया कि जैट्रोफा में केंसरकारी गुण नहीं पाये जाते। नई दिल्ली स्थित टाटा ऊर्जा अनुसंधान संस्थान ने भी जैट्रोफा से बायोडीजल के उत्पादन को सुरक्षित माना है।

कैसे मिले सफलता -

- ऊर्जा का ऐसा विकल्प चाहिये जो भावी पीढ़ी के लिये खतरा उत्पन्न न करे।
- यह सुनिश्चित करना होगा कि बायोडीजल किस जमीन पर उगाया जाये। कहीं ऐसा न हो कि यह खेती योग्य जमीन निगल जाये और खाद्य सुरक्षा के लिये खतरा बन जाये।
- बायोडीजल के लिये जंगल न काटे जायें ताकि जैव विविधता बनी रहे।
- केवल निम्न श्रेणी भूमि में बिना रखरखाव जैट्रोफा उत्पादन अधिक नहीं हो सकता। इसकी खेती को वैज्ञानिक आधार देना होगा। उत्पादन बढ़ाने के साथ साथ सह उत्पादों के उपयोग द्वारा लागत को कम करना होगा।
- व्यर्थ पड़ी भूमि पर बायोडीजल की खेती का आर्थिक लाभ स्थानीय लोगों को मिलना चाहिये।
- आर्थिक सामाजिक सुरक्षा बनाये रखते हुए ऊर्जा संकट से निपटने के लिये बायोडीजल के प्रयोग और परिणाम पर खुली बहस/परिचर्चा आवश्यक है ताकि ऊर्जा का कोई भी नया विकल्प पर्यावरण को क्षति न पहुंचाये।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. गुप्ता, सजीव (2012): पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण, लुसेंट पब्लिकेशंस पटना।
2. सिंघल, विनीता (2014): ऊर्जा कुछ नये विकल्प, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, भारत।
3. सिंह, जगदीश (2001): पर्यावरण एवं संविकास, राधा पब्लिकेशंस नई दिल्ली।

सारणी- जेट्रोफा से होने वाली आय (प्रति हेक्टेयर)

वर्ष	प्रति वृक्ष प्रति वर्ष उपज	औसत वृक्ष प्रतिहेक्टेयर	कुल बीज(किलो)	बीज प्रतिकिलो (रू)	कुल आय(रू)
प्रथम वर्ष	-	1600	-	-	-
द्वितीय वर्ष	-	1600	-	-	-
तृतीय वर्ष	0.50	1600	800	10	8000.00
चतुर्थ वर्ष	0.75	1600	1200	10	12000.00
पांचवे वर्ष	1.00	1600	1600	10	16000.00
छठे वर्ष	1.50	1600	2400	10	24000.00
सातवें वर्ष	2.00	1600	3200	10	32000.00
आठवें वर्ष	2.50	1600	4000	10	40000.00
नवें वर्ष	3.00	1600	4800	10	48000.00
दसवें वर्ष	3.00	1600	4800	10	48000.00

****

Freedom Movement in Seoni District

Dr. Madhumita Bhattacharya *

Abstract - Seoni is one of the district of Madhya Pradesh located in the Satpura plateau.The district is bounded by Jabalpur in the North,by Nagpur in the South, Balaghat in the East and Chhindwara in the West. Mandla lies towords its North East and Narsinghpur in the north west.

Seoni has been the seat of important events during the Freedam struggle of India.The martyrs mememorial erected as a tribute to the valour and sacrifice of the satyagrahis of Seoni reminds us the participation of the patriotic people in our national movement.

Introduction - The nationalist activies in the district of Seoni began as early as 1920 when Mahatma Gandhi visited Seoni on his way to Jabalpur from Nagpur and propagated the idea of non co opection movement amongst the mass and to collect money for the Tilak Swarajya Fund . Later on the inspiring oration of Mahatma Gandhi left the people spell bound and the movement of mass consciousness began in Seoni under the leadership of the district and city congress commities.

Soon the nationalist wave spread In the district under the able leadership of Prabhakar Dhundiry jater and pundit Durga Shankar Mehta people from all walks of life participated in the Non cooperation movement which was successfully launched in the district as a result the lawyers abandoned their legal practice, The government servants left their service and students abstained themselves from attending government school , and colleges to participate in the national movement.

The shukrawari chouk of seoni became a prominent place where political workers and leaders delivered speeches to arouse nationalism amongst the people. Patriotic songs , prabhat pheris , bonfire of foreign clothes was carried out.

The non cooperation movement got momentum as national schools were opened by the prominent citizens of seoni who offered free service to teach the students about the national glory , the prominent teachers were Shri Murlidha Shukla , Balaji Mukund Tole , Girijanandan Sharma and Dhannulal Diwakar . Along with his schools, a rashtriya panchayat and a khadi bhandar were started in the town . The charkha became popular and people vowed to wear only hand spun and hand woven khadi.

The jhanda Satyagraha was another important event in the district . While the actual struggle began in April 1923 the people of Seoni started the Jhanda Satyagraha in "March 1923" a huge procession of the national Flag was carried out in Seoni under the leadership of pundit Sunderlal but the Flag was snatched away by the police and many Satyagraha is were put behind the bors. Inspite of the British atrocities on the citizens of seoni shri J.D.Jatar ,Durga Shankar Mehta , Murlidhar Shukla and Abdul Jabber ehorted the people of the town to participate in the Jhanda Satyagraha at Nagpur . 52 volunteers proceeded from Seoni but were arrested on the way and suffered rigorous imprisonment.

Again in 1930 when Mahatma Gandhi launched the salt Satyagraha the people in seoni district broke the salt law and prepared indigenaous salt. Another important movement in the District was the jungle Satyagraha which was pursued viogourously in the district as Seoni is a densly forested region . Especially the forest Satyagraha at Turia is a landmark in the history of the freedom movement of the district. There Muka Lohar and many other people broke the Forest law by cutting grass at khawesa , a place 28 miles away rom Seoni on 9th oct. 1930. The armed constables opened fire on the Satyagraha which injured 30 women and killed three women Rana Bai , Debho Bai , and Mudde Bai and one man named Birju Bhoj .

The deputy commissioner of seoni ordered criminal prosecution of 18 villages of Turiya Shri P.D.Jater and Nityendra Nath Sil were the defence counsels of the accused. While goin through the records of the case Shri Sil discovered a closed envelope containing the letter of the deputy commissioner Seiman which was addressed to the reserve inspector ordering him to teach a lesson to the village of Turiya . the defence counsels ordered for a copy of the letter but the case was hushed up and Seiman was immediately transferred from seoni .

Once again during the civil disobedience movement in 1930 seoni jail became an important centre where many freedom fighters were arrested . They were Acharya Vinoba Bhave , Netaji Subhas Chandra Bose , Ravi Shankar Shukla , Seth Govind Das , kaka Kelkar , Dwarka Prasad Mishra , H.V. Kamath , Kashi Prasad Pandey and many others.

The patriots of Seoni continuously participated in the freedom movement of India their activity carried on the constructive programme of Gandhiji like popularsing khadi , picketing of liquor shop , upliftment of Harijans During his Harijan

* **Prof. (History) Govt. P.G. College, Narsinghpur (M.P.) INDIA**

compaign Gandhij reached Seoni on 28th Nov 1933 People from remote village came to have a glimpse of bapu in the house of shri Durga Shankar Mehta . Regarding the harijans and the people of seoni were influenced by the Mahatma

Seoni patriots participated in the Individual Satyagraha Mr. P.D.Jater the president of seoni district congress committee conducted the individual Satyagraha who was soon arrested Besides him his wife smt Radhabai and two sons Manohar Rao and Padmaker Rao and many others joined the Satyagraha and faced atrocities of the police .

During Quit India movement the students of Seoni led by Anantram Dube protested vigorously against the British The Students left heir classes and assembled under he banner of student federation and carried out processions which was soon joined by people like Uma Shankar Dube Narayan Prasad Mishra , Kunj Biharilal Khare , Abhay kumar Jain , Ravindranath Bhargav , Keshwa Karve, A Rahman Fariqi , Kamal Chand Azad , Padmakar Jater Raj Prasad Pathak , Ambika Prasad Sharma and others. They bravely faced the British cruelties and contruned the jpeoples movement .

Thus the contribution of Seoni District in our National movement will remain in golden letters The present Seoni District then formed a subdivision of chhindwara District On 1st November 1956 when the new State of Madhya Pradesh was constructed Seoni was declared a district of M.P. We all feel proud to bow our heads in front of the martyr memorial as a tribute to the valour and sacrifice of the satyagraha of Seoni.

References :-

1. The Seoni District Gazeteer .
2. Seoni – prachin evam Arvachin
3. Madhya Pradesh Aur Gandhiji
4. The history of Freedom Movement in Madhya Pradesh
5. Living an Era .

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

Ground Water Conservation And Artificial Recharge

Dr. Malika Khan *

Introduction - Rainwater harvesting - The term rainwater harvesting is being frequently used these days, however, the concept of water harvesting is not new for India. Water harvesting techniques had been evolved and developed centuries ago.

Ground water resource gets naturally recharged through percolation. But due to indiscriminate development and rapid urbanization, exposed surface for soil has been reduced drastically with resultant reduction in percolation of rainwater, thereby depleting ground water resource. Rainwater harvesting is the process of augmenting the natural filtration of rainwater in to the underground formation by some artificial methods. "Conscious collection and storage of rainwater to cater to demands of water, for drinking, domestic purpose & irrigation is termed as Rainwater Harvesting."

Why harvesting Rainwater?

This is perhaps one of the most frequently asked questions, as to why one should harvest rainwater. There are many reasons but following are some of the important ones.

- To arrest ground water decline and augment ground water table
- To beneficiate water quality in aquifers
- To conserve surface water runoff during monsoon
- To reduce soil erosion
- To inculcate a culture of water conservation

How to harvest rainwater - Broadly there are two ways of harvesting rainwater:

- Surface runoff harvesting
- Roof top rainwater harvesting

Surface runoff harvesting - In urban area rainwater flows away as surface runoff. This runoff could be caught and used for recharging aquifers by adopting appropriate methods.

Roof top rainwater harvesting - It is a system of catching rainwater where it falls. In rooftop harvesting, the roof becomes the catchments, and the rainwater is collected from the roof of the house/building. It can either be stored in a tank or diverted to artificial recharge system. This method is less expensive and very effective and if implemented properly helps in augmenting the ground water level of the area.

Components of the roof top rainwater harvesting system - The system mainly constitutes of following sub components:

- Catchment
- Transportation
- First flush
- Filter

Recharging ground water aquifers - Ground water aquifers can be recharged by various kinds of structures to ensure percolation of rainwater in the ground instead of draining away from the surface. Commonly used recharging methods are:

a) Recharging of bore wells
b) Recharging of dug wells
c) Recharge pits
d) Recharge Trenches
e) Soak ways or Recharge Shafts
f) Percolation Tanks

Recharging of bore wells - Rainwater collected from rooftop of the building is diverted through drainpipes to settlement or filtration tank. After settlement filtered water is diverted to bore wells to recharge deep aquifers. Abandoned bore wells can also be used for recharge.

Optimum capacity of settlement tank/filtration tank can be designed on the basis of area of catchment, intensity of rainfall and recharge rate as discussed in design parameters. While recharging, entry of floating matter and silt should be restricted because it may clog the recharge structure. "First one or two shower should be flushed out through rain separator to avoid contamination.

This is very important, and all care should be taken to ensure that this has been done."

Recharge Pits - Recharge pits are small pits of any shape rectangular, square or circular, contracted with brick or stone masonry wall with weep hole at regular intervals. to of pit can be covered with perforated covers. Bottom of pit should be filled with filter media.

The capacity of the pit can be designed on the basis of catchment area, rainfall intensity and recharge rate of soil. Usually the dimensions of the pit may be of 1 to 2 m width and 2 to 3 m deep depending on the depth of pervious strata. These pits are suitable for recharging of shallow aquifers, and small houses.

Soak away or Recharge Shafts - Soak away or recharge shafts are provided where upper layer of soil is alluvial or less pervious. These are bored hole of 30 cm dia. up to 10 to 15 m deep, depending on depth of pervious layer. Bore should be lined with slotted/perforated PVC/MS pipe to prevent collapse of the vertical sides. At the top of soak away required size sump is constructed to retain runoff before the filters through soak away. Sump should be filled with filter media.

* Asst. Professor (History) Govt. Girls College, Ratlam (M.P.) INDIA

Recharging of dug wells - Dug well can be used as recharge structure. Rainwater from the rooftop is diverted to dig wells after passing it through filtration bed. Cleaning and desalting of dug well should be done regularly to enhance the recharge rate. The filtration method suggested for bore well recharging could be used.

Recharge Trenches - Recharge trench in provided where upper impervious layer of soil is shallow. It is a trench excavated on the ground and refilled with porous media like pebbles, boulder or brickbats. It is usually made for harvesting the surface runoff. Bore wells can also be provided inside the trench as recharge shafts to enhance percolation. The length of the trench is decided as per the amount of runoff expected. This method is suitable for small houses, playgrounds, parks and roadside drains. The recharge trench can be of size 0.50 to 1.0 m wide and 1.0 to 1.5 m deep.

Percolation tanks - Percolation tanks are artificially created surface water bodies, submerging a land area with adequate permeability to facilitate sufficient percolation to recharge the ground water. These can be built in big campuses where land is available and topography is suitable.

Surface run-off and roof top water can be diverted to this tank. Water accumulating in the tank percolates in the solid to augment the ground water. The stored water can be used directly for gardening and raw use. Percolation tanks should be built in gardens, open spaces and roadside green belts of urban area.

References :-

1. www.wikipedia.org/wiki/water_conservation
2. Thewaterproject.org/water_conservation
3. India Today Magazine
4. Times of India & Hindustan Times News Paper
5. Dainik Bhaskar & Patrika

****

मथवाड़ रियासत का इतिहास

डॉ. बलराम बघेल *

प्रस्तावना – मथवाड़ रियासत मध्य प्रदेश के दक्षिणी पश्चिमी छोर पर विंध्यांचल पर्वत श्रेणी की तलहटी एवं नर्मदा के चरणों में अलीराजपुर जिले के दक्षिण में स्थित है। यह सेन्ट्रल इंडिया की भोपावर एजेन्सी का छोटासा गैर सलामी राज्य था। रियासत के चारों ओर नर्मदा नदी के पास खानदेश पूर्व में आलीराजपुर रियासत की सोण्डवा जागीर, उत्तर में आलीराजपुर रियासत एवं पश्चिम में गुजरात राज्य से घिरी हुई है।

मथवाड़ रियासत धार के पंवार राजघराने से संबंधित था, जो परमार से पंवार बन गये। ये राजा राजस्थान के आये हुए राजपुत थे। मथवाड़ का प्राचीन नाम भैरवगढ़ था। यहां मेथिया भील का शासन था। मेथिया भील को माताराणी ने प्रसन्न होकर अपार शक्ति का वरदान दे दिया था। जिसका दुरूपयोग वह पशु संहार के रूप में करता था। उसने राज्य में सर्वाधिक गौ हत्या की थी। किवदन्ती है कि धार के तीन राजपुत भाई भैरवगढ़ की ओर आए तथा माताराणी ने उन्हें मेथिया भील का अंत करने का स्वप्न दिया। तीनों भाईयों ने मेथिया भील की हत्या कर दी, किन्तु माताराणी के वरदान के कारण मेथिया भील ने मृत्यु के पश्चात् उसके नाम से रियासत चलाने का आश्वासन मांगा। उस आश्वासन के तहत मेथिया भील के नाम पर भैरवगढ़ का नाम बदलकर मथवाड़ रख दिया। मेथिया भील को जब मारा गया उस समय उसकी गर्दन धड़ से अलग हो गई थी। जिस तरफ उसका सिर (माथा) गिरा उसे मथवाड़ (माथावाड़) एवं जिस ओर धड़ गिरा उसे धड़वाड़ (धड़गावं) नाम दिया गया। धड़गाँव नर्मदा नदी के उस पर महाराष्ट्र में स्थित है, जो आज़ादी के पूर्व खानदेश कहलाता था।

आनन्द देव ने भील सरदार आलीया भील पर हमला कर उसे पराजीत कर इस क्षेत्र का विस्तार किया। राणा आनन्द देव ने 9 सितम्बर 1498 ई. में आनन्दावली नगरी की स्थापना की थी। जो बाद में अलीराजपुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस समय मथवाड़ आलीराजपुर राज्य का एक परगना मात्र था। 1489-90 ई. में आनन्ददेव ने अपने भाईयों तथा अमीर उमराव को तत्कालीन रियासत के 5 परगने वितरित किये, जिसमें मथवाड़ परगना, उदयकरणदेव परमार को दिया गया, जो प्रारंभ में आनन्दावली (आलीराजपुर) को अपनी आय का चौथा हिस्सा कर के रूप में प्रदान करते थे।

रियासत पहाड़ी वन क्षेत्र में स्थापित थी, रियासत में प्रारंभ से ही शिक्षा का अभाव था। जिससे राज्य के राजाओं की ऐतिहासिक जानकारी प्ररम्भ से राणा रामसिंग तक उपलब्ध नहीं हो पाती है। राणा रामसिंग एवं आनन्दसिंग दो भाई थे, जिसमें मथवाड़ राज्य के रामसिंग तथा राणा आनन्दसिंग प्रतापपुरा के ठाकुर थे। राणा रामसिंग के 4 पुत्र उंकारसिंग, भीमसिंग, उदयसिंग एवं करणदेव थे।

1857ई. का स्वतंत्रता संग्राम अंग्रेजी साम्राज्य से मुक्ति पाने का असफल प्रयास था, किन्तु क्रांति का बीजारोपण हो चुका था, क्रांति के समय ठाकुर रामसिंग ने मथवाड़ रियासत की ओर से अंग्रेजो के विरूद्ध विद्रोहियों के साथ मिलकर बगावत की थी। जिससे उन्हें दोषी करार देते हुए राज्याधिकार से पृथक कर दिया गया और उनके पुत्र ओंकारसिंग को मथवाड़ राज्य का शासन कार्य सौंप दिया गया। औंकारसिंग के पश्चात् उनके नाबालिक पुत्र रणजीतसिंग को उत्तराधिकारी बनाया गया।

रणजीत सिंह को चार वर्ष की आयु में मथवाड़ राज्य का शासक बनाया गया, किन्तु उसकी अल्प वयस्कता में 1865 से 1869 तक अलीराजपुर के गंगदेव ने शासन संभाला, तत्पश्चात् 1869 से 1885 तक लगभग 14 वर्ष नजबखॉन शासक रहे। मोहम्मद नजब खॉन एक कुशल एवं योग्य शासक थे, जिन्होंने दोनों राज्यों की शासन व्यवस्था का सफलतापूर्वक संचालन किया। 1901 ई. में राणा रणजीत सिंग की मृत्यु हो गई। उनकी कोई भी संतान जीवित नहीं थी। अत: राज्य में उत्तराधिकार की समस्या उत्पन्न हो गई थी। ब्रिटिश सरकार ने प्रतापपुरा स्टेट के ठाकुर बखतसिंग को मथवाड़ राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया। क्योंकि प्रतापपुरा के ठाकुर जसवंतसिंग के राणा बखतसिंग मझले पुत्र थे। प्रतापपुरा राजवंश एवं मथवाड़ राज्य के पारिवारिक संबंध थे। ठाकुर जसवंतसिंग के पिता आनन्दसिंग एवं राणा रणजीत के पिता उंकारसिंग के पिता रामसिंग के भाई थे। इस प्रकार दोनों रियासतों के वंशज परस्पर चचेरे भाई थे। राणा बखतसिंग के सफलतापूर्वक शासन किया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र लक्ष्मण सिंग को शासक बना दिया गया। जिसने मथवाड़ की राजधानी का नाम बखतगढ़ रखा। जो कि वर्तमान में भी मौजुद है।

मथवाड़ रियासत 138 वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल में फैली हुई एक छोटी सी गैर सलामी रियासत थी। राणा रणजीतसिंग के समय 1891 के समय ब्रिटिश शासन द्वारा राज्य की जनगणना करवाई गई थी। सन् 1891 ई. से राज्य में 10 वर्षीय अंतराल से निरंतर जनगणना होती रही हैं। 1891 ई. में राज्य की कुल आबादी 2991 थी। जिसमें पुरूष 1570 तथा महिलाएँ 1421 थी। 1901 ई. में राज्य की जनसंख्या दर में कमी दर्ज की गई। कुल आबादी 1022 थी, जिसमें पुरूष 518 तथा महिलाएँ 504 थी। मथवाड़ में कुल 40 आबाद गांवों में 774 आवासगृह थे। सन् 1901 की जनगणना के अनुसार मथवाड़ की कुल जनसंख्या 1022 थी, जबकि 1941 में 3889 हो गई थी। इस प्रकार राज्य में 40 वर्षो में 2867 जनसंख्या की वृद्धि हुई थी।

मथवाड़ जागीर राज्य के अन्तर्गत छोटा सा राज्य था। शासकों द्वारा सामंतों को दी गई भूमि जागीर कहलाती। मथवाड़ राज्य पहाड़ी क्षेत्र में बसा होने के कारण यहां पर बहुत कम मात्रा में उपजाऊ और उपयोगी भूमि थी। यहां के जागीरदारों के पास जो भूमि थी, उसमें खालसा भूमि बंजर और पर्वतीय पठार भूमि की अधिकता थी। राज्य में जागीर के आकार-प्रकार का निर्धारण सामंतों की सेवाओं तथा राजघराने के शासकों के संबंधों पर निर्भर

* सहायक प्राध्यापक (इतिहास) शहीद भीमा नायक, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

था। राज्य में 4 मुख्य जागीरे रही, जो राज्य के शासकों ने विश्वास पात्र जागीरदारों को समय-समय पर जीवन निर्वाह या उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर प्रदान की जाती थी। ये निम्नानुसार है -

1. मथवाड़ 2. उमरी 3. छिनकी 4. कर्जन।

अंतत: 15 अगस्त 1947 का स्वर्णिम स्वतंत्रता दिवस आया। देशी रियासतों का भारतीय संघ में संविलियन करने की योजना बनाकर लोकप्रिय शासन की मांग की जा रही थी। 20 जनवरी, 1948 को राज्य की काउंसिल में जनता के तीन लोकप्रिय मंत्रियों को लिया गया। 28 मई, 1948 को झाबुआ राज्य मध्य भारत संघ में विलिन हो गया। इस प्रकार 16 जिलों वाले मध्य भारत में झाबुआ, अलीराजपुर, जोबट, कट्ठीवाड़ा, पेटलावद एवं मथवाड़ को मिलाकर झाबुआ जिला बना। जो रियासतों की राष्ट्रीय गठबंधन का परिणाम है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मालवा एजेन्सी वाल्युम 6 खण्ड 164 के अनुसार।
2. E-mail – mathwar byson.wildlife@yahoo.com.
3. तवारीख हालात सबस्थान अलीराजपुर पृष्ठ 9 व 10 ।
4. अलीराजपुर रियासत का इतिहास-शोध प्रबंध - कयामुद्दीन पठान पृष्ठ 83-84
5. रियासत के वर्तमान वंशज राणा सज्जनसिंग से प्राप्त वंशावली के अनुसार।
6. सेन्ट्रल इंडिया सेन्सज सीरिज, 1941, वाल्युम तख मथवाड़ होल्कर प्रेस इंदौर 1943 पृष्ठ 1
7. सेन्ट्रल इंडिया सेन्सज सीरिज, 1941, वाल्युम तख मथवाड़ होल्कर प्रेस इंदौर 1943 पृष्ठ-5

****

हिन्दुओं के आस्था का पर्व - कुम्भ

डॉ. जगमोहन सिंह पूषाम *

शोध सारांश – भारत वर्ष में कुम्भ का पर्व सहस्त्रों वर्षो की प्राचीन परंपरा है। महाऋषियों ,पुरावेत्ताओं, धर्माधिकारियों एवं दार्शनिकों से लेकर समाज के प्रत्येक व्यक्ति तक यह आस्थावान कुम्भ पर्व का धार्मिक स्वरूप आज भी विद्यमान है अर्थात् भारतीय संस्कृति के विविध रूपों में कुम्भ मेला अपवाद नहीं है। इस आस्था के पीछे अटूट जनविश्वास है ,जो हमे पुराणों में मिलता है। इस शोध आलेख में हिन्दुओं के आस्था का पर्व कुम्भ के धार्मिक ,सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ पर्व के धार्मिक परम्पराओं ,खगोलशास्त्री सिद्धांत, आर्यो व वेदों के अनुसार कुम्भ के स्वरूप व मान्यताओं का वर्णन किया गया है।

प्रस्तावना – कुम्भ पर्व भारतीय जनमानस की साधना एवं विराट समन्वय चेतना का प्रतीक रहा है। कुम्भ मेले के मूल में समुद्र मंथन की पौराणिक कथा कही जाती है । मंथन के फलस्वरूप सागर से अमृत भरा कुम्भ प्रकट हुआ ,इसके पश्चात् ही कुम्भ पर्व का इतिहास होना पाया जाता है। खगोलशास्त्र के अनुसार यह महान पौराणिक पर्व है । प्रत्येक बारहवें वर्ष विशेष ग्रहों के संयोग के कारण ये कुम्भ महापर्व हरिद्धार ,प्रयाग, उज्जैन एवं नासिक में पड़ता है । इसका विस्तृत वर्णन स्कंद पुराण में हैं ।

धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि – अलिखा इतिहास ही पुराण होता है अर्थात् जन-जन में व्याप्त युगों से चली आ रही आस्था और जन विश्वासों का आधार ही पुराण है। भारत की सहस्त्रों वर्ष पुरानी परम्पराओं को आज भी हम अपने पुराण साहित्य में देख सकते हैं। आस्था और विश्वास का ही आधार है कुम्भ पर्व, जिस पर संपूर्ण राष्ट्र की धर्म परायण जनमानस वर्षो से एक स्थान पर एकत्रित होती आई है और गंगा के ब्रह्मकुण्ड में स्नान करके स्वयं को पवित्र करती रही हैं। कुम्भ पर्व भारतीय जनमानस की साधना एवं विराट समन्वय चेतना का प्रतीक रहा है। प्रत्येक 12 वर्ष बाद हरिद्धार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक में होने वाले कुम्भ पर्व का जहॉ खगोलशास्त्रों की दृष्टि में विशेष महत्व है, वहीं एक भावनात्मक दृष्टि से वे भारत की मूलभूत एकता का पर्याय भी रहा है। कुम्भ पर्व की महत्ता का उल्लेख हमें ऋग्वेद में भी मिलता है :-जघान वृत्तां स्वधितिर्वनेवरु रोजपुरो अरदन्न-सिन्धन।विभेवगिरि नवभिन्न कुम्भभागा इन्द्रो अकृगता स्वयुग्मि:।।[1]

कुम्भ पर्व में जाने वाले मनुष्य स्वकृत कर्मफल स्वरूप में होने वाले स्नान, दान, हवन आदि अच्छे कर्मो से लकड़ी काटने वाले ठाकुर की तरह अपने पापों को काटता हैं।

कुम्भ पर्व में किये गये स्नान का महत्व विशेष माना गया है-अश्वमेघ सहस्त्राणि वाजपेय शतानि च।लक्षं प्रदक्षिणा भूमे: कुम्भ स्नानेहि तत्फलम्।।[2] इस श्लोक के अनुसार स्नान कर लेने से ही व्यक्ति को वो पुण्य फल प्राप्त होता है जो हजार अश्वमेघ यज्ञ करने से, सौ वाजपेय यज्ञ करने से एवं लाख बार पूरी पृथ्वी की परिक्रमा करने से व्यक्ति को जो फल प्राप्त होता है, वही फल कुम्भ स्नान से प्राप्त होता है। कुम्भ पर्व कब आरम्भ हुआ ये बताना कठिन है, परन्तु श्रीमद् भागवत पुराण के अनुसार जब देव गण राजा बलि से हार गये और बलि के बढ़ते अत्याचारों के कारण देवताओं की शांति भंग हो गयी तो वे सभी भगवान विष्णु के पास रक्षार्थ पहुँचे और भगवान विष्णु ने कहा कि दैत्यों के साथ मिलकर समुद्र मंथन करो और उसकी समुद मंथन में जो अमृत बूंदे गिरी उसी के बाद से कुम्भ पर्व का आरम्भ होना बताया जाता है।[3] स्पष्ट है कि कुम्भ पर्व राजा बलि के शासन काल के बाद आरम्भ हुआ।

कुम्भ मेले का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि – भारतीय संस्कृति के विविध रूपों में जैसे मेले, तीर्थाटन, पर्व, त्यौंहार विभिन्न संस्कार जो हमारी वर्षो की परम्परा के अंग है। उनका मूल रूप विश्वास पर आधारित प्राय: किसी पौराणिक कथा से जुड़ा रहता है। कुम्भ मेला इसका अपवाद नहीं है। जहाँ तक विशालता की बात है यह मेला हमारे देश का ही नहीं अपितु विश्व भर का विशालतम मेला है। आज के वैज्ञानिक युग में भी धार्मिक आस्था के नाम पर इतने व्यक्तियों का एक स्थान पर जुड़ना क्या किसी चमत्कार से कम नहीं है और भारत ही नहीं समस्त विश्व के लोग इस आस्था से जुड़े हुए है। इस मेले के मूल में समुद्र मंथन की पौराणिक कथा कहीं जाती है। मंथन के फलस्वरूप सागर से जब अमृत भरा कुम्भ प्रकट हुआ उसके बाद से ही कुम्भ पर्व का इतिहास होना पाया गया। कुम्भ अथवा अर्धकुम्भ की परम्परा अति प्राचीन है। कुम्भ पर्व का विशेष महत्व समुद्र गुप्त के समय में दिया गया। सन् 606 ई0 में सम्राट हर्षवर्धन की छत्र छाया में आयोजित कुम्भ का ऐतिहासिक विवरण मिलता है।[4] चीनी यात्री व्हेनसांग ने भी कुम्भ पर्व की महिमा का वर्णन किया है। इस पर्व के इतिहास में एक ऐसा समय भी आया जब कुम्भ काल का प्रचलन रूक सा गया था। तब भारत में मुस्लिम शासन काल था । परन्तु कुछ मुस्लिम शासकों ने कुम्भ की महत्ता को समझते हुये कुम्भ मेले पर विशेष ध्यान दिया। बादशाह अकबर ने कुम्भ मेले में लगने वाले तीर्थ यात्रियों पर लगाये गये जजिया कर को सन् 1564 ई0 में समाप्त कर दिया था । अकबर के बाद सन् 1605 ई0 में जहांगीर ने भी हिन्दुओं को बिना कोई प्रतिबन्ध लगाये तीर्थ स्थानों की यात्रा करने की अनुमति दे दी। सन् 1622 ई0 में नूरजहाँ ने भी जहांगीर के अनुसार कोई तीर्थ यात्री कर नहीं लगाया। कुम्भ मेले में शासन के द्वारा सुरक्षा आदि की व्यवस्था का प्रबन्ध किया जाता था। सन् 1628 ई0 में शाहजहां द्वारा हिन्दुओं के प्रति धार्मिक सहिष्णुता की नीति का परित्याग कर हिन्दुओं के साथ अनुदारता का परिचय दिया गया, लेकिन मेलों में कर आदि का प्रावधान नहीं किया गया। शाहजहां के शासन काल को जहांगीर और अकबर की तुलना में हिन्दुओं के प्रति धार्मिक प्रतिबंधों पर रोक लगाना

* सहायक प्राध्यापक (इतिहास) शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत

न कहकर कुछ कठोरता के साथ शासन करने का काल कहा जा सकता है। किन्तु औरंगजेब ने हरिद्वार में पड़ने वाले कुम्भ से पहले ही सन् 1678 ई0 में जजिया कर को पुन: प्रारंभ कर दिया। ऐतिहासिक साक्ष्य है कि हरिद्वार में सन् 1678 ई0 में महाकुम्भ पड़ा था और तब गुजरात के प्रणामी सन्त महामति प्राणनाथ हरिद्वार पधारे थे। जहाँ उन्होंने अनेक विद्वानों से शास्त्रार्थ करके प्रसिद्धि पाई थी और अपने निजानन्द मत को प्रचारित किया था। उल्लेख है – शाका सालिवाहन का सोलह सै पूरन। बैठा शाका विजयाभिनंदका, तब फिराये फिरके सैयन।।[5] विक्रमादित्य के राज से, बरस सत्रह सै पैंतीस। तब जिद्द हुई फिरकन सों, बुद्ध ईश्वरों के ईश।हरिद्वार के मेला में चार सम्प्रदाय ताहि। षट्दर्शन भीतहां मिले, दसनामी सन्यासी जाहि।।[6]

1300 साल पहले चीनी यात्रियों द्वारा लिखित इन मेलों का वर्णन चकित कर देने वाला है। इसी प्रकार एक अंग्रेज इतिहासकार ने 250 साल पहले के कुम्भ मेले के सम्बन्ध में लिखा है कि गंगा का पुल पार करके जब मैं मेले पर पहुँचा वहाँ देखा कि छोटी-छोटी झोपड़ियाँ चटाई सब घास-फूस की बनी हुई थी। बीच में चारों ओर लकड़ी के ढेर लगे हुए थे, जो बहुत मंहगे बिकते थे। मेले में बाजार भी था, जहाँ बहुत सी चीजें जैसे बर्तन, चाकू , टोपी, रूमाल आदि बिकती थी । त्रिवेणी तट पर नाइयों की भीड़ थी क्योंकि तीर्थराज प्रयाग में सिर मुंड़वाने का विशेष पुण्य माना जाता है। अनेक सम्प्रदाय के साधु-संत थे, जिन्हें देखकर आश्चर्य होता था। किसी-किसी की जटायें 6 फुट तक लम्बी थी। बहुत से साधु नंगे भी थे। मेले में जगह-जगह कीर्तन हो रहा था जिसे सुनने के लिए भीड़ जुट जाती थी। भयंकर सर्दी में भी लोग नंगे नहाते थे। शिवालिक पर्वत

माला के चरणों में समुद्र तल से लगभग 300 मीटर की ऊँचाई पर पतित पावनी भागीरथी के सुरम्य तट पर स्थित तीर्थ हरिद्वार देश के उन प्रसिद्ध पावन तीर्थो में से एक हैं जहाँ कि पौराणिक पृष्ठभूमि इतिहास से अधिक महत्वपूर्ण है।

खगोलशास्त्र के अनुसार कुम्भ पर्व :– कुम्भ पर्व का सम्बन्ध खगोलशास्त्र से भी हैं और इसका वर्णन स्कंद पुराण में है। कुम्भ पर्व ऐसी परम्परा नहीं है, जिसे अंधविश्वास या अंधश्रद्धा कहकर ठुकराया जा सके। खगोलशास्त्र के अनुसार यह एक महान पौराणिक पर्व है। हर 12 वें वर्ष विशेष ग्रहों के संयोग के कारण ये कुम्भ महापर्व पड़ता है। इस पर्व की कथा का धार्मिक पवित्रता के साथ-साथ ही खगोलिक महत्व भी है। ग्रहों और नक्षत्रों की विशिष्ट गतिविधियों के कारण कुम्भ पर्व का होना भी कहा जा सकता है। ये विशिष्ट ग्रह योग कुम्भ पर्व के लिए विभिन्न स्थलों पर प्रत्येक स्थल के लिए पृथक-पृथक हैं। स्कन्द पुराण में खगोल शास्त्रीय विधान का उल्लेख हुआ है। हरिद्वार में होने वाले कुम्भ पर्व के विषय में स्कंद पुराण के अनुसार – पद्मिनीनायके मेषे कुम्भ राशि गते गुरौ। गंगाद्वारे भवेद्योग: कुम्भा नाम्ना तदोत्तम:।।[7] इस श्लोक के अनुसार जिस समय गुरू कुम्भ राशि पर हो और सूर्य मेष राशि में हो तब गंगा में हरिद्वार में उत्तम योग बनता है। खगोल शास्त्र अनुसार प्रयाग में होने वाले कुम्भ पर्व के लिए सूर्य मकर राशि में गुरु वृष राशि में होने के साथ माघ माह भी होना अति आवश्यक है।

खगोलशास्त्र के अनुसार उज्जैन में कुम्भ पर्व पड़ने के लिए सिंह राशि पर गुरु ग्रह का होना अनिवार्य हैं। साथ ही उज्जैन में कुम्भ पर्व होने के लिए इसमें सर्वाधिक दस योगों का होना आवश्यक हैं, जैसे- 'बैसाख का महीना, शुक्ल पक्ष, पूर्णिमा तिथि, मेष राशि पर सूर्य, सिंह राशि पर गुरु, तुला राशि पर चन्द्रमा, स्वाति नक्षत्र, व्यतिपात योग, सोमवार तथा उज्जयिनी स्थल के दसों योगों में से यदि एक सिंह राशि पर गुरु न हो तो कुम्भ पर्व नहीं होता', इसलिए इसको सिंहस्थ भी कहा जाता है। खगोलशास्त्र के अनुसार गुरु और सूर्य सिंह राशि पर होते हैं, पूर्णिमा तिथि और गुरुवार होता है। तब नासिक में कुम्भ पर्व मनाया जाता है।

कुम्भ शब्द का अर्थ (व्युत्पत्ति) – कुम्भ शब्द की व्युत्पत्ति 'कुं' भूमि कृत्सितं व उम्भति पूरयति – उम्भ् + अच् से हुई है। 'कुं' का अर्थ है भूमि या पृथ्वी 'कुं' में उम्भ धातु तथा 'अच्' प्रत्यय के संयोग से कुम्भ शब्द बना है। उम्भति या उभति का अर्थ है संक्षिप्त करना या भरना और पूरयति का तात्पर्य है भरना या पूरा करना। भूमि या मिट्टी से निर्मित पात्र कुम्भ है। जिसे जल से भरा जाता है। इस प्रकार कुम्भ का सामान्य तात्पर्य है जल भरने का पात्र, घड़ा या कलश। कुम्भ शब्द के प्राचीन प्रयोग वेद, महाकाव्य एवं पुराणों में अनेक स्थानों पर मिलते हैं। ऋग्वेद में ये शब्द विभिन्न सूक्तों [8] में, शुक्ल यजुर्वेद में सूक्त 19/53/3 सामवेद में सूक्त 6/3 एवं अथर्ववेद में सूक्त 19/53/3, 4/34/7 तथा 16/6/8 प्रयुक्त हुआ है। इसमें से अथर्ववेद में 4/34/7 से चतुर: कुम्भाश्चतुर्था ददामि को उद्धृत कर कई विद्वानों ने इससे चार स्थानों पर सम्पन्न होने वाले कुम्भ पर्व का तात्पर्य ग्रहण करने की बात कही है। जबकि उपयुक्त वैदिक सूक्तों में कुम्भ शब्द स्नान पर्व का बोधक नहीं था। कुछ विद्वानों ने उपयुक्त सूक्तों से कुम्भ के आध्यात्मिक निहितार्थों के संकेत दर्शाये हैं। महाभारत, रामायण, गरूड़-पुराण, स्कंद पुराण, में भी ये शब्द प्रयुक्त हुआ है।[9] परन्तु उसमें कुम्भ पर्व की उत्पत्ति या स्वरूप नहीं दर्शाया गया हैं। वायु पुराण में कुम्भ शब्द मृत्यु संस्कार करने के लिये, पवित्र स्थान के लिये प्रयुक्त हुआ है। नारदीय पुराण में ये शब्द सरस्वती के तट पर स्थित एक स्थान के लिये आया है।[10] जहॉ स्नान करने से यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

वेदों में कुम्भ जहॉ मात्र आध्यात्मिकता की ओर संकेत करता था, वही पुराणों तक आते-आते ये पुण्य फलदाई स्नान पर्व के रूप में प्रतिष्ठित होने लगा। कुम्भ पर्व क्षीर समुद्र मंथन से प्रसिद्ध पुराख्यान को अपनी पृष्ठभूमि में रखे हैं। कुम्भ पर्व का संबंध समुद्र मंथन के प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान से है। इसी आख्यान के बीच वैदिक वांग्मय के देवासुर संघर्ष में मिलते हैं। वहीं आख्यान से जुड़े विष्णु, इन्द्र आदि देव तथा अन्य घटक सूत्र रूप में पूर्ववर्ती साहित्य में उपलब्ध है। देवासुर संग्राम और समुद्र मंथन के आख्यान रामायण, महाभारत तथा विभिन्न पुराणों में वर्णित हैं। जिनमें प्रमुख पद्मपुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, विष्णु पुराण, वायु पुराण, भागवत कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, देवी भागवत, स्कन्ध पुराण आदि है । पुराणों में वर्णित इस आख्यान में कुछ प्रसंगत अंतर दिखाई देते हैं। फिर भी उसके मूल घटनाचक्र में एकरूपता है। देव और असुरों का द्वन्द्व भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का बहुचर्चित प्रसंग रहा है। समुद्र मंथन की पुराणोक्त कथा के अनुसार देव और असुरों के बीच निरंतर जारी वैमनस्य एक बार समुद्र मंथन के समय समझौते की स्थिति बनी। परस्पर सहयोग और श्रम से किये गये इस मंथन से समुद्र ने अपना शीश झुका दिया और इससे विभिन्न रत्न प्राप्त हुये। कुम्भ पर्व से जुड़े पुराख्यान के बीच वेदों में वर्णित देवासुर संघर्ष सहज ही विद्यमान हैं। इसी संघर्ष से जुड़ा समुद्र मंथन का आख्यान उत्तर वैदिक काल में वैष्णव धर्म की लोकप्रियता के साथ-साथ विकसित हुआ। जिसमें विष्णु कूर्म अवतार के साथ ही धनवंतरि तथा मोहिनी रूप में उपस्थित होकर असुरों से अमृत कुम्भ की रक्षा करते हैं और इन्द्र सहित देवों को अमृत पान कराते हैं।

आर्यों एवं वेदों के अनुसार कुम्भ पर्व – कुम्भ पर्व का संबंध इतिहास और पुराण के साथ ही वेदों से भी जोड़ा गया है। समुद्र मंथन के समय चौदह रत्नों के साथ अमृत कुम्भ भी प्राप्त हुआ था। मान्यता है कि समुद्र मंथन मुख्यत: अमृत कुम्भ की प्राप्ति के लिए किया गया था। इतिहास और पुराणों

में वेदों के अर्थों को ही व्याख्या और परिवृद्धि की गई है।इतिहास 'पुराणाभ्यां वेदं समुषवृं हयेत् ' मान्यता के अनुसार कुम्भ के संबंध में वेदों में जो विवरण उपलब्ध है, उनके अनुसार ऋग्वेद में कहा गया है – युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम्। कारोतराच्छकाश्वस्य वृष्ण: शतं कुम्भां असिञ्चन्तं सुराया:।।[11] इसी प्रकार 'ऋग्वेद' के 12/3/33 के मंत्र 'कुम्भीवेद्यांमा व्यथिष्ठा यज्ञपुधै–राज्येनातिषिक्ता' की कुम्भपक्षीय व्याख्या है– हे कुम्भ पर्व! तुम यज्ञीय वेदी में यज्ञीय आयुधों से घृत द्धारा तृप्त होने के कारण कष्ट का अनुभव मत करो।इसी प्रकार अन्य वेदों में भी कुम्भ पर्व से संबंधित मंत्र प्रमाण में प्रस्तुत किये जाते हैं। इनमें शुक्ल यजुर्वेद का मंत्र है – कुम्भो वनिष्टुर्जनिता शचीमिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो अन्त:। प्लाशिर्व्यक्त: शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधा पितृभ्य:।।[12] 'सामवेद' का यह मंत्र भी 'कुम्भ पर्व' से संबंधित अर्थ का द्योतक माना गया है– आविशन्कलश (गुं) सुतो विश्वाऽऊर्ष्ण मिश्रिय:। इन्दुरिन्द्राय धीयते।[13] मन्त्रार्थ है– कुम्भ पर्व सत्कर्म द्धारा मनुष्य को इहलोक में शारीरिक सुख और जन्मांतर में उत्कृष्ट सुख देने वाला है। 'अथर्ववेद' में ब्रह्माजी कहते हैं कि हे मनुष्यो! मैं तुम्हें भौतिक तथा अधि–भौतिक सुख देने वाले चार कुम्भ पर्वों का निर्माण कर चार स्थानों में (हरिद्धार, प्रयाग, उज्जैन, नासिक) प्रदान करता हूँ –चतुर: कुम्भांश्चतुर्धा ददामि।[14] साथ ही 'अथर्ववेद' के एक मंत्र का मंत्रार्थ यह किया गया है– हे संत गण! पूर्ण कुम्भ समय पर (बारह वर्ष) ही होता है, जिसे हम अनेक बार (हरिद्धार आदि तीर्थों में) देखा करते हैं। कुम्भ उस समय को कहते हैं, जो महान आकाश में गृहराशि आदि के योग से होता है।[15]

वृहदारण्यक उपनिषद स्पष्ट शब्दों में कहता है जिसे 'धन–ऐश्वर्य–पुत्र' आदि महत्व चाहिये उसे मंथन यानि कर्म करना चाहिये। आदि शंकराचार्य जी इस 'वृहदारण्यक उपनिषद' के भाष्य में लिखते हैं– 'मंथाख्यं कर्मरिभ्यते महत्व प्राप्तये, महत्वे च सत्यर्थ सिद्धं हि क्तिम्।' अर्थात् महत्व प्राप्ति के लिये मंथ संज्ञक कर्म किया जाता है। महत्व होने पर तो वित्त स्वत: सिद्ध होता है। यही नहीं उक्त उपनिषद में मंथन का काल भी बताया गया है। यथा –'मंथ–कर्मणों विधित्सितस्य कालोऽभिधीयते उदगयनम् आदित्यस्य, तत्र सर्वत्र प्राप्तावापूर्यमाण–पक्षस्य' शुक्ल–पक्षस्य[16] अर्थात् आदित्य (सूर्य) के उदगयन–उत्तरायण में होने पर शुक्ल–पक्ष में जब सभी कुछ की प्राप्ति होती है। ध्यान दीजिए– यह वही काल है, जब प्रयाग में कुम्भ पर्व का आयोजन होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वेदों की मंथन विधा को ही पुराणों में समुद्र मंथन कथा के रूप में वर्णित किया हैं जो आज भी प्रचलित हैं। समुद्र के बाह्य या आंतरिक दोनों रूपों से परिचित थे और उन्होंने ऐसे सुंदर कथा का चित्रण किया जो आज भी सुनाई जाती है। यदि ये कथा कोरी कल्पना होती तो न जाने कब इतिहास के पन्नों में ये विस्मृत हो चुकी होती। समुद्र के भीतर मानव जाति के लिये कितने रत्न औषधि छिपे हैं ये आज के समुद्र विज्ञान की खोज से स्पष्ट हो रहा है। आधुनिक वैज्ञानिकों का आकलन है कि जब सन् 2040 ई0 में 21वीं सदी के मध्य में तेल, कोयला, प्राकृतिक गैस भण्डार समाप्त हो जायेंगे, तब समुद्र की तलहटी में भारी मात्रा में विद्यमान इंधन से ही कार्य होगा। समुद्र की गहराइयों में ऐसे रसायनों की पहचान हो रही है, जिनसे जीवनदायक विलक्षण औषधि का निर्माण होगा। आधुनिक वैज्ञानिक पुराणों की भाषा में अब ये भी स्वीकार कर रहे है कि जीवन के प्रथम चरण का प्रारम्भ पृथ्वी के स्थलीय क्षेत्र में नहीं बल्कि सागर के गहरे जल में हुआ है।

इस प्रकार आधुनिक अनुसंधानों द्धारा पुराणों की समुद्र मंथन की कथा अपने बाह्य स्थूल अर्थों में सत्य सिद्ध हो रही है। भारतीय गैस प्राधिकरण और अमरीका के नौसैनिक अनुसंधान प्रयोगशाला ऐसे अनुसंधान कार्य में लगे हैं, जो समुद्र में औषधियों एवं समुद्री बहुमूल्य रत्नों की सत्यता को दर्शाता है और समुद्र मंथन के अर्थ से भी स्पष्ट है।[17] समुद्र मंथन की बाह्य स्थूल बातें पूरे मानव समाज के लिये अत्यधिक उपदेशक सिद्ध हो रही है तो समुद्र मंथन की आंतरिक सूक्ष्म बातें कितनी अधिक कल्याणकारी रही होगी और अमृत स्वरूप देने वाली होगी। आंतरिक सूक्ष्म भावों के संबंध में समुद्र मंथन का अर्थ आत्म मंथन है। मीमांसाकार जैमिनी कहते हैं– 'पुरुषों वै समुद्र:।' अर्थात् पुरुष ही समुद्र है। 'तैत्तरीय श्रुति' कहती है– 'समुद्र इव हि काम:, काम–मय एवायं पुरुष:।'[18] अर्थात् मानव की कामनायें ही समुद्र है। मनुष्य यदि कामना रूपी समुद्र को मथ डालें तो उसे अमृत कलश धारिणी श्री क्या, साक्षात् अमृत भी प्राप्त कर सकता है जो कभी नष्ट नहीं हो सकता। 'मुमुक्ष–मार्ग' नामक पुस्तक में गुप्तवतार बाबा श्री प्रसिद्ध नवार्ण–मंत्र के संबंध में नव अर्णव = नौ समुद्रों के बारे में बताते हैं। वे कहते हैं कि 'नौ समुद्र' इस प्रकार है– 1. काम, 2. क्रोध, 3. लोभ, 4. मोह, 5. मद, 6. मत्सर, 7. ईर्ष्या, 8. द्धेष, 9. सागर। नौवां सागर इन आठ सागरों की श्रृंखला के दोनों छोरों को मिलाने वाला फन्दा है। ये नवों समुद्र ऐसे हैं कि यदि मानव इनको मथ डाले तो उसे श्री, एश्वर्य, आत्मज्ञान रूपी मोक्ष सभी कुछ प्राप्त हो सकता है।[19] समुद्र मंथन मानव की विकास यात्रा में एक महत्वपूर्ण मोड़ रहा है–उसमें एक ऐसी क्रान्ति का संदेश हैं जिसने समाज के सभी अंगों के संस्कृति, अर्थतंत्र, शासनतंत्र आदि को अपनी लपेट में लेने का प्रमाण मिलता है। उसकी तुलना महाभारत कालीन सामाजिक क्रान्ति से की जा सकती है।

समुद्र मंथन का काल तत्कालीन असुर संस्कृति के अंदर से एक नई देव संस्कृति के उदय का काल रहा है। असुरों और देवों को एक ही परिवार का अंग कहा गया है। 'वृहदारण्यक' में देव और असुर दोनों को प्रजापति की संतान बताया गया है। बाद में इनमें मानव भी जुड़ गये। असुरों और देवों का भेद समझने के लिए हमें एक संक्षिप्त दृष्टि उसकी संस्कृति और तत्कालिक अर्थतंत्र पर निगाह डालनी होगी।[20] समाज के दो भागों में बंट जाने और शक्ति सम्पन्नता देवों के हाथों में आ जाने से समाज को मर्यादा में रखने के लिए अब दण्ड शक्ति और राज शक्ति की भी आवश्यकता हुई।[21] महाभारत के 'अनुशासन पर्व' में ये सब विस्तार में दिया गया है।[22] इस सम्पन्नता को लाने में समुद्र मंथन एवं कुम्भ पर्व का विशेष योगदान है। समुद्र मंथन के सही काल का निर्णय तो पुरातत्ववेत्ता और मानव विज्ञानवेत्ता ही कर सकते हैं पर प्रयाग के निकट भारद्धाज मुनि के आश्रम की खुदाई से संकेत मिला है कि इस स्थल की प्राचीनता 2800 वर्ष से अधिक नहीं है।

निष्कर्ष – आस्था और विश्वास पर आधारित कुम्भ पर्व जिसे भारत वर्ष ही नहीं बल्कि विश्व के सहस्त्रों धार्मिक जन वर्षो से हरिद्धार, प्रयाग ,उज्जैन व नासिक में एक विशेष संयोग काल में एकत्रित होकर स्नान करके स्वयं को पवित्र मानती है। आज के वैज्ञानिक युग में धार्मिक आस्था के नाम पर इतने व्यक्तियों का एक स्थान पर जमघट क्या ,किसी चमत्कार से कम नहीं है वेदों में कुम्भ जहाँ मात्र आध्यात्मिकता की ओर संकेत करता है ,वहीं पुराणों में फलदायी स्नान पर्व के रूप में प्रतिष्ठित होने का उल्लेख आता है मान्यता है कि समुद्र मंथन मुख्यत: अमृत कुम्भ की प्राप्ति के लिए किया गया था। कुम्भ पर्व का संबंध समुद्र मंथन के प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान से है जिसमें देवासुर संघर्ष का उल्लेख है। देवासुर संग्राम व समुद्र मंथन के आख्यान रामायण और महाभारत में भी वर्णित है। इस प्रकार वेदों में मंथन विद्या को ही पुराणों में समुद्र मंथन कथा के रूप में बताया गया है ,जो आज भी प्रचलित है। तैत्तरीय संहिता अनुसार मनुष्य यदि कामना रूपी समुद्र को मथ डाले, तो उसे अमृत कलश धारणी श्री क्या ,साक्षात् अमृत भी प्राप्त कर सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. ऋग्वेद 12/6/29
2. ऋग्वेद 16/66/5
3. दास, शम्पा, भारतवर्ष में कुम्भ पर्व में लगने वाले मेलों का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक अनुशीलन अप्रकाशित शोध ग्रंथ, अ.प्र.सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) ,पृ.16
4. बाणभट्ट, हर्षचरित, दिल्ली
5. बीजक, लालदास, पृ. 35
6. बीजक, लालदास, पृ.35
7. स्कन्द पुराण 62/6/21
8. ऋग्वेद, 1/8/92,1/2 /3/23 तथा 10/89/7
9. महाभारत,1/25
9. रामायण 3/35/27/34,
9. गरूड़ पुराण 1/240/26-28
10. स्कन्द पुराण 4/1/50/55-125
10. वायु पुराण 2/15/47
11. नारद पुराण 2/65/100
12. ऋग्वेद 1/8/9/2
13. यजुर्वेद 19/87
14. सामवेद 56/3
15. अथर्ववेद 4/34/7
16. मुमुक्ष मार्ग ,गीता प्रेस ,गोरखपुर ,पृ.18
17. वृहदारण्यक उपनिषद
18. मुमुक्ष मार्ग ,गीता प्रेस ,गोरखपुर ,पृ.118
19. तैत्तिरीय संहिता
20. हार्डविक ,कुम्भ मेला ,ऑक्सफोर्ड प्रेस ,बम्बई
21. स्कन्द पुराण 21/6
22. मुमुक्ष मार्ग ,गीता प्रेस गोरखपुर

****

पुष्टिमार्गीय संगीत में समय- सिद्धांत

डॉ. स्नेहा पंडित *

शोध सारांश – भारतीय संगीत धर्म से जुड़ा है। धर्म का तात्पर्य ईश्वर की उपासना करने का एक तरीका है। पूजा–अर्चना की विभिन्न प्रक्रिया धर्म कहलाती है। धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है – धारण करना या बनाए रखना। इसका तात्पर्य यह है कि जो तत्व सम्पूर्ण संसार के जीवन को धारण करता है, जिसके बिना संसार में व्यक्ति अवस्थिति संभव न हो वही धर्म है। डॉ. राधाकृष्णन का कथन है कि ' जिन सिद्धांतों के अनुसार हम अपना दैनिक जीवन व्यतीत करते हैं तथा जिनके द्वारा हमारे सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना होती है, वही धर्म है।' भारतीय परम्परा में धर्म का लक्ष्य मनुष्य को सत्यमार्ग दिखाकर उसकी सांसारिक एवं आध्यात्मिक उन्नति करना है। सभी धर्मों का उद्देश्य मनुष्य का कल्याण करना है, इसलिये धर्म का स्थान भारतीय संस्कृति में सबसे ऊपर रखा गया है।

प्रस्तावना – समस्त भारत की धार्मिक परम्पराऐं कहीं न कहीं संगीत से जुड़ी है। भारत के सभी धर्मों में ईश्वर के अलग–अलग रूप माने गए हैं। इसमें हर धर्म का व्यक्ति, ईश्वर के किसी एक रूप को इष्ट मानकर उसकी उपासना करता है। यह प्रथा भारतीय संस्कृति में वैदिककाल से चली आ रही है और आज भी इसी रूप में विद्यमान है। पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि ईश्वर के तीन रूप माने गए हैं –

1. सृष्टिकर्ता
2. सृष्टिपालक
3. सृष्टिसंहारक।

इसमें सृष्टिकर्ता के रूप में ब्रह्मा, सृष्टिपालक के रूप में विष्णु तथा सृष्टि संहारक के रूप में शिव को मान्यता दी है। संस्कृति अनुसार पूर्व से ही पालने वाले को अधिक महत्व दिया है। इसी को आधार मानकर सृष्टि के पालक विष्णु की उपासना सर्वप्रथम की गई है एवं अन्य देवगण को इन्हीं का अंश या अवतार माना गया है, ऐसी धारणा है। इसी आधार पर जो लोग विष्णु की उपासना करते हैं उन्हें वैष्णव कहा जाने लगा या व लोग वैष्णव कहलाने लगे।

भारत में धर्म को प्राचीनकाल से ही प्रधानता मिली हुई है, इस कारण भारत में अनेक धर्मों का प्रचार–प्रसार होता रहा। इन धर्मों के माध्यम से जो संगीत गाया जाता है, वह भक्ति संगीत कहलाता है। इस भक्ति मार्ग की शुरूआत 15वीं शताब्दी से चली आ रही है, इसमें पुष्टिमार्गीय कीर्तन परम्परा प्रमुख है। पुष्टिमार्गीय संगीत को ही भक्ति संगीत, हवेली संगीत, अष्टछापीय संगीत के नाम से जाना जाता है। वैष्णव संगीत मंदिरों में कीर्तन के रूप में होता था, इसे देवालयीन संगीत भी कहते हैं।

पुष्टिमार्गीय परम्परा की शुरूआत आलवार के संतों द्वारा दक्षिण भारत में हुई, जिसमें विष्णु की आराधना की जाती थी। कालांतर में विष्णु के अवतार श्रीराम और कृष्ण को पूजने वालों को भी वैष्णव धर्म के अंतर्गत माना गया। मध्यकाल में भक्तिमार्ग को अत्यधिक लोकप्रिय एवं जनमानस में पहुँचाने का कार्य वैष्णव भक्तों ने किया। वैष्णव भक्ति के विकास को पाँच भागों में विभाजित किया –

1. प्रथम युग में – स्मरण एवं ध्यान
2. द्वितीय युग में – यज्ञों का महत्व
3. तृतीय युग में – अवतारवाद
4. चतुर्थ युग में – मूर्ति पूजा
5. पंचम युग में – भगवान की विभिन्न लीलाओं का गान

अलग–अलग युग में अलग चीजों को महत्व दिया गया है, भक्ति का आधार स्नेह एवं प्रीति बताया है।

आठवीं शताब्दी में दक्षिण में आलवार नामक बारह भक्तों के माध्यम से वैष्णव धर्म का उदय हुआ। वैष्णव सम्प्रदायों में पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय की स्थापना संवत् 1556 में श्री वल्लभाचार्य द्वारा की गई थी। पुष्टिमार्ग का शाब्दिक अर्थ है शरणमार्ग अर्थात् कृष्ण की भक्ति को पुष्ट करना या दृढ़ करना या कृष्ण को सर्वस्व मानकर उसी की सेवा में लीन होना। वैष्णव सम्प्रदाय में भक्ति मुख्यत: चार भावों में की गई – दास्य, वात्सल्य, सख्य एवं माधुर्य। वैष्णव सम्प्रदाय में वल्लभाचार्य के चार शिष्यों कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास ने इस वैष्णव परम्परा का निर्वाह किया तथा श्रीनाथजी की विभिन्न लीलाओं का अनेक रागों एवं तालों के माध्यम से कीर्तन किया जाने लगा। इसके पश्चात इस परम्परा में विट्ठलनाथजी के अन्य शिष्य गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास तथा नंददास सम्मिलित हुए। इन आठ कीर्तनकारों को लेकर अष्टछाप की स्थापना हुई और इन्हें अष्टछाप के कवियों के नाम से जाना जाने लगा। अष्टछाप का शाब्दिक अर्थ अष्ट अर्थात् आठ तथा छाप का अर्थ एक समान अर्थात् एक समान पद्धति से किये जाने वाले कीर्तन–गान प्रणाली को आठ कवियों द्वारा गाया जाना, अष्टछाप कहलाया तथा इन अष्टछाप कवियों द्वारा श्रीनाथजी की आठ झाँकियों का गायन करने वाला संगीत पुष्टिमार्गीय संगीत कहा जाने लगा। इन आठ कवियों के माध्यम से पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय में श्रीनाथजी की आठों झाँकियों के कीर्तन विभिन्न रागों को समयानुसार गाकर किये जाने लगे।

पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय व अष्टछापीय परम्परा में भगवत् सेवा संगीत के माध्यम से ही की जाती थी। सम्प्रदाय में सेवा के दो रूप माने गए हैं – नित्य सेवा व वार्षिकोत्सव सेवा।

नित्य सेवा – नित्य सेवा में भगवान की अष्टयाम सेवा का समावेश होता है। इस सेवा भक्ति में मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या आरती एवं शयन इन आठ समयों की झाँकियाँ होती है।

* सहायक प्राध्यापक (गायन) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र) भारत

वार्षिकोत्सव सेवा – इस सेवा में वह सेवाऐं होती है जो वर्ष में एक बार होती है। इसमें वर्ष में होने वाले उत्सव, जयंतियाँ, यात्राऐं इत्यादि सम्मिलित होते हैं। इन दोनों ही सेवाओं में श्रृंगार, भोग के क्षणों का महत्व है।

1. **श्रृंगार** – इसमें श्रीनाथजी को स्नान कराकर ऋतु एवं समयानुसार वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित किया जाता है। इसे ही श्रृंगार कहते हैं। श्रृंगार का क्रम भी चरणों से शुरू होता है तथा अंत में मस्तक का श्रृंगार किया जाता है।

2. **भोग** – श्रीनाथजी को समय एवं ऋतु अनुसार भोग (भोजन) अर्पित करने की प्रथा को भोग कहा जाता है।

3. **राग** – राग अर्थात् संगीत का विशेष महत्व है। इस सेवा पूजा का क्रम मंत्रों द्वारा किया जाता है। पुष्टिमार्गीय में यह सेवा आठ प्रकार की झाँकियों द्वारा होती है। यह आठ झाँकियाँ सुबह से रात्रि तक आठ प्रहरों में होने के कारण आठों झाँकियों के राग समय एवं ऋतु अनुसार निश्चित होते हैं। इसी सेवा से संगीत में समय–सिद्धांत है, उसे मान्यता प्राप्त हुई ऐसा कहा जा सकता है। इस सम्प्रदाय में सभी कवि संगीत के ज्ञाता होने के कारण समयानुसार राग गायन की प्रथा का विशेष महत्व है।

पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय में नित्य सेवा एवं वार्षिकोत्सव सेवा समय–सिद्धांत आधारित रागों को निम्न प्रकार से बताया गया।

नित्य सेवा – नित्य सेवा में प्रतिदिन आठों झाँकियों की सेवा पूर्ण करने के लिए विट्ठलनाथजी ने आठ सखाओं को एक–एक झाँकी की सेवा सौंप दी थी।

1.	मंगला	–	परमानंददास
2.	श्रृंगार	–	नंददास
3.	ग्वाल	–	गोविन्दस्वामी
4.	राजभोग	–	कुंभनदास
5.	उत्थापन	–	सूरदास
6.	संध्या भोग	–	चतुर्भुजदास
7.	संध्या आरती	–	छीतस्वामी
8	शयन	–	कृष्णदास

1. **मंगला** – नित्य सेवा की यह पहली सेवा है। इसका समय ऋतु अनुसार बदलता रहता है, क्योंकि भगवान की सेवा बालरूप में होती है। इस सेवा में राग, विभास, रामकली, भैरव, ललित इत्यादि प्रात:कालीन रागों का प्रयोग पदों को गाने में किया जाता है।

2. **श्रृंगार** – मंगला के पश्चात श्रृंगार किया जाता है। इस समय राग बिलावल, सूहा, आसावरी, तोड़ी इत्यादि रागों में पदों का गायन होता है।

3. **ग्वाल बाल** – इस सेवा में ग्वाल बालों के साथ भगवन् गाऐं चराने वन गए हैं, ऐसी धारणा होती है। इस सेवा में बिलावल, रामकली इत्यादि रागों का गायन होता है।

4. **राजभोग** – इसमें आराध्यदेव को राजभोग अर्थात् भोजन कराया जाता है। इस समय पदों का गायन धनाश्री, सारंग इत्यादि रागों में किया जाता है।

5. **उत्थापन** – भोजन करने के पश्चात विश्राम करके शंखनाद की ध्वनि से भगवान को जगाया जाता है, इसमें राग नट, भीमपलासी इत्यादि रागों का प्रयोग होता है।

6. **संध्या भोग** – संध्याकाल के समय श्रीनाथजी को भोग लगाया जाता है, इसमें राग नट इत्यादि रागों का उपयोग होता है।

7. **संध्या आरती** – इस सेवा में विशिष्ट पदों का गायन किया जाता है। इन पदों में राग यमन, कल्याण, पूर्वी, गौरी इत्यादि रागों का प्रयोग किया जाता है।

8. **शयन** – यह अष्टयाम सेवा की आखिरी सेवा होती है। इसमें यह माना जाता है कि अब श्रीनाथजी के सोने का समय हो चुका है। इस सेवा में राग बिहाग गाना अनिवार्य होता है। इसके अलावा यमन, बिहागड़ा एवं ऋतु अनुसार सभी सेवाओं में ऋतु के राग भी गाये जा सकते हैं।

इन रागों के अलावा रागों को पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध रागों में भी विभाजित किया गया है –

पूर्वार्द्ध – प्रात: 5 बजे से दोपहर 12 बजे तक गाये जाने वाले रागों में विभास, भैरव, रामकली, बिलावल, देवगंधप, तोड़ा धनाश्री, मालश्री, आसावरी, अडाना, सारंग, भीमपलासी इत्यादि राग का प्राधन्य है।

उत्तरार्द्ध – मध्याह्न 4 बजे से रात्रि 9 बजे तक नट, सोरठ, पूर्वी, कानड़ा, बिहाग, बिहागड़ा, गौरी, कल्याण, श्री, यमन, केदार आदि राग प्रमुख हैं।

वार्षिकोत्सव सेवा – श्रीनाथजी की सेवा का दूसरा प्रकार, वर्ष में मनाये जाने वाले उत्सवों को भी महत्व देना है। इसमें जयंतियाँ, महोत्सव, त्यौहार में कीर्तन किया जाता है। इन सभी त्यौहारों, महोत्सवों पर विशेष पदों को निश्चित रागों में गान किया जाता है।

1. **कृष्ण जन्माष्टमी** – इस उत्सव में राग देव गांधार, धनाश्री, बिलावल, आसावरी, सारंग, कान्हरा, मालव, रामकली जैसे रागों में पदों का गायन होता है।

2. **नंदोत्सव** – यह जन्माष्टमी के दूसरे दिन प्रात:काल से ही मनाया जाता है। इसमें पालना इत्यादि गाया जाता है जो राग धनाश्री में विशेष रूप से गाया जाता है। सायंकाल में राग मालव गाया जाता है।

3. **दशहरा** – राग बिलावल, राग नट, राग केदार को विशेष रूप से गाया जाता है।

4. **प्रबोधिनी** – राग बिलावल, राग मालव, राग पूर्वी इसके पश्चात राग कल्याण, ईमन, कानड़ा, नायकी, ललित, अड़ाना, केदार, बिहाग रागों में गायन।

5. **बसंत पंचमी** – यह तिथि मंदिरों में विशेष महत्वपूर्ण है। इस दिन मंगल भोग के समय राग सारंग, श्रृंगार में राग भैरव, शयन में राग यमन तथा आठ झाँकियों में राग वसंत विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है।

6 **होलिकाष्टक** – इसमें होरी के कीर्तन, धमार इत्यादि गाये जाते हैं। इन दिनों में मौसम न अधिक ठण्डा और न अधिक गर्म होता है अत: होरी धमार के कीर्तन दोनों प्रकार के राग (ठण्डे एवं गर्म प्रकृति वाले राग) गाये जाते हैं। जिनमें भैरव, विभास, पंचम षट, ललित, देव गांधार, आसावरी, तोड़ी, धनाश्री, काफी, सारंग, पूर्वी, जयजयवंती, बिहागड़ा, गौरी कल्याण, कान्हरा, हमीर इत्यादि गाये जाते हैं, जिससे मंदिरों का वातावरण शीतोष्ण बना रहता है।

जयंतियों एवं त्यौहारों के अलावा ऋतोत्सव भी मनाए जाते हैं। वर्षभर में आनेवाली छ: ऋतुऐं हैं, इन ऋतुओं के अलग–अलग उत्सव भी सम्प्रदाय में मनाये जाते हैं तथा इन उत्सवों में ऋतु अनुसार विशिष्ट रागों के अंतर्गत पदों का गायन होता है।

1. **शरद ऋतु** में रास उत्सव होता है, इसमें राग भैरव, तोड़ी, सारंग, मालव, केदार इत्यादि रागों में पदों का गायन किया जाता है।

2. **हेमन्त ऋतु** में दीपावली पश्चात प्रबोधिनी उत्सव मनाया जाता है। इस समय राग बिलावल, सारंग आदि राग में गायन होता है।

3. **शिशिर ऋतु** में होली सम्बन्धी पदों का गायन होता है। इसमें राग

जैतश्री, गौरी, कल्याण, तोड़ी, सारंग, पीलू, काफी, इत्यादि रागों का प्रयोग होता है।

4. वसंत ऋतु में जलोत्सव मनाया जाता है। इस ऋतु में वसंत तथा बहार राग का अधिक प्रचलन होता है।

5. ग्रीष्म ऋतु में उष्णता को कम करने की दृष्टि से श्रीनाथजी को शीतल वस्तुओं के प्रयोग का वर्णन किया जाता है। इसके पदों का गायन राग सारंग, बिलावल, तोड़ी, केदार, कान्हड़ा आदि रागों में होता है।

6. वर्षा ऋतु इस ऋतु में झूला-झूलन का वर्णन मिलता है। इसमें मल्हार राग का उपयोग विशेष रूप से होता है, इसमें गौड़मल्हार, सूरमल्हार प्रमुख है। इसके साथ नट, रामकली, अडाना, रागों में भी पदों का गायन किया जाता है।

उपरोक्त सम्प्रदाय द्वारा यह पूर्णरूपेण सिद्ध हो जाता है कि पुष्टिमार्गीय सेवा संगीत के माध्यम से ही की जाती है तथा सभी पदों का गायन समयानुसार ही होता है। इससे संगीत में प्रचलित समय-सिद्धांत को ठोस आधार मिला। साथ ही रागों को निर्धारित समय पर गाने की परम्परा संगीत जगत में पूर्ण रूप से स्थापित हुई।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. चतुरंग - पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट।
2. धार्मिक परम्पराऐं एवं हिन्दुस्तानी संगीत - रेनू सचदेव।
3. पुष्टिमार्गीय मंदिरों में संगीत परम्परा - प्रो. सत्यभान शर्मा।
4. मधुगीन वैष्णव सम्प्रदाय में संगीत - डॉ. राकेशबाला सक्सेना।
5. वैष्णवशास्त्र (अनुवाद)- गजानन रानाडे शास्त्री, मदनलाल व्यास।
6. हिन्दी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत -उषा गुप्ता।
7 वल्लभ सम्प्रदाय में शास्त्रीय संगीत की परम्परा (लेख) - डॉ. सुरेखा सिन्हा।

****

शास्त्रीय संगीत की बंदिशों में रस निष्पत्ति

डॉ. बी.वर्षा *

प्रस्तावना – मनुष्य हृदय में सौन्दर्य के प्रति प्रेम शुरु से ही रहा है। उसमें जन्म से ही सौन्दर्य के प्रति आसक्ति होती है। किसी भी सुंदर चीज के प्रति आकर्षित होना, मधुर ध्वनि को सुनकर आनंदित होना, सौन्दर्य के प्रति संवेदनशीलता का प्रमाण है। किसी कलाकृति को देखकर आनंद की अनुभूति होना सौन्दर्य बोध कहलाता है। सौन्दर्य को ग्रहण करने के लिये कलाकार, कलाकृति तथा रसिक श्रोता इन तीन पक्षों का होना आवश्यक है। सौन्दर्य बोध मूलत: पाश्चात्य विचारधारा है, भारतीय विचारधारा में इसे 'रस' कहा जाता है। जब सौन्दर्य बोध का आनंद चरम सीमा तक पहुँच जाता है तब 'रस निष्पत्ति' होती है।

भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है – संगीत। मनुष्य हमेशा से ही अपने भावों को संगीत के माध्यम से अभिव्यक्त करता आया है। प्रेम, हर्ष, दया, करूणा अथवा क्रोध, किसी भी प्रकार के भावों को संगीत के माध्यम से सहज ही व्यक्त किया जा सकता है। मनुष्य के अन्त:करण में निवास करने वाली विशिष्ट भावनाओं के चरम उत्कर्ष को शास्त्रज्ञों ने रस की संज्ञा दी है। संगीत का तो प्राण ही रस है, यदि रस न हो तो संगीत का आनंद श्रोताओं को नहीं मिल सकता। कलाकार और श्रोता में जो तादात्म्य स्थापित होता है, वही रस है। प्राचीनकाल से ही भारतीय साहित्य में रस शब्द का प्रयोग होता आया है। वैदिक काल में 'सोमरस' के लिये तो उपनिषद् में परमब्रह्म के लिये रस शब्द का प्रयोग किया गया। रस शब्द की शास्त्रीय व्याख्या भरत मुनि ने अपने ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में की है। भरत ने यह माना कि 'नाना भावोपगमा द्रुसनिष्पत्ति' उनका प्रसिद्ध सूत्र है–'विभानुभाव व्याभिचारी संयोणा द्रस निष्पत्ति अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों का संयोग रस निष्पत्ति में सहायक होता है।

साहित्य में हमें नव–रसों का उल्लेख मिलता है यथा –

'श्रृंगार हास्य करूणं, रौद्र वीर भयानका:
वीभात्सोद्भुत इत्यष्टौ रस शांतस्तया मत:'

अर्थात् श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शांत किन्तु भरत मुनि ने इनमें से केवल चार रसों को प्रधानता दी है – श्रृंगार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स। उनका यह मानना है कि इन्हीं चार रसों से हास्य, करुण, अद्भुत तथा भयानक रसों की उत्पत्ति होती है, किन्तु संगीत की बंदिशों अथवा रचनाओं में केवल रस–भाव का ही होना पर्याप्त नहीं है, वरन् सौन्दर्य बोध के लिये राग का उचित चयन, उसकी प्रकृति तथा समय सिद्धांत का होना भी अनिवार्य है तभी बंदिश से उचित रस निष्पत्ति सम्भव है।

'रस' यह शब्द 'रस धातु' तथा 'अच' प्रत्यय से उत्पन्न हुआ है। इसकी व्याख्या विद्धानों ने 'रस्यते इति रस:' इस प्रकार की है– अर्थात् जिस वस्तु का स्वाद लिया जा सके, जिसकी रसानुभूति की जा सके, वही रस है। रस का आनंद तो लिया जा सकता है किन्तु इसे कोई देख नहीं सकता यह मात्र अनुभव किया जाता है। रस निश्चित ही भाव पर आश्रित होता है, इसलिये भाव के बिना रस निष्पत्ति संभव नही। इन रसों की उत्पत्ति मनुष्य की मानसिक स्थिति पर आधारित होती है। कुछ भाव सुखदायक होते हैं तो कुछ दुखदायक, जिसके कारण व्यक्ति किसी दुखद नाटक या फिल्म देखकर रोने लगता है तो किसी सुखद नाटक अथवा कविता को सुनकर आनंदित होता है। श्रोताओं या दर्शकों में रसमय अवस्था उत्पन्न कराना हर कलाकार का लक्ष्य होता है, जो कलाकार जितनी जल्दी इस अवस्था को उत्पन्न करने में सक्षम होता है, वह उतना ही उत्कृष्ट कलाकार माना जाता है।

भारतीय संगीत में गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों कलाओं का समावेश है। संगीत के इन सभी अंगों द्वारा रसानुभूति होती है। शास्त्रीय संगीत हमारी अमूल्य धरोहर है। यह नियमों में बंधा हुआ मर्यादित संगीत है, जिसमें अथाह गहराई, मंथन, नियम एवं परम्परा समाहित है। यह जनसाधारण का संगीत नहीं है, अपितु इसका प्रभाव सर्वव्यापी है। शास्त्रीय संगीत की बंदिशें चाहे वह ख्याल गायन शैली हो अथवा ध्रुपद धमार शैली। प्रत्येक बंदिश में कोई न कोई भाव अवश्य होता है। संगीत के सौन्दर्य के लिये बंदिश नितांत आवश्यक तत्व है। बंदिश को जब भाव, लय, ताल, आलाप, तान, अलंकार तथा स्वर रुपी अलंकरणों से सजाया जाता है, तब वह रचना रक्तिदायक बनती है और यही रक्ति, संगीत का सौन्दर्य तत्व है। संगीत का एक सफल कलाकार भी संगीत के माध्यम से इस सौन्दर्य तत्व को जागृत कर सकता है। कुशल गायक–वादक एक ही राग में अनेक रसों का निर्माण कुशलता से कर सकता है। संगीत के सात सूरों के लिये प्राचीन शास्त्रकारों ने रस निर्धारण इस प्रकार किया है–

'सरी वीरे अद्भुते रौद्रे धा वीभत्से भयानके
कार्यो गनि तु वरुण हास्य श्रृंगारयोर्मपौ'

अर्थात् – सा, रे – वीर तथा अद्भुत रस पोषक
ध – वीभत्स तथा भयानक रस पोषक
ग, नि – करुण रस द्योतक
म, प – हास्य व श्रृंगार रस द्योतक

प्राचीन ग्रंथों वृहद्देशी, संगीत रत्नाकर तथा संगीत मकरंद आदि ग्रंथों में सात सुरों के रस इस प्रकार बताये हैं –

षड्ज – वीर, रौद्र, अद्भुत रस
ऋषभ – वीर, रौद्र, अद्भुत रस
गंधार – करुण रस
मध्यम – हास्य, श्रृंगार रस
पंचम – हास्य, श्रृंगार रस
धैवत – भयानक, वीभत्स रस
निषाद – करुण रस

इसी प्रकार पं. भातखण्डे जी ने स्वरों के अनुसार रागों के तीन वर्गों में रसों का समावेश निम्नानुसार किया है–

1. रे – ध कोमल वाले संधिप्रकाश राग – शांत व करुण रस

* सहायक प्राध्यापक (गायन) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

2. रे – ध तीव्र वाले संधिप्रकाश राग – श्रृंगार रस
3. ग – नि कोमल वाले संधिप्रकाश राग – वीर रस

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय संगीत में रस का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत के सात सुरों में से 'सा' स्वर जिसे आधारभूत स्वर कहा जाता है, शांति का स्थान है। संगीत में शांत रस ही सब रसों का आधार माना गया है। प्रत्येक राग में स्वर लगाने का ढंग अलग होता है। शास्त्रीय संगीत के राग भी रस प्रधान होते हैं। उदाहरणार्थ – शंकरा तथा हिंडोल, वीर रस प्रधान है, छायानट, जयजयवंती, यमन, बहार – श्रृंगार रस प्रधान, भैरव– नैराश्य भाव, पूरिया – उदासीन, काफी, खमाज, पीलू – चंचल व उत्साह मल्हार में प्रकृति, जोगिया तथा भैरवी – करुण रस। इस प्रकार भिन्न–भिन्न रागों से भिन्न–भिन्न रस भाव प्रतीत होते हैं।

रागों के साथ–साथ ही शास्त्रीय संगीत में ख्याल गायन शैली की बंदिशों में भी रस भाव इस प्रकार दिखाई देता है –

1. **राग यमन** – यह बंदिश, जो श्रृंगारिक रस भाव का आभास कराती है –
'पिया की नजरिया, जादूभरी, मोह लियो मन प्रेम भरी'
2. **राग छायानट –** श्रृंगार रस भाव की बंदिश –
'माधुरी मूरत री, सुधहूँ हमरी गुमावत, निंदिया न आवत'
3. **राग तिलंग** – भक्ति रस भाव की बंदिश –
'हरि के भजन बिना कैसे तरोगे,
भक्ति बिना नर परे भव सागर, कीट पतंग ब्रह्मांड फिरोगे'
4. **राग दरबारी कानड़ा –** भक्ति रस भाव की बंदिश –
'सुमिरन कर मन पवित्र, निरगुण परब्रह्म,
फिर पछतावेगा तू मान वृथा अभिमान,
जरा कही अरे मन'
5. **राग तोड़ी** – करुण रस भाव की बंदिश –
'अब मोरे राम राम रे, विराम राम रे
निसदिन तिहारी टेर करत, मनरंग हम चेरी
तुम श्याम राम रे, विराम राम रे'
6. **राग हेमंत** – करुण रस भाव की बंदिश –
'तू ही करतार सब जग को, कौन विध तेरो गुन गाऊं
तेरो समान तू ही एक दाता, कृपा कीजै चरनन रज पाऊं'
7. **राग नंद** – वात्सल्य रस भाव की बंदिश –
'नंद घर आनंद की बधाई बाजे, यशुदा तिहारे आज भाग जागे
ऐसो लाल पायो री, जैसो कोउ पावै नाही, नयन मेरो दरसदान मांगे'
8. **राग छाया बिहाग** – वात्सल्य रस भाव की बंदिश –
'हठ करे काहे लाल ऐसो, धरती पे आवे कैसे चंद्र तेरो
सुर मुनि जाके पार न पावै, ताहि नंद रानी तनकि बुझावे'
9. **राग अंजनी कल्याण** – वीर रस भाव की बंदिश –
'अंजनी लाल दुलारे, पूत पवन के दूत राम के
सब विध काज संवारे, मंगल मूरति अमंगल टारत
सुमिरत देत रिध सिध रखवारे'
10. **राग मिश्र भैरवी** (भजन) – करुण रस भाव की बंदिश –
'आन पड़ी मझधार रे, मोरी नैय्या कैसे लगे पार रे
नदिया गहरी, नाव पुरानी, संग न कोई मुरारी
बिगड़ी बना दे हे बनवारी, आई शरन गिरधारी'

उक्त बंदिशें तो मात्र कुछ उदाहरण है, ऐसी कितनी ही अनगिनत रचनायें हैं, जिनसे विरह, वात्सल्य, करुण, भक्ति, श्रृंगार आदि रस भाव की निष्पत्ति दिखाई देती है। बंदिश में भावार्थ के साथ–साथ स्वरों का भी उतना ही महत्व होता है। काव्य तथा स्वर के संयोग से रस भाव की उत्पत्ति प्रभावशाली होती है। स्वरों का लगाव, ठहराव तथा उचित प्रयोग किसी भी रचना के भाव तथा रस को दर्शाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। एक योग्य कलाकार इन सभी तत्वों को ध्यान में रखते हुये बंदिशों का प्रस्तुतीकरण करता है, तो निश्चित ही वह उचित भाव एवं रस निष्पत्ति से प्रभावपूर्ण वातावरण बना सकता है तथा संगीत का जो मुख्य उद्देश्य है – आनंद देना, निश्चित ही वह उसमें सफल हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. प्रो. जोशी हेमलता – राग और रस, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली
2. डॉ. जौहरी सीमा – सांगीतिक निबंध माला, पीयूष प्रकाशन, दिल्ली
3. डॉ. अत्रे प्रभा – स्वरांगिनी, जास्वंदी पब्लिकेशन, इन्दौर
4. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 2, पं. वि. ना. भातखण्डे संगीत कार्यालय, हाथरस
5. क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 4, पं. वि. ना. भातखण्डे संगीत कार्यालय, हाथरस
6. अभिनव गीतांजलि – भाग 3, पं. रामाश्रय झा, साहित्य सदन, इलाहाबाद
7. संगीत कला विहार – फरवरी 2013
8. संगीत विशारद – बसंत, संगीत कार्यालय हाथरस

****

संगीत चिकित्सा – एक परिचयात्मक अध्ययन

डॉ. श्रीपाद आरोणकर *

शोध सारांश – संगीत चिकित्सा विज्ञान और कला का समन्वय है।यह भ्रामक जानकारी है कि संगीत पर आधारित अधिकांश सम्बन्धी अनुसंधान सिर्फ विदेशों में हो रहे हैं, लेकिन भारत इस मामले में अब पीछे नहीं है, जबकि भारत में शुरू से ही संगीत की समृद्ध परम्परा रही है, आज भी है, लेकिन यहाँ संगीत के चिकित्सा संबंधी पहलू पर कभी इतना गौर नहीं किया गया। 'जहाँ एक ओर भारतीय संगीत की मधुर स्वर लहरियों से सारी दुनिया को मंत्र–मुग्ध करने का काम महान कलाकारों ने किया है, वहीं अब भारतीय संगीत चिकित्सक भी विश्व–समुदाय को अपना चमत्कार दिखाने को तैयार हैं। इस शोधपत्र का प्रमुख उद्देश्य 'भारतीय में संगीत चिकित्सा पद्धति' के प्रचलन को उजागर करना है।

शब्द कुंजी – संगीत चिकित्सा, सम्प्रेषण, कौशल विकास, हार्मोन, स्रावण, चिकित्सा पद्धति, सृजनशीलता, अंतर्अुनशासनीय, मनोरोग।

प्रस्तावना – संगीत चिकित्सा से तात्पर्य है स्वस्थ रहने और बने रहने के लिए संगीत का प्रयोग करना। चिकित्सकीय लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सांगीतिक तत्वों का एकल या सामूहिक प्रयोग ही संगीत चिकित्सा है। ऐसी चिकित्सा पद्धति जिसमें सटीक कार्यप्रणाली एवं प्रक्रिया का प्रयोग संगीत को प्रभावशाली ढंग से उपचार में प्रयोग करने में किया जाए, संगीत चिकित्सा कहलाती है। मानव विकास क्रम में विकसित प्राचीन संगीत पद्धति का तर्कपूर्ण एवं उपचार संबंधी प्रयोग सिद्ध स्वरूप ही संगीत चिकित्सा है । उपचार संबंधी व्यक्तिगत लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु पेशेवरों द्वारा सांगीतिक तत्वों का चिकित्सकीय, प्रमाण सिद्ध प्रयोग विधि एवं प्रक्रिया संगीत चिकित्सा कहलाती है।[1] सांगीतिक तत्व जैसे ध्वनि, लय, गीत आदि का प्रयोग जब निश्चित कार्यविधि द्वारा निश्चित स्वास्थ्य संबंधी लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किया जाता है, तो संपूर्ण प्रक्रिया संगीत चिकित्सा कहलाती है। स्वस्थ रहने और निश्चित मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य बनाये रखने हेतु संगीत चिकित्सा का प्रयोग किया जाता है। शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, भावनात्मक, बौद्धिक, तार्किक एवं सामाजिक अथवा सामुदायिक आवश्यकताओं को चिकित्सकीय प्रविधि की परिधि में रहकर पूर्ण करना संगीत चिकित्सा का उद्देश्य माना जा सकता है। अन्य शब्दों में योजनाबद्ध एवं रचनात्मक रूप में सकारात्मक परिणामों की प्राप्ति हेतु संगीत का प्रयोग चिकित्सा कहलाती है। संगीत एक ऐसे तत्व के रूप में जाना जाता है जो व्यक्तित्व विकास, सम्प्रेषण कौशल विकास, रचनात्मकता एवं सृजनशीलता विकास, अभिव्यक्ति एवं अनुभूति परख योग्यताओं के विकास में सकारात्मक योगदान देता है। भ्रूण से मृत्युपर्यन्त संगीत संपूर्ण जीवन चक्र को प्रभावित करता है। यह एक विश्वव्यापी भाषा है जो प्रत्येक को किसी न किसी रूप में प्रभावित करती है।

संगीत का रूप कोई भी हो माध्यम कुछ भी हो परंतु स्वर, ताल लय तत्व मूलत: समान ही होंगे। संगीत चिकित्सा का मूल आधार भी स्वर लय एवं काव्य जो हमारे ऊपर प्रभाव डालते हैं। संगीत सुनते समय हमारे मस्तिष्क के विभिन्न हिस्सों में गतिविधियां बढ़ जाती है। सुमधुर एवं पसंदीदा संगीत हमारे संपूर्ण चित्त को आकर्षित कर एकाग्रता प्रदान करता है। यदि संगीत किसी घटनाक्रम से जुड़ा है तो हमें उसकी याद तुरंत आ जाती है। जानकार श्रोता स्मृति के आधार पर संगीत की तुलना एवं विश्लेषण करता है। अल्पज्ञानी सिर्फ सुनकर समग्र प्रभाव से ही आह्लादित होता है अत: प्रत्येक प्रकार का संगीत अथवा एक ही प्रकार का संगीत विभिन्न श्रोता वर्ग के मस्तिष्कों के भिन्न–भिन्न अंशों/ग्रंथियों आदि पर भिन्न–भिन्न प्रभाव डालता है । चिरपरिचित संगीत बुद्धि के तार्किक एवं स्मृति पक्ष को प्रभावित करता है और व्यक्ति पूर्व अर्जित ज्ञान से उपलब्ध संगीत की तुलना एवं मूल्यांकन करता है। अज्ञात या अल्प ज्ञात संगीत सिर्फ मनोरंजन करता है उसमें व्यक्ति समझबूझ, स्मृति और तर्क का प्रयोग नहीं करता है। मानसिक गतिविधियां, रासायनिक उत्सर्जन को प्रभावित करती हैं, जो हार्मोनल नियंत्रण एवं एंजाइम्स आदि के स्त्राव के रूप में होता है। 'मस्तिष्क का अग्रभाग सेरिब्रम और हाइपोथैलमस से बना होता है। सेरिब्रम विभिन्न कार्यों में समन्वय के लिए कई क्षेत्रों जैसे प्रेरक क्षेत्र, संवेदी क्षेत्र, श्रवण क्षेत्र में बंटा होता है। हाइपोथैलमस भूख–प्यास, ताप की मात्रा तथा भावनात्मक क्रियाओं का ज्ञान कराता है। यह पियूस ग्रंथि से हार्मोनो का स्त्रावण को उत्तोजित करता है तथा कुछ हार्मोनों का संश्लेषण भी करता है।[2] वर्णित समस्त कार्य शरीर की विभिन्न क्रियाओं में समन्वय और संतुलन बनाते हैं। संगीत इन भागों पर पर्याप्त प्रभाव डालता है। जिससे इनकी गतिविधि बढ़ जाती है और शरीर पर प्रभाव स्पष्ट दिखने लगते हैं।

'संगीत–चिकित्सा मनोरोगियों को निश्चय ही आराम दे सकती है, लेकिन यह सोचना कि केवल गाने भर से किसी मनोरोग से पूर्णत: छुटकारा पाया जा सकता है' सही नहीं होगा। कुछ कठिन रोग तो निश्चय ही ऐसे होते है जिन पर संगीत द्वारा नियंत्रण पाना असंभव ही है, पर जिन रोगों के उपचार में संगीत अपना अनुकूल प्रभाव दिखाता है, उसमें भी केवल संगीत का एकांतिक प्रभाव नहीं होता। मनोरोगियों के उपचार में वस्तुत: अंतरशास्त्रीय अधिगमन (इण्टर–डिसिप्लिनरी एप्रोच) की आवश्यकता है न कि किसी एक पद्धति के एकांतिक उपयोग की। शारीरिक, रासायनिक, सामाजिक और मनोविश्लेषणात्मक उपचारों के साथ–साथ संगीत–चिकित्सा भी उपयोग में लाई जाए तो इलाज अधिक प्रभावी हो सकता है।[3]

ज्ञातव्य है कि संगीत चिकित्सक भास्कर खांडेकर, विगत 20 वर्षों से संगीत चिकित्सा के क्षेत्र में कार्य करते हुए हजारों रोगियों की चिकित्सा कर चुके हैं तथा देश के अनेक शहरों में चिकित्सा–शिविर और व्याख्यान प्रदर्शन

* विभागाध्यक्ष (संगीत) राजमाता सिंधिया शासकीय कन्या महाविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र.) भारत

कर चुके हैं। दूरदर्शन और आकाशवाणी से भी इनके कार्यक्रम का प्रसारण हो चुका है। भारतीय चिकित्सा-पद्धति का विश्वभर में प्रचार-प्रसार करने के लिए यह एक सराहनीय कदम है।'[14]

वैज्ञानिकों एवं चिकित्सकों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि अस्सी प्रतिशत से अधिक बीमारियों का मूल मानसिक कारण ही है। इसके नियन्त्रण के क्षमता संगीत में है। केवल स्वर और राग ही इसमें सहायक नहीं, अपितु ताल और उसमें निहित लय भी इसके सहायक उपकरण हैं परन्तु इसमें स्वरों का विशेष महत्व है। संगीत चित्त को स्थिरता प्रदान करता है, जिससे व्यक्ति तनावरहित हो जाता है। मानसिक रूप से विक्षिप्त एवं अन्य असाध्य मानसिक रोगों के लिए संगीत अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस चिकित्सा पद्धति का सबसे अधिक महत्तवपूर्ण पक्ष यह है कि इस चिकित्सा का कोई दुष्परिणाम (Side Effect) नहीं हो सकता, यह किसी भी परिस्थिति में लाभदायक ही होगा।

अनुसन्धान से पता चलता है कि शरीर की यंत्रणा सहन करने की कुदरती क्षमता संगीत से बढ़ती है। संगीत सुनाते हुए जचगी होने पर स्त्रियों को ॲनेस्थेशिया कम मात्रा में देने से काम चल जाता है, ऐसा टेक्सस मेंडिकल सेंटर में निष्कर्ष निकाला गया है। नींद न आने की बीमारी (निद्रानाश)के रोगियों के अस्सी प्रतिशत रोगियों के लिए सौम्य मृदु संगीत और शास्त्रीय संगीत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

उच्च रक्तचाप को कम करने के लिए अल्जायमर्स के रोगियों के हाथ तथा पैरों पर काबू रखने के लिए संगीत का प्रयोग हो रहा है। दिन पूरे होने से पहले जो बच्चे पैदा होते हैं, उनके स्वस्थ विकास के लिए संगीत का प्रयोग हो रहा है। अन्य चिकित्सा के साथ-साथ संगीत चिकित्सा की जाने से भूख, श्वासोच्छ्वास आदि में सुधार होने लगता है। मोजार्ट के संगीत से बुध्यंक अर्थात् I.W. में बढ़ोत्तारी संभव है, ऐसा अनुसन्धान के पश्चात् पाया गया है- वैसे इस विषय में अनुसन्धान जारी है।

वर्तमान समय में अनर्गल विषयों की ओर आकृष्ट युवा-पीढ़ी अनेक मानसिक और शारीरिक दुष्परिणामों से ग्रसित हो रही है। ऐसी परिस्थितियों में संपूर्ण परिवेश को सौम्य, सुन्दर, मधुर, शान्त बनाने में एवं शारीरिक-मानसिक उद्विग्नता में सहयोगी संगीत की ओर उन्मुख अग्रसर होकर तनावग्रस्त वातावरण से छुटकारा पा सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. श्नाइडर एरविन एच: रिलेशनशिप्स बिटविन म्यूजिकल एक्सपिरिएन्सेज एंड सर्टेन आस्पेक्ट्स ऑफ सेरेब्रल पालसाईड चिल्डरेन परफार्मेंश आन सेलेक्टेड टास्क्स, म्यूजिक थेरेपी 1956, पृ.250-277, उद्धृत-संगीत-जनवरी 72, पृ.76.
2. मिश्र, पं. विजय शंकर-संगीत द्वारा रोगोपचार - आरोग्यसंजीवनी - जनवरी 2000,पृ.69.
3. वर्मा, डॉ.सुरेन्द्र-संगीत के स्वर करते हैं इलाज-जनसत्ता- 6 जनवरी, 1993, पृ.5.
4. खांडेकर, भास्कर वि.-संगीत चिकित्सा (उस्ताद अल्लाउद्दीन खाँ स्मृति व्याख्यानमाला, 20 सितम्बर, 1998, भोपाल), उद्धृत-रस, परम्परा और विचार - सं. ओम प्रकाश चौरसिया, पृ.283-289

****

चित्रपट संगीत के गीतों में शास्त्रीय रागों की भूमिका

डॉ. बी.वर्षा *

प्रस्तावना – " योऽयं ध्वनिविषेस्तु स्वर वर्ण विभूषित:
रंजको जन चित्ताानां स: रागौ: कथितौ बुधै:"

राग की यह परिभाषा कि ध्वनि की वह विशिष्ट रचना जो सुनने वाले का चित्त प्रसन्न करे, गुनिजन लोग उसे राग कहते हैं। वर्तमान में हिन्दुस्तानी संगीत में राग–गायन का प्रचार बहुतायत में दिखाई देता है, राग मूलत: भारतीय कल्पना है, विश्व के किसी भी भाग में यह संकल्पना दिखाई नहीं देती। सामान्य अर्थ में 'राग' शब्द रंजकता का सूचक माना जाता है। राग शब्द की उत्पत्ति 'रज्ज' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है – रंजन करना। इसलिये संगीत में 'रंजक स्वर समूह' के रुप में राग की कल्पना व्यक्त की जाती है। राग का मुख्य उद्देश्य, मानवीय संवेदनाओं को जागृत करना है, चाहे वह सुखद हो अथवा दु:खद, इसलिये राग का नवरसों के साथ भी सीधा सम्बन्ध माना जाता है।मानव मन को प्रभावित करने के साधनों में प्रमुख भूमिका निभाती है – फिल्में। फिल्में जहाँ शिक्षाप्रद होती हैं, वहीं वह जनमानस का मनोरंजन भी करती है। फिल्मों को लोकप्रिय बनाने में संगीत का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

भारत में बोलती फिल्मों के चलन से ही गीत–संगीत उसके साथ जुड़ा हुआ है। एक समय था, जब फिल्मों में शास्त्रीय संगीत का ही प्रयोग किया जाता था, किन्तु जैसे–जैसे फिल्मों का विकास होता गया, वैसे–वैसे उसके संगीत में भी परिवर्तन होने लगा। शास्त्रीय संगीत के बंधन, मर्यादा तथा नियमों के कारण फिल्मों में शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता का ह्रास होने लगा था, उसका श्रोता वर्ग सिमटता जा रहा था किन्तु उस समय के संगीतज्ञ अनिल विश्वास, बसन्त देसाई, जयदेव इन लोगों ने शास्त्रीय संगीत पर आधारित रचनायें बनाई, जो उस समय ही नहीं, वरन् आज तक लोगों के दिलों–दिमाग पर छाई हुई है। शास्त्रीय संगीत के कलाकारों का एक अच्छा खासा वर्ग भी फिल्मी गीतों का एवं गायक–गायिकाओं का प्रशंसक रहा है। उस समय कई बड़े–बड़े संगीतज्ञों ने फिल्मों के लिये पार्श्व गायन किया जिसमें उस्ताद बड़े गुलाम अली खां, हीराबाई बडौदेकर, अमीर खां, भीमसेन जोशी, बेगम अख्तर, परवीन सुल्ताना, शोभा गुर्टू, किशोरी अमोणकर के नाम उल्लेखनीय है। साथ ही शास्त्रीय संगीत के कई विद्धानों ने किसी न किसी फिल्म में शास्त्रीय संगीत पर आधारित संगीत भी दिया है जिनमें पं. शिवकुमार शर्मा, पं. हरिप्रसाद चौरसिया, पं. रविशंकर, पं. बिसमिल्ला खां, विलायत खां (बैकग्राउण्ड म्युजिक) प्रमुख है।

तात्पर्य यह है कि चाहे फिल्मों में रॉक युग, पॉप युग का संगीत लोकप्रिय हो रहा हो किन्तु लम्बे समय तक टिकने वाला संगीत वही है जो शास्त्रीय संगीत पर आधारित है। वर्तमान में भी बहुत से मधुर गाने रचे गये, जो शास्त्रीय रागों पर आधारित हैं। यहाँ कुछ गीतों का उल्लेख किया जा रहा है, जो शास्त्रीय राग पर आधारित होते हुये लोकप्रियता के शिखर पर आसीन है–

ये तो कुछ चन्द उदाहरण है किन्तु कई अनगिनत गीत शास्त्रीय रागों पर रचे गये हैं। हाँ ये अवश्य है कि कुछ राग जैसे काफी, खमाज, पीलू, यमन कल्याण, मालकौंस, दरबारी कानड़ा तथा भैरवी ऐसे राग हैं, जिनमें कई फिल्मी गीतों का सृजन किया गया है। साथ ही ऐसे संगीतकार भी हुए हैं, जिन्होंने गीतों को रचने में शास्त्रीय संगीत को प्रधानता दी है, जिनमें नौशाद, रोशन, एस. डी. बर्मन, सी. रामचन्द्र, मदन मोहन, खेमचंद प्रकाश का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। हिन्दी फिल्मी गीतों का यह अध्ययन इस बात की ओर गौर करने के लिये प्रेरित करता है कि फिल्म संगीत का उत्कर्ष उसके विकास में शास्त्रीय संगीत का समावेश उस वक्त का अनिवार्य सौन्दर्य मूल्य था। जिस शास्त्रीय संगीत से लोग दूर भागते थे वही शास्त्रीय राग, फिल्मी गीतों के माध्यम से जनमानस में लोकप्रिय हुए तथा निश्चित ही इन रागों को बढ़ावा देने में हमारे पूर्ववर्ती संगीतकार, गायक–गायिकाओं ने अपनी महती भूमिका निभाई है। शास्त्रीय संगीत की इस अमूल्य धरोहर को सहेज कर रखना आज युवा पीढ़ी का भी उत्तरदायित्व है जिससे आने वाली पीढ़ी भी इस धरोहर से परिचित हो सके, जिसके लिये आवश्यक है कि युवा संगीतकार भी शास्त्रीय रागों पर आधारित रचनाओं का सृजन करे, क्योंकि यह अटल सत्य है कि शास्त्रीय संगीत हमारे देश की पुरानी विरासत है जो निरंतर चली आ रही है और चिरकाल तक चलती रहेगी। यही कारण है कि फिल्मों में जो संगीत शास्त्रीयता पर आधारित हुए उनकी तरोताजगी आज तक बरकरार है। फिल्म संगीतकार नौशाद ने कहा भी है कि 'हमारा शास्त्रीय संगीत इबादत है, विरासत है, खिदमत है।'

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. डॉ. जौहरी सीमा – सांगीतिक निबंधमाला, पीयूष प्रकाशन, दिल्ली
2. डॉ. गर्ग उमा – संगीत का सौन्दर्य बोध
3. संगीत कला विहार – अगस्त 2014
4. संगीत कला विहार – अप्रैल 2013

क्रमांक	राग	गीत	संगीतकार	गायक
1.	अहीर भैरव	पूछों न कैसे मैंने रैन बिताई	एस. डी. बर्मन	मन्ना डे
2.	कलावती	काहे तरसाये जियरा	रौशन	आशा, उषा मंगेशकर
3.	केदार	दर्शन दो घनश्याम नाथ मोरी	रवि	मन्ना डे
4.	खमाज	आयो कहां से घनश्याम	आर. डी. बर्मन	मन्ना डे
5.	तोड़ी	रैना बीती जाय, श्याम न आये	आर. डी. बर्मन	लता मंगेशकर
6.	पहाड़ी	पत्ता पत्ता बूटा बूटा हाल हमारा जाने है	लक्ष्मीकांत प्यारेलाल	लता मंगेशकर
7.	पीलू	मैने रंग ली आज चुनरिया	मदन मोहन	लता मंगेशकर
8.	बहार	पवन दीवानी ना मानी	एस. डी. बर्मन	लता मंगेशकर
9.	मालकौंस	मन तड़पत हरि दरशन को आज	नौशाद	मो. रफी
10.	भैरवी	जो तुम तोड़ो पिया मैं नाही तोडू	वसंत देसाई	लता मंगेशकर

* सहायक प्राध्यापक (गायन) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

भारतीय दर्शन में दुःख निवृत्ति

डॉ. पुष्पा कपूर *

शोध सारांश – भारतीय दार्शनिक चिंतन का केन्द्र बिन्दु, मानव को दु:खों से आत्यन्तिकी निवृत्ति अर्थात् मोक्ष दिलाना है। भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय मानव को सांसारिक दु:ख से निवृत्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इस संसार में समस्त प्राणी दु:खी है। मनुष्य भौतिक संसाधनों से घिरा है फिर भी वह दु:खी है। जीवन में अत्यधिक अपेक्षाऐं उसे असंतुष्ट बनाती है, तृष्णाओं की पूर्ति न होने पर वह दु:ख से ग्रस्त हो जाता है। मानव किस प्रकार सुख एवं दु:ख से परे होकर परम आनन्द रूप मोक्ष को प्राप्त कर सकता है, यह मार्ग सभी भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय बताते हैं।

प्रस्तावना – भारतीय दर्शन जन्म–मरण के चक्र को दु:ख का कारण निरूपित करते हैं। आशावाद की राह पर आगे बढ़ते हुए वे दु:ख निवृत्ति हेतु मोक्ष को अंतिम लक्ष्य बताते हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिये ज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है। आत्मा का साक्षात्कार कर परमात्मा को जाना जा सकता है।

भारतीय दर्शन एवं दु:ख निवृत्ति – भारतीय तत्वज्ञानियों के अनुसार यह संसार अभाव एवं दु:खों से युक्त है। मनुष्य जन्म का लक्ष्य ही इस प्रकार के दु:खों से मुक्ति पाना है। इसके लिए प्राचीन मनीषियों ने भिन्न–भिन्न मार्ग बताए हैं जो प्रत्यक्षत: पृथक दिखाई पडते है, किन्तु सभी एक है। आत्मा के स्वरूप को जानना तथा संसार के पदार्थों के प्रति अनासक्त भाव रखकर भक्ति, ज्ञान एवं सेवा का जीवन व्यतीत करना लाभदायक बताया गया है।

न्याय दर्शन के मतानुसार मनुष्य को सांसारिक दु:खों से छुटकारा पाने हेतु संसार में सद्व्यवहार एवं सत्कर्म करना चाहिए। उसे समस्त पदार्थों का वास्तविक स्वरूप ज्ञात करना चाहिए। राग, द्वेष और मोह दु:ख के जनक हैं, ये मोक्ष प्राप्ति में बाधक है। मानव को अनवरत नैतिक जीवन यापन करना चाहिए। न्याय दर्शन के मतानुसार मनुष्य कर्म करने के लिए स्वतंत्र है किन्तु कर्म का फल भोगने में परतंत्र है अर्थात् कर्मफल प्रदानकर्त्ता ईश्वर है। दु:खों का अत्यन्त अभाव मोक्ष है। ज्ञान प्राप्ति से मनुष्य भवचक्र से मुक्त हो जाता है।

वैशेषिक दर्शन का मुख्य उद्देश्य आत्मा को बन्धन से मुक्त करने का मार्ग बताना है। वह बताता है कि यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष को पाया जा सकता है। मनुष्य को धर्म का आचरण करना चाहिए। मनुष्य अपने कर्मो का कर्त्ता तथा भोक्ता स्वयं है। सुख–दु:ख भोग्य पदार्थों में नहीं होता अपितु हमारी मानसिक भावना अथवा संस्कारों में होता है। मनुष्य को अपने प्रारब्ध कर्मो के फल को भोगकर ही मुक्ति प्राप्त होती है। जब आत्म ज्ञान हो जाता है तभी मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। विषय भोगों का त्याग ही आत्म चिन्तन में लीन कर सकता है।

संसार में प्रत्येक प्राणी सुख की आकांक्षा करता है एवं दु:ख से निवृत्ति चाहता है। जैसे–जैसे वह सुख प्राप्ति के साधनों की ओर अग्रसर होता जाता है वैसे–वैसे वह नित अनेक प्रकार के दु:खों से घिरता जाता है। भारतीय दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों में दु:ख से निवृत्ति का मार्ग बताया गया है। सांसारिक पदार्थों से सुख प्राप्ति की अनुभूति अंतत: दु:ख की ओर ले जाती है।

भारतीय दर्शन में चार्वाक एकमात्र जड़वादी दर्शन है, जो सांसारिक सुख को ही जीवन का परम लक्ष्य बताता है। भारतीय दर्शन कर्म–सिद्धांत को मानता है। मनुष्य शुभ कर्मो से शुभ फल प्राप्त करता है तथा अशुभ कर्मो से पाप का संचय करता है।

बौद्ध दर्शन बताता है कि 'जन्म धारण, जरा–मरण, शोक, विलाप, पीड़ा, चिंता व व्यग्रता, ये सभी दु:ख के कारण है।''[1] मनुष्य इन्द्रिय तृष्णा के वशीभूत होकर संसार में भोगों में प्रवृत्त होकर सुख पाना चाहता है, किन्तु ये भोग उसे दुख की ओर ले जाता है। प्रिय वस्तु से वियोग दु:ख उत्पन्न करता है। भोग की आसक्ति ही दु:ख का मूल है जिसका कारण अज्ञान है। संसार नश्वर है, उसके पदार्थ भी नश्वर है, किन्तु मनुष्य उसमें नित्यता (स्थायित्व) खोजता है जब वह उसे नहीं पाता तो दु:खी होता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार, 'समस्त सांसारिक दु:खों से आत्यन्तिक निवृत्ति ही निर्वाण है। दु:ख से मुक्त तभी हुआ जा सकता है, जब पुनर्जन्म का उच्छेद कर दिया जाए।''[2]

इस प्रकार भारतीय दर्शन कर्म–सिद्धान्त के साथ–साथ पुनर्जन्म को भी मानता है। अविद्यावश मनुष्य भवचक्र में पड़ता है, जिससे जन्म और मृत्यु का चक्र निरंतर चलता रहता है। संसार जन्म और मृत्यु की अनादि श्रृंखला है। इस श्रृंखला को तभी तोड़ा जा सकता है, जब मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करे।

भारतीय दर्शन आशावादी विचारधारा है, जो सांसारिक बंधन से होने वाले दु:ख की निवृत्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। ज्ञानमार्गी विचारधारा तत्वज्ञान के साक्षात्कार से मोक्ष को संभव बताती है। सांख्य दर्शन प्रकृति और पुरूष इन दो तत्वों को स्वीकार करते हुए बताता है कि पुरूष नित्य मुक्त है किन्तु अविवेक के कारण वह प्रकृति से अपने को एक समझ लेता है यही बन्धन का कारण है। 'सांसारिक जीवन आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधि–दैविक दु:खों से भरा है। त्रिविध दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति को सांख्य ने मोक्ष, मुक्ति, अपवर्ग की संज्ञा दी है।3

इस प्रकार सांख्य दर्शन बताता है कि जब मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तब वह मोक्ष को प्राप्त करता है। यह सत्य ज्ञान क्या है, जिसे प्राप्त कर दु:खों से मुक्ति मिलती है, इसे उपनिषदों में 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्वमसि' कहा गया है। इसका अभिप्राय है कि आत्मा और ब्रह्म एक है। इस ज्ञान को प्राप्त कर सांसारिक भवचक्र से छुटकारा पाना भारतीय दर्शन का लक्ष्य है।

शंकाराचार्य के अनुसार जीव में अज्ञान के कारण कर्म के कर्त्ता का भाव जाग्रत होता है। अहंकारवश वह स्वयं को कर्त्ता और भोक्ता मानता है। शंकराचार्य कहते हैं – जीवो ब्रह्मेव नापर:। जीव और ब्रह्म एक ही है। अद्वैत में भेद किस प्रकार हो सकता है। आत्मज्ञान को प्राप्त कर जीव अविद्या से निवृत्ता हो जाता है और अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित हो जाता है, इसे बंधन से मुक्ति बताया गया है। शंकराचार्य मोक्ष का साधन ज्ञान को बताते हैं। अविद्या

* प्राध्यापक (दर्शनशास्त्र) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

से घिरा हुआ मानव संसार में जन्म मरण के चक्र में घूमता रहता है और सांसारिक दु:ख भोगता है, ज्ञान द्वारा उसे दु:ख से निवृत्ति होती है।

जैन दर्शन बताता है कि जीव अपने कर्मो के अनुसार पुद्गल के मेल से बन्धन में पड़ता है। इसको वह तभी दूर कर सकता है जब कर्मों को हटाकर वह बन्धन मुक्त हो जाए। इसे ही मोक्ष कहा गया है। जैन दर्शन मोक्ष प्राप्ति के लिए सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र इन त्रिरत्न को मानता है।

वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद का कहना है कि 'साधारणत: मनुष्य अज्ञानी होते हैं। उनके सामने संसार का वास्तविक रूप दिखाई नहीं पड़ता है।''[4] इस प्रकार माया के वशीभूत होकर जीव संसार की अनित्यता को नहीं जान पाता। यह अज्ञान ही दु:ख का मूल कारण है। ज्ञान प्राप्त कर जीव अपने अंतिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है और दु:खों से पूर्णत: छुटकारा प्राप्त कर सकता है।

निष्कर्ष – इस प्रकार भारतीय दर्शन जन्म–मरण के चक्र के मूल में अविद्या को पाता है। यही अविद्या दु:ख का मूल कारण है। इससे छुटकारा पाने हेतु मोक्ष को प्राप्त करने के लिए तत्वज्ञान को प्राप्त करना आवश्यक है। जैसा कि शंकराचार्य ने बताया है कि हमारे बंधन का कारण स्वयं के स्वरूप का अज्ञान है। जीव अपने वास्तविक स्वरूप को, कि वह ब्रह्म है, भूल जाता है और स्वयं को मन, बुद्धि, इंद्रियाँ, शरीर आदि समझने लगता है। यही उसका बंधन है। उसका यह दोषपूर्ण तादात्म्य अनादिकाल से चला आ रहा है। इसका कारण अविद्या है जिसे माया कहा गया है। शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म से अद्वैत लाभ करना मोक्ष है। मोक्ष ही दु:खों से आत्यन्तिकी निवृत्ति है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, डॉ. सुरेन्द्र सिंह नेगी, पृष्ठ संख्या 37
2. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, डॉ. सुरेन्द्र सिंह नेगी, पृष्ठ संख्या 38
3. भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन, चन्द्रधर शर्मा पृष्ठ संख्या 154
4. भारतीय दर्शन, केदारनाथ सिंह, शशिभूषण सिंह पृष्ठ संख्या 50
5. भारतीय दर्शन, आचार्य बलदेव
6. भारतीय दर्शन, भाग 1 एवं भाग 2 – डॉ. राधाकृष्णन
7. भारतीय दर्शन का इतिहास, एस. एन. दासगुप्ता
8. भारतीय दर्शन, जदुनाथ सिन्हा
9. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, हरेन्द्रप्रसाद सिन्हा
10. भारतीय दर्शन के मूल सम्प्रदाय, कार्यानंद शर्मा

****

अज्ञेय के उपन्यासों का परिचय विशेष- शेखर : एक जीवनी के संदर्भ में

डॉ. कामना श्रीवास्तव *

प्रस्तावना – सच्चिदानंद हीरानंद 'अज्ञेय' जी का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा लिए हुए है। अज्ञेय जी के व्यक्तित्व निर्माण में समकालीन परिस्थितियों तथा परिवार की आर्थिक स्थिति का अहम् योगदान है। उनकी पारिवारिक आर्थिक स्थिति को मध्य वित्तीय कहा जा सकता है। स्वंय अज्ञेय के शब्दों में, 'दैन्य हमने नहीं जाना तो जिसे सम्पन्नता कहना चाहिए अर्थात् जिसका आधार निश्चिन्तता हो, वैसी व्यय क्षमता, यह भी हमारी नहीं।' अज्ञेय जी परतंत्र भारत में जन्में, इसका स्पष्ट प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर दृष्टिगोचर है। अँग्रेजों की गुलामी के विरूद्ध यह अवधि अनेक शारीरिक यातनाओं, गहन आत्म मंथन और स्वप्न भंग की थी। इससे उनके व्यक्तित्व में तेज और दुरावस्था के प्रति क्रान्तिकारी सोच का निर्माण हुआ। अज्ञेय जी के व्यक्तित्व पर उनके परिवार में स्थित सांस्कृतिक, अनुशासनात्मक वातावरण का अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

अज्ञेय जी ने स्वयं भी रचनाशील व्यक्तित्व के विषय में काफी सोचा और लिखा है। उनकी विचारधारा जिसे केवल अध्ययनजन्य न मानकर अनुभव प्रसूत भी मानना होगा, मनोवैज्ञानिक युग की विचार पद्धति से काफी मेल खाती है। यह अज्ञेय जी के व्यक्तित्व की विशिष्ट बिन्दु है। उनकी कविताएँ भी प्राय: व्यक्तित्व के पुर्नसंस्कार की समस्या, प्रक्रिया एवं विभिन्न चेष्टाओं को उद्भासित करती है। स्वीकृत रूप से अज्ञेय को रचना में ही 'नया संगठन एवं इंटीग्रेशन' मिला है। अज्ञेय की दृष्टि में साहित्यकार एक प्रबुद्ध व्यक्ति होता है, जो किसी भी परिस्थिति में बँध नहीं जाता। कैसी भी श्रृंखला को तोड़कर अनाहत निकल आता है। ऐसा व्यक्ति प्रतिभाशाली होता है। औसत से कुछ ऊपर है। यह निरा सामूहिक प्राणी नहीं है, समष्टि का एक अंग होते हुए भी एक सचेतन व्यक्ति है।'व्यक्तित का अनुभव होते ही उसमें माँग होती है कि वह अपने को एक संतोषजनक सामाजिक संगठन या परिवृत का एक अंग महसूस करें।' इस अतृप्ति को दूर करने की चेष्टा कलाकार में रचनात्मक होती है। कलाकार के लिए उसका व्यक्तित्व एक वास्तविक नियति होती है और मानवता एक उद्भावना। ' मैं जैसा हूँ, जो हूँ वही होकर जीना चाहता हूँ। मनुष्य जो कुछ है वही बनता है। उसी सत्य को उन्मेष होने देना ही सहज जीना है।'

अज्ञेय जी के व्यक्तित्व निर्माण में ऊटकंमड का महत्वपूर्ण योगदान है। वे ऊटकमंड से तीन मील दूर फर्नहिल नामक स्थान के एक बंगले में प्राकृतिक सौन्दर्य और एकांत के बीच रहते थे। अपरिचित स्थान, जन-समूह से दूरी, अपरिचित भाषा, समवयस्क समाज की कमी आदि ने मिलकर अज्ञेय को एकांतप्रेमी बना दिया। यो सच पूछो तो इसकी भूमिका अज्ञेय के जीवन में पहले से ही बनती आ रही थी। जन कोलाहल से दूर एक शिविर में जन्म, स्कूल में नाम लिखाकर न पढ़ने से बाल-समाज से एक तरह का अलगाव, बचपन में किसी एक स्थान पर अधिक दिनों तक न रह पाने की लाचारी और श्रीनगर तथा जम्मू के प्रवास ने उनके स्वभाव में एकांत तथा प्रकृति के प्रति प्रेम पैदा कर दिया। अज्ञेय जी ने लिखा है कि –

' मैं स्वभाव से ही एकांतप्रिय था और परिस्थितियाँ भी अकेला रखती आई थी, पर ऊटमंड से तीन मील दूर फर्नहिल नामक स्थान के एक बंगले में रहकर तो मानो एकांत में डूब ही गया।'

यही कारण है कि अज्ञेय जी का निजी तथा लेखक व्यक्तित्व भीड़भाड़ से सर्वथा अलग और विशिष्ट धरातल पर अधिष्ठित है जिसे पहचानने में किसी को न तो कोई भ्रम होता है और न ही कठिनाई।'

अज्ञेय को यह उपनाम कब एवं कैसे मिला, इसके बारे में स्वंय अज्ञेय ने अपनी पुस्तक 'स्मृति लेखा' के प्रेमचंद संबंधी संस्मरण में लिखा है कि जब अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियों के लिए नजरबंदी में थे, तब जैनेन्द्र ने **उनकी दो कहानियाँ प्रेमचंद के पास –** 'जागरण' में प्रकाशनार्थ भेजी। लेखक का नाम पूछे जाने पर जैनेन्द्र ने सूचित किया कि लेखक अपनी विशेष परिस्थितियों के कारण अज्ञेय हैं और सम्पादक ने अज्ञेय नाम देकर ही उनमें से एक कहानी को प्रकाशित कर दिया। यो अज्ञेय अपने नाम के लिए प्रेमचंद और जैनेन्द्र के ऋणी है।

अज्ञेय के उपन्यासों का एक परिचय– अज्ञेय बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न और विद्रोही कलाकार है। इन्होंने सदैव परम्पराओं के विरूद्ध विद्रोह का स्वर ऊँचा किया है, चाहे वह परम्परा सामाजिक है और चाहे साहित्यिक। इनका विद्रोह केवल विद्रोह के लिए नहीं होता, वरन् नई-नई परिणतियों और नई-नई सृजन सम्भावनाओं के लिए होता है। इन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा को अपनी प्रतिभा से कृतकृत्य भी किया है और अपनी सहज विद्रोहत्मकता के कारण साहित्य की प्रत्येक विधा को नई-नई सृजन सम्भावनाओं से और नई-नई परिणतियों से समृद्ध भी किया है। जिस प्रकार उन्होंने काव्यगत रूढ़ियों और परम्पराओं को उच्छेदन कर नई-नई सृजन सम्भावनाओं से सम्पन्न प्रयोगवाद को जन्म दिया, उसी प्रकार उपन्यास क्षेत्र में भी इन्होंने संवेदन और शिल्प के आधार पर नए-नए द्धारों को उन्मुक्त किया और जिस प्रकार कविता के क्षेत्र में इनका विशिष्ट स्थान है, उसी प्रकार की विशिष्टताएँ, औपन्यासिक क्षेत्र में भी बनाए हुए है।

'अज्ञेय जी' की चर्चा, आधुनिक हिन्दी उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में सही मायने में तब जायज हो जा सकती है, जब इन्हें और पुरातन उपन्यासकारों से अलग करके देखा जा सके। यह अलगाव दो दृष्टि-बिन्दुओं से संभव बन सकता हैं। एक, काल को आधार मानकर और दो, युग की विशिष्ट, प्रवृत्तियों, संवेदनाओं एवं संचेतनाओं की संश्लिष्टता की दृष्टि से।

किंतु साहित्य या कृति के मूल्यांकन का सही और सूक्ष्म पैमाना काल नहीं बल्कि दूसरा आधारभूत तत्व ही कारगर हो सकता है। यह जरूरी नहीं है कि एक ही युग के समस्त लेखक अपने वर्तमान के प्रति यथावत रूप से

* अतिथि विद्वान, शासकीय महाविद्यालय, सतवास, जिला-देवास (म.प्र.) भारत

संवेदनशील हों और समान रूप से अपनी संपूर्ण लेखन यात्रा में आधुनिकता की प्रकिया का निर्वाह सही और समान तौर पर कर सकें।

होता यह है कि उसके संस्कार की शिक्षा तो पारम्परिक विचारों की धरती में गढ़ी हुई होती है, लेकिन कालांतर में वैचारिक परिवर्तन के प्रवाह के साथ वह अग्रसर होने की ओर प्रवृत होता है। फलस्वरूप उसके विचार और चिंतन में आधुनिक संवेदनाओं की सुगबुगाहट स्वयंमेव होने लगती है।

'अज्ञेय जी ने कविता के क्षेत्र में जो परम्पराओं के प्रति विद्रोह किया और अपने विद्रोह को जो सर्जनात्मक रूप दिया, वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रयोगवाद के नाम से विख्यात है।'

कथाकार के रूप में भी और कथा-आलोचक के रूप में भी इनका विद्रोह अत्यंत प्रबल और मुखर है। उपन्यास में 'नएपन' के स्वरूप का विवेचन करते हुए इन्होनें लिखा है-

'आधुनिक उपन्यास नया है, लेकिन उसका नयापन न तो विषय-वस्तु का नयापन है, न विधान का, न रूपकार का, वह मूलत: जीवन के प्रति दृष्टिकोण का नयापन है। यद्यपि वस्तु-शैली, विधान,कथा आदि का नयापन वह नहीं है, कसौटी उसका नया दृष्टिकोण ही है।'

इस मन्तव्य से स्पष्ट है कि 'अज्ञेय' आधुनिक उपन्यास की सार्थकता और सफलता तभी स्वीकार करते हैं जब उसमें नयापन हो, अर्थात् जीवन के प्रति उपन्यासकार का दृष्टिकोण परम्पराओं से मुक्त होकर नवीन परिवेश और अनुभूतियों के नए स्पन्दनों से सम्पृक्त हो। जब तक नई अनुभूतियाँ और नए शैल्पिक विधान का समावेश किसी उपन्यास में नहीं होगा, तब तक वह औपन्यासिक तत्वों के निर्वाह के बावजूद भी विफल ही समझा जाएगा।

आधुनिक हिन्दी उपन्यास परम्पराओं के बंधनों से मुक्त होकर मानसिक और शैलीगत नई अनुभूतियाँ एवं शिल्प-विधान को लेकर अग्रसर हो रहा है, इसकी समीक्षा करते हुए उन्होंने लिखा है-

'नए वैज्ञानिक अनुसंधान और ज्ञान ने उपन्यासकार की दृष्टि बदल दी। उसका बड़ा परिवर्तन फ्रायड़ के साथ आया। उसकी मनोविश्लेषण पद्धति ने व्यक्ति-मानस और व्यक्ति चेतनाओं की गहनताओं पर नया और तीखा प्रकाश डाला।'

इससे उपन्यासकार को व्यक्ति मानस को समझने में बड़ी सहायता मिली, बल्कि एक नई दृष्टि और पैंठ मिली, जिसके सहारे यह विशेष व्यक्ति के मन के भीतर होने वाले संघर्ष को पहचान सकें।

इन्हीं और ऐसे मन्तव्यों को सक्रिय रूप देते हुए 'अज्ञेय जी' ने उपन्यासों की रचना की है। इनका उपन्यास साहित्य विशाल तो नहीं लेकिन प्रौढ़ता की दृष्टि से हिंदी साहित्य (उपन्यास) में वह अपना पृथक स्थान रखता है। अब तक इनके तीन उपन्यास प्रकाशित हुए है- 'शेखर - एक जीवनी (दो भाग), नदी के द्वीप और अपने-अपने अजनबी। ये तीनों उपन्यास संवेदना और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से एकदम नए है और हिन्दी के भावी उपन्यासकारों के लिए बिल्कुल नए द्वारों को उन्मुक्त करते है।

'ध्यान से देखने पर अज्ञेय की कथा के तीन चरण दिखते है। पहला है विद्रोह और हताशा का, दूसरा है अपने भीतर शक्ति संचय का और तीसरा है बिना किसी आशा के आत्मदान मे सार्थकता पाने का।'

'जिस प्रकार आलोचक हजारी प्रसाद द्विवेदी को अकेले 'बाणभट्ट् की आत्मकथा' ने उपन्यासों की श्रेणी में ला बिठाया है, उसी प्रकार कवि अज्ञेय को अकेले - 'शेखर : एक जीवनी' उपन्यास में प्रख्यात उपन्यासकार बना दिया है।'

डॉ. सुषमा धवन के अनुसार - 'अज्ञेय जी का स्थान हिंदी उपन्यासकारों में बहुत महत्व का है। इन्हें सामाजिक वस्तुस्थिति का चित्रकार और मनौवैज्ञानिक कहा गया है।

वस्तुत: उनके शेखर : एक जीवनी और नदी के द्वीप उपन्यासों में एक अतिशय आत्मकेन्द्रित और अहम् प्रमुख कलाकार की झाँकी मिलती है। इसी कारण अज्ञेयजी की ये कृतियाँ प्रमुखत: सामाजिक और मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की श्रेणी में न आकर व्यक्तिवादी उपन्यास ही कहला सकती है।'

इस प्रकार उपन्यासकार 'अज्ञेय' के संबंध में सोचने वाले दो मत है, पहले मत के अनुसार अज्ञेय एक व्यक्तिवादी उपन्यासकार हैं और दूसरे मत के अनुसार वे मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं।

सच तो यह है कि अज्ञेय न तो केवल व्यक्तिवादी हैं और न केवल मनोवैज्ञानिक, दोनों का सामंजस्य ही उनके उपन्यास की उल्लेखनीय विशेषता हे।

(क) शेखर- एक जीवनी भाग-1 (सन् 1940 ई)

(ख) शेखर - एक जीवनी भाग- 2 (सन् 1944 ई)

शेखर: एक जीवनी उपन्यास पृष्ठावलोकन (फ्लैश बैक) की पद्धति पर प्रस्तुत किया गया है। शेखर को फाँसी की सजा मिल चुकी है और वही फाँसी पर लटकने के पहले अपने सम्पूर्ण जीवन को एक बार अपने स्मरण पटल पर उतारकर उसके सत्यों का अध्ययन कर रहा है। मृत्यु का समय एक ऐसा समय होता है जब बुद्धि निर्लिप्त ओर उज्ज्वल हो जाती है। जीवन के संपूर्ण कार्यो को देखने में हमारी बुद्धि वास्तविक दृष्टि प्राप्त कर लेती है। मृत्यु का क्षण विकृतियों के अभाव का क्षण होता है। शेखर अपने पूरे जीवन को याद कर रहा हैं। और इस प्रकार यह उपन्यास आत्मकथानात्मक है।

उपन्यास के प्रथम भाग में शेखर अपने बचपन में घटने वाली छोटी से छोटी घटना को भी याद कर रहा है। वह सामान्य बालक से अलग के धरातल पर खड़ा है। उसमें वस्तुओं के वास्तविक रूप को जानने की ऐसी जिज्ञासा दिखाई पड़ती है जो सर्वसाधारण के लिए कठिन है। वह माँ से जानना चाहता है कि पेट से बच्चे कैसे पैदा हो जाते है। इसी प्रकार वह कई ऐसे प्रश्नों को उठाता है जिसके कारण उसे मार खानी पड़ती है। वह स्वभाव से ही विद्रोही है, अत: जहाँ समझौता नहीं हो पाता, वहाँ खुलकर विरोध करता है। उसके बचपन की अधिक घटनाएँ लखनऊ और कश्मीर में घटती है।

इसके बाद कहानी दूसरी ओर मुड़ती है। उसके पिता कश्मीर से दक्षिणी भारत चले जाते है। तब तक शेखर युवक हो चला है। इस प्रसंग में उसके जीवन में उतरने वाली सबसे महत्वपूर्ण घटना है, शारदा नामक मद्रासी लड़की का आना।

'शारदा ही वह लड़की है जिसके सम्पर्क में आकर शेखर सर्वप्रथम यौनोचित भावनाओं से भरता है।'

शारदा से सम्पर्क में रहने का अधिक समय उसे नहीं मिलता और बाद में जब मिलता है, तब उसके (शारदा के) माता-पिता उसके जीवन को काफी नियंत्रित कर देते है। स्वच्छंद प्रेम की अभिव्यक्ति के इस विरोध में उत्पन्न कुण्ठा ने शेखर के जीवन के भविष्य की घटनाओं के मोड़ो को लेकर महत्व का काम किया है : शारदा की ही तरह मित्रता के धरातल पर भी उसे कुण्ठा ही प्राप्त हुई है।

अज्ञेय की दृष्टि में सहज प्रेम का विकास ही व्यक्तित्व स्वांतत्रय का विकास हैं 'कुमार की कृतघ्नता इस प्रसंग की उल्लेखनीय घटना है। कुमार शेखर के कॉलेज-होस्टल का साथी है। अज्ञेय जी ने कुमार (कुमारप्पा) का ब्यौरेवार वर्णन करते हुए लिखा है -

'युवक का चेहरा सुंदर था, आँखे सुडौल और स्वच्छ, नीली, प्राय: हँसती हुई, नाक सीधी और छोटी पतले, लम्बे और चंचल, सिर पर लम्बे और घुघराले बाल थे जिन्हें उसने ढंग से काढ़ रखा था। दाढ़ी-मूँछ उसके नहीं थीं- अभी फूट भी नहीं रही थी । कद और गठन से भी चौदह-पन्द्रह वर्ष से अधिक नहीं जान पड़ता था'

कुमार के अनुसार-शेखर के भीतर एक ऐसा देवता बैठा था जिसनें अछूतों के प्रति लिए जाने वाले बुरे व्यवहारों का विरोध किया। इसी से प्रेरित होकर वह उनके लिए रात्रि पाठशाला चलाता है। वह एक दिन घायल और कुचली हुई अछूत स्त्री को अपनी पीठ पर बैठाकर मिशन भवन तक ले जाता है और इस प्रकार इस उपन्यास का प्रथम भाग समाप्त हो जाता है।

'शेखर : एक जीवनी' के दूसरे भाग में शेखर के कॉलेज जीवन से लेकर शशि के साथ संबंध और जेल जीवन आदि की चर्चा होती है। जेल में साथ रहे बाबा मदनसिंह आदि का प्रभाव उन पर पड़ता है। वहाँ रहने वाले सभी कैदियों के प्रति उसकी सहानुभूति है।

जेल से निकलकर वह शशि से मिलता है और कई बार मिलता है। शशि का शेखर के प्रति स्नेह उसके पति के लिए संदेह का कारण बनता है और वह उसे मारकर घर से बाहर निकाल देता है।

शशि और शेखर एक घर में रहने लगते हैं। वह हमेशा ही चाहती रही है कि शेखर आगे बढ़े बहुत आगे। उसी की प्रेरणा से शेखर कई निबंध लिखता है, पर उनका कोई प्रकाशक ही नहीं मिलता । शेखर की आर्थिक स्थिति बहुत खराब है, विद्रोह की भावना से वह भरा हुआ है और कुण्ठा का एक सागर ही उसके भीतर फैला हुआ है।

अंत में क्रान्तिकारियों के दल में चला जाता है। और शशि? वह इस जीवन से निराश होती हुई एक दिन अपनी आँखे बंद कर लेती है बेचारा शेखर अकेला रह जाता है, बिल्कुल अकेला और शून्य और यहीं इस उपन्यास का दूसरा भाग भी समाप्त हो जाता है।

'शेखर : एक जीवनी' जैसा उपन्यास के नाम से ही स्पष्ट है, मैं शेखर की प्रधानता है। शेखर खण्डित व्यक्तित्व का पात्र है। उपन्यास की संपूर्ण क्रियाएँ उसी के केन्द्र मानकर घुमती हैं । शेखर के जन्म से लेकर उसकी निकट खड़ी मृत्यु तक के काल का विवरण ही इस उपन्यास का विषय है। आरंभ में शेखर के बचपन से बँधी स्मृतियाँ उपन्यास की कहानी की गतिशीलता में बाधा तो अवश्य देती है, किंतु शारदा से मिलने के बाद से कहानी उत्तरोतर गतिशील हो जाती है।

कुछ विद्धानों ने 'शेखर : एक जीवनी' के कथानक को उखड़ा-उखड़ा, बिखरा-बिखरा, असम्बद्ध और विश्रृंखलित माना है।''

वस्तुत: कथानक की विश्रृंखलित या असम्बद्धता ही 'शेखर' को एक महत्व का उपन्यास घोषित करती है।

शेखर के संबंध मे सर्वश्री शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशचंद्र गुप्त, राजेश्वर शर्मा और कान्तिचंद्र सोनरेक्सा आदि की स्थापना यह है कि वह 'असामाजिक प्राणी है।'

'शशि शेखर के लिए प्रेरणा-स्त्रोत है। उसे शरत की नायिकाओं का बुद्धिवादी संस्करण माना जा सकता है। वह शेखर को आगे बढ़ाती है। और स्वंय गलती जाती है, लेकिन चलती जाती है।'

'इस उपन्यास के अंत में हमें 'या हाथ लगता है? इसकी अंतिम स्मृति करुणा, धैर्य तथा दार्शनिक उल्लास का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रधान है इसका काव्यत्व ।'

'सच बात तो यह है कि 'गोदान' और शेखर : एक जीवनी के बीच कोई दूसरा उपन्यास नहीं आता ।' भले ही उसमें पठित विधा से काम लिया गया हो। गोदान यदि हिंदी उपन्यास की महत्ता की भित्ति है तो 'शेखर : एक जीवनी कलशों की चित्रकारी ।

शेखर: एक जीवनी उपन्यास के प्रकृति वर्णन का भाव वर्णन की भाषा में आधुनिक कविता की झलक है। यदि इसके कथानक का प्रेम तत्व स्वच्छन्दतावादी है तो अभिव्यक्ति प्रयोगवादी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अज्ञेय के उपन्यास : कथ्य और शिल्प, डॉ. नंदकुमार राय
2. अज्ञेय : सृजन और संदर्भ, डॉ. विद्या निवास मिश्र
3. हिन्दी उपन्यास : डॉ.सुषमा धवन
4. आलोचना उपन्यास विशेषांक : विश्वम्भर मानव
5. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, डॉ. देवराज
6. शेखर : एक जीवनी (प्रथम भाग)भूमिका, अज्ञेय
7. वही
8. अज्ञेय : सृजन और संदर्भ, डॉ. विद्यानिवास मिश्र
9. हिन्दी गद्य साहित्य के विविध रूपों का उद्‌भव और विकास , डॉ.ब.ल.कोतमिरे
10. अज्ञेय: साहित्य, प्रयोग और मून्याकंन, डॉ. केदार शर्मा

****

व्यंग्य लेखन में भाषा का शास्त्र

डॉ. विजय कलमधार *

प्रस्तावना – व्यंग्य की भाषा शास्त्र की भाषा नहीं होती। व्यंग्य भाषा के अपने तेवर होते हैं, अपनी भंगिमाएँ होती हैं। इसकी भाषा अपनी जिन्दगी के अत्यधिक निकट होती है। व्यंग्य चूँकि अपने युग का प्रतिबिम्ब होता है, अत: उस युग का आदमी जिस तरह अपनी रोजमर्रा की जिंदगी बसर करता है, साँसे लेता है और अपने तरीके से अपनी जिंदगी का सलीब ढ़ोता है, उसकी अभिव्यक्ति भाषा में होना अनिवार्य है तभी व्यंग्य प्रमाणिक और प्रभावोत्पादक बन जाता है। **डॉ. श्यामसुंदर घोष** का मत है –

'व्यंग्य लेखक के भाषा संबंधी आदर्श सामान्य लेखकों के भाषा संबंधी आदर्श से निश्चय ही भिन्न होंगे। जैसे नाई हजामत बनाने के पहले अपने अस्तुरे को तेज करता है और उंगली पर धार की परख भी कर लेता है, उसी प्रकार व्यंग्य लेखक को अपनी भाषा की जाँच कर लेनी चाहिए व्यंग्य लेखक की भाषा में धार और नोंक दोनों जरूरी है। कभी वह नश्तर लगाता है कभी खंजर चुभोता है। यदि उसकी भाषा एकरस और एक ढंग की होगी तो वह यह काम बखूबी नहीं कर सकता।'[1]

डॉ. घोष व्यंग्य भाषा को 'आर्मी' का सिपाही न होकर छापामार दस्ते का सिपाही'[2] मानते हैं। व्यंग्य भाषा के लिए रचनाकार को अपनी कथन भंगिमा को एक साथ शास्त्र की भाषा, लोक जीवन की भाषा और उसमें व्यवहृत उनके कथ्य और स्वरूप आदि से गुजरना पड़ता है– इस प्रवृत्ति में भाषा का जो संश्लिष्ट और जीवंत स्वरूप हाथ लगता है, वही व्यंग्यकार की सच्ची भाषा है। इस तरह व्यंग्य रचना की भाषा, उनके तेवर और कथन–भंगिमाएँ अन्य साहित्यिक रचनाओं से पृथकता रखते हैं। 'राग दरबारी' की भाषा 'गोदान' की भाषा नहीं है, जबकि दोनों रचनाएँ ग्राम्य जीवन का आधार लेकर चलती है। 'मैला आंचल' की भाषा भी 'राग दरबारी' की भाषा के निकट होते हुए भी उससे भिन्न है– यहाँ भी ग्राम्य जीवन ही प्रधान है। 'शेखर एक जीवनी' की भाषा 'रानी नागफनी की कहानी' की भाषा के संदर्भ में भी यही बात चरितार्थ होती है।

स्वातंत्र्योत्तार हिन्दी व्यंग्य की भाषा आम जनता की भाषा है। घाट–घाट का पानी पीने के कारण व्यंग्य भाषा में मिली–जुली, गंगा–यमुना संस्कृति समा गई है। 'कबीर' की तरह व्यंग्य के 'साधु–संत' जीव की हर गली नुक्कड़ों से गुजरते हैं। राजनीति–धर्म–समाज–अर्थ के घाट–घाट के जल से उनका व्यंग्य धुला होता है। दर–दर, द्वार–द्वार से बिन माँगे मोतियों की सौगात उनकी व्यंग्य यात्रा का पाथेय बनती है। अत: व्यंग्य भाषा हर पत्तल में परोसी गई, हर सामग्री का सा आस्वाद देती है।

व्यंग्यकार जिस राह से गुजरता है, वहाँ की भाषा को स्वीकार करता चलता है। कभी एक ही व्यंग्यकार की दो रचनाओं में स्पष्ट अंतर भी दिखाई देता है। उदाहरण के लिए **मनोहर श्याम जोशी** का उल्लेख करना चाहेंगे– उनकी रचना '**कुरू–कुरू स्वाहा**' में बंबईया हिन्दी के प्रयोग किए गए हैं–

'बाबू बुदबुदाया', बोल सेठ टाक्सी से जो उतरा ओ पन टाक्सी कि नहीं ?'

मैंने निश्चयात्मक स्वर में कहा– 'नहीं'

बाबू ने पीक थूकी और हँसकर कहा– 'तुम हारा, ये साला टाक्सी! बाबू एक–एक को जानता इस शहर में।'

मैंने कहा– 'जानते हो तो मिलवाओं उस्ताद।'

अब बाबू ढ़ीला पड़ा– 'उसमें थोड़ा मुस्कल। बहुतीज म्हणजे पहुंचेली चीज क्या! इसका ग्राहक लोक बंधेला। दलाल लोक कू पास नहीं आना देती। समझा? '

मैंने कहा – 'बंडल मार रहे हो उस्ताद।'

'बंडल हम कबी मारा हो तो बताओ। बाबू ने खिन्न होकर कहा ' ए टाक्सी है, गुजरात सायड का।'

मैंने चुटकी ली, इस 'टाक्सी का नंबर काय? इसकू आल–रूट लायसेंस है कि नहीं?'

इस मजाक से बाबू कुछ और दुखी हुआ, 'हम बाप का कसम खाकर कहता यह साला टाक्सी है। इदर जब भी आती चौपाटी में, एक बूढ़ा पारसी सेठ का साथ जाती, एतना बढ़ा मस्त हवाई जहाज में।'[3]

मनोहर श्याम जोशी की ही दूसरी रचना है– '**नेताजी कहीन।**' इसमें बैसवाड़ी और भोजपुर की मिली–जुली भाषा का रूप समाया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है –

'असली देडता होगा तो जरूरे बोर होगा। इतनी लंबी लाइन लगती हय भगतों की कामकाज का मार टेंशन। एइसे में कोई दिले–नादान टाइप भगत आये अगर जब उससे पूछा जाये, भय्या क्या चाहिता हय तू, अडर दान दच्छिना क्या लाया हय तब वह कहे, कि जी मैं तो यवै मिलने चला अया था लाया भी यह चउक्ली अडर चार बताया हूँ। अब बताइये इस मसखरी पर देडता भिन्नायेगा कि नहीं? यहाँ ससुरी एक से एक नेशनल इण्टर नेसनल अउर क्या नाम कहते हैं फाइनेन्सियल प्राब्लम साल्व करने में हम बिजी है। अडर आप चले आये हाउ डू यू कहिने। हम देउता है कि आपका मासूका।'[4] श्रीलाल शुक्ल के 'राग दरबारी' और अंगद का पाँव में भी इसी तरह की भाषाई भिन्नता देखी जा सकती है।

डॉ. प्रेम जनमेजय की भाषा का एक रूप– 'सूरी आंटी का कहना है, 'मोया मर जाना हर वक्त कुडिया दे पिच्छे नीयत खराब करदा है। मोहल्ले दे सारे मुंडे इसकी शह दें पलटे ने। मर जाना खसम न जाना।'[5]

सुदर्शन मजीठिया में भी पंजाबी टोन मिलती है। नरेंद्र कोहली दिल्ली वाली छटा दिखाते हैं, तो के. पी. सक्सेना लखनऊ के अंदाज में बाजू बंद बांधते हैं। अमृतलाल नागर बनारसी ठंड़क देते हैं, तो डॉ. बरसानेलाल चतुर्वेदी ब्रजभूमि की छोकरियों की छकान का रस बिखेरते हैं। श्री शरद जोशी का भोपाली और मालवा का अंदाज तो परसाई में जबलपुरिया अकड़ भी कहीं–कहीं दिख जाती है। व्यंग्य का अपना शब्दकोश है जो अत्यंत समृद्ध है। पात्र, परिस्थिति व प्रसंग के अनुरूप देशकाल वातावरण को दृष्टिगत रखते हुए व्यंग्यकार के थाल में सब प्रकार के रसायन और स्वाद सजाये गए हैं।

संस्कृत की तत्सम शब्दावली और तद्भव शब्दों के प्रयोग पौराणिक पात्रों को आधार मानकर या साहित्य कला संस्कृति के विद्रूपों के चित्रण के

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत

संदर्भ में देखे जा सकते हैं। अरबी, फारसी, उर्दू के प्रयोग पात्रानुकूल तथा सहज रूप से भाषा में घुल मिल गए शब्दों के साथ दृष्टव्य है। आधुनिक सभ्यता और उसके अंगो-उपांगों के विवेचन में अंग्रेजी भाषा और उसके शब्दों, वाक्य-खंड़ों के प्रयोग किए गए हैं। मराठी, गुजराती, क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग से भी व्यंग्यकारों का वास्ता रहा है।

इसके अतिरिक्त व्यंग्य की भाषा में -

1. नवीन खोजों अविष्कारों आदि से संबंधित तकनीकी शब्दावली।
2. राजनीति, प्रशासन आदि में प्रयुक्त शब्दावली।
3. कला, साहित्य, संगीत, दर्शन की शब्दावली आदि के प्रयोग भी प्राप्त होते हैं।

व्यंग्यकारों द्वारा की गई शब्दों की तोड़-मरोड़ और नव शब्द गठन के लिए डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी ने **'व्यंग्यज'** शब्द का प्रयोग किया है। हिन्दी व्यंग्यकारों की भाषा में ऐसे प्रयोगों की बहुलता है। कहीं शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा गया है तो कहीं नवीन शब्दों की संरचना भी की गई हैं। यह प्रवृत्ति प्राय: सभी व्यंग्यकारों में पाई जाती है। बानगी के तौर पर हम कतिपय उदाहरण देख सकते हैं -

- **हरिशंकर परसाई- सड़किया** (सडक छाप) रचना- एक मध्यवर्गीय कुत्ता, परसाई रचनावली भाग एक पृ. 55-56, **सुनाम धनया** रचना- संयोजक पृ. 20,**सर्वादयियों** रचना- सर्वोदय दर्शन पृ. 213, **सबटेनेन्टो** रचना- सबटेनेन्ट की कथा रचनावली भाग दो, पृ. 132, **आकंठ टांग** रचना- मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ पृ. 41
- **शरद जोशी- कत्किये** (कत्थक वाले), रचना- 'दूतावासों के चक्कर', यथासंभव पृ. 74,**सितारिये** रचना- वही, पृ. 74, **सेमीनारी उंचाई** रचना- 'एक शंख बिन कुतुबनामा' पृ. 106, **करेले का नीभामियान** रचना- 'अर्थब्रह्म पृ. 163', **पाठ्यक्रमवादी**- 'घास छीलने का पाठ्यक्रम' पृ. 167, **अध्यक्षाई** - 'अध्यक्ष महोदय, पृ. 174, **टकलाना** (निहारना) रचना - 'तलाश कुछ शब्दों की पृ. 216, **स्नानिन** (स्नान करना) रचना - 'नदी में खड़ा कवि, 'पृ. 232
- **के. पी. सक्सेना- वोटनीय** (बहुत सी खूबियाँ थी मरने वाले में) बाजूबंद 'खुल खुल जाय', **एक्सपर्टान** रचना - 'न्यूटन, आइंस्टीन और अप्पाराव पृ. 111 पत्थर सेय पृ. 29, **परिस्टार** (प्रशंसिका) वही, पृ. 31, **चश्मोले** (बड़ा चश्मा) रचना 'दो बेचारेय पृ. 67
- **सुदर्शन मजीठिया- ब्रदर ऑफ आर्ट्स** (बी.ए.) रचना- सर्टीफिकेट फाड़ो आंदोलन' मेरी श्रेष्ठ रचनाएं पृ. 13 मदर ऑफ आर्ट्स (एम.ए.) वही, पृ. 13, **लवेरिया** (प्रेम) रचना- गाइड विश्वविद्यालय, पृ. 69, **गधात्व** (गधापन) रचना -'गधेय डिस्को कल्चर पृ. 10, **नलघट** (सरकारी नल) रचना- 'वोलो ब्रूसली दादा की जय' वही, पृ. 57
- **अमृतलाल नागर- फलडियाया** (नालियों की बाढ) रचना- 'कृपया दाएं चलिए' मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, पृ. 62
- **अमृत राय- 'भोपूतंत्र** (प्रजातंत्र)- 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, पृ 62
- **रवीन्द्र नाथ त्यागी- 'लूप लगी संस्कृति',** फूलों वाला कैक्टस, पृ. 96
- **शंकर पुणतांबेकर- व्यंग्य कारयित्री-** विजिट यमराज की, पृ. 43 ,**कविता पात**- कैक्टस के कांटे, पृ. 11

डॉ. नरेन्द्र कोहली, डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी आदि रचनाकारों ने भी ऐसे प्रयोग पाये जाते हैं। मनोहर श्याम जोशी के कक्का जी उर्फ नेताजी तो शब्दों की तोड़-मरोड़ में है ही माहिर। वह सी.एम.सी. चमचा-इन-चीफ जैसे शब्दों का बहुलता से प्रयोग करते हैं।

डॉ. शंकर पुणतांबेकर ने तो कई शब्दों को नूतन अर्थ भी दिये हैं- जैसे अखबार (प्रजातंत्र का भोंपू), संपादक (विज्ञापक), आयकर (आमदनी के अखबार का दंड), खुशामदी (शब्दों का हलवाई), वकील (दलीलों का दलाल), स्थानीय नेता (राजधानी का चपरासी), डॉक्टर (रोग निवारक जोंक), सहकारी संस्था (आर्थिक नगर वधु), दहेज (वर मूल्य) ग्रंथ (कैक्टस के काँटे), ब्यूटी पार्लर (रूप की पूँजी के बैंक) ग्रंथ, विजिट यमराज की आदि।

व्यंग्य जिंदगी का रोजनामचा है- अत: समाज का क्रिया-व्यापार ही उसका कथ्य है। **डॉ. धनंजय वर्मा** लिखते हैं- 'उसका (व्यंग्य का) इलाका है पूरी व्यवस्था, मूल्य पद्धति और सामाजिक संरचना, माध्यम है किसी विसंग पर रोशनी केंद्रित करना, उसका मकसद है परिवर्तन और क्रांति तथा उसके शिकार है आत्मतुष्ट और आत्मनिष्ठ व्यक्ति और समाज।'[6] अपने लक्ष्य पर प्रहार करने के लिए अपने कथ्य को अधिक असरकारक बनाने के लिए और व्यंग्य को धारदार बनाने के लिए वह उनके शब्दों में ही बात करता है जिनकी बात करना है। अपने प्रतीकों का चयन भी वह समाज के अंदर से ही करता है और युगानुरूप उसके मुहावरे भी बदलते रहते हैं। इस तरह वह अपनी भाषा का लोक संस्कार करता है।

डॉ. श्यामसुंदर घोष व्यंग्य रचना में 'चालू जुबान' के प्रयोग के संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त करते हैं- 'और किसी भाषा में आप ललित साहित्यिक शब्दावली में काम चला ले सकते हैं, लेकिन व्यंग्य के बाजार में ऐसी भाषा का कोई मोल न होगा। वहाँ तो बिल्कुल 'चालू जुबान का उपयोग करना होगा।'[7]

श्रीबाल पाण्डेय की रचना 'माफ कीजिए हुजूर' का एक उदाहरण दृष्टव्य है- 'कल्लन रफूगर'के पास जब मै अपना कोट उठाने पहुँचा तो देखा कि कोट बिना रफु के खूँटी पर वैसे ही टंगा हुआ था जैसे चुनाव के बाद वोटरों को दिए गए नेताओं के आश्वासन खूंटी पर टंगे रहते हैं। सर्दी के कारण मेरी परेशानी वैसे ही बढ़ी थी जैसे कि विभिन्न राजनैतिक पार्टियों की मध्यावधि चुनाव के कारण बढ़ जाती है।'[8]

इस तरह व्यंग्यकार अपने समय की भाषा और उसके प्रतीकों का व्यवहार करता है। भाषा व्यक्ति के आचरण को प्रतिबिम्बित करती है तो व्यंग्य व्यक्ति को। अत: व्यंग्य में उसकी प्रचलित जुबान का उपयोग लाजिमी है। डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी भाषा के इस आचरण को रेखांकित करते हुए लिखते हैं- 'व्यंग्य भाषा न दिखावटी भद्रता से चिपकी रहती है और न नकली साहसिकता का मुखौटा ओढ़कर आगे बढ़ती है। यह न कोई अगम्या भाषा है और न होकर युद्धोन्मुखी चुस्तबयानी ही है। अनेक अवसरों पर व्यंग्य भाषा एकदम शांत और स्वस्थ गति का परिचय भी देती है।'[9]

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. संपा. डॉ. श्यामसुन्दर घोष : व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों ? (1983) पृष्ठ 145।
2. वही, पृष्ठ 120।
3. मनोहर श्याम जोशी : 'कुरू-कुरू स्वाहा', पृष्ठ 11।
4. मनोहर श्याम जोशी - नेताजी कहिन, पृष्ठ 13।
5. डॉ. प्रेम जनमेजय : 'राजधानी में गंवार', पृष्ठ 30।
6. 'रंग चकल्लस' अक्टूबर 1979, पृष्ठ 28।
7. डॉ. श्यामसुन्दर घोष : व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों ? पृष्ठ 119।
8. श्रीबाल पाण्डेय : 'माफ कीजिए हुजूर' पृष्ठ 9।
9. डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी : व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों ? पृष्ठ 119।

सूरसागर में लोकोक्तियाँ

डॉ. गायत्री वाजपेयी *

हिन्दी साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र महाकवि सूरदास की जनप्रियता विश्व विख्यात है। वे एक ऐसे प्रखर प्रतिभा सम्पन्न कवि थे जिन्होंने अपने समसामयिक परिवेश की नब्ज को पकड़ा था तथा लोक कल्याण के लिए अपनी प्रतिभा का प्राकट्य किया था। यही कारण है कि उन्होंने अपने काव्य के लिए एक ऐसे चरित्र का चुनाव किया जो विशिष्ट होते हुए भी साधारण बालकों की भाँति ब्रज की गलियों में उछलता कूदता है, ग्वालों के साथ गौचारण हेतु वन-वन भटकता है, घर-घर जाकर दधि माखन चुराता है, माता की डाँट-फटकार भी सुनता है तथा ओखल से भी बंध जाता है। ब्रज प्रदेश पर आसन्न विपत्ति से निपटने हेतु गोवर्धन भी धारण कर लेता है और हँसते हुये दावानल भी पान कर लेता है। ऐसे अनोखे व्यक्तित्व को सूर ने जितना जाना समझा है उतना ही उनकी क्रीडा स्थली ब्रजभूमि को भी जाँचा परखा है। वहाँ के आचार विचार, रीति रिवाज, खानपान, लोक जीवन के पर्व, लोकगीत, कहावतों एवं मुहावरों आदि लोक संस्कृति के समग्र अंगो का कवि ने सूक्ष्मान्वेषण किया है। सूर साहित्य के सम्यक अध्ययन व अन्वेषण से यह स्पष्ट होता है कि सूर ने शास्त्रों से अधिक लोक संस्कृति व लोक व्यवहार को जाना एवं ग्रहण किया है। उनकी काव्य सम्पदा पूर्णत: एवं समग्रत: लोक सम्पदा है। उन्होंने अपने युगीन ब्रजप्रदेश की सामान्य भाषा को साहित्यिक रूप प्रदान करते हुए उसे लोकोक्तियों एवं मुहावरों से चित्ताकर्षक, प्रांजल एवं लालित्य सम्पन्न बनाया है। ब्रजप्रदेश में घटनाओं व परिस्थितियों के सन्दर्भ एवं मनोवैज्ञानिक आधार पर गढ़ी गई अनेकानेक लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं जिसमें मानव जीवन का दीर्घ कालीन अनुभव संचित है। लोकोक्ति संस्कृत के सुभाषित शब्द का हिन्दी रूप है जो लोक+उक्ति दो शब्दों के योग से निष्पन्न हुआ है। लोक से तात्पर्य जन या जनता से है और उक्ति का तात्पर्य कथन से है। इस प्रकार लोक में प्रचलित उक्ति ही लोकोक्ति है। परन्तु लोक में प्रचलित प्रत्येक उक्ति लोकोक्ति के अन्तर्गत नहीं आती है वरन् एक विशिष्ट अर्थ, लय, लक्षण एवं भाषिक अनुभव के दीर्घ रूप का नाम लोकोक्ति है। लोकोक्ति के पर्याय रूप में कहावत शब्द प्रचलित है जो कथावत शब्द का तद्भव रूप है।

श्री सिद्धेश्वर शर्मा कहावत की व्युत्पत्ति के संबंध में लिखते हैं कि कह धातु में आवत प्रत्यय के योग से कहावत शब्द बना है जबकि सुनीति कुमार चटर्जी इसका विकास संस्कृत के कथापन्यत से कहावअन्त, कहावट से कहावत के रूप में मानते हैं। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में इसे एक अलंकार के रूप में जाना जाता है। कुवलयानंद में उल्लेख्य है - 'लोक प्रवादानुकृति लोकोक्ति रीतिमन्यते।'[1] अंग्रेजी में इसके लिए फ्रेज या प्रोवर्ब शब्द का प्रयोग किया जाता है तथा उर्दू में 'मसल' कहा जाता है। इस प्रकार प्रत्येक भाषा एवं बोली में लोकोक्तियों या कहावतों का अपना प्रभाव होता है। मानव मनोविज्ञान पर आधारित इन लोकोक्तियों में मानव मन के राग-द्वेष, मान-अपमान, प्रेम-अहंकार, हर्ष-विषाद एवं सुख-दु:ख आदि मनोविकारों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म शाब्दिक अभिव्यक्ति तो होती ही है साथ ही अपनी बात की पुष्टि एवं किसी को शिक्षा या चेतावनी देने आदि के लिए भी इनका प्रयोग होता है। डॉ. कन्हैया लाल सहल लोकोक्ति की विस्तृत परिभाषा में इन तथ्यों को उद्घाटित करते हुये लिखते हैं 'अपने कथन की पुष्टि में किसी को शिक्षा या चेतावनी देने के उद्देश्य से किसी बात को किसी की आड़ में कहने के अभिप्राय से अथवा किसी को उपालम्भ देने व किसी पर व्यंग्य कसने आदि के लिए अपने स्वतन्त्र अर्थ रखने वाली जिस लोक-प्रचलित तथा सामान्यत: सारगर्भित, संक्षिप्त एवं चटपटी उक्ति का लोग प्रयोग करते हैं उसे लोकोक्ति अथवा कहावत नाम दिया जा सकता है।'[2]

इस परिभाषा के आधार पर कहा जा सकता है कि साधारण बोलचाल की भाषा में तो लोकोक्तियों का महत्त्व है ही काव्य को आकर्षक एवं चमत्कार पूर्ण बनाने में भी इनका विशिष्ट महत्त्व है। यही कारण है कि प्रत्येक रचनाकार जाने अनजाने अपनी भाषा में इनका समावेश करता है। महाकवि सूरदास ने भी अपने काव्य नायक श्री कृष्ण की लीला भूमि ब्रज में प्रचलित लोकोक्तियों के सुन्दर मोती अपनी भाषा में पिरोकर उसे सरस एवं रोचक बनाया है। सूरदास जी ने अपने काव्य में ब्रज में प्रचलित लोकोक्तियों के विविध रूप अनभिल्ला, भेरि, अचका, औठपाव, गहगड्ड, औलना, खुसी आदि सभी का प्रयोग किया है। उनके साहित्य में लोकोक्तियों का प्रयोग बाहुल्य के साथ हुआ है। कुछ लोकोक्तियाँ यहाँ विचारणीय हैं। जैसे -

भारतीय संस्कृति में कर्मवाद के सिद्धान्त को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भगवान कृष्ण के द्वारा गहना कर्मणोगति:।[3] कहा गया है। कर्म को योग की संज्ञा प्रदान की गई है। कर्मयोगी बनकर ही मनुष्य अपना एवं दूसरे का विकास कर सकता है। कर्म से मनुष्य सुख व दु:ख का भोक्ता बनता है। इसीलिए लोकोक्तियों में कर्मवाद को महत्त्व दिया गया है। 'सूरसागर' में कवि ने जैसोई बोइये तैसोई लूनिए, कर्मन भोग अभागे[4] का प्रयोग किया है। जिसका लोक प्रचलित रूप है जैसा बोना वैसा काटना अर्थात मनुष्य जैसा कर्म करेगा वैसा ही फल पायेगा।

इसी प्रकार पाखंड अर्थात कथनी करनी की भिन्नता को लक्ष्य कर अनेक कहावतें लोक मानस में प्रचलित हैं। आज मनुष्य के स्वभाव में दोगलापन प्रचुर रूप में देखने को मिल रहा है। वह प्रत्यक्षत: कहता कुछ और है करता कुछ और है। जिसे हमारी भारतीय संस्कृति में श्रेष्ठ आचरण के अन्तर्गत नही माना जाता है इसीलिए लोकमानस का आक्रोश लोकोक्तियों के माध्यम से प्रकट हुआ है। सूरदास जी ने 'सूरसागर' में लिखा है ज्यों गजराज काज कै औरे औसर दसन दिखावत।[5] का प्रयोग किया है जिसका लोक प्रचलित रूप हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और अर्थात जो कहना उसके विपरीत आचरण करना है।

* प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय महाराजा स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.) भारत

'श्रीमद्भगवदगीता' में कहा गया है 'संशयात्मा विनश्यति'[6] अर्थात संशय मनुष्य के विनाश का सूचक है लोक मानस संशय या दुविधा का पक्षधर नहीं है किन्तु दुविधा या संशय से मनुष्य बच नही पाता। उसके जीवन में चाहे अनचाहे कभी न कभी ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित हो जाती हैं जिससे वह दुविधा ग्रस्त हो जाता है। सूरदास जी भी मन की इस स्थिति को प्रकट करते हुये लिखते हैं – भई रीति हठि उरग छछूँदर, छाँडे बनै न खाता।[7] इस लोकोक्ति का लोक प्रचलित रूप भई गति साँप छछूँदर केरी उगलत लीलत प्रीति घनेरी है।

अनुभव शिक्षा से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। अनुभवी व्यक्ति के समक्ष अगर कुछ छिपाने का प्रयास भी किया जाये तो उसकी अनुभवी नजरों से छिपा पाना असंभव है बल्कि वह व्यक्ति बुद्धिहीन ही कहा जायेगा जो अनुभवी व्यक्ति से वास्तविकता छिपाने का प्रयत्न करता है। इस तथ्य को लक्ष्य करते हुये सूरदास जी 'सूरसागर' में लिखते हैं– दाई आगै पेट दुरावति बाकी बुद्धि आज मैं जानी।[8] इस लोकोक्ति का लोक प्रचलित रूप दाई के आगे पेट छिपाना है।

सुखमय जीवन हर व्यक्ति की प्रथम चाहत होती है। अत: जीवन को कैसे सुखमय बनाया जाये इसके लिए उसे अत्यधिक संतुलित एवं संयमित रहना पड़ता है। किसी भी कार्य को करने से पूर्व भली भाँति सोच विचार करना होता है। बिना विचार किये जो कार्य किया जाता है उसमें हानि ही उठानी पड़ती है और अन्त में पश्चाताप ही हाथ लगता है। 'सूरसागर' में सूरदास जी ने भी लिख दिया है – हम तन हेरि चितै अपनौ पट देखि पसारहि लाता।[9] इस लोकोक्ति का लोक प्रचलित रूप है ते ते पांव पसारिये जेती लाँबी सौर। इसी प्रकार सत्य कभी भी छिपाने से नहीं छिपता जो वास्तव में होगा वह एक न एक दिन समाज के सामने प्रकट हो ही जाता है। इसीलिए भारतीय संस्कृति 'सत्यमेव जयतेय' का उद्घोष करती है। लोकोक्तियों के माध्यम से भी इस तथ्य को उजागर किया गया है। सूरदास जी कहते हैं – हम जातहि वह उधरि परैगी दूध दूध पानी सो पानी।10 इसका लोक प्रचलित रूप दूध का दूध पानी का पानी है।

अभिमान मनुष्य के लिए विष तुल्य है। जो मनुष्य के उन्नति के मार्ग को तो अवरूद्ध करता ही है उसका विनाश भी कर देता है लंकाधिपति रावण के विनाश का मूल कारण उसका अहंकार ही था। अहंकार ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में भी सबसे बड़ा अवरोध है इसीलिए कबीरदास जी को यह कहना पड़ा – 'जब मैं था तब हरि, नही अब हरि हैं मैं नाहिं।' अर्थात जब जीवात्मा अहंकार युक्त थी तब हरि का सामीप्य सुलभ हो पाना असंभव था और जब अहंकार विगलित हो गया तो हरि का सामीप्य सहज सुलभ हो गया। लोकमानस भी अहंकार के तिरोभाव का परामर्श देता है। सूरदास जी 'सूरसागर' में लोकोक्ति के माध्यम इस तथ्य की ओर संकेत देते हुए कहते हैं कि मनुष्य समयानुसार अपने को बदले तथा परिस्थितियों के अनुसार अपने क्रियाकलापों का निर्धारण करें। हठधर्मिता सफल जीवन के मार्ग में बाधक भी हो सकती है इसीलिए लोकोक्तियों में परामर्श दिया गया है कि जैसी बहै बयारि पीठ तब तैसी दीजै। सूरदास जी भी 'सूरसागर' में कहते हैं – सूरदास प्रभु आपुहिं लैए जैसी बयारि तैसी दीजै पीठि।[12]

मानव मनोविज्ञान व उसके स्वभाव आदि को लेकर अनेक लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं सूरदास जी ने भी मानव स्वभाव को लक्ष्य कर अनेक लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। जैसे – अँगुरी गहत गहौ जिहि पहुँचो कैसे दुरति दुराए।[13] तथा सूधे होत न स्वान पूँछ ज्यौ पचि पचि वैद मरे।[14] एवं सुनियत ताहि सुन्दरी कीन्ही आपु भए ताको राजी। सूर मिले मन जाति ताहि लो ताकौ कहा करे काजी।[15] व्यवहारिकता एवं नीति को लक्ष्य कर सूरदास जी लिखते हैं– कहौ मधुप कैसे समाहिगें एक म्यान दो खाँडे।[16] अर्थात एक म्यान में दो तलवारें कैसे रह सकती हैं उसी प्रकार एक मन में निर्गुण और सगुण कैसे समा सकते हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि सूरदास जी ने लोकोक्तियों के सहज एवं स्वाभाविक प्रयोग से भाषा को प्रभावपूर्ण, चमत्कारिक एवं प्रांजलता पूर्ण बना दिया है। उनके काव्य में प्रयुक्त लोकोक्तियाँ माला में गुँथे वे पुष्प हैं जो माला को एक अद्भुत सौन्दर्य प्रदान करते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कुवलयानंद – अप्पय दीक्षित श्लोक सं. 117
2. राजस्थानी कहावतें: एक अध्ययन– कन्हैया लाल सहल, पृष्ठ, 20
3. श्रीमद्भगवद्गीता 4/14
4. सूरसागर – सूरदास, पूर्वार्द्ध पद सं. 61
5. सूरसागर – सूरदास, उत्तरार्द्ध पद सं. 4265
6. श्रीमद्भगवद्गीता 4/40
7. सूरसागर – सूरदास, उत्तरार्द्ध, पद. सं. 4357
8. सूरसागर – सूरदास, पूर्वार्द्ध पद सं. 2341
9. सूरसागर– सूरदास, उत्तरार्द्ध पद सं. 4511
10. सूरसागर– सूरदास, पूर्वार्द्ध पद सं. 2341
11. सूरसागर – सूरदास, पूर्वार्द्ध पद स. 1207
12. सूरसागर – सूरदास, उत्तरार्द्ध पद सं. 3189
13. सूरसागर – सूरदास , पूर्वार्द्ध पद सं. 1923
14. सूरसागर – सूरदास, उत्तरार्द्ध पद सं. 4348
15. सूरसागर – सूरदास उत्तरार्द्ध पद सं. 3765
16. सूरसागर – सूरदास, उत्तरार्द्ध पद सं. 4222

****

सामाजिक आर्थिक परिदृश्य और हिन्दी कहानी

डॉ. मंजुला जोशी *

शोध सारांश – मानव मन की भावनात्मक अभिव्यक्ति का नाम कहानी हैं। साहित्य की समस्त विधाओं में कहानी अपने लघु परिवेश में वृहत जीवन को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य रखती हैं। वर्तमान में मनोरंजन से लेकर समस्या पूर्ति तक लिखी जाने वाली कहानियाँ हर युग में विद्यमान रही हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सामाजिक वातावरण में व्यापक परिवर्तन हुआ। जिनमें पारिवारिक विघटन, स्त्री शोषण, आर्थिक विषमता, दहेज, बेकारी बेरोजगारी की समस्या के साथ–साथ सामाजिक सांस्कृतिक पारिवारिक संबंधों के परम्परागत रूप धूमिल होते जा रहे हैं। आदमी आत्म केन्द्रित होता जा रहा हैं, सारे मानवीय संबंध औपचारिकता मात्र होते जा रहे हैं।

समाज की तेज रफ्तार के चलते सामाजिक आर्थिक परिदृश्य ने हिन्दी कहानी को बहुत हद तक प्रभावित किया। धनाभाव, बेरोजगारी आपसी मतभेद ने परिवार की एकता अखण्डता प्रेम विश्वास आहत किया इन्हीं समस्याओं को उठाती हिन्दी कहानी अंधेरे में रोशनी की तलाश हैं।

शब्द कुंजी – संक्रान्ति, दोगलापन, यातना चक्र ।

प्रस्तावना – मानव मन की भावनात्मक अभिव्यक्ति का नाम कहानी हैं। साहित्य की समस्त विधाओं में कहानी एकमात्र ऐसा माध्यम हैं, जो अपने लघु परिवेश में वृहत जीवन को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य रखती हैं। वर्तमान में मनोरंजन से लेकर समस्या पूर्ति तक लिखी जाने वाली कहानियाँ हर युग में विद्यमान रही हैं। पंचतंत्र, हितोपदेश से लेकर आज तक हिन्दी कहानी ने अपने क्षेत्र में निरन्तर प्रगति की हैं। कहानी की परम्परा अत्यंत प्राचीन हैं।

ऋग्वेद में जिसकी गणना प्राचीनतम् साहित्य में होती हैं। काल्पनिक कहानी अपने अनेक साहित्यिक विशेषताओं के साथ विद्यमान हैं।'[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सामाजिक वातावरण में व्यापक परिवर्तन हुआ। परिवर्तन की इस बयार को लेखकों, साहित्यकारों तथा कहानीकारों ने बहुत गहराई से अनुभव किया। कहानी के इस बदलाव को कई स्त्री और पुरूष कहानीकारों ने नये कलेवर, शिल्प एवं नये तेवर में प्रस्तुत किया एवं सामाजिक सरोकारों पर अपनी कलम चलाई। ऐसे कई प्रश्न जो आजादी से लेकर वर्तमान तक मुँह बाये खड़े हैं, उन्हें अपनी कहानियों में उठाया हैं। जिनमें पारिवारिक विघटन, दाम्पत्य जीवन में टकराव, अहं की लड़ाई, स्त्री शोषण, कुण्ठा, दहेज, अविवाहित बेटियों की समस्या, बेकारी, बेरोजगारी, परित्यक्ता स्त्री की उपेक्षा, वृद्धावस्था इत्यादि समस्याओं को उठाती आधुनिक हिन्दी कहानी अंधेरे में रोशनी की तलाश हैं।

स्वतंत्र्योत्तर भारत का समाज एक नये परिवर्तित रूप में हमारे सामने आता हैं। जहाँ एक ओर संयुक्त परिवारों का बिखराव हैं, तो दूसरी ओर सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक संबंधों के परम्परागत रूप धूमिल होते जा रहे हैं। परम्पराओं, मान्यताओं से कटकर व्यक्ति आत्म केन्द्रीत होता जा रहा हैं। सारे मानवीय संबंध औपचारिकता मात्र होते जा रहे हैं, जिसका असर आधुनिक हिन्दी कहानी में स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा हैं।

दाम्पत्य जीवन की सफलता परस्पर प्रेम और विश्वास पर निर्भर करती हैं। उसी दाम्पत्य जीवन में अविश्वास, संदेह और स्वार्थपरता आने लगती हैं, तो परिवार बिखरने लगता हैं। मन्नू भण्डारी जी की 'बंद दरवाजे' और 'नशा' ऐसी ही कहानियाँ हैं। नशा कहानी का नायक शराबी और बेरोजगार हैं। वह स्वयं कुछ नहीं करता, लेकिन पत्नी की मेहनत, मजदूरी के पैसे उसको मार पीटकर छीन लेता हैं। इसी कड़ी में इलाचंद जोशी की कहानी 'क्रय विक्रय' का नायक जिसके लिए पैसा ही सबकुछ हैं। अपनी तरक्की एवं पैसे की लालच में वह इतना अंधा हो चुका हैं कि पत्नी का मान–सम्मान उसके लिए कोई मायने नहीं रखता। इस बात से नाराज हो उसकी पत्नी कहती हैं 'तुमने एक हिसाबी बनिये की तरह फूँक– फूँककर, सोच–समझकर एक–एक कदम बढ़ाया हैं। मुझसे विवाह इसलिए किया कि मिस्टर सिंह और उन्हीं के समान दूसरे प्रतिष्ठित सरकारी अफसरों के हाथ मुझे सौंपकर अपना पद बढ़ा सको'[2]

यह कैसा कटु सत्य हैं कि जिसका हाथ थामकर जीवन भर चल रही थी, वही सहयात्री धोखा देने लगता हैं, अविश्वास करता हैं। इसी तारतम्य में चित्रा मुद्गलजी की कहानी 'प्रमोशन' में पत्नी का प्रमोशन होने पर पति उसके चरित्र पर संदेह करने लगता हैं। न जाने क्या हैं ऐसा स्त्री चरित्र में की वह जब तक डरी, सहमी, सिमटी–सिमटी रहती हैं तो कोई कुछ नहीं कहता किन्तु जैसे ही वह आगे बढ़ती हैं तो उसके चरित्र पर संदेह होने लगता हैं।

हिन्दी की कई कहानियों में हमारे सामाजिक मूल्यों का दोगलापन देखने को मिलता हैं। जहाँ बेटियाँ 'धर्म की देहरी' कही जाती हैं, उनकी कमाई खाना पाप माना जाता हैं। विपदा आने पर वही बहन—बेटियाँ परिवार का भरण–पोषण भी कर रही हैं। उत्तरदायित्व के निर्वहन में विवाह की उम्र कब निकल गई पता ही नहीं चला। पर जब होश आया तब कहीं योग्य वर नहीं मिला, तो कहीं दुजवर से ब्याह करना पड़ा, तो कहीं दो बच्चों के पिता को स्वीकारना पड़ा, हर जगह समझौता करना पड़ा। इस पारिवारिक कोहराम के साथ कि यदि बेटी की शादी हो जायेगी तो हमारा घर कौन चलायेगा। मन्नु भण्डारीजी की 'एखाने आकाश नाई, मालती जोशी की स्वयंवर, यातना चक्र' इत्यादि कहानियों में इसका प्रत्येक्ष प्रमाण देखने को मिलता हैं।

एखाने आकाश की नायिका परिवार के लिए नौकरी करती हैं, जब उसकी शादी की बात चलती हैं तो पूरे परिवार में कोहराम मच जाता हैं कि 'हमारा घर कौन चलायेगा'। तब सुषमा कहती हैं 'पिछले तीन साल से केवल

* प्राध्यापक (हिन्दी) शहीद भीमानायक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.) भारत

घर वालों के लिए मर खप रही हूँ, नौकरी के साथ-साथ दो-दो ट्यूशन करके मैंने घर का सारा खर्च चलाया हैं'[3]

इसी तरह का सच स्वयंवर कहानी में देखने को मिलता हैं, जहाँ कहानी की नायिका प्रभा पिता की मृत्यु के बाद परिवार की जिम्मेदारियाँ उठाती हैं। अधिक उम्र हो जाने के कारण योग्य वर नहीं मिल पता। तब वह कहानी के नायक गोपाल दास से कहती हैं 'मुझे एक घर चाहिए गोपालदा ! सिर छुपाने के लिए थोड़ी जगह चाहिए कृपया आपके घर में थोड़ा सा स्थान मिल जायेगा, बोलिये ? रामचरण का हाथ बटाती आपके चरणो में पड़ी रहूँगी।'[4]

कहीं दहेज प्रथा के कारण लड़कियाँ अविवाहित रह जाती हैं तब वह दो बच्चों के पिता से विवाह करने को तैयार हो जाती हैं। यातना-चक्र की नायिका प्रेमा को सतीश जब अपने दोनों बच्चों के साथ देखने आता हैं तो वह बच्चों से पूछती हैं ' बच्चो तुमने मुझे पास किया की नहीं, नन्हे फरिश्तों इस यातना-चक्र से तुम्ही मुझे मुक्ति दिला सकते हो, तुम पर मेरी आशाएँ टिकी हैं।'[5]

कई कहानियों में पारिवारिक विघटन, टूटन, संत्रास और अकेले रहते माता-पिता की समस्याओं को उठाया गया हैं। ज्ञानरंजन की कहानी 'शेष होते हुए' में इसी सत्य को उजागर किया गया हैं। एक घर के कई घर हो गये, सब अपने-अपने कमरों में सिमट गये। माता-पिता को आवश्यकता पड़ने पर याद कर लिया जाता हैं। 'घर के अंदर ही घर खण्डित हो रहा हैं, अगली बार मंझला घर आयेगा तब काल उसके सामने कुछ और बिगड़े हुए तथा कठोर दृश्य उपस्थित करेगा। क्योंकि अभी लोग पूरी तरह टूटे और बिखरे नहीं हैं, अभी संक्रान्ति अपने अंजाम की तरफ केवल शुरू हुई हैं।'[6]

सामाजिक परिवर्तन के इस रूप को अर्थ (धन) ने भी बहुत प्रभावित किया हैं। भारतीय जनमानस धर्म, नीति और सदाचार में विश्वास करता हैं, किन्तु ये सारे आदर्श जब उसे दो वक्त की रोटी नहीं दे पाते तब वह व्यथित होकर चोरी करने से भी नहीं डरता। जैनेन्द्र की कहानी 'चोरी' में लक्खू भूख से बैचेन होकर चोरी करता हैं। इस चोरी के कारण लक्खू कठिनाई से नहीं वरन चैन की जिंदगी बिताता हैं। 'महाजन के अत्याचार एवं गरीबी के आगे मूल्यों को खोकर अब कभी भूखा नहीं सोता।'[7]

कई कहानियों में व्यवसायगत विवशता को व्यक्त किया गया हैं। मेहरूनिसा परवेज की कहानी 'पाँचवी कब' ऐसी ही मर्मान्तक कहानी हैं। अपनी भूख के आगे सारी मानवीय संवेदनाएँ शून्य हो जाती हैं। देखिए एक झलक कहानी का नायक रहमान कब्र खोदने का काम करता हैं। इस काम के 20/- रू. मिलते हैं। यदि गाँव में मौत न हो तो रहमान के पूरे परिवार को भूखे रहना पड़ता हैं। दूसरों की मौत उसके लिए खुशी लेकर आती हैं। 'कम्मो का बेटा मर गया। बेचारे के पेट में कैंसर हो गया था। वह भरी जवानी में उठ गया। यह सुनकर रहमान का चेहरा खुशी से दमकने लगा। नाज और रजिया ने जोर-शोर से मसाले तैयार किये। रेहमान कुदाली लेकर आगे बढ़ गया। जोरो से बीड़ी का कश लेकर बीड़ी फेंक दी और फुरती से कब्र खोदने लगा। चलो कोई तो मरा दो महीने से गोश्त खाने को नहीं मिला।' दूसरों का मरना रहमान के लिए खुशी का कारण हैं, कैंसी विडम्बना हैं।'[8]

हमारे देश की विकास यात्रा का ग्राफ देखे। यह आंतरिक एवं आंचलिक स्थिति जहाँ काम करते हाथ तो हैं, पर रोजगार नहीं। रोजगार पाने लिए शहर जाते हैं तो खर्च पूरता नहीं। मन दोनों के द्वंद में डूबता-उतरता रहता हैं। पेट और रोटी का रिश्ता बड़ा ही अटूट और अर्हनिश का हैं। नये कहानीकारों ने समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का बड़ी कुशलता से निर्वहन किया और सामाजिक आर्थिक समस्याओं को साथ ही समाज के कटु यथार्थ को बड़ी सशक्तता से अभिव्यक्त किया।

समाज की तेज रफ्तार के चलते सामाजिक, आर्थिक परिदृश्य ने हिन्दी कहानी को बहुत हद तक प्रभावित किया हैं। धनाभाव, बेरोजगारी, आपसी मतभेद ने समाज की मूलभूत आवश्यकता, परिवार की एकता, अखण्डता और समाजिक मूल्यों को आहत किया।

निष्कर्ष -

1. भारतीय आदर्श कहीं टूटे हैं व्यक्तिवाद बढ़ा हैं, निजता बढ़ी हैं। वसुधैव कुटुम्बकम् का गुणसूत्र खोने लगा हैं। जिससे अकेलापन, असुरक्षा, बैचेनी बढ़ी हैं। व्यक्ति की मुखरता का स्थान मौन ने ले लिया हैं और इस मौन ने उसे तनाव, डिप्रेशन जैसे मनोरोग दे दिये हैं।
2. सम्पन्नता जहां बढ़ी हैं, वहीं भौतिक संसाधन बढ़े हैं। पर उपयोग करने वाले कम हो गये हैं। सजे-सजाये ड्राईंग रूम में अपनी बात कहने-सुनने वाले नहीं बचे हैं।
3. कहीं मानसिक परिवर्तन एवं नई सोच ने परिवार को विकास की ओर अग्रसर भी किया हैं। पिता, पति, भाई इत्यादि ने स्त्रियों के विकास में, परिवार के विकास में, समाज के विकास में विशेष योगदान भी दिया हैं। पर अब भी सुधार की गुंजाइश हैं।
4. हमारी अर्थव्यवस्था जो जीवन स्तर को बढ़ा रही हैं, भौतिक संसाधन भी बढ़ा रही हैं, पर घर को बांट रही हैं। यह बंटवारा परिवार का सुख, चैन, प्रेम सदभाव छीन रहा हैं। ऐसा पैसा, ऐसा विकास, ऐसा उत्थान जो स्नेह, दुलार, आर्शीवाद की छतनार छाँह छीनता हो, वह सुखद नहीं होगा।

हम अपने परिवार के साथ सामाजिक, आर्थिक उन्नति कर श्रेष्ठ समाज की रचना कर नया परिदृश्य प्रस्तुत करें। नये लेखकों और कहानीकारों के लिए, समाज के लिए, राष्ट्र के लिए ऐसी स्थितियाँ भी हैं और संभावना भी, क्योंकि संभावनाओं का आकाश कभी खाली नहीं होता।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. पारिभाषिक शब्दकोष सानमण्डल प्रकाशन पृ.क्र. - 182
2. मेरी प्रिय कहानियाँ - इलाचन्द जोशी (क्रय विक्रय) पृ.क्र. - 53
3. मेरी प्रिय कहानियाँ - मन्नु भण्डारी (एख्याने आकाश नाई)पृ.क्र.-49
4. मालती जोशी की कहानियाँ - स्वयंवर पृ.क्र. - 75
5. मोरी रंग दी चुनरिया - कहानी संग्रह - यातना चक्र
6. सानरंजन की कहानियाँ शेष होते हुए पृ.क्र. - 141
7. जनैन्द्र की कहानी - चोरी पृ.क्र. - 24
8. मेहरूनिसा परवेज - पांचवी कब्र

****

लोक साहित्य में सामाजिक जीवन मूल्य

डॉ. एस.एस. राठौर *

प्रस्तावना – किसी भी राष्ट्र या प्रदेश की संस्कृति का परिज्ञान वहॉ के लोक जीवन के माध्यम से ही संभव है। लोक साहित्य ही संस्कृति का वाहक, जन-संस्कृति का दर्पण है। उसमें जो विश्वास, परम्पराएं, अनुभूति और विचार व्यक्त हुए हैं वे मानव के मस्तिष्क और सामाजिक विकास की प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करते हैं । नि:संदेह लोक साहित्य को आदिम जाति का आत्मकथात्मक उत्स कहा जा सकता है। लोक साहित्य की परम्परा कदाचित उतनी ही पुरानी है जितनी पुरानी मनुष्य जाति। लोक साहित्य जनता का वो साहित्य है जो जनता के द्वारा जनता के लिए लिखा गया हो।

जो काव्य मानव जीवन के केवल एक ही पहलू का वर्णन उपस्थित करता है वह सच्चा काव्य नहीं कहा जा सकता। जिस काव्य में जन-जीवन की आशा - निराशा, सुख-दुख, विषाद आदि सभी भावनाओं का सजीव चित्रण हो वही सच्चा अमर और लोकप्रतिनिधि काव्य हैं। इस दृष्टि से लोक साहित्य को अमर साहित्य की कोटि में रखा जा सकता हैं। लोक साहित्य के सामान्य रूप से पाँच भेद है -

1. लोक गीत
2. लोक गाथा
3. लोक कथा
4. लोक नाट्य
5. लोक सुभाषित

लोक सुभाषित के अन्तर्गत मुहावरे, लोकोक्तियाँ, पहेलियॉ तथा बच्चों के गीत, खेल के गीत आदि आते हैं। हमारी संस्कृति की श्रेष्ठताओं को समेटे हुए लोक साहित्य के विविध रूपों, लोक गीतों, लोक नृत्यों, कहावतों आदि में गुम्फित तथ्यों को विस्मृत करना उचित न होगा। काल के प्रवाह में मलिनता की जो धूल हमारे लोक साहित्य पर पड़ी है उसको हटाना आज की आवश्यकता और हमारा कर्तव्य है।

लोक साहित्य समाज का दर्पण है यह सम्पूर्ण देश को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त हमारे दैनिक जीवन के क्रिया-कलाप हमारे संस्कारों में जल, नदी, कूप, तालाब, दीपक, तुलसी, वट, पीपल, आम, ऑवला, ढाक आदि की पूजा होती है। 'अतिथि देवो भवः' कहकर अतिथि सत्कार, गौमाता की पूजा, कन्या पूजन, धार्मिक पुस्तकों, हनुमान चालीसा, गीता-रामायण, वेदादि पर श्रद्धा, पशु पक्षी, कीट आदि के लिए बलि अर्थात भोजन देना, काक, सर्प, बैल, नीलकण्ठ आदि का सम्मान हमारे स्वभाव में रच बस गया है। इन सबमें कोई न कोई वैज्ञानिक तथ्य अवश्य निहित हैं। भारतीय संस्कृति में संस्कारों का बाहुल्य है अत: जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों के अवसर पर गीत गाने की प्रथा प्रचलित है। हमारे देश में विभिन्न ऋतुओं में प्रकृति अपना रूप सौन्दर्य बदलती रहती है। प्रकृति के इस परिवर्तन का प्रभाव मानव हृदय पर भी पड़ता है फलस्वरूप उसके हृदय में उल्लास और आनन्द की अनुभूति होती है जिसे वह कजरी, चैता, झूमर, कबीरी, फाग आदि के माध्यम से व्यक्त करता है-

सोने की थाली में जेवना परोस लो
सखी हो, सइयॉ घरवॉ न अइले
सावन बरिसे लागल ना

होरी खेलैं रघुवीरा अवध में, होरी खेलैं रघुवीरा ,
केकरा हाथ ढोलक भल सोहे, केकरा हाथे मजीरा

लोक गीतों के माध्यम से मानव सभ्यता और संस्कृति की अभिव्यक्ति होती है। भारतीय संस्कृति कृषक संस्कृति है। निम्न लोक गीत में बेटी अपने पिता को खेतिहर वर से विवाह करने का सुझाव देती है, वह बताती है कि उसकी दृष्टि उपभोग परक संस्कृति की ओर नहीं है, अत: वे दहेज नहीं लेंगे-

हर जोति आवै कुदारि गोड़ि आवै विहॅसे पसीना झलकाय ।
उनहीं के तिलक चढ़ाया मोरे बाबा तै नाही दाहेज लेयॅ ।।

इसी प्रकार विभिन्न संस्कारों के अवसर पर लोकाचारों ने कृषि के उपकरणों का प्रयोग संस्कृति और लोक व्यवहार तथा लोक साहित्य की अभिन्नता को व्यक्त करता है। भारतीय संस्कृति की रचना में उसके ह्रासशील मूल्यों के विघटन में और शाश्वत मूल्यों के पुनर्स्थापना में लोक का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

किसी साहित्यकार को जब कभी जनता के निकट जाने की आवश्यकता पड़ी है, जब उसने लोक जीवन को किसी प्रकार का धार्मिक, सामाजिक अथवा कोई उपदेश देना चाहा है तो उसने अपने साहित्य को लोक संस्कृति के तत्वों से अधिकांशत: अभिमंडित करके उसे लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया है। संसार की सभी भली बुरी वस्तुएं दृष्टा के अंदर चक्षु का परिणाम मानकर सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक मूल्यों से जहॉ मानव मूल्यों की स्थापना करती है वहीं उसका एक फलक पौराणिक कथ्य से लेकर वर्तमान जीवन सत्य तक विस्तारित किया जा सकता है।

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार लोक साहित्य अत्यंत व्यापक है । जन साधारण के जीवन और क्रियाकलापों से संबद्ध होने के कारण वह हर्ष , शोक की अभिव्यक्ति से असाधारण रूप से जुड़ा होता है । साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हसँती है, खेलती है उन सबको लोक साहित्य के अन्तर्गत रखा जाता है ।

काहे से निबिया करूई लागै ।
काहे से लागै शीतली छॉह ।।
काहे से भैया बैरी लागै ।
काहे मा गहै दाहिनी बॉह ।।

* प्राध्यापक (हिन्दी) छत्रसाल शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पन्ना (म.प्र.) भारत

इस का उत्तर लोक के द्धारा जो दिया गया वह अत्यन्त ही मार्मिक एवं तर्क पूर्ण है जिसका यदि विद्धता की दृष्टि से देखा जाय तो अत्यंत प्रेरणास्पद एवं सारगर्भित है ।

उत्तर **खाये से निबिया करूई लागै ।**
बैठे से लागै शीतली छॉह ।।
बाँटे से भैया बैरी लागै ।
रण में गहै दाहिनी वॉह ।।

पुत्र जन्म से लेकर मृत्यु तक जिन सोलह संस्कारों का विधान हमारे प्राचीन ऋषियों ने किया है प्राय: मृत्यु संस्कार को छोड़कर सभी संस्कारों के गीत अलग-अलग गाये जाते है। विभिन्न रीतिओं में प्रकृति का जो परिर्वतन दिखाई पड़ता है उसका प्रभाव जन साधारण के हदय पर पड़े बिना नहीं रह सकता है । अत: बाह्य जगत में इन परिर्वतन को देखकर जो उल्लास या आनन्दानुभूति होती है । वह लोकगीतों की सरस रागिनी में बरवस फूट पड़ती है। जैसे खेतो में बुआई , निराई , लुनाई आदि के समय जो लोक में व्याप्त है उनके एक ही तरह के स्वर सब जगह सुनाई पड़ते हैं। जैसे -

फगुना तोरी अजब बहार
चैत मा गोरी मचल रही नैहर माँ

लोक साहित्य का विस्तार इतना ही नहीं गाँव के बूढ़े लोग जाड़े के दिनों में आग के पास बैठकर कहानियाँ सुनाया करते है बूँढ़ी दादी तथा मातायें बच्चो को सुलाने के लिए लोरियो तथा छोटी-छोटी कथाओं को सुनाती है। जन मन के अनुसंजन के लिये स्वांग या नाटक भी खेले जाते है। जिन्हें देखने के लिये दूर-दूर से लोग एकत्रित होते है। लोक नाट्य ग्रामीण जन मानस के मनोविनोद का सबसे सरल साधन है । गाँव के लोग अपने दैनिक व्यवहार तथा वार्तालाप में सैकड़ो मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग करते रहते है। छोटे-छोटे बच्चे खेलते समय अनेक प्रकार के हास्य एवं व्यंग गीत गाते है। यह सभी गीत तथा कथाये लोक साहित्य के अन्तर्गत आती है। लोक संस्कृति की तुलना में लोक साहित्य सीमित होते हुए भी मानव जीवन की खुशियों को अपने अन्दर समेटे हुए है ।

अंत में यह किसी वर्ग विशेष का विषय न रहकर स्त्री-पुरूष, बूढ़े-जवान, बच्चे , मातायें, बहने सभी के कोमल भावों को संजोये रखने में सक्षम है लोक साहित्य में अद्धितीय स्वाभाविकता स्वच्छन्दता और सरलता होती है। जो सामान्य पढ़े-लिखे लोगों , बिना पढ़े-लिखे लोगों चरवाहों या मजदूरों को अपने माध्यम से समाज में सम्मान से जीने के लिये एक उपहार है।

गॉव हमारा शहर तुम्हारा .....

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. लोक साहित्य एवं परम्परायें, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय
2. बुन्देली बंसत संपदान, डॉ बहादुर सिंह
3. आल्हा खण्ड एवं ग्रामीण जन श्रुतियों के अनुसार

****

सन् 1857 की क्रांति और हिन्दी लोकगीत

डॉ. रश्मि जैन *

प्रस्तावना – लोकगीत जनजीवन का दर्पण है। ये जनता के हद्य की भावाभिव्यक्ति है। जनमानस के सुख दु:ख, हर्ष विषाद, मिलन विरूद्ध आदि भावनाओं को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम हैं डॉ.रामप्रसाद मिश्र के शब्दों में – लोकगीत समूह सृष्टि का प्रतीक है। जनता ही आदि कवि हैं जनमानस के विशद उद्गार लोकगीत कहलाते है। जीवन रस से सराबोर, पर्वरस से ऊभचूभ। इतिहास और साहित्य में अंतर्संबंध है। इतिहास को व्यक्त करने का जनकवियों का अपना नजरिया रहा है जनकवियों ने लोकगीतों के माध्यम से इतिहास से संबंध स्थापित किया है। डॉ.रामविलास शर्मा ने लिखा है जो बात स्वनामधन्य इतिहासकारों को नहीं सूझती, उसे जनकवियों ने लोकपरम्परा के आधार पर सूक्ष्म और प्रभावशाली ढंग से अंकित कर दिया है। अवधी, बुन्देली, भोजपुरी, ब्रज, राजस्थानी, खड़ी बोली आदि हिन्दी प्रदेश की बोलियों में उपलब्ध लोकगीतों में सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम का इतिहास मिलता है। जनकवियों ने सन् 1857 की क्रांति संबंधी लोकगीतों का सृजनकर भारतीय इतिहास को वाचिक और लिखित परम्परा में स्थापित किया है। ये लोकगीत युगीन घटनाओं की विकास गाथा है। इन लोकगीतों के माध्यम से इतिहास में सन् 1857 की क्रांति के कई अज्ञात क्रांतिवीर भी उजागर हुए है।

अंग्रेजी राज के आतंकित काल में जब सन् 1857 का स्वाधीनता संग्राम और भारतीय जनभावना प्रकाशित साहित्य में खुलकर नहीं आ पाती थी। तब लोकगीतों में कुछ थोड़ी बहुत अंकित हो पाती थी। शोध अध्येताओं के विशेष प्रयास से पर्याप्त मात्रा में सन् 1857 की क्रांति संबंधी हिन्दी लोकगीतों मे कुछ थोड़ी बहुत अंकित हो पाती थी। शोध अध्येताओं के विशेष प्रयास से पर्याप्त मात्रा में सन् 1857 की क्रांति संबंधी हिन्दी लोकगीत प्रकाश में आए है। हिन्दी प्रदेश की विविध बोलियों में उपलब्ध लोकगीतों में अंग्रेजी राज्य से त्रस्त जनता की भावना, सन् 1857 की क्रांति में सम्मिलित क्रांतिवीरों का योगदान, उनके प्रति जनता की सहानुभूति तथा फिरंगियों को देश से बाहर निकालने की भावना समाहित है। अवधी के सत्तावनी लोकगीतों में शंकरपुर राना बैनी माधव, संडीले के गुलाबसिंह, गौडा के राजा देवीवख्शसिंह, चहलारी के राजा बलभद्रसिंह, बेगम हजरत महल, सेमरा के शिवरतन सिंह, बक्सर के रामबख्श आदि प्रसिद्ध क्रांतिवीरों का यशोगान अंकित है। इन लोकगीतों में जनता की वह समझ भी व्यक्त हुई है कि वे ही राजा प्रशंसनीय और वंदनीय है, जिन्होंने कांतिकारी सिपाहियों का साथ दिया है और अंग्रेजों का साथ देने वाले राजे तालुकदार निंदनीय है। अंग्रेजों की पराजय से प्रसन्नता और विजय से खिन्न जनता का भाव भी मिलता है। चहलारी के 18 वर्षीय क्रांतिवीर राजा बलभद्रसिंह की वीरता और वीरगति का बखान करने वाला आल्हा जो किसी भागू नाई की रचना के रूप में परम्परा से प्राप्त हुआ है, जिसका उल्लेख उपन्यासकार श्री अमृतलाल नागर ने गदर के फूल पुस्तक में किय है। क्रांति वीरों के प्रति श्रृद्धा और उनकी स्मृति की रक्षा ऐसे लोकगीतों ने ही की है। बेगम हजरत महल राजसुखों को छोड़कर सत्तावती क्रांति में सम्मिलित हुई थी। उनका योगदान अवधी लोकगीत में दृष्टव्य है।

मजा हजरत नें नहिं पाई, केसर बाग लगाई
कलकत्ते से चला फिरंगी, तंबू कनात लगाई
आसपास लखनऊ का घेरा, सड़कन तोप धराई
लोग बाग सब व्याकुल होइगे, अच्छी लूट मचाई
तख्त उलटिगा बादशाह का, राज फिरंगी पाई।।

इसी प्रकार सेमरी के रतनसिंह और बक्सर के रामबख्श जैसे आत्म बलिदानी वीरों की स्मृतियॉ भी अवधि लोकगीतों में सुरक्षित है।

दिल्ली सहर मॉ भा है जमौला, बादशाह है अलबेला
नाकन नाकन खड़े सिपाही कैसर मॉ है डेरा
लखनऊ सहर मॉ भा है बलवा तोप चली उन्नाव जिला
सिवरतन सिंह के जूझे, रामबक्स बक्सर केरा
भीरा मॉ तरवारें चमकी नाम अमर भा राना का।।

बुन्देली लोकगीत रानी लक्ष्मीबाई और उनके साथी क्रांतिवीरों के यशोगान के रूप में है। बहुत से वीरों का नामोल्लेख इतिहास की पुस्तकों तक में नहीं हुआ है परन्तु उनकी स्मृति इन लोकगीतों में ही रह सकी है। बॉदा की शीलादेवी, जिगनी की नन्ही रानी पद्माकर की रानी भवानी आदि सत्तावनी क्रांति की वीरांगनाओं के नाम और यश ऐसी ही कुछ बुन्देली फागों में शेष है। इन जनकवियों ने वीरांगनाओं का केवल युद्ध करना और वीरगति को पाने का चित्रण ही नहीं किया बल्कि जनता को स्वतंत्रता संग्राम में शामिल होने की प्रेरणा मिलती है। रन पानी युद्ध का उत्साह बढ़ाते हुए देश को दुखी जानकर उसके उद्धारा के लिए आभूषण बेचकर तलवार, गोला आदि युद्ध सामग्री इकट्ठी करने और दूसरों को भी प्रोत्साहित करने का वर्णन बुन्देली फागों में मिलता है। उदाहरण –

नन्हीं रानी ऊधम करतीं, जिगनी में धम भरती
संग में ज्वान सात सौ लैंके फौज फिरंगिन लरतीं
लूटा खजानो, छिड़ा हतपारन, मंदिर डेरा करतीं
पूजा करतीं, राम सुमरतीं, तात्या से मिल चलतीं
आग आगरे देती वे तो, गढ़ गवालियर धरतीं
ऊधौदास एदू रीती सों प्रीति देस सु करतीं।

बुन्देलखंड में विवाह आदि के अवसर पर स्त्रियों द्धारा गारी लोकगीतों का प्रचलन है। ऐसी ही बुन्देली गारी में अंग्रेजों का डटकर मुकाबला करने वाले दिमान जंगी की यश गाथा मिलती है। कवि ने दिमान जंगी यौद्धा की शान को अद्धितीय बताया है। उदाहरण –

ऐसो है अलबेला जंगी, जी के हाथ कटरियां नंगी
जी सें थर थर कंपैं फिरंगी हडियन रॉधे खॉय दुरंगी।
ऐसो रूतवा है पूरो दमान को, कोद नैंया 32 की सान को।।

बुन्देली जनता ने गदर शब्द को सशब्त्र क्रांति माना। सन् सत्तावन की कांति को गदर ही कहती रही है। उदाहरण दृष्टव्य है–

दोहा – चिनगारी जब गदर की, फैली चुहॅ दिस धाय
लूट मार होवन लगी, जो जी खों जहॅ पाय।।

सैर – कीनी लडाई बाई साब, झॉसी की रानी
समसेर जंग हाथ लई बनी मरदानी।।

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना (म.प्र.) भारत

मालवी लोकगीतों में नरसिंहगढ के राजपुत्र चैनसिंह का उल्लेख मिलता है। जो भोपाल के पास सिहोर की छावनी में अपने दो साथियों हिम्मत खान और बहादुर खान को साथ लेकर अंग्रेजों से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे। मालवी के अनेक लोकगीत इन्हीं की गाथा गाते है। यदपि ब्रज प्रदेश में रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे जैसे इतिहास प्रसिद्ध सत्तावनी क्रांतिवीर नहीं हुए तो भी वहॉ ऐसे लोकगीत प्रचलित है जिनमें वहॉ की जनता की क्रांतिकारियों के प्रति श्रद्धा दिखाई देती है। ब्रज के लोकगीत में अलीगढ जिले के मछुऔ, और बीठना ग्राम मे हुई क्रांति की चर्चा की है। इतिहास के लिए अज्ञात गहलउ के सत्तावनी वीर ठाकुर और वीर आमानी के पराक्रम की स्मृति की रक्षा ये लोकगीत ही किए हुए है।

उदाहरण – फिरंगी लुट गयौ रे हाथुस के बाजार में
गोरा लुट गयौ रे हाथुस के बाजार में
टोप लुटि गयौ, घोड़ा लुटि गयौ
त्मंचा लुटि गयौ रे जाकौ चलते बजार में।

इस लोकगीत में लूट शब्द का लाक्षणिक प्रयोग है। रूपये पैसे लुट जाने का नहीं वरन् टोप तमंचा और घोड़ा अर्थात् अंग्रेजी राज की प्रतिष्ठा, नवीनतम अस्त्र-शस्त्र और सामरिक शक्ति के प्रतीकों के लुट जाने का स्वर है।

बाबू कुँवरसिंह, अमरसिंह, झरूसिंह आदि सन् 1857 के क्रांतिकारियों संबंधी भोजपुरी लोकगीत हमेशा जनता गाती चली आई है। बाबू कुँअरसिंह के प्रति जनता का प्रेम, सत्तावनी क्रांति की असफलता का दुख, स्वाधीनता संग्राम में कुँअरसिंह का साथ न देने वाले और धोखा देने वालो के प्रति जनता का तिरस्कार एवं आक्रोश भाव भोजपुरी लोकगीतों मे मिलता है। भोजपुरी में बिरहा, जांतका, जोगड़ा और पवारे लोकगीत मिलते है। कुँअरसिंह के स्मृति गीत आज भी खेत-खलिहानों की गूँज बने है। तालाब किनारे कपड़े, पछाड़ते हुए धोबियों के कंठ से मुखरित होते रहे है। ऐसा उल्लेख मिलता हे कि प्रतिवर्ष होली पर सबसे पहले कुँवरसिंह को याद किया जाता है फिर फाग गाई जाती है। बिरहा गीत में सन् 1857 में स्वराज्य प्राप्त नहीं होने पर जनता का खेद भाव तथा डुमराव के राजा आदि के द्वारा अंग्रेजों की मदद करने पर आक्रोश भाव दिखाई देता है। उदाहरण दृष्टव्य है –

एक तो मैं आस कइनी राजा डुमराव के
डहो भाग चलले जैसे बनमॉ के खरहा
कुल्ही गुनलका रामा मिटिया में मिली गइले
नाहीं लेवे पवनी हम सुराज।।

भोजपुरी जांतका गीत में अमरसिंह को युद्ध में शामिल होने के आह्वान तथा सत्तावनी क्रांति के समय बाबू कुँअरसिंह के वृद्ध होने के दुख का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है। उदाहरण दृष्टव्य है –

खपाखप छुरी चलै, छपाछप मुरी कटै, टहकट सोनिवा के धार रे नू जैसे बहे नदी के धार रे नू

इन्द्र दुरसे भागिलेल, यमराज दौड़ल, खप्पड़ लेई डाकिन नाचै लागिन रे नू झूमत कुँअर बॉका रन बीच जैसे हाथि कई कोपि सिंह डॉफि फादि बैठक रे नू।।

ठन क्रांतिवीरों का अंग्रेजों के प्रलोभनों मे न आना तथा बाबू कुँअरसिंह के शरीर में रक्त की एक बूँद भी शेष रहने तक युद्ध जारी रखने के संकल्प के प्रति जनता श्रद्धावनत दिखाई देती है। उदाहरण देखिए –

बाबू कुँअरसिंह तेगवा बहादुर, आरा में धूम मचाई रे
मुट्ठी भर सोना लैके कुँअरसिंह, फिरंगिया पर छापा गिराई रे
कपतान लिखे मिश्र कुँअरसिंह, आशा के सूबा बनाइब रे
तोहफा देबो इनाम देबो, तोहके राजा बनाइब रे
बाबू कुँअरसिंह दै ले सनेसवा, मो से न चली चतुराई रे
जब तक रही रकतवा के बूँद, मारग नई ढदलाई रे।।

बिहार में जोगीड़ा और पवारे गीत भी लोकप्रिय है। जो भोजपुरी में नहीं है उनमें खड़ी बोली की बंदिश पर्याप्त है। बिहार में पॅवरिया नामक एक जाति है। जो सामन्तशाही युग से भी पहले से चली आ रही है और जिसका पेशा है सामन्तशाही के वीर पुरूषों की मुख्य लड़ाइयों की वीरगाथाओं का एक विलक्षण रेकनीक के छंदों में ढालकर ढोल मंजीरों के साथ विलक्षण ताल से गाना और वीर नृत्य नाचना। एक पवारे गीत में स्वाधीनता संग्राम का समय और कुँअरसिंह का अपनी वृद्धावस्था पर खेद तो अमरसिंह द्धारा उन्हें सात्वना देने संबंधी वर्णन मिलता है। उदाहरण दृष्टव्य है –

सुन अमरसिंह मेरी बात, जब जवानी मेरी थी।
तब अंगरेज बिगड़ल ना, अब जयेकी बीती जाय
जीरा ऐसा दॉत हो जाय, आ सन ऐसा बार हो जाय
जुल जुल मॉस लटकत जाय, बॉह में कूबत मिले नाय
कैसे तेगा पकडूँ मैं, कैसे मनी को मारू मैं
तब लै अमरसिंह बोले का, सुन भैया मेरी बात
बैठल भैया पान चबाव, मैं अंगरेज को देखूँगा।

एक अन्य पवारे गीत में जनकवि ने बहुत ही सुन्दर संवाद स्थापित किया है। इसमें कवि ने अंग्रेज से तोप को माता कहलाकर तथा कुँअरसिंह से जंगल को पिता कहलाकर मात्र दो पंक्तियों में ही बिहार के युद्ध का सारा मर्म खोल दिया है।

जगदीसपुरा किला छोड दिया, जंगल में घुसा जाय
जंगले जंगले बाबू चले, ई जनरैल जोड़ किया
दूरबीन लगायके देखे जाय, यही बाबू जाता है
लिख परवाना भेजे का, सुनो बाबू मेरी बात
जंगल छोड के लड़ो, इतनी बात बाबू सुने
सुन जनरैल मेरी बात, मैं जंगल छोडूँगा
तुम तोप धरके लडो, इतनी बात जनरैल सुने
सुनिए बाबू मेरी बात, मैं तोप नहीं धरूँगा
मेरा तोप माता है, इतनी बात बाबू सुने
तुम्हारा तोप माता है, मेरा जंगल पिता है
मैं जंगल छोडूँगा नही .....।।

निष्कर्षत – कहा जा सकता है कि परम्परा प्राप्त इन लोकगीतों में सनफ 1857 के स्वाधीनता संग्राम में तत्कालीन जनता की मनोवृत्ति को समझा जा सकता है लोकगीतों में जनता की वीर पूजा की भावना, ब्रिटिश राज के प्रति असंतोष भली भांति अभिव्यक्त हुआ है। सत्तावनी क्रांति के वे लोकगीत उन वीरो के शौर्य की यशोगाथा गाते है तो गुलामी के प्रति जनता के असंतोष को तो व्यक्त करते ही है। वे यह भी घोषित करते है कि जनता अपराजेय है, यदि उसे सच्चे और कुशल नेता उपलब्ध हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. 1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव – डॉ. भगवानदास माहौरा, जयकृष्ण अग्रवाल, कृष्णा ब्रदर्स अजमेर, 1976
2. आधुनिक भारत : एल.पी.शर्मा लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पुस्तक प्रकाशक, हॉस्पिटल रोड, आगरा
3. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, प्रो. विपिन चन्द्र हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निर्देशालय दिल्ली विश्वविद्यालय 1990
4. हिन्दी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास : डॉ. रामप्रसाद मिश्र (दो खंड) सत्साहित्य भंडार, 57 बी, पॉकेट-ए, अशोक बिहार फेज-2 दिल्ली, 110052, संस्करण 1998, पृ. 1599
5. सन् सत्तावन की राज्यक्रांति : डॉ. रामविलास शर्मा, वि.पु.मं. आगरा
6. गदर : ऋषभचरण जैन, ज्ञान पब्लिकेशन्स, दिल्ली 1957, 1952 दूसरी बार
7. कुँवरसिंह : एम.एम. कान्त सिन्हा, आदर्श पुस्तक भंडार, कलकत्ता 1958
8. गदर के फूल : अमृतलाल नागर

अस्मिता की तलाश : अल्मा कबूतरी

डॉ. संध्या टिकेकर *

प्रस्तावना – भारत में आज भी आदिवासियों की पहचान ,देश की मुख्य धारा से कटी हुई ,अलग थलग पड़ कर जीवन जीने को अभिशप्त जनजाति के रूप में है। प्रकृति के उन जंगलों बीहड़ों –अंचलों में, जहां भौतिक विकास का प्रकाश अब तक नहीं पहुंचा है ,वहां देश की ये जनजातियां अब भी जीवन संघर्ष में उलझी हुई हैं। इनकी पीड़ा यह है कि ये जनजातियां अपने ही देश में अजनबियों की तरह जीने को विवश हैं। सभ्यता और विकास की दौड़ में पूरी तरह पिछड़ी इन जनजातियों का जैसा दोहन राजनीतिक क्षेत्र के मोहरों की तरह किया गया है , वह आदिवासी समाज के साथ किया जा रहा सबसे भद्दा मजाक है।आदिवासियों के भारत में बसे होने का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना इस देश का। शेष देश , विकास की राह में बहुत आगे निकल चुका है ,पर ये जनजातियां आज भी अस्मिता की तलाश में ,मन में छटपटाहट लिए भटक रही हैं। हिन्दी के संवेदनशील उपन्यासकारों ने इनका दंष ,पीड़ा ,अपमान को देखा –समझा, महसूसा है।परिणाम स्वरूप अनेक जनजातियों की विविध समस्याओं को ले कर अनेक उपन्यास रचे गए हैं।आधुनिक काल में जनजातीय केन्द्रित उपन्यासों का लेखन लगभग बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से हमारे सामने आता है। सन् 1899 में जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का लिखा 'बसंत मालती '1904 में ब्रज नंदन सहाय का 'अरण्य बाला' 1904 में मन्नन द्विवेदी का 'रामलाल' 1909 में ,रामचीज सिंह का 'बन विहंगिनी ' '1947 में वृंदावन लाल वर्मा का 'कचनार' 1952 में देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिये',1956 में योगेन्द्रनाथ सिंह का 'वन लक्ष्मी'1956में देवेन्द्र सत्यार्थी का 'ब्रह्मपुत्र' 1957 में रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूं'और नागार्जुन का 'वरुण के बेटे' 1958 में अवस्थी का 'सूरज किरण की छांव' 1960 में 'सांप सीढ़ी' वीरेन्द्र जैन का डूब ,पार ,संजीव जैन का 'जंगल जहां गुम होता है' ,श्री प्रकाश मिश्र का 'जहां बांस फूलते हैं 'भगवान दास मोरवाल का 'काला पहाड़' विनोद कुमार का 'धपेल' दामोदर सदन का 'नदी के मोड़ पर' तथा मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

बुंदेलखंड़ की जनजातियों की जमीनी समस्याओं से जुड़ी कथाकार मैत्रेयी पुष्पा का अल्मा कबूतरी वस्तुत: कबूतरा जनजाति की अजनबीपन के दंश की कथा–व्यथा है। उपन्यास के फ्लैप कवर पर मैत्रेयी लिखती हैं कि –'कंजर ,सांसी ,नट ,मदारी सपेरे ,पारदी ,हाबूड़े बंजारे ,बावरिया ,कबूतरे – न जाने कितनी जनजातियां हैं जो सभ्य समाज के हाशिए पर डेरा लगाए सदियां गुजार देती हैं। उनके लिए हम हैं– सभ्य संभ्रांत, परदेसी ,उनका इस्तेमाल करने वाले पोषक उनके अपराधों से डरते हुए ,मगर उन्हें अपराधी बनाए रखने के आग्रही। स्वतंत्र भारत में समाज की मुख्य धारों किनारे फेंक दिए गए इन अदृष्य लोगों की लड़ाई आज भी जारी है ,आज भी वे कमंद और सीढियां लगा कर हमारी दुर्ग दीवार पर चढ़ते हैं तो ऊपर बैठे हम तीर कमान साधे उनका शिकार करने का सुख पाते हैं। 'अल्मा कबूतरी ,कबूतरा समाज की उस संघर्षषील युवती की जीवन गाथा है ,जो कदमबाई और मंसाराम की संकर संतान राणा से अपना रागात्मक संबंध जोड़ती है किन्तु संवेदनशील ,समझदार पढ़ी लिखी और बुद्धिमान अल्मा की बढ़ती प्रषंसा से ईष्या से भर कर राणा उसको छोड़ कर अपने गांव लौट आता है । अल्मा सफेदपोष नेताओं के दुश्चक्र में फंस जाने पर मुक्ति के लिए संघर्ष करती है और अंत में सारी परिस्थितियों को अपने वर्ष में कर सत्तारूढ़ होने के लिए उम्मीद्वार घोषित की जाती है।

अल्मा जिस समाज का प्रत्रिनिधित्व करती है ,उस कबूतरा समाज का इतिहास बहुत ही संघर्षशील है।बुंदेलखंड़ के मरोड़ा खुर्द ,गोरामाछिया ,गोपालपुर मोंठ दातार नगर झांसी आदि जगहों में फैला यह समाज अपना संबंध रानी पद्मिनी और राणा प्रताप से जोड़ता है , शिवाजी और झांसी की प्रति–रानीझलकारी बाई से जोडता है –यानी उन सबसे जिन्होंने किसी साम्राज्य के आगे सिर नहीं झुकाया ,भले ही उसके लिए वनवास की गुमनामी का ही वरण क्यों न करना पड़ा हो । इस जनतति के अनेक कबूतराओं ने झांसी की रानी के साथ मिलकर अंग्रेजों से लड़ाई लड़ी थी । रानी लक्ष्मी बाई के शहीद हो जाने के बाद जब अंग्रेजों ने जीवित बचे कबूतराओं को खदेड़ना शुरू किया तो वे बुंदेलखंड़ की धरती पर पानी की तरह यहां वहां फैल गए। अपने रहन सहन ,बोली बानी ,तौर तरीको से यह जनजाति एकदम अलग तरह के सांचे में ढ़ली हुई थी। इसलिए बुंदेलखंड की अनजानी धरती पर अपने रहने खाने की समस्या से निपटने के लिए उन संभ्रांत–सम्पन्न किसानों की पनाह की ,जिनके पास खेती की बहुत जमीन थी। फटेहाल कबूतराओं ने पहले तो इन किसानों से मजदूरी का काम मांगा पर उन्हें नकार दिया गया तो उन्होंने निवेदन किया – 'दारू बनाएंगे मालिक। बेचेंगे। जिसकी धरती होगी उसे मुफ्त पिलाएंगे। पहले तो किसानों ने सोचा –दारू बनने से गांव खराब होगा पर फिर सोचा –खेतों में पड़े रहने दो ,खेतों की रखवाली अपने आप हो जाएगी। 'इस प्रकार वीर और खतरों से खेलने के आदी कबूतराओं ने मदिरा बनाने ,बेचने को परिवार पालने का जरिया बना लिया।

मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास के बहाने कबूतरा जनजाति की पूरी संस्कृति को ही कथा के साथ साथ उद्घाटित किया है। कबूतरा समाज अंधविश्वासी है। वह भूत प्रेत का अस्तित्व मानता है। भूत बाधाओं को भगाने के लिए वे वीर देवताओं को पूजते हैं। इसके लिए वे वीर देवता की स्थापना करते हैं। लिपी हुई चबूतरी पर बेर के पत्ते ,पान का पत्ता ,गुड़ और बकरी का खून चढ़ाया जाता है। साथ ही लाल कपड़ा रोटी का चूरमा ,तेल और मदिरा चढ़ाया जाता है। पूजा के दौरान जिस व्यक्ति को देवता की सवारी आती है ,वह यदि मद के भोग को स्वीकार कर लेता है तो माना जाता है कि

* प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला - सागर (म.प्र.) भारत

भूत बाधा दूर हो गई। इसी बहाने सवारी अर्थात गुनिया छक कर मदिरा पीते हैं।

स्वयं को रानी पद्मिनी और राणा प्रताप का वंशज मानने वाले कबूतरा पुरूष ,अपने अति साहसी स्वभाव के कारण,अपना अधिक समय जंगलों या ऐसे स्थानों पर बिताते हैं ,जहां वे अपने साहस का प्रदर्शन कर सके।

कबूतरा माताएं अपने बच्चों की सुरक्षा और उनके भावी शुभ के लिए वीर देवता को मनाती हैं। वे बच्चों को असीसने के लिए उनके सिर पर बेर के पत्ते, फूल ,दूब रख कर वीर देव का जयकारा लगाती हैं तथा पंचामृत प्रसाद के रूप में गुली और मद का सबको वितरण करती हैं। घाव धोने के लिए भी मदिरा का उपयोग किया जाता है।

कबूतरा समाज खानाबदोश है। अपने जीवन यापन के लिए यहां वहां भटकते रहना इनकी नियति है। कहते हैं कि रानी पद्मिनी की सेना को जब सुल्तान अलाउद्दीन ने घेरना शुरू किया, उनका रसद पानी छीनना चालू किया तो रानी ने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि 'बल नहीं तो छल। फौजें हमें खा जाएंगी। उनकी रसद लूट लो । छावनियों में घुस कर हथियार चुराओ। सखियों, सुल्तान के सिपाहियों को हंस कर रिझाओ और लहंगों में छिपी कटार चला कर खसिया कर दो। 'फिर म्लेच्छों द्वारा रानी के युद्ध में बचे पकड़े गए लोगों को गुलामो की तरह बरता गया। इसके बाद इन्हें फिरंगियों ने अपने काम का मोहरा बनाया। 'फिरंगी लोग मुसलमान नहीं बनाते थे' पीठ पर हाथ फेर कर गिरिजाघर ले जाते थे। हिंदू लोग मुंह फेर चूके थे तो ये घुमंतू कहां सहारा लेते ? गोरे कहते –तुम्हारा भगवान तुम्हे दगा दे गया,ईशु पर भरोसा करो। भूखे और खदेडे गए इन लोगों की आन बान कब की छू मंतर हो चुकी थी। मन बदला कि न बदला ,धर्म बदल गया। पर जब इन्हें ईसाइयत रास नहीं आई तो बगावत कर दी । फिरंगियों के हौसले फट गए। स्वतंत्रता के लिए पागल यह जनजाति फिर रानी झांसी की सेना में शामिल हो गए । अंग्रेजो ने इन्हें अपराधी जनजाति घोषित कर दिया।

अपना मूल काम छोड़ कर वे कुछ अन्य काम अपनाएगे तो धोखा ही खाएंगे।कदमबाई का बेटा चोरी चकारी का पुश्तैनी काम नहीं करना चाहता। वह चोरों को पकड़ना चाहता है। पर कदमबाई का मन घबराता है। 'यह ना समझ अपने रास्ते पर अकेला चलेगा। दूसरे ही कुचल मसक कर खतम कर डालेंगे। जिनमें ममता नहीं ,प्यार नहीं ,उनकी हमदर्दी का इंतजार करे सो मूरख।' कदमबाई पुत्र राणा को लड़ने की विद्या सिखाना चाहती है। वह राणा को समझाती है'ये जुग जुग के दगाबाज –तू ये न समझना कि हम इनसे मिलकर कज्जा हो जाएंगे। हम तो इनकी बोली बानी बोलते हुए भी इनसे अलग हैं। इनकी रोटी और हमारी टुक्क अलग नहीं है, पर भूख प्यास की कीमत अलग है।'

आज भी कबूतरा दुश्चक्र का शिकार हो रहे हैं। श्रीराम शास्त्री के चंगुल में फंसी अल्मा रोज अपनी मुक्ति का उपाय सोचती है। उसका मन विद्रोह पर उतारू है –'आप समझते हैं कि मैं जिंदा क्यों हूं ?बड़ी सीधी बात है,आप लोगों ने हमारी दुनिया उजाड़ी है ,मैं आपको उजाड़े बिना नहीं मरूंगी। मैं सबको बता दूंगी कि पाप कहां पलता है ?अपराध कौन लोग करते हैं ? सताने और मारने वाले ठेकेदार कौन लोग हैं?'

कबूतरा समाज में अशिक्षा का साम्राज्य है। भूरी महिलाओं को शिक्षा का महत्व समझाती है। इस समाज में अवैध संबंधों का चलन है।राणा , कदम बाई और मंसाराम के नाजायज संबंधों की संतान है। अल्मा और राणा के बीच भी विवाह पूर्व के संबंध बनते हैं।

निष्कर्ष – वस्तुत: मैत्रेयी पुष्पा का यह उपन्यास कबूतरा जनजाति के यथार्थ जीवन का दर्पण है। उपन्यास इस बात का आग्रह करता दिखता है कि इस जनजाति के लोंगों के साथ मानवीय व्यवहार किया जाना चाहिए तभी वे हमारी मुख्य जीवन धारा का हिस्सा बन सकेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. वाङमय, संपादक–डॉ0 एम0 फीरोज अहमद ,अलीगढ़
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नगेन्द्र, डॉ0 हरदयाल मयूर पेपर बैक्स नोएड़ा
3. आदिवासी अस्मिता और विकास ,शुक्ल म0प्र0 हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल
4. आदिवासी विकास एक सैद्धांतिक विवेचन ब्रह्मदेव शर्मा

****

मानव जीवन में धर्म और दर्शन का महत्त्व

डॉ. सरोज खरे *

प्रस्तावना – मानव जीवन में धर्म और दर्शन का महत्त्व उसका स्थान क्या है, यह ठीक–ठीक निश्चय करना अत्यन्त कठिन कार्य है, लेकिन फिर भी जिस तरह विभिन्न चिंतक सैद्धांतिक आग्रहों की जकड़ में होते हैं, उसी तरह का उनका दृष्टिकोण, उनकी विचारधारा धर्म–दर्शन के सम्बन्ध में बन जाती है। केवल एक ही चीज को निर्विवाद स्वीकार किया जा सकता है कि धर्म मानव सभ्यता के मूल उपादानों में से एक है, जिसकी जड़ें मानव चेतना की गहराईयों में कहीं है और जो विशाल वटवृक्ष की तरह सामाजिकता के आयाम में सर्वत्र छाया हुआ है। धर्म एक सामाजिक वास्तविकता है तथा वैयक्तिक संस्कारों में गहराई से समाया हुआ है।

मानव जीवन में धर्म की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए मैक्समूलर का कथन है कि –'मनुष्य का इतिहास, धर्म का इतिहास है।' काम्टे का कथन है कि –'सम्पूर्ण अस्तित्व धर्म के अंतर्गत है और धर्म का इतिहास सम्पूर्ण इतिहास को चित्रित करता है तथा मानव जीवन में धर्म की सर्वोपरि ग्राह्यता को ही रेखांकित करता है।'

जीवन में धर्म के महत्व के सही आकलन के लिए दार्शनिक दृष्टि से यह उचित होगा कि हम मानव के अंतर्तम में उसकी जड़ों की खोज करे क्योंकि मानव ज्ञान मानव चेतना की विशिष्ट वृत्ति के कारण ही संभव हो पाता है। धर्म व दर्शन की आधारभूत प्रेरणा एक ही है ये दोनों मानव जाति की दो सामान्य चैत आवश्यकताओं की अनुपूरक है – एक विश्वदृष्टि और दूसरी जीवनशैली। प्रथम के अंतर्गत मनुष्य प्रकृति की शक्तियों को समझने व उन पर नियंत्रण के सिद्धांत गढ़ता है और दूसरे के अंतर्गत वह मानव समाज में जीवनगत व्यवस्था के नियमों की उद्भावना करता है। अंतर केवल इतना है कि धर्म मनुष्य के जन्म के साथ उत्पन्न हो जाता है जबकि दर्शन एक वयस्क जागृत चिंतन का फल होता है। अत: धर्म और दर्शन दोनों का ही मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तविकता यह है कि धर्म में मानव चेतना को उसकी स्वाभाविक सम्पूर्णता की अभिव्यक्ति मिलती है और यही उसकी चिरजीविता का रहस्य है। ए.एन. व्हाइटहेड ने कहा है – 'धर्म के लिए दार्शनिक चिंतन आवश्यक है। वही उसे वांछित आधार प्रदान करता है। दर्शन में धर्म का संवेग पक्ष संतुलित रहता है और धार्मिक अनुभूति को प्रमाणिकता व निश्चितता मिलती है।' धर्म की दर्शन द्वारा ऐसी विवेक सम्मत व्याख्या के अभाव में प्राय: धार्मिक भाव–प्रवणता से धार्मिक अंधविश्वास व रूढ़िवादिता की जड़ें मजबूत होती है। मानव कल्याण व विकास की समग्रता की दृष्टि से यह आवश्यक है कि धर्म और दर्शन का परस्पर सहानुभूति मूलक सामंजस्य बना रहे, दर्शन में मानव व्यवहार व बुद्धि को दिशा देने वाले मूल्यों व सद्संकल्प की अंतर्धारा बहती रहे, तथा धर्म के आस्थामूलक संकल्प के हृदय में बौद्धिक अंतर्दृष्टि द्वारा दिशा बोध हो। अत: इस दृष्टि से मानव अनुभव तथा ज्ञान विज्ञान का धर्म सहित ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जो दार्शनिक चिंतन की परिधि में न आता हो।

दर्शन के अंतर्गत धर्म संबंधी चिंतन वस्तुत: दर्शन की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है चूंकि दर्शन समग्र मानव अनुभव एवं ज्ञान–विज्ञान का सारभूत चिंतन है, उनके संदर्भ में उद्घाटित सत्य का सम्यक् स्वरूप निर्वचन भी दर्शन का ही कार्य है। इस दृष्टि से भारतीय दर्शन परम्परा में दर्शन का रुढ़ अर्थ 'सत्य का साक्षात्कार' हुआ। यद्यपि मनुष्य के प्रत्येक अनुभव–क्षेत्र, प्रत्येक ज्ञान–विज्ञान में कोई न कोई सत्य उभरता है, उसकी तार्किक व प्रामाणिक प्रस्तुति केवल दर्शन द्वारा ही संभव हो पाती है।

धर्म और जीवन का सदा से ही अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध माना गया है। प्राचीन विचारधारा के अनुसार धर्म का केवल मनुष्य के वैयक्तिक जीवन में ही नहीं, बल्कि उसके सम्पूर्ण जीवन से अटूट सम्बन्ध है। धर्म ही मनुष्य के जीवन को सार्थक बनाता है, उसे गम्भीर दृष्टि प्रदान करता है तथा जीवन के परम उद्देश्य अथवा लक्ष्य की स्थापना करता है। इस प्रकार धर्म का मुख्य कार्य व्यक्ति और समाज के लिए एक स्वस्थ तथा स्थायी जीवन दर्शन का निर्माण तथा प्रतिष्ठा करना है। इस प्रकार मानव सभ्यता के विकास में तथा मनुष्य के इतिहास में धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। दिन–प्रतिदिन बढ़ने वाले नैतिक संकट ने यह सिद्ध कर दिया है कि धर्म का आश्रय लिए बिना समाज और राष्ट्र नैतिक संकट से मुक्त नहीं हो सकता। इस देश को यही जीवन दर्शन नैतिक दृष्टि से सम्पन्न तथा सुदृढ़ बना सकता है तथा जनमानस को अनुप्राणित कर सकता है पर यह इसी धर्म के द्वारा सम्भव हो सकता है जो वास्तविक हो, आध्यात्मिक तथा सार्वभौम हो और देश काल, सम्प्रदाय, परम्परा आदि की सीमाओं से बंधा हुआ न हो।

आज की शिक्षा में बालकों तथा युवकों के चारित्रिक विकास की कोई व्यवस्था नही है। स्वतंत्रता के उपरांत भारत सरकार ने एस. राधाकृष्णन तथा डी. एस. कोठारी की अध्यक्षता में विश्वविद्यालयीन शिक्षा के सम्बन्ध में दो कमीशन नियुक्त किये थे। इन दोनों कमीशनों ने मूल्यपरक धार्मिक शिक्षा की विश्वविद्यालयों में व्यवस्था करने पर पर्याप्त जोर दिया था। समान धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा के नाम से एक अन्य कमीशन की भी भारत सरकार द्वारा नियुक्ति हुई जिसके अध्यक्ष श्री श्रीप्रकाश थे। इस कमीशन ने भी मूल्यपरक धार्मिक शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया।

शिक्षा जगत आज घोर नैतिक संकट से ग्रस्त है, न केवल विद्यार्थीगण बल्कि शिक्षक समुदाय का एक बड़ा वर्ग अपने नैतिक दायित्व की अवहेलना करने लगा है। यह स्थिति विश्व विद्यालयों में अशांति, अव्यवस्था और अनुशासनहीनता का वातावरण उत्पन्न कर रही है। भारत की युग–युग से चली आ रही अविरल तथा उदात्त सांस्कृतिक धारा से धर्म निरपेक्षता तथा इहलोकवादी सिद्धांत और व्यवस्था को जोड़ना होगा यह तभी सम्भव है जब पश्चिम के आधुनिक धर्म विहीन सांस्कृतिक तथा भौतिकवादी वातावरण से प्राप्त धर्म निरपेक्षता के सिद्धांत को सार्वभौम धर्म पर प्रतिष्ठित किया जाय।

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.) भारत

रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, श्री अरविन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, राधाकृष्णन, जे. कृष्णमूर्ति ने ऐसे जीवन दर्शन पर प्रकाश डाला है जो भौतिकवाद तथा आध्यात्मवाद का एक उच्च तथा मूल्यात्मक स्तर पर समन्वय प्रस्तुत करता है।

यह समन्वय तथा एकात्मता सार्वभौम धर्म पर आधारित है। आज के बुद्धिजीवियों को जो इसकी आवश्यकता तथा अनिवार्यता को महसूस करते हैं, इस कार्य को आगे बढ़ाना है।

महान मनीषियों ने सार्वभौम धर्म की जो व्यवस्था की है और मानव कल्याण के लिए जिस जीवन-दर्शन पर प्रकाश डाला है उसकी उपेक्षा करना समाज और देश के हित में नहीं है। उन्होंने सार्वभौम धर्म पर आधारित जिस जीवन दर्शन की व्याख्या की है वह केवल व्यक्तियों को मोक्ष प्राप्त करने के लिए नहीं है, बल्कि उनकी विचारधारा समाज और देश के कल्याण के लिए है।

व्यक्ति तथा समाज की सर्वांगीण उन्नति तथा नैतिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष उसी जीवन दर्शन द्वारा संभव है जो बाह्य व्यवस्थाओं के अपेक्षित परिवर्तन के साथ ही मानव समुदाय के मानस अथवा चेतना के आमूल नैतिक तथा आध्यात्मिक परिवर्तन में विश्वास रखता है और उसे उचित दिशा प्रदान कर सकता है। लोकतंत्रीय समाजवाद इस उद्देश्य को प्राप्त करने में तभी समर्थ होगा जब वह सार्वभौम धर्म पर आधारित हो, वह धर्म सापेक्ष हो। अत: धर्म सापेक्ष समाज-दर्शन इस युग की परम आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. तुलनात्मक धर्म दर्शन - प्रो. श्री प्रकाश दुबे, डॉ. अविनाश श्रीवास्तव
2. धर्म दर्शन मीमांसा - राजेन्द्रप्रसाद पांडेय
3. धर्म दर्शन की भूमिका - जयप्रकाश शाक्य
4. धर्म दर्शन - डॉ. रामनारायण व्यास
5. धर्म दर्शन - डॉ. रामप्रसाद सिन्हा
6. समकालीन धर्म दर्शन - डॉ. याकूब मसीह

****

सूर साहित्य में बाल – काव्य

डॉ. डी. एस. कनेल *

प्रस्तावना – बाल–साहित्य लेखन की परम्परा हिन्दी साहित्य में प्राचीन काल से विद्यमान रही है । बाल साहित्य के अंतर्गत वह शिक्षाप्रद साहित्य आता हैं, जिसका लेखन बच्चों के मानसिक स्तर एवं उनकी उम्र को ध्यान में रखकर किया जाता है। हिन्दी बाल–साहित्य में रोचक शिक्षाप्रद बाल–कहानियाँ, बाल–गीत, बाल–उपन्यास एवं बाल –कविताएँ लिखी जाती रही है। पंचतंत्र की कथाएँ बाल–साहित्य का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। पंचतंत्र की कहानियों में पशु–पक्षियों को माध्यम बनाकर बच्चो को महत्वपूर्ण शिक्षाप्रद प्रेरणा दी गई है। पंचतंत्र हितोपदेश, अमर–कथाएँ एवं अकबर–बीरबल के किस्से बच्चों के साहित्य में शामिल हैं।

बच्चों की रूचि, कल्पना, बौद्धिक क्षमता, सूझ–बुझ, परिवेश एवं मानसिकता इत्यादि को केन्द्र में रखकर लिखा गया साहित्य भी बाल–साहित्य माना गया है। बाल–साहित्य को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है – 1.बालकों के लिए लिखा गया साहित्य 2.बालकों द्वारा लिखा गया साहित्य एवम् 3.बालकों के सम्बन्ध में लिखा गया साहित्य । सूरदास रचित बाल–साहित्य तीसरे प्रकार की श्रेणी के अंतर्गत आता है।

सूरदास का नाम कृष्ण भक्ति–धारा को प्रवाहित करने वाले भक्त कवियों में सर्वोपरी है। हिन्दी साहित्य में भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक और ब्रज भाषा के श्रेष्ठ कवि सूरदास हिन्दी साहित्य के सूर्य माने जाते है। सूरदास ने सूरसागर के दशम स्कन्द (पूवार्द्ध) में कृष्ण की बाल–लीला वर्णन का जो प्रसंग दिया है। वह अति महत्वपूर्ण माना गया है। इस प्रसंग के कारण ही उन्हें वात्सल्य रस का सम्राट कहा जाता है।

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायों।
मोसौं कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसूमति कब जायौ।
कहा करौं इहि रिस के मारै खेलन हौं नहिं जात।
पुनि–पुनि कहत कौन है माता, कौ है तेरौ तात।
गोरे नंद जसोदा गोरी तू कत स्यामल गात।
चुटकी दै–दै ग्वाल नयावत, हँसत सबै मुसुकात।
तू मोहीं कौं मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन मुख रिस की ये बातैं, जसुमति सुनि–सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत।
सूर श्याम मोहि गोधन की सौं, हौं माता तू पूत।

सूरदास ने वात्सल्य रस को मुख्य रूप से अपनाया है। सूर ने अपनी कल्पना और प्रतिभा के सहारे मुख्य रूप से बाल्य–रूप का अति सुंदर, सरस, सजीव और मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है।

बालको की चपलता, स्पर्श, अभिलाषा एवं आकांक्षा का वर्णन करने में विश्वव्यापी बाल –स्वरूप का चित्रण सूर ने अपने काव्य में किया है। बाल–कृष्ण की एक–एक चेष्टाओं के चित्रण में उन्होंने कमाल की होशियारी एवं सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है–

मैया, कबहिं, बढैगी चौटी?
कितीं बार मोहि दूध पियत भई,यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों, हवै है लाँबी–मोटी।
काढ़त–गुहत न्हवावत जैहे, नागिनी सी भुइँ लोटी।
काचौ दूध पियावति पचि–पचि,देती न माखन–रोटी।

सूर ने अपने साहित्य में बाल–काव्य का जितना अधिक सुंदर वर्णन अपनी बंद आँखो से किया है, उतना और कोई दूसरा कवि आज तक नहीं कर पाया । सूरदास के बाल काव्य के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुल लिखते है कि **'वात्सल्य के क्षेत्र में जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखो से किया, इतना किसी और कवि ने नहीं । इन क्षेत्रों का तो वे कोना–कोना झाँक आये।' यथा :**

जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरौं लाल घुटुरूवनि रेंगै, कब धरती पग द्वैक धरै।
कब द्वै दाँत दूध कै देखौ, कब तोतरें, मुख बचन झरै।
कब नंदहि बाबा कहि बोले, कब जननी कहि मोहिं ररै।
कब मैरो अँचरा गहि मोहन, जोइ–सोइ कहि मोसौं झगरे।
कब धौं तनक–तनक कछु खहै, अपने कर सौं मुखहिं भरै।
कब हँसि बात कहैगो मोसौं, जा छबि तैं दुख दूरि हरै।
स्याम अकेले आँगन छाँडे, आपु गई कछु काज घरै।

सूर के बाल–काव्य वर्णन की विशदता नाप सकना सरल नहीं । कृष्ण जन्म की खुशी, बधाई के बाद उनकी बाल–लीलाएँ शुरू हो जाती है और चलचित्र की भाँति ये चित्र से एक जिज्ञासापूर्ण तथा भावात्मक आकर्षण मनोरथ सिद्ध होते चलते है। इन लीलाओं में यशोदा के आँगन में कृष्ण की कमनीय क्रीड़ाएँ, देहरी लाँघना, चन्द्रखिलौने के लिए हठ, बाल–ग्वालों के साथ खेलना, माखन चोरी करना, गोचारण, गोदोहन लीलाएँ अपने सुमधुर आकर्षक रूप धारण करके सम्मुख आती है। यथा:

मैया मैं नहिं माखन खायौ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरैं मुख लपटायौ।
देखि तुहीं सीकै पर भाजन, ऊँचे धरि लटकायौ।
हौं जू कहत नान्हे कर अपनैं मैं कैसें करि पायौ।
मुख दधि पौंछि, बुद्धि इक कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ।
डारि साँटि मुसुकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ।
बाल–बिनोद मोद मन मोह्यौं, भक्ति प्रताप दिखायौ।
सूरदास जसुमत कौ यह सुख, सिव बिरंचि नहिं पायौ।

शिशु पल–पल बढ़ता है तो बड़े होकर पालना छोड़कर घुटनों के बल पर चलने लगता है और अपनी परछाई से खेलने लगता है । यथा :

किलकत कान्ह घुटुरूवनि आवत।
मनिमय कनक नंद कै आँगन, बिंब पकरिबै धावत।

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय महाविद्यालय, सांवेर, जिला- इन्दौर (म.प्र.) भारत

कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौं, कर सौं पकरन चाहत।

खेल-खेल में बालकों का आपस में गुस्सा होना, रूठना तर्क-वितर्क करना और बाद में मेल-मिलाप होना आदि क्रियाओं का सूर ने सुंदर वर्णन प्रस्तुत किया है-

खेलत मैं को काको गुसैयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस हीं कत करत रिसैयाँ।
जाति पाँति हमतैं बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातैं, जातैं अधिक तुम्हारे गैयाँ।
रूठहि करै तासौं को खेलो, रहे बैठि जहँ-तहँ सब ग्वैयाँ।
सूरदास प्रभु खेल्यौइ चाहत, दाऊँ दियौं करि नंद-दुहैयाँ।

वस्तुत: सूरदास ने अपने साहित्य में कृष्ण के बालरूप के माध्यम से बालकों की प्रत्येक क्रियाओं का सूंदर व सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। सूर के बाल-काव्य के माध्यम से माता-पिता , बच्चों के लालन- पालन, विकास एवं चेष्टाओं इत्यादि से संबंधित जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त कर सकते है। इस प्रकार बच्चों के बहुमुखी और सर्वांगीण विकास में भी सूर कृत बाल काव्य उपयोगी साबित हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. सूरसागर -सूरदास
3. बाल साहित्य का इतिहास - जय प्रकाश भारती
4. हिन्दी बाल साहित्य का इतिहास- अखिलेख श्रीवास्तव चमन
5. विक्कीपीडिया एक मुक्त ज्ञानकोश

****

विजयी बसंत : परंपरागत् संस्कारों की बेड़ियाँ

डॉ. संध्या खरे *

शोध सारांश – विजयी बसंत उपन्यास में आशापूर्णा देवी ने समाज की परंपरागत सोच; जिसके अनुसार पुत्र ही परिवार का मुखिया होता है को रेखांकित किया है। पुत्र यदि परिवार की जिम्मेदारी छोड़ दे, पुत्र यदि परिवार, माता–पिता का पालन करते हुये माता–पिता को खरी–खोटी सुनाये, अधिकार जमाये, यदि पालन न भी करे तो भी वह परिवार का मुखिया है। इसके विपरीत पुत्री परिवार के जिम्मेदारी उठाने के बावजूद परिवार के लिये बोझ है। पुत्र सोना है और पुत्रियां धूल उपन्यास की अनुपमा देवी हिन्दू समाज की इसी परंपरागत् संस्कार की बेड़ियों से जकड़ी हुई स्त्री हैं।

प्रस्तावना – बँगला साहित्य –गगन में असंख्य सितारे दीप्तिमान् हैं, जिनमें एक चमकता सितारा अपनी विशिष्टता से अनायास ही हमारी दृष्टि को आकर्षित कर लेता है। इसमें भड़कीली चमक–दमक तो नहीं है पर इसका समुज्जवल प्रकाश निरंतर हमें मंदिर के उस दिये की याद दिलाता है, जो न केवल अंधकार दूर करता है बल्कि जीवन के प्रति एक अटल विश्वास जगा जाता है। इस सितारे का नाम है आशापूर्णा देवी।

मात्र तेरह वर्ष की अवस्था में उन्होंने लिखना प्रारंभ किया और जीवन के अंतिम दिनों तक लिखती रही। अपने सारे कर्तव्य पूरी तरह निभाते हुए, आचार–विचारो तथा पारिवारिक मान्यताओं–परंपराओं को पूर्ण समादर देते हुए भी वे साहित्य–सर्जन के कार्य में सतत प्रयत्नशील रही।

विजयी बसंत उपन्यास में आशापूर्णा देवी ने समाज की परंपरागत सोच को रेखांकित किया है। उपन्यास की नायिका अनन्या की माँ अनुपमा इसी परंपरागत् सोच के कारण मानती हैं कि पुत्र ही परिवार का मुखिया हो सकता है, भले ही पुत्र परिवार के प्रति जिम्मेदारी का निर्वाह न करे। अनुपमा के मन में बेटा–बहू के प्रति संस्कारगत् मोह है। बेटे के साथ रहने पर समाज में उनकी प्रतिष्ठा थी क्योंकि अब तक वह एक अच्छी सुखी गृहस्थी की गृहिणी थी। लड़का, बहू, पोता, बेटा–बेटी, सजा–सजाया घर..... बाहर से देखो तो बस गृहस्वामी नहीं थे – बाकी सब जहाँ का तहाँ था।[1]

पुत्र के साथ में रहते हुये भी माता व छोटे भाई का व्यय भार अनन्या ही उठाती है किंतु बाहरी समाज के सामने अनुपमा की, परिवार की प्रतिष्ठा बनी रहती है। परिवार का आवरण, परिवार का परदा बना रहता है। किंतु कामकाजी कमाऊ पुत्री के प्रति पुत्रवधू सुनीला की ईर्ष्या भावना के कारण तथा अन्य घरेलू कलह के कारण बेटा परिवार त्यागकर, साथ ही साथ माता–भाई की जिम्मेदारी भी त्यागकर अपनी पत्नी के साथ स्वतंत्र गृहस्थी बसा लेता है।

संयुक्त गृहस्थी में बेटी अनन्या और बहू सुनीला दोनों के अहम् में टकराव होता है। टकराव का एक प्रमुख कारण अनन्या का कमाऊ होना भी है साथ ही साथ उसका परिवार के मुखिया पद का हिस्सेदार होना भी। सुनीला सोचती बिन ब्याही ननद ? जो जीवन के रूप, रस, गंध, स्पर्श हर कुछ की सोलहों आने हिस्सेदार बनकर आसन बिछाये बैठी हो ? ऐसे को कौन बर्दाश्त कर सकता है।[2]

इस टकराव का एक कारण खुद अनामिका भी है। बहू सोचती कि सास इतनी बूढ़ी नहीं है कि दोनों वक्त का खाना न बना सकती हो।.....पर अनन्या कहती मां को दोनों वक्त आग के सामने नहीं जाने दिया जायेगा।[3]

अनन्या के हस्तक्षेप के कारण अनामिका मालकिन के पद पर बनी हुयी हैं अन्यथा सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से वे पूरी तरह पुत्र पर आश्रित हो जाती। इसलिये बेटे–बहू के साथ रहते समय मां अपने अक्लविहीन बेटे और उसकी बहू से नाराज रहती हैं और बुद्धिमती ' हृदयवती ' कन्या के प्रति अगाध स्नेहसिक्त।[4]

अधिपत्य की मौन छीन–झपट, मौन मान–अभिमान का परिणाम होता है कि बेटा स्वतंत्र गृहस्थी बसा लेता है। परंतु सास अनुपमा में यह अधिकार भाव नहीं है। वे पुरानी पीढ़ी की सर्मपणशील महिला है; पति, पुत्र, बहू, पुत्री, पड़ोसिने सबके प्रति विनम्र, कर्तव्यपरायण। परंतु नयी पीढ़ी की अनन्या या बहू सुनीला उनके जैसी विनम्र, अधिकारबोध, स्वाभिमानबोध रहित नहीं है।

बेटे अभिष्ट के पत्नी –बेटे सहित अलग गृहस्ती बसाते ही अनुपमा के मन में असुरक्षा का भाव जाग उठता है। पुरूष पर निर्भर उनका मन लड़खड़ा जाता है। उन्हें लगा कि सैकड़ों परेशानियाँ हैं। कहाँ अवस्था प्राप्त लड़की अपने पति के साथ अपने घर जायेगी, सो नहीं, मुझे लड़की की कमाई पर बैठकर खाना पड़ रहा है।..... जबकि – जब तक लड़का साथ रहता था तब तक लड़की से हाथ फैलाकर उसकी कमाई लेते माँ को जरा भी ग्लानि नहीं हुयी।....उस रूपये को लेते समय अन्न की ग्लानि प्रकट नहीं होती थी।[5]

बेटे के जाते ही पुत्री पर आश्रित होने की स्थिति समाज के सामने स्पष्ट होते ही उन्हें आत्माभिमान एवं पुरूषविहीन निराश्रित होने का संस्कार पीड़ित करने लगा। बेटा–बहू पोतायुक्त परिवार की मालकिन का कलेवर व संतोष नष्ट होते ही उनके मन में पुत्री के प्रति असंतोष बढ़ने लगा। बेटे–बहू के प्रति अपने पूर्व के आक्रोश को अनुपमा पूरी तरह भूलकर सोचने लगी लड़की के कारण मैं लड़का गवाने बैठी हूँ।[6]

जैसे–जैसे उनका आक्रोश बढ़ता गया वैसे–वैसे अनुपमा को अनन्या के सारे कार्य शासन से लगने लगे। उसका प्रत्येक कार्य अन्याय लगने लगा। यह अभियोग जब–तब दूसरों के सामने व्यक्त होने लगा। बेटा सोना है और बेटी धूल है की परंपरागत् धारणा उनके मुख से मुखर हो उठी कि मैंने सोना फेंककर आंचल में धूल बांधा है। वंशधर को विदा करके लड़की का कहना मान रही हूँ।[7]

मां के मनोभावनाओं को जानने के बावजूद अनन्या अपने घर को छोड़ नहीं पाती क्योंकि अनन्या की विधवा माँ और नाबालिग भाई ने उसे नागपाश में लपेट रखा है। क्योंकि अनन्या का दादा अपने उत्तरदायित्वों से अपने को मुक्त करके चला गया है।[8]

* प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय महाराजा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र) भारत

अनन्या माँ के प्रति क्षमाशील दृष्टि रखते हुये सोचती उनकी मनोकामना के पीछे शायद युगों का संस्कार काम कर रहा था।.... इसलिये आज वह लड़की से ज्यादा बहू को 'अपना' समझ रही थी।[9]

आशापूर्णा देवी ने आधुनिक युग के जटिल आधुनिक बोध पर अनेक प्रश्नचिन्ह इस उपन्यास के माध्यम से खड़े किये हैं। एक ओर बेटा-बेटी के समान होने का पाखण्डपूर्ण दिखावा दूसरी ओर एक मामूली धक्के से इस सारे पाखण्ड का पर्दाफाश हो जाना। अनुपमा की भांति अनेक स्त्रियां परंपरागत् एवं आधुनिक सोच के मध्य भटकती दिखाई देती हैं। विषम परिस्थिती पड़ते ही, बेटी-बेटे में से एक का चुनाव करने की स्थिति आते ही उनका मन सहज परंपरागत् सोच के अनुरूप बेटे का ही अनुगामी होता है, बेटी का नहीं। बेटा वंशधर है, बेटा सोना है और बेटियां धूल इस परंपरागत् सोच की बेड़ियों से आधुनिक समाज का मन आज भी आबद्ध है, इस सत्य को विजयी बसंत उपन्यास में बड़ी सफलता के साथ रेखांकित किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. आशापूर्णा देवी : विजयी बसंत, सन्मार्ग प्रकाशन प्रा0 लि0, दिल्ली-110030, संस्करण प्रथम,2001 पृष्ठ क्रमांक -55
2. आशापूर्णा देवी : विजयी बसंत, सन्मार्ग प्रकाशन प्रा0 लि0, दिल्ली-110030, संस्करण प्रथम,2001 पृष्ठ क्रमांक -41
3. आशापूर्णा देवी : विजयी बसंत, सन्मार्ग प्रकाशन प्रा0 लि0, दिल्ली-110030, संस्करण प्रथम,2001 पृष्ठ क्रमांक -41
4. आशापूर्णा देवी : विजयी बसंत, सन्मार्ग प्रकाशन प्रा0 लि0, दिल्ली-110030, संस्करण प्रथम,2001 पृष्ठ क्रमांक -42
5. आशापूर्णा देवी : विजयी बसंत, सन्मार्ग प्रकाशन प्रा0 लि0, दिल्ली-110030, संस्करण प्रथम,2001 पृष्ठ क्रमांक -56
6. आशापूर्णा देवी : विजयी बसंत, सन्मार्ग प्रकाशन प्रा0 लि0, दिल्ली-110030, संस्करण प्रथम,2001 पृष्ठ क्रमांक -43
7. आशापूर्णा देवी : विजयी बसंत, सन्मार्ग प्रकाशन प्रा0 लि0, दिल्ली-110030, संस्करण प्रथम,2001 पृष्ठ क्रमांक -101
8. आशापूर्णा देवी : विजयी बसंत, सन्मार्ग प्रकाशन प्रा0 लि0, दिल्ली-110030, संस्करण प्रथम,2001 पृष्ठ क्रमांक -105
9. आशापूर्णा देवी : विजयी बसंत, सन्मार्ग प्रकाशन प्रा0 लि0, दिल्ली-110030, संस्करण प्रथम,2001 पृष्ठ क्रमांक -98

****

मानवीय संवेदनाओं के मौन शिल्पी : अज्ञेय

डॉ. सरोज जैन *

प्रस्तावना – अज्ञेय की चर्चा बहुत हुई, मूल्यांकन अपेक्षोंत कम। उनके मूल्याकंन में उनका भव्य विवादास्पद व्यक्तित्व लगातार आड़े आता रहा है। फलत: उससे मुक्त होकर उनके व्यक्तित्व को न तो उनके समर्थक देख सके न ही उनके विरोधी। परन्तु इसमें रचनाकार अज्ञेय का दोष नहीं था कि उन्हें प्रकृति ने इस खास तरह के साँचे में ढ़ाल कर बनाया था। वह जो थे वही थे– अपनी रचना में भी और उसके बाहर भी।

आज की हिन्दी कविता में अज्ञेय जी का स्थान अन्यतम है। हिन्दी कविता अज्ञेय की अद्धितीय काव्य प्रतिभा से प्रभावित है। प्रगतिवाद और नई कविता को साहित्य जगत में प्रतिष्ठित करने का श्रेय अज्ञेय जी को है। कवि, कथाकार, निबंधकार संपादक और अध्यापक और के रूप में अज्ञेय जी का अप्रतिम योगदान है।

अज्ञेय का जन्म 07 मार्च 1911 में कासिया, देवरिया उत्तरप्रदेश के एक शिविर में हुआ सन् 1943 में तारसप्रक के प्रकाशन से वे नये काव्य के प्रवर्तक, संपादक और रचनाकार के रूप में सामने आये। उनका बचपन लखनऊ, कश्मीर, बिहार और मद्रास में बीता। शिक्षा मद्रास और लाहौर में हुई। बी.एससी.के बाद अंग्रेजी से एम.ए.की पढ़ाई करते समय क्रांतिकारी आन्दोलन में भाग लेने के कारण गिरफ्तार हुयें और 1930 से 1934 तक जेल में रहे

संपादक के रूप में अज्ञेय जी का व्यक्तित्व प्रभावोत्पादक रहा। सैनिक, विशाल भारत, बिजली, प्रतीक वाक (अंग्रेजी त्रैमासिक) और बाद में नया प्रतीक का सम्पादन किया एवं 1965 से 1968 तक दिनमान का और कुछ समय तक नवभारत टाइम्स का सम्पादन किया। 1943 से 1946 तक तीन वर्ष सेना में रहने के बाद कुछ वर्ष आकाशवाणी में रहे। उन्होने एशिया और यूरोप की अनेक यात्राएँ की।

अज्ञेय जी को यह नाम जैनेद्र ने दिया। एक अंतर्मुखी रचनाकार के रूप में उन्होंने जीवन के अनुभवों को अपने साहित्य में वर्णित किया कविता को वे कवि का परम वक्तव्य मानते थे। कहानी संकलन कोठरी की बात और उपन्यास शेखर एक जीवनी लिखने की प्रेरणा उन्हें अपने क्रांतिकारी जीवन और जेल में प्राप्त अनुभवों से मिली। अज्ञेय जी का सहित्य बहुआयामी है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, समालोचना, यात्रा साहित्य गद्य और निबंध आदि में लिखित साहित्य उनकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचायक है। भग्नदूत, चिन्ता, इत्यलम, हरीघास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, अरी ओ करूणा प्रभामय, आगन के पारद्धार, सुनहरे शैवाल, कितनी नावों में कितनी बार, क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, सागर मुद्रा पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ, महावृक्ष के नीचे, सदा नीरा भाग–1, 2 उनके काव्य सकंलन हैं।

नदी के द्वीप, अपने–अपने अजनवी, शेखर एक जीवनी भाग–1, 2 जैसे उपन्यास लिखे तथा आत्मने पद, आलवाल, भवन्ती जैसे ग्रंथ भी लिखे, प्रतिभा सम्पन्न कवि, शैलीकार, कथा साहित्य को महत्वपूर्ण मोड़ देने वाले कथाकार, ललित निबंधकार, संपादक और सफल अध्यापक के रूप में अज्ञेय जी का व्यक्तित्व विलक्षण रहा। प्रसिद्ध साप्ताहिक दिनमान का आंरभ और संपादन किया। सन् 1980 में आपको ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

केदारनाथ सिंह के अनुसार बड़ा विचारक और रचनाकार वह होता है जो केवल समर्थक पैदा नहीं करता बल्कि दूसरों का अपनी मान्यताओं को परखने और उनसे बार–बार टकराने का आमंत्रण देता है। अज्ञेय में अपने से भिन्न विचारों को उकसाने, जगाने और झकझोरने की अदभुत क्षमता थी और ऐसा वही कर सकता है जो अपनी मूलभूत मान्यताओं के प्रति गहरी निष्ठा रखता हो और उसकी जड़े कहीं बाहर नहीं, स्वंय उनकी अक्षय रचनात्मक ऊर्जा के भीतर थी यह रचनात्मक ऊर्जा ही अज्ञेय की सबसे बड़ी शक्ति थी। रचना और विचार की जैसी घुलावट अज्ञेय के सार्थक व्यक्तित्व में थी वैसी अन्यत्र कम ही मिलेगीं।

अज्ञेय के व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पक्ष उनका मौन था। उनके मौन के अनुशासन से अधिक उनकी संयत चेतना का प्रवाह मिला हुआ था। अज्ञेय मितभाषी इसलिए नहीं थे कि वे अह्मवादी थे, बल्कि इसलिए कि वे शब्दों के धनी थे और धनी वह है जो अपव्यय नही करता। कभी–कभी उनकी मितभाषिता खलती थी लेकिन उसे नहीं जो उन्हें जानता था कि वे अनुशासन प्रिय व्यक्ति हैं।

अज्ञेय अपने जीवन में जितने मौन थे रचना में इससे भी कहीं अधिक। उनकी शुरूआत की कविताओं में यह मौन जब आता था तो वह एक सहज मौन होता था अधिक खुला और जीवंत। हरीघास पर क्षण भर तक की कविताओं में इसे साफ तौर पर देखा जा सकता है। धीरे–धीरे उनका वह मौन अधिक गरिमा मंडित होता गया और इसीलिए अधिक असहज भी। फिर तो मौन का अपना दर्शन भी बन गया जिसकी व्याख्या अज्ञेय ने बार–बार अपनी कविताओं में भी की है और अपनी गद्यें तियों में भी काफी हद तक इस मौन को हम अज्ञेय की स्व भावगत चुप्पी के साथ देखने के अभ्यस्थ भी हो गए।

अज्ञेय सम्पूर्ण साहित्यकार थे सम्पूर्ण इस अर्थ में कि उनका रचनात्मक व्यक्तित्व अनेक दिशाओं में फैला हुआ था अज्ञेय केवल कवि नहीं थे। यद्यपि उनकी पहचान एक कवि रूप में बनी। अज्ञेय जी ने व्यक्ति की स्वाधिनता और उसके ऊपर आये संकट की गहरी समझ थी वे मानव सभ्यता में रचनात्मक मूल्यों की पहचान करते और कराते थे अज्ञेय चोट खाकर परम्परा की तरफ

* प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला - सागर (म.प्र.) भारत

नहीं मुड़ते न किसी भविष्यवादी दर्शन की ओर। वह अपनी तरफ मुड़ते हैं जहाँ वह स्वतंत्र रूप से अपनी परंपरा से जुड़ सकते है, अपने भविष्य को चुन सकते हैं। आलोचकों ने जिसे अज्ञेय को अहं माना है वह वास्तव में लेखक का कवच है। सिर्फ अपने को सुरक्षित रखने का यंत्र नहीं बल्कि उन मूल्यों को बचाने का साधन भी जो नष्ट हो रहे है, जिन्हें जानबूझकर प्रगति, आधुनिकता और युग धर्म के नाम पर नष्ट किया जा रहा है।

अज्ञेय अधिकांश समय 'मैं' से उठकर अन्य की ओर जाते है अन्य से मुड़कर 'मै' की और। अज्ञेय ने अपने मैं इस अकेलेपन में ही अपना 'स्पेस' खोजना चाहा है। यह अकेलापन ओढ़ा हुआ नहीं है, दिखावटी नहीं है। इसका एक छोर यदि अज्ञेय की आत्म सुरक्षा से जुड़ा है तो दूसरा छोर हिन्दी साहित्य के उस भयावह वातावरण से बँधा है जिसमें अज्ञेय ने अपने सर्वश्रेष्ठ वर्ष गुजारे हैं। अज्ञेय ने लिखा है मैं अकेलापन चुनता नहीं, स्वीकारता हूँ यह स्थिति ही उन्हें आत्म केन्द्रित होने से बचा लेती है। अज्ञेय में दूसरों तक पहुँचने की गहरी ललक और संप्रेषणीयता में अदम्य वि6वास हे।

अज्ञेय जीते नहीं थे, भोगते थे। अज्ञेय के लिए सुख निरंतर अपने साथ रखने वाली वस्तु नहीं वरन साझेदारी वाली वस्तु थी। दु:ख उन्हें जितना मांजता था सुख उन्हें उतना ही नहलाता था। अज्ञेय सुख-दुख में डूबते नहीं थे। वे दोनों को टांककर रखते थे। इसीलिए अज्ञेय को पहचानना कठिन था। अज्ञेय अपने प्रति निर्मम थे पर दूसरे की सांस जीते थे। इतनी व्याप्ति और इतनी समाप्ति वाला सर्जक शायद दूसरा नहीं मिलेगा। अज्ञेय के व्यक्तित्व में जो संवेदनशीलता थी वह दुर्लभ है।

अज्ञेय सौन्दर्यवादी थे, लेकिन वह सौंदर्य जिसमें जीवन का सब कुछ हो हर्ष, विषाद, उल्लास आदि सभी कुछ। अज्ञेय जो देते थे वह सुरूचि संपन्न होता संयत, अनुशासित और प्रामाणिक लेकिन जो लेते थे वह तिक्त, कटु, और कसैला था। हर रचना का माध्यम वे स्वंय थे लेकिन उनका स्वयं एक छन्नी था जो हर अनुभव को छानकर बाहर जाने देता था और इसे छानने में जो भी कटु और तिक्त होता था वह उनके स्वयं का भाग था और जो भी सुदंर था वह मधु, रूचिपूर्ण सबका था। उन्होंने लिखा भी हैं - मैं प्रेत हूँ। जितना रूपाकार-सारमय दीख रहा हूँ। खेत हूँ फोड़-फोड़ कर जितने को तेरी मैंने अनजाने, पहचाने आपने ही मनमाने अंकुर उपजाति है बस उतना मैं खेत हूँ।

अज्ञेय का सौदर्य बोध थहनेय की थाह लगाने की यात्रा है। अज्ञेय कहते हैं - 'आह हमें जो सरसाता है वह छिपा हुआ पानी है। हमारी इस जानी-पहचानी माटी के नीचे का रीतता नही, बीतता नहीं।' अज्ञेय का सौंदर्य - बोध इस न बीतने, न रीतने वाले क्षण की अविराम यात्रा है। इसीलिए अज्ञेय का सौदर्य बोध ठहराव का सौंदर्य बोध नही एक निरन्तर यात्रा का सौन्दर्य बोध है। वे विलीन हो जाने वाले कवि नहीं व्यस्त हो जाने वाले कवि हैं।

अस्मिता की तलाश अज्ञेय की मानसिक यात्रा थी। उस यात्रा में वे सदैव अकेले रहे। बीसवीं शताब्दी से इक्कीसवीं शताब्दी में छलांग मारकर जाने वाले के प्रति अज्ञेय चिंतित थे। इस दौड़ को वे निरर्थक समझते थे। उन्हें चिंता थी कि क्या भारत की वर्तमान स्थिति आपनी पहचान के साथ विकसित हो रही है।

'अज्ञेय' मुख्यत: अन्तर्मुखी कलाकार हैं। उनके जीवन का साहित्य से विशेष संबंध है। अज्ञेय विकासशील कवि हैं। मानवतावाद नयी कविता की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। अज्ञेय अपने परवर्ती काव्योन्मेष में व्यक्ति के समाजीकरण पर बल देते हैं। 'यह दीप अकेला' नया कवि : आत्मोपदेश आदि कविताओं में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है -

'प्यास पर तू विजय पा पर
और जो प्यासे मिले, उनके लिए
चुपचाप, निश्चल, स्वच्छ, शीतल
प्राण रस से भर।'

अज्ञेय के सौदर्य, उनके शिल्पी मन और मौन साधक की आत्मा को पहचानने के लिए एक विरागी मन की आवश्यकता है। अज्ञेय उस वैराग्य के भोक्ता है जो दूसरों तक पहुँचते - पहुँचते एक नया राग बोध देता है। अज्ञेय इसीलिए उस अपराजेय विवशत को हर क्षण भोगने वाले कवि और सर्जक है जो हर अनुभूति के बाद नये होकर निकलते है। अज्ञेय ने लिखा भी है -

आह, वह तेरे दे दिए गए हास्य में उतरा मेरे स्वीकारी आंसू में ढलका वह अब जाना अनपहचाना आया वह इन सबके और हर माध्यम से अपने में अपने को लाया अपने को समाया।

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि अज्ञेयजी का जीवन और लेखन उस बगीचे की तरह है जिसकी हर पंक्ति उनके हाथ की हरकत था आँखों की पुतलियाँ या चेहरे के मुस्कान जैसे कांट-छांट कर बनाई गई 'यारी की तरह लगती थी। वे अपने जमाने के साहित्य के महाद्धीप थे।'

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अज्ञेय परिचय और प्रतिनिधि कविताएँ संपादक विद्यानिवास मिश्र
2. अपने से बाहर है कवि का घर- केदारनाथ सिंह जनसत्ता 12.4.87
3. स्वतंत्र करने वाला व्यक्तित्व-रघुवीर सहाय जनसत्ता 12.4.87
4. अज्ञेय आधुनिक बोध की पीड़ा - निर्मल वर्मा दिनमान - 17.2.80
5. काल की निरंतरता में अज्ञेय- लक्ष्मीकांत वर्मा जनसत्ता 12.4.87
6. आधुनकिता के अग्रदूत थे अज्ञेय, अमृत प्रीतम जनसत्ता 12.2.87
7. नयी कविता डॉ.कांतिकुमार जैन
8. छायावादोत्तर काव्य- डॉ.शिवमंगल सिंह सुमन, डॉ.विजय बहादुर सिंह
9. जो सन्नाटे के छंद थे - प्रभाष जोशी जनसत्ता 60487
10. आजकल जून 1987
11. हिन्दी साहित्य कोश भाग - 2 डॉ.धीरेन्द्र वर्मा

****

नारी विमर्श का हिन्दी साहित्य व समाज पर प्रभाव

डॉ. मिथिलेश अग्निहोत्री *

प्रस्तावना – साहित्य समाज और संस्कृति से स्वतंत्र भारत में समाज प्रमाणित होता है। महिलाओं के प्रति जो चेतना जागृत हुई उसने समाज साहित्य और संस्कृति को प्रभावित किया साथ ही ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं बचा जहां स्त्री अपना परचम न फेहरा रही हो स्त्री ने पुरानी मान्यताओं को तोड़ा है और अपने अनुकूल नए मानदण्डों का निर्माण स्वयं किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के आठवें दशक में अनेक महिलाओं उपन्यासकारों ने अपनी रचना धर्मिता का परिचय दिया। जिसमें नारी अपने यथार्थ रूप में प्रस्तुत हुई है। ये नारी विभिन्न वर्गों और स्तरों से सम्बद्ध है। नारी के व्यक्तिगत संबंधों और दाम्पत्य में आये अलगाव और टूटन का चित्रण किया गया है। जहां नारी अपने स्वतंत्र अस्तित्व की स्थिरता का प्रयास करती दिखाई देती है। कृष्णा अग्निहोत्री का 'बात एक औरत की', मृदुला गृग का 'उसके हिस्से की धूप', तथा 'चितकोबरा', शशि प्रभा शास्त्रि का 'सीढ़िया', कांता –भारती का 'रेत की मछली' , मेहरून्निसा परवेज का 'कोरजा' है। जो व्यक्ति की आर्थिक, राजनीतिक स्थितियों और उलझनों से सम्बद्ध है। मन्नु भंडारी का महाभोज, ममता कालिया का नरक दर नरक, कृष्णा अग्निहोत्री का 'टपरे वाले', और 'अनित्य', मंजुल भगत का 'अनारो' आदि इसी कोटी के उपन्यास है।

स्वतन्त्रयोत्तर हिन्दी कथा साहित्य में यौन संबंधों की उन्मुक्तता का अतिशय चित्रण हुआ है। अछूत समस्या, दरिद्रता, विस्थापित नारी की समस्या, सामंती परिवेश की नारी समस्या, राजनीतिक समस्या आदि को स्त्री–पुरूष से जोड़कर प्रस्तुत किया है इन लेखिकाओं में प्रेम और विवाह के स्वरूप को सर्वथा नए रूप में चित्रित किया है। जहां विवाह धार्मिक संस्कार न होकर स्त्री–पुरूष की रूचि से किया गया समझौता है।

वर्तमान समय में स्त्री विमर्श पुरूष के खिलाफ चलाये जाने वाले एक आंदोलन के रूप में देखा जा रहा है। सभी विमर्श तो स्त्रियों को अपनी स्थिति पर विचार करने का एक माध्यम है। नारी सदियों से किस किस प्रकार की दास्तां की जंजीरों में जकड़ी हुई थी। इसलिए वह आवाज उठाती है। उन तमाम स्त्री विरोधी तंत्रों के खिलाफ जो उसे उन्नति के पद पर बढ़ने से रोकती है।

स्वत्रंता के पश्चात समाज की नवीन परिस्थितियों में स्वयं नारी में चेतना जागृत हुई यद्यपि विमर्श शब्द हिन्दी साहित्य में पूर्व से ही सम्मिलित है जिसका अर्थ था ' विचारों का प्रकटीकरण' या आदान–प्रदान। तथापि साहित्य में स्त्री की निर्बल छवि अंकित है। अत: समकालीन जीवन स्थितियों से जुड़ने और जूझने की आकांशा ही नारी विमर्श के केन्द्र है सदियों से उत्पीड़ित होती हुई स्त्री साहित्य जगत में भी कुंठित है।

स्त्री अस्मिता से जुड़े प्रश्न साहित्य से निकलते हैं, कहानीकारों में स्त्री जीवन के अनेक अंतर्विरोध, परिपाठ और समाज में अधिकारों का हनन, दैहिक झुठला सकने वाले यथार्थ–जिनका संदर्भ कथा– साहित्य में स्त्री विमर्श से है।

स्त्रियाँ समाज का अभिन्न अंग है। रायडन का कथन है कि 'स्त्रियों ने ही प्रथम सभ्यता की नीवं डाली। उन्होनें ही जंगलों में मारे–मारे भटकते फिरते हुये पुरूषों का हाथ पकड़कर उन्हें स्थिर जीवन या 'घर' प्रदान किया है। मानव सभ्यता का भविष्य भी इन्हीं की सहयोगिता व सद्प्रयत्नों पर निर्भर है। स्त्री और पुरूषों के कार्य का निर्धारण उस समाज की सभ्यता व संस्कृति करती है। स्त्री विमर्श में उठने वाले सवाल सहज स्त्रियों से जुड़े ही नहीं, अपितु उनसे हमें पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे मानदण्डो,पितृकमूल्यों,लिंगभेद की राजनीति और स्त्री उत्पीड़न के अन्तर्निहित कारणों को समझने की भी गहरी दृष्टि प्राप्त होती है। प्रश्न यह उठता है स्त्री विमर्श क्यों? यह नया विमर्श क्या है? नारीवाद की समर्थक लेखिकाओं ने ही लिंग केन्द्रित वर्चस्व प्रभुत्व को चुनौति दी है। स्त्री विमर्श में सदियों से चली आ रही स्वत्वहीनता और खामोशी को तोड़ा है। यही स्त्री विमर्श की भूमिका है।

स्त्री विमर्श में आज जिस प्रकार के विचारोत्तेजक, विस्फोटक प्रश्न खड़े किये है, पितृक प्रतिमानों को पुनर्परिभाषित करते हुये रद्द किया है, मातृत्व के सवालों को प्रश्न चिन्ह किया है, उन्हें स्त्री विरोधी ठहराया है। पितृक मूल्यों की जबर्दस्त समीक्षा की है उससे औरत के हक में लड़ाई छिड़ी है। स्त्री विमर्श ने समाजविज्ञान,मनोविज्ञान,राजनीति,साहित्य आलोचना, काव्य शास्त्र की दुनिया में एक नई बहस को जन्म दिया है। पहली बार स्त्री विमर्श में ही इस वास्तविकता का रहस्योद्घाटन हुआ कि हमारे मानव मूल्य,मानव मूल्य न होकर पितृसत्तात्मक मूल्य ही है, क्योंकि उनका चरित्र पितृक यानि स्त्री विरोधी है।

महादेवी वर्मा कि 'श्रंखला कड़ियां' स्त्री दिशा में स्त्री विमर्श है, जहां उनकी आलोचनात्मक शक्ति को साफ पहचाना जा सकता है। 'कृष्णा सोवती, गगन गिल,ज्योत्सना, मन्नू भंडारी, महाश्वेता देवी का लेखन क्या स्त्री विमर्श नहीं? क्यों वह फीडवैक का काम नहीं कर रहा? क्या उससे स्त्री अस्मिता के मुद्दे नहीं उभर रहें?

'सीमोन' ने प्रश्न उठाया था कि आज तक पुरूषों ने स्त्री के पक्ष या विपक्ष में जो कुछ भी कहा लिखा है उसकी स्तुति निन्दा की है, उसके बारे में गहरे शक से देखा जाना चाहिए, क्योंकि लिखने वाला न्यायकर्ता और अपराधी दोनों ही है।स्त्रीवादी लेखिकाओं का मानना है कि स्त्री के ,स्वत्व, स्वत्वाधिकारों, चिंताओं, अकांक्षाओं को स्त्री ही समझ सकती है। लोहे के स्वाद को घोड़ा ही जान सकता है जिसके मुंह में लगाम है, लोहार नहीं। यह प्रश्न धूमिल ने पुरूषकर्ता की हैसियत से पुल्लिंगी भाषा में पूछा है कि पोषित ही शोषण को समझ सकता है कि उसकी समस्यायें बेड़ियां क्या है? सरकार

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) राजमाता सिंधिया शासकीय कन्या महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र) भारत

एवं स्वयं सेवी संगठनों के द्वारा भी महिलाओं के लिए अनेक कार्यक्रम चलाये जा रहे है एवं नारी के उत्थान के लिए निरंतर प्रयास किया जा रहा है।

नारी विमर्श का हिन्दी भाषा पर व्यापक प्रभाव है लेकिन, जब हम नारी विमर्श की बात करते है तो एक बार हमारी नजर पूरी दुनिया की तरफ चली जाती है। जहां सिमोन द बोउआ अपनी पुस्तक द सेकेण्ड सेक्स में स्त्री को समाज के सामने जोरदार तरीके से रखती है तो वहीं हेलन फिशर द फर्स्ट सेक्स लिखकर स्त्रियों को पहले दर्जे में विस्थापित करने की प्रेरणा देती है। इनमें तो पाश्चात्य दृष्टि है लेकिन स्त्रियों को भारतीय दृष्टि में देखने पर वर्तमान समय में स्त्री विमर्श पुरूष तंत्र के खिलाफ चलायें जाने वाले एक आंदोलन के रूप देखा जा रहा है, परन्तु नारी विमर्श को देखने, परखने व समझने का यह एकांगी दृष्टिकोण है। नारी विमर्श तो नारियों को अपनी (तंगहाली, बदहाली व अन्य समस्या) पर विचार करने का एक माध्यम है। इसी कारणवश वह आज महसम आने में धीरे-धीरे सक्षम होती जा रही है। कि वह सदियों से किस-किस प्रकार के दासता की द्वारा जकड़ी हुई थी। इसलिए वह आवाज उठाती है उन तमाम स्त्री विरोधी तंत्रों के खिलाफ जो उसे उन्नति के पथ पर बढ़ने पर रोकती है। जिसे पुरूषवादी मानसिकता यह समझ बैठा है कि यह मेरे अस्तित्व के विरूद्ध एक षड्यंत्र है। भारत में नारी विमर्शो दिशा निर्देश करने का सशक्त माध्यम है - हिन्दी भाषा, जो कि पूरे राष्ट्र की नारियों को अपने अधिकारों से अवगत कराने में महती भूमिका अदा रही है।

भारतीय समाज एवं संस्कृति की जटिलता के कारण यहां स्त्री पश्चिम की भांति मुक्त या स्वतंत्र नहीं हो पाई। भारतीय समाज की रूढ़ जाति व्यवस्था, नैतिक मूल्यों की कट्टर अवधारणाएं, परिवार आदि की कठोर व्यवस्थाएं सभी स्वतंत्र नारी- व्यक्तित्व को अभरने में बाधक सिद्ध होती रही हैं। पितृसत्तात्मक व्यवस्था और पंरपराओं के मजबूत खोल में बंद स्त्री तक पहुँच पाना अत्यन्त कठिन है आधुनिकता के प्रवेश के बावजूद भारत में रूढ़िवादिता का अंत नहीं हो पाया है। स्त्री आज भी दुनिया में हो रहे परिवर्तनों से अनभिज्ञ, घर की चार दिवारी में सिमटी हुई है। युगों की दासता के कारण उसकी मानसिकता इतनी संकुचित हो गई है कि वह अपने चारों ओर के समाज तक को देखने- समझने में असमर्थ है। विवाह, घर और परिवार- स्त्री को सुरक्षा प्रदान करने वाले साधन माने जाते रहें है किन्तु इसी घर और परिवार में उसे कैद कर उसकी इच्छाओं, अकांक्षाओं की समाधी बना दी जाती है। स्त्री इस वास्तिवकता से अनभिज्ञ, भ्रम की अवस्था में ही जीती रहती है। दलित चेतना सम्पन्न कथाकार अपने समाज की विसंगतियों, विद्रूपताओं, विषमताओं, अंधविश्वासों और रूढ़ियों के विरूद्ध स्त्री-चेतना, उसकी आबरू को बचाने के लिए संघर्षरत हैं।

द्विवेदी युग में पर्दा प्रथा के विरोध की चेतना स्त्रियों में उत्पन्न हुई, वे इस प्रथा को अपने व्यक्तित्व के विकास में बाधक मानने लगी। कुप्रथाओं का विरोध करने का साहस स्त्री में उत्पन्न हुआ। मैथिलीशरण गुप्त जी ने अपने सम्पूर्ण काव्य के माध्यम से नारी के महत्व की प्रतिष्ठता की। नारियों को श्रम का महत्व बताते हुये 'जय भारत' में वे स्वालंबन पर बल देते है । विधवा विवाह, परिवार जीवन का विधान, नारियों में सामाजिक कुरीतियों का निवारण, अशिक्षा तथा उससे उत्पन्न होने वाली जड़ता,रूढ़िबद्धता एवं अनेक प्रकार के अंधविश्वासों का उन्मूलन उनकी नारी भावना की प्रमुख विशेषताएं हैं, जो सर्वथा प्रगतिशील है और आधुनिक जीवन की सही एवं सार्थक व्याख्या करती है। आधुनिक सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही उनकी नारी भावना विकसित हुई है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में उन्होंने नारी जीवन के विविध पक्षों पर स्पष्ट विचार प्रकट किये है।

समाज में नारी की भूमिका केवल आधे समाज का निर्वाह करने में नहीं, वरन् उससे भी अधिक के लिए निर्मित हुई हैं। मानवजाति के जितने भी सद्गुण आविष्कृत हैं, उनके उद्गम और प्रवाह की साक्षी प्राय: नारी ही रही हैं। समाज की इस महत्वपूर्ण ईकाई को सम्पूर्ण बुद्धिजीवी और कलाकार समाज ने भी माना है। मगर आज विशेषकर भारत की स्त्री एक अजीब से संधिकाल पर खड़ी भ्रमित- सी नजर आने लगी है। प्रस्तुत लेख में भारतीय नारी को केन्द्र में रखकर उन बिन्दुओं को छुआ गया है जो हमारे समकालीन और अर्वाचीन साहित्य में भी मौजूद है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. इन्द्रनाथ मदान - हिन्दी उपन्यास ।
2. डॉ. शिवकुमार मिश्र - साहित्य और सामाजिक संदर्भ ।
3. मध्य भारतीय शोध पत्रिका (मानविकी) ।
4. राजेन्द्र यादव, मन्नु भंडारी (एक इंच मुस्कान) ।
5. ममता कालिया (बेघर) ।
6. शुभा वर्मा (फ्रीलांसर) ।

****

A Comparative Study of the Landscape and Autobiographical Elements in Wordsworth's "Tintern Abbey" And Sumitranandan Pant's "Paravt Pradesh Mein Pavas"

Dr. A.K. Saxena * **Dr. Manju Saxena** **

Introduction - For oft, when on my couch I lie
In vacant or in pensive mood,
They flash upon that inward eye
Which is the bliss of solitude

The landscape in the "Tintern Abbey" and "Parvat Pradesh Mein Pavas" hauntingly flash upon the inward eye of the reader giving him the ever- renewing bliss of solitude. With all their splendour, the two poems present an interesting comparison of their landscape and autobiographical elements, which is the subject-matter of this paper.

At the very onset, it is important to point out that both Wordsworth and Sumitranandan Pant were the most celebrated poets of their respective periods, that is , the Romantic Age in English and "Chhayavadi Yug" in Hindi literature. It is also noteworthy that "Chhayavad" in Hindi literature was deeply influenced by Romanticism in English literature.

Before a proper discussion of the topic, it is worthwhile to have a glance at the salient features of Romanticism in English literature and
"Chhayavad" in Hindi literature. Tracing the development of the word "romantic" in the English language in his essay "The Romantic Period (1780-1830)", Claire Lamont says: ... "as the eighteenth century progressed, ... it [the word "romantic"] was increasingly used with approval, especially in descriptions of pleasing qualities in landscape. The Romantics turned from the city to nature. They describe many different kinds of natural scene in which nature is independent of man. Many of the poets of this period found their deepest experiences in nature. "For them it was nature, rather than society, that was man's proper setting: man needed the help of nature to fulfil himself."[1]

The Romantics propounded a personal search for the spiritual. "The imagination in the Romantic period was raised from being simply the faculty for creating fictions, pleasing perhaps, but not necessarily true, to a method of apprehending and communicating truth"[2]. As a result of this, the poet played a greater role than before in the search for the spiritual truth and his imagination became the most important thing in this "man's most important endeavour."
The use of the term "romantic" for the poetry of the period from 1780 to 1830 has this bunch of meanings behind it.[3]
"Chhayavad" in Hindi literature has many striking similarities with Romanticism in English literature. "Chhayavad", according to Acharya Ramkrishna, "looks for the reflection of human life in nature."[4].

Dr Nagendra says that Chhayavad is a special emotional view of looking at life."[5] Acharya Nanddulare Vajpayee says that "Chhayavad is the sense of presence of a spiritual shadow in the subtle but explicit beauty of nature or man."[6] Shanti Prasad Dwivedi says that "Chhayavad is a philosophical experience."[7] Dr Keshri Narayan Shukla says that "Chhayavadi poetry is full of mysterious symbols."[8] Acharya Ram Chandra Shukla says that "a Chhayavadi poet expresses in numerous ways the love for an infinite and unknown object with the use of picturesque language."[9] In short, "Chhayavad" is, as Dr Devraj has put it, "song-poetry, nature-poetry and love-poetry."[10]. Love of nature, song-like quality, use of picturesque language, mysteriousness and stylistic excellence are the main features of "Chhayavad". Pant himself says that a stream of "Chhayavad" is related to the awakening of the process concerned with the emotional and aesthetic sense which began as a result of the impact of the thoughts of Upanishad and Western literature and culture[11]. He also acknowledges the impact of the English Romantic poets on him. Ile says that during the period of his higher education as a college student he learnt much from the English poets like Shelley, Keats and Tennyson. It awakened in him a sense of choice of words and sound-aesthetics.[12]

This paper endeavours to compare Wordsworth's "Tintern Abbey" and Sumitranandan Pant's "Parvat Pradesh Mein Pavas" in the light of these features of Romanticism and "Chhayavad."

There are some biographical similarities in the lives of Wordsworth and Pant. They both were brought up amidst the natural beauty of mountainous regions —— Wordsworth in the Lake District of England and Pant in the Almoda District of India. The beauty of the landscape had a deep impact on them. It shaped and sharpened their poetic sensibilities. With the age their love for and attitude towards nature became more and more mature and meaningful. They both are essentially poets of nature.

* **Professor (English) Govt. College, Ghattiya (M.P.) INDIA**
** **Asst. Prof. (Political Science) Govt. K.P. College, Dewas (M.P.) INDIA**

"Lines Written a Few Miles above Tintern Abbey" is one of Wordsworth's most celebrated poems about nature. It was composed in 1798 during his second visit to the Wye Valley. The beauty of the valley was a source of endless joy to him and it stimulated him to record the development of his love of Nature. Describing the beauty of the mountainous region in the beginning of the poem "Tintern Abbey" Wordsworth says:

...and again I hear
These waters, rolling from their mountain-springs
With a soft inland murmur. Once again
Do I behold these steep and lofty cliffs,
That on a wild secluded scene impress
Thoughts of more deep seclusion: and connect
The landscape with the quiet of the sky.

The mountainous landscape here is full of natural beauty. The mountain is formed of steep and lofty cliffs which are so massive and tall that they seem to connect the entire landscape with the sky. Springs are rolling down from the mountain and they are producing a sweet and song-like sound.

Pant's "Parvat Pradesh Mein Pavas", composed in 1921 , also begins with the description of natural beauty of the landscape of mountainous region of Almoda. Describing the natural phenomenon of rains, he says :

Pavas ritu thi, parvat pradesh,
Pal-pal parivartit prakriti-vesh!
Mekhlakar parvat apar
Apne sahastra drig suman phad
Avalok raha hai bar-bar
Neeche jal mein nij mahakar,
Jiske charano mein pala tal
Darpan-sa faila hai vishal !

Thus, Pant says that with the advent of rains in the mountainous region, nature ceaselessly changed its form every moment. On one moment the sun shines, on the other, rains pour. Sometimes the clouds cover the sky, on the other, it becomes clear and shiny, on still other times, the sunlight filters through the clouds and fills the landscape with a shimmering light.

The extremely round mountain, by widely opening its infinite flower-like eyes, was beholding its own massive reflection in the vast lake which was formed by collection of water at its foot and looked like a vast mirror. The idea is that various kinds of flower blossom on the mountain and a vast mass of water gathers at its foot in the rainy season. These variedly-coloured, blossoming flowers look like the mountain's eyes with which it sees its own vast image in the great mass of water at its foot. Personification of nature is one of the salient characteristics of "Chhayavad" and in this poem Pant has beautifully used this device. The mountain in the landscape of both the poems is massive, steep and lofty.

Giving further details of the landscape in the poem, Pant says :

Giri ka gaurav gakar jhar-jhar
Mad mein nas-nas uttejit kar
Moti ki ladiyon se sunder
Jharate hein jhag-bhare nirjhar!

It means that in the rainy season springs roll down from the mountain. These springs, producing a rippling sound, seem to be singing about the greatness of the mountain. The sight of these springs fills every nerve of the watcher with intoxicating excitement. While flowing they look like beads of pearls. Such is the beauty of foaming, flowing springs.

In the lines of "Tintern Abbey" cited above, Wordsworth also describes the flowing of springs from the mountain which sing out "a soft inland murmur." Thus the landscape in both the poems is full of melodious sounds.

Pant gives a further description of the landscape to reveal the beauty of the trees which have grown on the mountain and says:

Girivar ke ur se utha-uthakar
Uchchakankshaon-se taruvar
Hein jhank rahe neerav nabh par
Animesh, atal, kuchh chinta par!

Here, Pant says that like many varied wishes which surge in the human heart, many trees had grown on the heart of the mountain. They were beholding the quiet sky with a fixed gaze. The sky here is as quiet and tranquil as it is in "Tintern Abbey", but here the trees peep into the quiet sky, whereas in "Tintern Abbey" the "lofty cliffs" "connect the landscape with the quiet of the sky."

The presence of trees in Pant's poem fills the landscape with greenery. Similarly, the landscape in "Tintern Abbey" is also full of the greenery of trees—— sycamore, orchard tufts with their unripe fruits and hedgerows:

The day is come when I again repose
Here, under this dark sycamore, and view
These plots of cottage ground, these orchard tufts,
Which at this season, with their unripe fruits,
Are clad in one green hue, and lose themselves
' Mid groves, and copses. Once again I see
These hedgerows, hardly hedgerows, little lines
Of sportive wood run wild: These pastoral farms,
Green to the very door...

In addition to the similarity of landscape, the two poems can also be compared in the revelation of the two poets' autobiographical elements. In the lines 67-112 of "Tintern Abbey", Wordsworth describes the development of his attitude to Nature, sketching with poetic beauty what he was like in the different stages of this development. Describing the profound impact of Nature on him, he says :

Therefore am I still
A lover of the meadows and the woods,
And mountains; and of all that we behold
From this green earth; of all the mighty world
Of eye, and ear-both what they half create,
And what perceive; well pleased to recognize
In nature and the language of the sense
The anchor of my purest thoughts, the nurse,

The guide, the guardian of my heart, and soul
Of all my moral being.

Such was the impact of Nature on Wordsworth. In the sight of the Sylvan Wye, the memories of his past life flash upon his inward eye.

Another autobiographical element in the poem is its culmination in a personal touch wherein he says to Dorothy that the beauty of the "pastoral landscape" of the Wye river was dear to him not only for its own sake but also because of her :

Nor wilt thou then forget,
That after many wanderings, many years
Of absence, these steep woods and lofty cliffs,
And this green pastoral landscape, were to me
More dear, both for themselves and for thy sake!

Pant's "Parvat Pradesh Mein Pavas" also culminates in an autobiographical description in which he relates his relation to nature. Here, he also remembers a friend of his childhood as well as the simplicity, innocence, comfort and joy of the childhood:

(Wah Sarla us giri ko kahti thi badal -ghar)
Is tarah mere chitere hriday ki
Bahya prakriti bani chamatkrit chitra thi;
Saral shaishav ki sukhad sudhi-si wahi
Balika meri manoram mitra thi!

Pant says here that nature had a deep impact on him under the influence of which he has sketched these pictures and formed these images in the poem. The creative force behind this was his love for nature which also brought in his mind the memory of that girl who was his beautiful friend in the childhood.

In this way, Wordsworth's "Tintern Abbey" and Sumitranandan Pant's "Parvat Pradesh Mein Pavas" present many points of comparison of their landscape and autobiographical elements.

References :-

1. Claire Lamont, "The Romantic Period (1780-1830)", An Outline of English Literature, New York: Oxford University Press, 1992, p.253.
2. Ibid, p. 254.
3. Ibid, p. 251.
4. Deshraj Singh Bhati, "Pant Aur Chhayavad", Pant Aur Unka Rashmibandh, Delhi : Ashok Prakashan ,1998, p.47.
5. Ibid, p. 48.
6. Ibid, p. 48.
7. Ibid, p. 48.
8. Ibid, p. 48.
9. Ibid, p. 47.
10. Ibid, p. 48.
11. Sumitranandan Pant, "Paridarshan", Rashmibandh, Delhi: Rajkamal Prakashan, 1979, p.14.
12. Ibid, pp. 10-11.

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

Psycho-analysis in Criticism

Dr. Supriya Paithankar *

Introduction - Psychology comes into criticism in two ways, in the investigation of the act of creation & in the psychological study of particular authors to show the relation between their attitudes & states of mind & the special qualities of their work. The psycho-analytic critic therefore devoted himself to the buried drama of an artists life. He began to explore the hidden motives & the unconscious urges behind the work of art. He regarded human personality as a dynamic phenomenon in which the self became a kind of battlefield where different instincts & impulses were always waging war against conventions & regulations. The psycho–analytical approach of criticism aims at the search for realities of self believed social masks. It breaks the personality of the writer & tries to penetrate straight into the inner motives & impulses.

The kinship between literature & psychoanalysis can be considered under various heads. First, both stress the concrete & particular rather than the abstract & general: the material they share is human nature as it is embodied in the situation of particular individuals, felt & experienced in all its uniqueness. Though psycho-analytical theory must of course find its formulation in abstract & general terms & look for a general application of its tenets, this emphasis on the concrete & experimental is central to its ideas & to its therapeutic work; this is why it is notoriously hard to understand what psycho-analysis is about without some clinical experience. The presence of the living human being, & the acceptance of him in all his subjective complexity, parallels a similar process in literature & makes psycho-analysis anti-mechanistic; it sets its face against the narrow mensurative orthodoxy that even in studies like psychology, whose subject is the human personality, rejects all evidence that is not based on measurements & numbers.

Psychology comes into literary criticism in several ways. It can help to explain the creative process in general, it can provide a means of illuminating a writers work with reference to his life & vice-a–versa, & it can help to elucidate the true meaning of a given text, perhaps more fruitful than general psychological & psycho-analytical theories of the origin of art are the particular applications to particular cases. The extent to which a connection can be established between an authors life & his work will vary according to the amount of information available, including direct self- revelation. Psycho-analysis presents man as first, essentially sick & second as a determined driven creature whose belief in his own freedom is a delusion. Thus psychology provides a genetic explanation of poetry – an explanation of how it arises in the mind of the poet - & that genetic explanation in turn justifies a certain kind of poetry. There is a tendency here common among the Romantics – to define poetry in terms of the process of poetic creation.

To write good poetry one must be in such & such a state of mind, such & such a kind of poetry is the most adequate reflection of this state of mind, therefore that kind of poetry is the most poetic & the best. The argument might appear at first sight to be circular, & in a sense it is, but the interesting thing about it is that it is an attempt to derive normative judgements from psychological description, & such attempts have been common in criticism ever since. The use of psychology in criticism is, like the use of sociology genetic – it helps us to explain how literature comes into being. The condition of origin of an art have a direct bearing on its nature, & to many critics the proper definition of literature can only be given by providing on account of its psychological origins.

A few critics like Dr. I. A. Richards & Sir Herbert Reed have made significant contributions towards a psychological theory of value in poetry. In his '*Principles of Criticism*', a book which has come to be recognised as a classic in this field, Dr. Richards sums up his conclusions on this subject as follows:

"The most valuable states of mind then are those which involve the widest & most comprehensive co-ordination of activities & the least curtailment, conflict, starvation & restriction. States of mind in general are valuable in the degree in which they tend to reduce waste & frustration. The artist is concerned with the record & perpetuation of the experiences which seem to him most worth having .... He is the paint at which the growth of the mind shows itself. His experiences, those at least which give value to his work, represent conciliations of impulses which in most minds are still confused, inter – trammeled & conflicting. His work is the ordering of what in most minds in disordered."

Having indicated the significance of ordered experiences which it is the privelage of a poet to have, Dr. Richards sets forth his psychological theory of valve. He divides impulses into appentencies & aversions & states that anything is of value which satisfies an appentency or 'seeking after'. He avoids the ferms 'desire' 'want'& 'feeling' because appentencie are for the most part unconscious & the other

* Asst. Professor (English) Govt. Girls College, Ratlam (M.P.) INDIA

terms imply accompanying conscious beliefs. Anyone will actually prefer to satisfy a greater number of equal appentencies rather then a less. Anything is valuable which will satisfy an appentency without involving the frustration of some equal or more important appentency.

The nation that the artist is especially neurotic, & that art, of companable human activities,: is especially closely related to neurosis, is even more wide spread; it is commonly held by writers & artists themselves, & intellectuals in general. Acco. To this view, the dramatist is indeed bound to create characters in some degree.

A psychological study of an authors' life. Can shorpen the sense of works objective . . . . . as itself – distinct & meaningful in itself. An explaration & analysis of the unconscious urges & motives of a writer can be therefore of much help in understanding & interpreting a work of art. Psychology in criticism can prove a major technique for probing into the virtual excellence of criticism. F. L. Lucas has suggested that psychological approach can be used to explain fictitions characters. It is not incorrect to say that characters of fiction or drama, that have been heitherto (so far) of great puzzel to the generation of critics & readers can be explained & interpreted with the help of psycho–analysis. Earnest Jones Study Of Hamlets Character, as already pointed out, is the classical example of the same.

Actions whether trivial or important, are normally found to be symptomatic & therefore meaningful in terms of the whole character structure of the individual; we choose our activities, & the nature of our human relationships, in order to satisfy certain needs & attain certain goals to which our psychic energy is directed. This principle applies equally to unimportant events, which might be regarded as without any significance – acts of forgetting, slips of the tongue & other mistakes in speech or writing not clear & to obviously important events, such as the choice of a career or a marriage – partner. A man may present his lack of ambition & unwillingners completely effectively with professional calleagues as a superiority to the rat – race & an indifference to material power & gain ; the truth may be that he cannot complete because his original aggressive feelings towards rivals – probably the original family siblings – were unbearably strong & therefore had to be repressed altogether rather than find outlet in the socially form of competition.

One could analyse a particular work & draw from the analysis inferences about the psychology of its author, one could take the whole body of an authors' writing & derive from it general conclusions about his state of mind which could then be applied to elucidate particular works. One could take the biography of a writer, as illustrated by the external events of his life & by such things as letters & other confessional documents, & construct out of these a theory of the writers personality, his conflicts, frustrations, traumatic experiences, neurosis or whatever the happened to be - & use this theory in order to illuminate each one of his works. We can look at the behaviour of characters in a novel or a play in the light of modern psychological knowledge & if their behaviour confirms what we know about the subtelities of the human mind, we can use modern theories as a means of elucidating and interpreting the work. Such a use of psychology is therefore, appropriate to critics who believe with Dryden – that the function of literature is to provide – 'a just & lively image of human nature' or at least who agree on the general proposition that the end of literature is some kind of illumination of the human situation. The extent to which a connection can be established between an author's life & his work will vary according to the amount of information available, including direct self – revelation. Psychoanalysis presents man as first, essentially sick & second as a determined driven creature whose belief in his own freedom is a delusion.

Homeric psychology also speaks of the mental life of man: consisting of a purposive or psycho – physical energy which strives for certain natural goals such as food & shelter. Various schools of modern psychology have each had something to say about the psychological conditions out of which art arises. The Freudians have their view of the relation between art & neurosis, the Jungians have found in works of literary art archetypical images & echoes of basic & recurring myths. Yet there have been many a number of modifications & additions to both kinds of theory.

References :–

1. Melvin H. Marx (1958). Psychological Theory Contemporary Reading. New York
2. T. L. Engle. Psychology : Its Principles & Applications. New York
3. B. R. Bugelski. An Introduction to the Principles of psychology. New York.

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

Teaching Attitude Of Effective And Ineffective Teachers

Dheeraj Verma *

Abstract - The present study highlights to investigate the difference between effective and ineffective teachers towards teaching profession. 52 effective and 36 ineffective teachers were selected through **"Teachers Effectiveness Scale"** from Kota education city. For measuring teacher's attitude the "Attitude towards Teaching Profession Scale" was used. Results reveals that teacher's attitude towards teaching profession is not behind their effectiveness / ineffectiveness. **Keywords -** Teacher, Teacher's role, Effectiveness, Ineffectiveness.

Introduction - Every profession is important and prestigious but permits me to say that the most important and most prestigious is teaching profession because teaching profession can be seen as the mother of all profession. This is because every profession is born out of teaching. Also, the future of every individual and nation lies in the hands of the teacher.

The Teacher's Role - The teacher must make all efforts to lead his pupils to acquire higher values of life. This he should do through his personal conduct and character. The teacher is not to dictate or dominate, instead he is to help and serve the student. The teacher must also understand that the pupils have their own personality and the personality must be well looked after and nourished. The teacher should be an embodiment of love and patience in dealing with the children.

The place and importance of teacher in the society and the nation can hardly be over emphasized. It does not take much to realize that the quality of a nation depends upon the quality of its citizens. The quality of its citizens depends, not exclusively, but in critical measure, upon the quality of education. The quality of education depends more than any other single factors, upon the quality of the teachers. A school may have excellent material resources – equipment, building, library, laboratory and other essential teaching learning facilties along with a curriculum appropriately devised to suit the community needs, but if the teachers are misfit or indifferent, the whole programme is likely to be ineffective and wanted. Hence, the problem of identification of effective teachers is of prime significance for realizing desirable educational goals. It is not only desirable but obligatory too, to find out the associating factors of teachers effectiveness.

It is assumed that effectiveness of a teacher depends to a considerable extent on his attitude towards his profession. Studies conducted on this theme have reported controversial results so far as relation between teacher effectiveness and professional attitude is concerned. Effective teaching is a student-centered practice that is at the heart of our vision for the teaching profession. Effective teaching leads to improved student outcomes in clear and demonstrable ways. Clearly, not all teachers are equally effective. In fact, effectiveness varies widely among teachers, and a particular teacher may be more effective with some groups of students than with others. Effectiveness is often shaped by personal and academic background, pedagogical preparation, teaching assignment, school and district support, and peer influences.

Glass (2011) opined that effective teachers have high expectations for all students and help them to learn and to bring positive academic, attitudinal and social outcomes for the betterment of society.

Parihar (2011) viewed that effective teacher is one who consistently achieve his goals that are related either directly or indirectly to student learning.

Veldman and Kelly (1965) made found in his study that effective student teachers were more positive attitude and friendly.

Arora (1976) conducted a study on differences between effective and ineffective teachers in relation to attitude of teaching. The result revealed effective and ineffective teachers differed on the attitude of teaching. **Chhaya (1979)** made an investigation into certain psychological characteristics of an effective teacher.

The major finding is that effective teachers had significantly better personality adjustment and more favorable attitudes towards teaching that ineffective teaches.The studies as reported above have been carried out in educational city Kota. Its unique situation has not been paid attention in making research exercises especially in the field of teacher effectiveness and their professional attitude. So it was decided to examine relationships between these two variables in Kota city.

Hypotheses -

1. There is no significant differencebetween effective and ineffective teacher on their attitude towards teaching profession.
2. There is no significant difference between male effective and ineffective teachers on their attitude towards teaching profession.
3. There is no significant difference between female effective and ineffective teachers on their attitude towards teaching profession.
4. There is no significant difference between effective male and female teachers on their attitude teaching profession.
5. There is no significant difference between ineffective male and female teaching profession.

Method -

Sample - The sample of present study was 100 teachers of 10 selected secondary schools of kota district. Out of those 100 teachers 52 were identified as effective teachers and 36

* **Research Scholar, Career Point University, Kota (Rajasthan) INDIA**

were identified as ineffective teachers through Teacher Effectiveness Scale. The remaining 12 teachers were left out. Thus the final sample of the study was 88 teachers.

Variables - Teacher effectiveness is dependent variable whereas teacher attitude is independent variable.

Tools-

1. Teacher Effectiveness Scale by Kumar and Mutha (1985).
2. Attitude towards Teaching Professional Scale by Kalti and Bannur (1974).

Results And Discussion -

Table 1 : Mean, S.D. and "t" values of effective and ineffective teachers on their attitude towards teaching profession

Teacher (Total)	M	SD	N	T
Effectiveness	183.46	38.60	52	0.73
Ineffectiveness	173.23	41.50	36	

From Table 1 effective and ineffective teachers have been compared in respect of their attitudes towards teaching profession. The result presented in the above Table clearly shows no difference between effective and ineffective teachers, because the "t" value (0.73) is not significant at any level. Thus, the hypothesis No. 1 "There is no significant different between effective and ineffective teacher on their attitude towards teaching profession" is approved.

Table 2 : Mean, S.D. and "t" values of effective and ineffective male teachers on their attitudes toward teaching profession

Male Teachers	M	SD	N	T
Effectiveness	182.27	43.70	30	
Ineffectiveness	174.42	42.62	20	0.38

Table 2 also reveals no significant difference between effective and ineffective male teachers regarding their attitudes towards teaching profession, because the "t" value (0.38) is not significant at any level. So the hypothesis 2 "that there is no significant difference between male effective and ineffective teachers on their attitude towards profession" is approved.

Table 3 : Mean, S.D. and't' values of effective and ineffective female teachers on their attitudes towards teaching profession.

Female Teachers	M	SD	N	T
Effectiveness	182.18	38.16	22	
Ineffectiveness	174.62	46.18	16	0.43

Table 3 again shows insignificant difference between effective and ineffective female teachers so far as their attitude towards teaching profession was concerned. Thus, the hypotheses 3: That 'there is no significant difference between female effective and ineffective teachers on their attitude towards teaching profession is hereby selected.

Table 4 : Mean, S.D. and't' values of effective male and female teachers on their attitudes towards teaching profession.

EffectiveTeacher	M	SD	N	T
Male	183.23	48.32	30	0.37
Female	178.16	37.49	22	

The results given in Table 4 indicated that there was even no significant difference between effective male and female teachers in their attitudes towards teaching profession, because the "t" value is not significant difference between effective male and female teachers, on their attitude towards teaching profession is selected.

Table 5 : Mean,S.D. and't' values of ineffective male and female teachers on their attitudes towards teaching profession.

Ineffective Teachers	M	SD	N	T
Male	173.22	45.60	22	0.18
Female	175.03	48.75	16	

It is absolutely clear by Table 5 that male and female ineffective teachers were almost similar in their attitudes towards teaching profession, because mean values of both the groups are almost equal and't' value is very low. Our hypothesis there is no significant difference between ineffective male and female teaching profession is approved.

Conclusion - On the basis of the result derived from the analysis of the data it is clear those effective and ineffective teachers as well as male and female teachers are equally positive towards their teaching profession. Although many previous studies exhibit that attitude of teachers is vital factor which determine his/her effectiveness.But in this present study of Kota city we found very interesting and surprising results, that teacher's effectiveness/ ineffectiveness is not related to his/her professional attitude. In other words we can say that teacher's positive attitude towards teaching profession is not behind his effectiveness. It may be because of that Kota city is considered education city in India and teaching is still considered as much important and respectable job then other areas of country. Hence the teachers are satisfied with their job. Thus we can conclude that teacher's ineffectiveness may be related to other problems such as living conditions, working conditions, adjustment problems, personality, other facilities and needs like medical, library, teaching aids.

References :-

1. **Agarwal, S. (1988)** Teacher Effectiveness of Female Teachers .Fifth survey of Educational Reserch.2, National Council of Educational Research and Training, New Delhi.
2. **Arora,k.(1976)**. Differences between effective and ineffective teachers. Ph.D. Thesis, Edu.JMI.
3. **Arora, K. (1978).** Differences between Effective and Ineffective Teachers, New-Delhi: S. Cand. & Co
4. **Baskin, M.K., Ross, M. & Smith, D. (1996).** Selecting successful teachers: The predictive validity of urban teacher selection interview. Teacher Educator, 32, 1-21.
5. **Callahan, S. G. (1996).** Successful Teaching in Secondary Schools. Glenview, 111: Scott.
6. **Chhaya (1979)**.An investigation to certain psychological characteristics of an effective school teacher.Ph.D. Thesis,Psychology ,Kanpur university.
7. **Dakshinamurthy, K. (2010)** An Interaction Effect of Teacher's Teaching Effectiveness, Teachers' Personality and Teachers' Attitude on Academic Achievement in Social Science among Students Studying in Secondary Schools. Edutracks, 9, 9.
8. **Fairhust, A.M. & Fairhust, L.L. (1995).** Effective teaching effective learning: making personality connection in your classroom. Palo Alto, CA: Davis-Black.
9. **Gupta, R.C. (1976).** 'Predicting of Teacher Effectiveness Through Personality Tests', Second Survey of Research in Education, Buch, M.B., Mumbai, Popular Prakashan.
10. **Hamacheck, D. E. (1969).** Characteristics of good teachers and implications for teacher education. Phi Delta Kappa, 50, 341-44.
11. **Kothari, C. R. (1986).** Research methodology- method and techniques, Delhi: Wiley Eastern Ltd.
12. **Veldman,D.J. and O.F.J. Kelley** (1965) Personality correlates of composite criterion of teaching effectiveness.Alperta Journal of Education Research, 11,102-107

Analysis Of Researchers Based On Advanced Organizer Model

Dr. Archana Shrivastava * Sonali Surye **

Introduction - Models of teaching is recent, advanced and fast growing area of educational research .models of teaching like plans, patterns or blue prints presents the steps necessary environment, which facilitates the teaching learning process. There are many powerful kinds of learning and to help students to learn more effectively .This review discussed the 'Advanced Organizer model (AOM) used by different researchers to study their effectiveness in the teaching different subjects.

Almost all the studies on models of teaching have used experimental design. Most of these studies have been short term studies with a limited treatment. Some studies have not even specified duration of treatment, number of exposure, number of demonstration, practice, feedback session etc. Many studies have conducted to compare the efficacy of various models of teaching. In most of the comparative studies, the against any of other models of teaching or against of traditional methods other model of teaching in relation many criterion variables .

Sources –

Following sources have been scanned to write this review –

1. American journal of education science.
2. Elixir International Journal
3. International journal of social science and inter disciplinary research
4. fourth survey of education, India
5. Fifth survey of education, India.

Classification –

This reviews have been classified on the basis of teaching science subjects through advanced organizer models (AOM) as under –

1. Teaching chemistry through AOM
2. Teaching Physics through AOM
3. Teaching Mathematics through AOM
4. Teaching Biology through AOM
5. Teaching Social Science through AOM

1. Teaching chemistry through AOM –Jamini (1991) Investigated the relative effectiveness AOM and CAM on conceptual learning efficient and retention of chemistry concepts in relation to divergent thinking which indicated that although both AOM and CAM were effective in fostering concept learning, AOM was more beneficial to pupils with low divergent thinking.

Daniel (2008) Conducted a study to address the effectiveness of using an advanced organizer as the sensitization technique within an undergraduate content based first ear chemistry laboratory activity in order to improve student's conceptualizations of the role creativity plays in the scientific process. The major findings of this study is that using an advanced organizer pertaining to creativity, When Implemented as an introduction to a problem based, laboratory activity, can lead a statically significant percentage of students constructing more informed views.

Domin (2008) Used an advance organizer pertaining to the nature science (NOS) aspect of the role creativity plays in science, incorporated in to a problem based laboratory activity of an undergraduate first year chemistry curriculum. The result of this study indicate that the different versions of the advance organizer differ with respect to altering students conceptualization of creativity ; specifically only the indefinite explication of the intended learning outcome led to a significant change in the percentage of students holding more informed views, This finding suggests that a relatively small change in instructional design can advance improvement in achieving NOS learning outcomes within a large scale content based science course.

Wachange,W.Samuel; Arimba,Mugiira Antony & Mbugua,K.Zachariah (2013) Determine the effect of advance organizer teaching approach (AOTA) on secondary school student's achievement in chemistry in Maara district. They compare it with regular teaching method (RTM) and saw the effect of gender on achievement. The result of this study indicate that students who are taught through RTM and gender has no effect on student's achievement.

2. Teaching Physics Through AOM – Sidhu and singh (2005) Compared the effect of concept attainment model, advance organizer model and conventional method in teaching of physics in relation to intelligence and there was no significant effect between various teaching techniques, Intelligence and achievement motivation on scholastic achievement of student for learning of concept in physics.

Vandana and Jodhav (2011) Compared an experiment to

* Assistant Professor, B.C.G. College Of Education, Dewas (M.P.) INDIA
** Research Scholar, B.C.G. College Of Education, Dewas (M.P.) INDIA

examine the effectiveness of AOM over traditional model in the teaching of physics of 9th grade students. They found that AOM strategy is more effective than conventional strategy

3. Teaching Mathematics Through AOM – Chitrive (1983) compared the concept attainment model to advance organizer model and tradition model in terms of performance on concept knowledge. The major findings were (i) both strategies were superior to traditional strategies for teaching mathematical concept to XI grade students. (ii) both strategies are equally effective.(iii) conceptual style preferences of students seemed to have different effect their acquisition of mathematical concepts when taught b Ausubek strategy.

Bharambe (1997) Conducted a study to compare the effectiveness of the three different procedures namely, advance organizer model, analytic – synthetic method and traditional method of teaching in the teaching of logical geometry to the students of secondary school front he points of view of school differences, area differences ,sex difference and potentiality difference pertaining to the conceptual dissemination process discrimination and analytical synthetic skills .He found that AOM was more effective than ASM of teaching in every case of comparison and ASM was found more effective that traditional method. From the point of view of the development of the three mental processes, it was found that, for the development o conceptual discrimination ,AOM is more effective than ASM; for the same process, the comparison between ASM and TM,ASM is more effective the TM.

Githua and Nyabwa (2008) Examined how the use of advance organizer during instruction affect students achievement in commercial arithmetical. The results indicated that students taught using advance organizers had significantly higher scores in MAT (Mathematics Achievement Test) than those taught in the conventional way. Gender did not affect achievement.

Pachpande (2012) Conducted a study to check the effect of advanced organize model on achievement of student's in mathematics teaching at school level. From this study it was found that advanced organizer model effective than traditional method on achievement of students in mathematics teaching.

Sanjaya(2013) Examine the effectiveness of various models of teaching (AOM & CAM) on achievement levels of ninth grade students in mathematics. Following conclusions were found achievement level of the children in mathematics taught through concept attainment model is found to be superior than traditional method & achievement level of the children in mathematics taught through advance organizer model is found to be superior than traditional method.

4. Teaching Biology Through AOM – Dennis (1984) Investigated the effect of advance organizer and repetition on achievements in a high school biology class. The findings showed that there was no significant interaction between treatments on the two depended variables, However there was a significant gain in achievement by students in all groups from pre-test to post-test.

Lewis (1986) Compared the effectiveness of Ausubelian advance organizer and simplified readability of science content when used together or separately in the biology laboratory. The findings showed that either the advance organizer or simplified reading material was significantly better that no treatment but the two together were significantly better than either alone.

Kaushik (1988) Conducted a study to study the long term effect of advance organizers upon achievement in biology in relation to reading ability ,intelligence and scientific attitude. The major findings were (i) Advance organizers facilited immediate and delayed learning in biology,(ii) A general introduction generally proceeding the learning metrical in the lectures, lessons was of little value as compared to the advanced organizer (iii) Pupils with high intelligence, reading comprehension and scientific attitude derived the greatest advantage from the presentation of an advance organizer,(iv) General students were also benefitted by advance organizer and (v) The achievement of the learners in biology was found to be highly positively correlated with their intelligence, reading comprehension and scientific attitude.

Bugget (1993) Compared the relative effectiveness of using different concept map presentations as advance organizer in teaching photosynthesis to community college science student. Teaching through concept map as advance organizer was found to be superior than that of control group.

Raina (1994) Compared advance organizer model and biological inquiry model in teaching of biology. The major findings were(i) Advance organizer model is significantly effective in teaching of biology in terms of pupils achievement.(ii) Biological science inquiry model is significantly effective in teaching of biology in term of pupil's achievement.(iii) Advance organizer model is significantly more effective as compared to biological science inquiry model in term of pupil's scholastic achievement (iv) Biological science inquiry model is significantly more effective as compared to advance organizer model in term of pupil's interest in inquiry activities (v) Biological science inquiry model is significantly more effective than advance organizer model in term of pupil's reaction towards model of teaching.

Sahoo(2001) Conducted an experiment to compare the relative effectiveness of computer assisted instruction and instruction with advance organizers in the teaching of life science in relation to cognitive style of learners. The major findings of the study was that there is real difference between two treatments.

5. Teaching Social Science through AOM – Panday,S.N. (1986) Conducted study to know effectiveness of advance organizer an inquiry training models for teaching social studies to class VIII students. The findings were (i) The treatment had different effects on the Pupils's achievement,(ii) The difference in mean of gain scores in achievement due to advance organizer and conventional teaching was significant,(iii) Difference due to ITM and

conventional teaching was significant and the difference due to AOM and ITM was not significant,(iv) There was no significant difference between the AOM and ITM,AOM and conventional teaching in terms of pupils attitude towards social studies and (V) pupils reacted favorably towards the ITM and AOM.

Kaur,Rajinder (1991) Compare the effectiveness of the Bruner and Ausubel models for teaching concepts of economics to students having different levels of achievement and creativity. Major findings were (i) The result revealed a statistically significant difference between students who had been caught through CAM,AOM and CT with respect to the scores on attainment of concepts in economics; also AOM was more effective than CT, whereas no statistically significant difference was found in the effectiveness of the two experimental groups (ii) statistically significant difference was found between the three teaching approaches where AOM was found to be more effective than CAM;CAM was more effective than CT and AOM was more effective than CT (iii)Neither academic achievement nor creativity affected the gain scores of subject pertaining to the attainment of concepts in economics (iv) The interactions between teaching approaches and academic achievement between teaching approaches and creativity and between academic achievement and creativity were not significant (v) the interaction between teaching approaches , intelligence and creativity was not significant.

6. Other than above head – Tanthai (1982) Conducted a study to determine the facilitation effects of a pictorial diagrammatic advance organizer on science learning achievement .The findings were (i) Advance organizer model had no facilitating effect on male student who were field independent (ii) There exist a relationship between dependent, Independent cognitive style and science learning achievement.

Rajoria(1987) Studied the effectiveness of AOM and the traditional method for teaching science at VIII grade students. It was found that the AOM was significantly superior to TM in term of achievement in science of class VIII students when the groups were matched separately in respect of intelligence and previous year achievement in science.

Grewal and Kaur (1987) Conducted a study to compare the outcomes of three approaches to teaching namely the CAM,AOM and TM, quantified on the basis of achievement scores. The findings reveals that there was a difference in the efficacy of CAM,AOM and TM for learning concepts of science. It also reveals that CAM was more effective than AOM and there is no difference in the efficacy of AOM and TM.

Mahajan ,Jyotsna (199) Compared the effectiveness of two models of teaching CAM and AOM on the teaching abilities of student teachers and on achievement of students in various schools. Major findings were (i) The group which was taught by the CAM was found to be superior to the group which was taught by the AOM and the group which was taught by routine method, So far as the teaching ability of the students teacher was concerned (ii) The achievement of students who were taught by the CAM were found to be better than those of the students taught by AOM and the routine method.

Summary of findings – Many studies have conducted to compare the efficacy of various models of teaching. In most of the comparative studies, the effectiveness of advance organizer model against other models of teaching and against that of traditional methods of teaching in relation to many criterion variables such as intelligence (Rajoria 1987,Koushik1988; Sidhu and Singh 2000: scientific attitude (Koushik 1988; creativity (Daniel 2008; Domin 2008;
In many experimental studies the effectiveness of two models were compared and the design comprised of two experimental group only.

One thing evident from all these researches is that approach of models of teaching has been found to be superior to the traditional methods. A few have tried to move to two models & comparing their effects with that of traditional method. However most of the researches have accepted that models of teaching could prove to have a promising effect on the academic achievement of the students taught trough them.

Conclusion – On the basis of the above literature it may be said that the conventional method of teaching different subject at various levels was fond to be less effective than various innovative teaching patterns like Programmed instructions, Instructional strategies and models of teaching in term of achievement of students. The thorough rewiew of the reported studies of related literature showed that that though very important work has been done in instructional theory, leading to models of teaching including advanced organizer model. Ausubel's advanced organizer model focuses on meaningful learning. According to this theory , to learn meaningfully, individuals must relate new knowledge to relevant concepts they already know. New knowledge must interact with the learner's knowledge structure. It is found in these studies advanced organizer model is a effective way of teaching in many aspects.

References :–

1. Bharambe,I.T(1997) : A comparative study of teaching geometry by using advance organizer model, analytic – synthetic method and traditional method. Ph.D Dissertation, University of Poona.
2. Baggett,J.L.(1993) : A comparison between the use of different concept maps of advanced organizers to supplement a unit on photosynthesis in a community college biology course, Dissertation Abstract International ,54(8),2969 A.
3. Chitrive U.G.(1983):The effectiveness of ausubel and Bruner strategies for acquisition of concepts in mathematics, Ph.D. Dissertation ,Nagpur University.
4. Dennis F.H.(1984):The effects if advance organizer and repetition on achievement in a high school biology class, Ph.D. Dissertation Abstract international Vol 45,No.7,p2056 ,1985

5. Daniel S.D (2008): Using an advance organizer to facilitate change in students conceptualization of the role of creativity in science .Chem.Edu.Res.Pract.Vol9 pp291-300.
6. Domin(2008): Using an advance organizer to facilitate change in students conceptualization of the role of creativity in science .Chem.Edu.Res.Pract.Vol9 pp291-300.
7. Githua,B.N and Nyabwa,R.A.(2008): Effects of advance organize strategy during instruction on secondary school students' Mathematics achievement in Kenya's Nakuru dist. International Journal of science & mathematics Edu.6(3) 439-457.
8. Grewal S.S & Kaur R.P (1987) : A comparison between Bruner and Ausubel model of learning of concepts in science, Perspectives of Edu.3(3),118-185.
9. Jamini ,N (1991) : Effect of teaching strategies on conceptual learning efficiency and retention in relation to divergent thinking Ph.D. Dissertation University of Delhi.
10- Koushik,N.K(1988) : The long term effect of advance organizers upon achievement in biology in relation to reading ability ,Intelligence and scientific attitude ,Ph.D in Dissertation ,Devi Ahillya Vishwavidyalaya.
11. Lewis,E.H. (1986) : A comparison of the effect of an advance organizer and simplified readability if science material on science achievement in the biology lab.D.ED Dissertation temple Unive ,Dissertation Abstract International Vol47 No.9.p3388-1987
12. Mahajan .J(1992) : A comparative study of the effectiveness of two models of teavhing ,Viz Bruner,s concept attainment model and Ausubel advance organizer model on the teaching ability of students teachers and on achievement of students in various school, Ph.d Dissertation Shreemati Nathibai damodar thackersy Women University.
13. Pachpande,N.G (2012) : Study of effect of advanced organizer model on achievement of students in mathematics teaching at school level, India streams research journal V.II issue VI.
14. Panday,S.N (1986) : Effectiveness of advance organizer and Inquiry training models for teaching social studies to class VIII students, Ph.D Education Bhu.
15. Rajoriya R.(1987) : Comparison of advance organizer model with traditional method for teaching science to class VIII students with different residential background. Department of education. Devi Ahilya Vishwavidyalaya, Indore.
16. Sahoo (2001) : An experimentation on the relative effectiveness of computer assisted instructional and instruction with advance organizers in the teaching of life science in relation to cognitive style of learners.
17. Sanjane(2013) : Effectiveness of concept attainment model and advance organizer model in mathematics achievement among ninth grade students in Roop nagar district of Punjab.
18. Siddhu R.K.singh.P(2005) : Comparative study of concept attainment model, advance organizer model and conventional method in teaching of physics in relation to =intelligence and achievement motivation of class IX students, Journal of All India Association for Education research Vol17;pp89-92.
19. Teamthai,P.P.(1982) : The effect of advance organizer on science learning achievement of eight grade Thai demonstration school students with average academic ability ,Ph.D Dissertation, Indian University Dissertation abstract International,Vol.42 No.12,p5098,1982.
20. Vandana & Jadhav V(2011) Effect of advance organizer model on Pupil,s achievement in physics – A study, Indian Streams Research Journal Vol.No.10.
21. Wachange,W.Samuel,Mugiira Antony Arimba,Mbugua K.Zacharia (2013) : Effect of advance organizer teaching approach on secondary school student's achievement in chemistry in Maara District , Kenya.

****

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में 'वैज्ञानिक अभिवृत्ति' का तुलनात्मक अध्ययन।

डॉ. आरती आर्य *

शोध सारांश – वैज्ञानिक अभिवृत्ति चिन्तन की पद्धित है जिसमें वस्तुनिष्ठता, तार्किकता, उदार मनोवृत्ति, बौद्धिक ईमानदारी, अंधविश्वास के प्रति दुराग्रह, निर्णय में अस्थिरता, जिज्ञासा, नमनीयता, कल्पनाशीलता तथा धैर्य आदि मूल्य सम्मिलित होते हैं। भारतीय संविधान में अनुच्छेद 51 के अनुसार प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्ताव्य है कि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण की भावना का विकास करें। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए समाज की न्यून इकाई विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति के विभिन्न आयामों का अध्ययन करने के लिए देवास शहर के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों को सम्मिलित किया गया। जिसमें 50 विद्यार्थियों को अध्ययन हेतु चयनित किया गया। डॉ. एन.एन. श्रीवास्तव द्वारा निर्मित 'वैज्ञानिक अभिवृत्ति मापनी' द्वारा अभिवृत्ति का मापन किया गया है। अंत में निष्कर्षत: यह पाया गया कि वैज्ञानिक अभिवृत्ति के निष्पादन की विचलनशीलता गुणांक में बालकों की अपेक्षा बालिकाओं के निष्पादन में स्थिरता पायी गयी।

इति ते ज्ञानमारण्यातं गुहयात् गुहयतरं मया।
विमृश्यैतत् अशेषेण यथेच्छिसि तथा कुरू ।। – गीता सार

प्रस्तावना – भगवान श्री कृष्ण संपूर्ण गीता समझने के पश्चात् श्री अर्जुन से कहते है। कि मैंने तुम्हें गुहय से गुहय सुनाया है उस पर पूरी तरह विचार–विमर्श करके जो करना चाहते हो वह करो।

श्रीकृष्ण यह नहीं चाहते कि केवल उनके कहने पर अर्जुन उनकी सलाह मानकर चले। वे यह अपेक्षा रखते हैं कि उसकी बातों पर अर्जुन पूरी तरह सोच समझकर निर्णय ले और जो सही हो उसे मान्य करे।

वस्तुत: गीतासार के इन वचनों को प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन शैली में अभिभूत करना अनिवार्य है जिसके द्वारा वह अपने संज्ञान, अवबोध तर्कक्षमता को उन उच्च सीमाओं पर ले जाए जहाँ से वह भले–बुरे परिणामों को परखने की समझ, बोधगम्यता एवं उचित कार्यवाही करने के लिए निपुणता का विकास कर सके।

वह व्यक्ति जिनमें विचार करने की शक्ति न्यून होती है प्राय: जीवन की गूढ़ परिस्थितियों का सामना करने में बुरी तरह असफल रहते हैं। यदि व्यक्ति जीवन में सफलता की अपेक्षा करता है तो वह अपने चिन्तन को स्वस्थ एवं परिपक्व बनाए। चिन्तन एक विस्तृत सम्प्रत्यय है। इसमें अनेक संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का समावेश होता है जैसे निर्णय, प्रक्रिया, तर्क, कल्पना एवं समस्या समाधान। तार्किक प्रक्रिया होने से इसमें निरीक्षण, परीक्षण, क्रमद्धता, वैज्ञानिकता एवं मूल्यांकन सम्मिलित होते हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि चिन्तन मनुष्य जीवन की महत्वपूर्ण मानसिक प्रक्रिया है। व्यक्ति के चिन्तन में परिपक्वता वैज्ञानिक चिन्तन के द्वारा विकसित होती है। अत: यह वैज्ञानिक चिन्तन वैज्ञानिक दृष्टिकोण का एक ठोस मूलाधार बनता है।

अत: हम कह सकते हैं वैज्ञानिक अभिवृत्ति चिन्तन की पद्धति है जिसमें संज्ञानात्मक, (Cognitive) भावात्मक (Affective) एवं क्रियात्मक (Psychomotor) तीनों पक्षों से संबंधित व्यवहार परिवर्तन सम्मिलित है। जिसके फलस्वरूप व्यक्ति किसी वस्तु या स्थिति के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण दर्शाता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा समाज में निष्पक्ष निर्णय लेने का, विज्ञान की ताकत पहचानने का, विज्ञान की शीतलता को समझने का अवबोध विकसित होता है। किसी भी समाज की सबसे न्यून इकाई विद्यार्थी होते हैं और ये विद्यार्थी ही हमारे सफल विकसित समाज के सूत्रधार होते हैं। अत: विद्यार्थियों में निष्पक्ष निर्णय लेने का, अभिवृत्तियों से स्वचिंतन, स्वतंत्र विचारधारा, उदारमनोवृत्ति एवं उत्तरदायित्व की भावना आदि को व्यक्तिगत रूप से विकसित किया जाये जिसके द्वारा विद्यार्थियों में विचारों के अमूर्तरूप को मूर्तता प्राप्त होती है।

शिक्षा के स्तर (पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक) के अंतर्गत उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में शिक्षण द्वारा वैज्ञानिक अभिवृत्ति के गुणों का विकास विद्यार्थियों में भविष्य के प्रति उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने में सक्षम बनाता है। विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक, चारित्रिक, सौन्दर्यात्मक, नैतिक और आध्यात्मिक पक्षों को वैज्ञानिक अभिवृत्ति के द्वारा सकारात्मक प्रदान की जाये। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विद्यार्थियों में इन्हीं तत्वों की आवश्यकता है। तभी विद्यार्थी समाज एवं राष्ट्र के लिये उपयोगी सिद्ध होगा अध्ययन की इस आवश्यकता को अनुभव करते हुए प्रस्तुत शोध की योजना बनायी गयी।

उद्देश्य – प्रस्तुत शोध अध्ययन के उद्देश्य इस प्रकार है – 'उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के अन्तर्गत आने वाली बालिकाओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का अध्ययन करना।' उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के अन्तर्गत आने वाले बालकों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का अध्ययन करना। उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के अन्तर्गत आने वाले बालक एवं बालिकाओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना– 'उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के अन्तर्गत आने वाली बालिकाओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता। उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के अन्र्तगत आने वाले बालकों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता।' उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति के तुलनात्ममक अध्ययन में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता।

प्रविधि – प्रस्तुत अध्ययन हेतु सर्वेक्षण विध प्रयुक्त की गई। न्यादर्श के रूप में देवास शहर के विभिन्न शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों के 50 विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया। विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का मापन डॉ. एन.एन. श्रीवास्तव द्वारा निर्मित 'वैज्ञानिक अभिवृत्ति मापनी (Scientific Attitude Scale SAS) से किया गया। इस मापनी में 36 कथन अभिवृत्ति के 6 विभिन्न पक्षों (1) तार्किकता (Rationality) (2) जिज्ञासा (Curiosity) (3) उदारमनोवृत्ति (Open-mindedness) (4)

* सहायक प्राध्यापक, बी.सी.जी शिक्षा महाविद्यालय, देवास (म.प्र.) भारत

अंधविश्वास के प्रति दुराग्रह (Aversion to Superstition) (5) वस्तुनिष्ठता (Objective) तथा (6) निर्णय में अस्थिरता (Suspended Judgement) से संबंधित है।

प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान (M), प्रमाणिक विचलन (SD) तथा t-test के द्वारा किया गया।

प्रदत्त विश्लेषण – तालिका क्रमांक 1

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के अन्तर्गत आने वाले बालक एवं बालिकाओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति के अध्ययन का दण्ड आरेख –

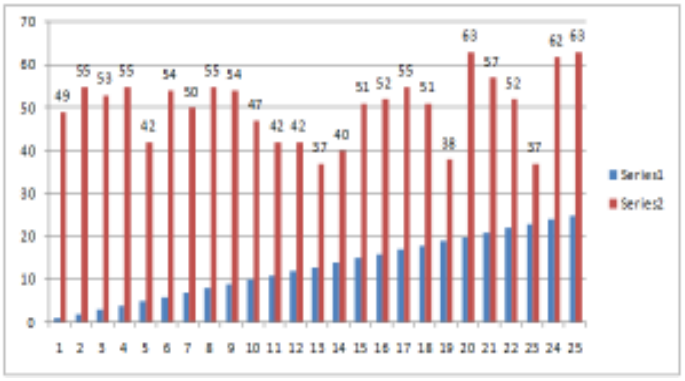

बालकों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का निष्पादन

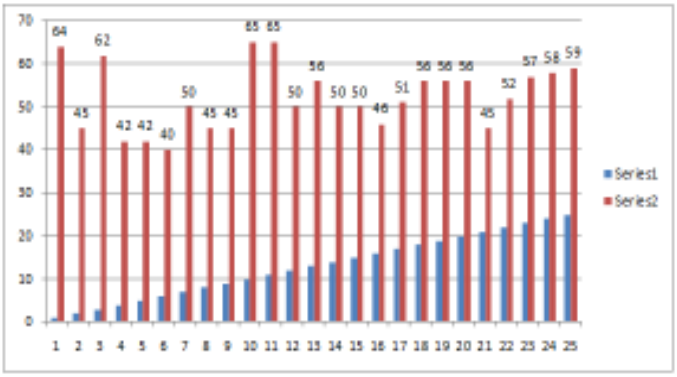

बालिकाओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का निष्पादन

दण्ड आरेख (a) के अवलोकन से स्पष्ट है कि बालिकाओं के 'वैज्ञानिक अभिवृत्ति में निष्पादन' वैज्ञानिक अभिवृत्ति परीक्षण के निर्धारित पैमाने पर न्यूनतम 40 से अधिकतम 67 के मध्य विचलित होती है। अत: विचलन की परास (40–67) 27 मूल्य की होगी।

दण्ड आरेख (b) के अवलोकन से स्पष्ट है कि बालकों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में निष्पादन 'वैज्ञानिक अभिवृत्ति परीक्षण' के निर्धारित पैमाने पर न्यूनतम 28 से अधिकतम 62 के मध्य विचलित होती है। अत: विचलन की परास (28–62) 34 मूल्य की होगी।

तालिका क्रमांक 2

उच्चतर माध्यमिक स्तर के बालक–बालिकाओं के वैज्ञानिक अभिवृत्ति के मध्यमानों, प्रमाणिक विचलन एवं t परीक्षण का मान –

क्र. सं.	N	M	SD	t test
बालक	25	50.36	47.76	0.144
बालिका	25	53.52	48.86	

तालिका क्रमांक में बालक व बालिकाओं का माध्म का मान क्रमश: 50.36 व 53.53 एवं प्रमाणिक विचलन क्रमश: 47.76 व 48.86 पाया गया। t का मान 0.144 पाया गया जो कि किसी भी स्तर पर सार्थक नहीं पाया गया।

निष्कर्ष: '(अ) उच्चतर माध्यमिक स्तर के बालिकाओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति के निष्पादन का माध्य (M) 53.52 तथा विचलनगुणांक (σ) 48.86 पाया गया। (ब) उच्चतर माध्यमिक स्तर के बालकों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का निष्पादन का माध्य (M) 50.36 तथा विचलनगुणांक (σ) 47.76 पाया गया।' उच्चतर माध्यमिक स्तर के बालिकाओं में वैज्ञानिक अभिवृत्ति के निष्पादन की विचलनशीलता गुणांक 91.29% तथा बालकों में 94.83% पाया गया। जो यह प्रदर्शित करता है कि बालकों के सापेक्ष बालिकाओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति के निष्पादन में स्थिरता पायी गयी।' उच्चतर माध्यमिक स्तर के बालक एवं बालिकाओं के माध्य (च) में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अत: शून्य परिकल्पना को निरस्त नहीं किया जाता।

सुझाव: (1) भारतीय संविधान में अनुच्छेद 51 के अनुसार प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवतावाद, ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें'। इस शोध कार्य से भारतीय संविधान के इस उद्देश्य के पूर्ण होने में आने वाली समस्या को पहचानकर उचित निर्देशन कार्यक्रम जनसामान्य के लिए किया जा सकता है। (2) विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों को संचालित करके विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति को विकसित कर सकते हैं जो विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का विकास करती है। अत: विद्यार्थी शिक्षा के क्षेत्र में उचित ढंग से निर्देशित होकर एक स्वस्थ समाज एवं राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं।

अन्ततः उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में विभिन्न शैक्षिक दिशा निर्देशन, मार्गदर्शन कार्यक्रमों का आयोजन किया जाये, जिससे विद्यार्थियों में निरीक्षण, परीक्षण, तार्किक प्रक्रिया, क्रमबद्धा, वैज्ञानिकता एवं मूल्यांकन जैसे मूल्यों का विकास हो ताकि वे जीवनशैली में स्वतंत्र विचारधारा, उद्यारमनोवृत्ति एवं उत्तरदायित्व की भावना, ज्ञान प्राप्ति की जिज्ञासा, प्राप्त ज्ञान के आधार पर उसके प्रमाणिक होने की संभावनाएं आदि व्यक्तिगत विशेषताएं विकसित कर सके एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना से प्रेरित होकर एक स्वस्थ सुदृढ़ और शक्तिशाली समाज एवं राष्ट्र का निर्माण कर सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. गैरेट, हेनरी ई. (1972) शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी कल्याण पब्लिशर्स।
2. मंगल, एस.के. (2005) साधारण विज्ञान शिक्षण, नई दिल्ली आर्य बुक डिपो।
3. डी.एस. रावत, विज्ञान शिक्षण, आगरा विनोद पुस्तक मंदिर।
4. राय पारसनाथ, अनुसंधान परिचय, आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पब्लिकेशन।
5. सिंह अरूण कुमार, सिंह आशीष कुमार (2005) व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, मातीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
6. सिंह अरूण कुमार (2006) मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।

****

डी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की सृजनात्मकता का अध्ययन

राखी शर्मा * डॉ. अर्चना श्रीवास्तव **

प्रस्तावना – गुरू ब्रह्मा, गुरू विष्णु, गुरूदैवो महेश्वरा:। गुरू साक्षात, पर ब्रह्म, तस्मै श्री गुरूवै नम:।। गुरू ही परम् ब्रहम है, गुरू ही विष्णु है, देवों के भी महादेव शिव है, इसी प्रकार गुरू साक्षात् परं ब्रहम के समान है, ऐसे गुणवान गुरू को मेरा नमस्कार है। वह ऋषि से गुरू एवं शिक्षक बने हैं, उनमें ऊर्जावान, लगनशील तथा निष्ठावान उत्तरदायित्वों को वहन करने की शक्ति होती है। प्राचीन काल में शिक्षा प्राप्ति के लिए आश्रम की व्यवस्था थी। शिक्षक के द्वारा किया गया कार्य एक राष्ट्रीय सेवा मानी जाती है। शिक्षण कार्य में सफल होने के लिए शिक्षक में दो विशेषताओं का होना आवश्यक है, विषय वस्तु का ज्ञान एवं शिक्षण के प्रति अभिरूचि जब शिक्षक को शिक्षण के प्रति अभिरूचि होगी तभी वह शिक्षा से विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास कर सकेगा। शिक्षक के महत्व को ध्यान में रखते हुए भारतीय शिक्षा आयोग ने अपने प्रतिवेदन में लिखा है कि '**भारत के भविष्य का निर्माण कक्षाओं में होता है।**' कक्षा में सृजनात्मकता से सम्बन्धित विद्यार्थियों की पहचान किस प्रकार करेंगे। इसकी शिक्षा उन्हें डी.एड. प्रशिक्षण में दी जाती है। जिससे वे सृजनशील बन सके। मनोवैज्ञानिकों ने सृजनशीलता की पहचान के कुछ पक्षों का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है–

प्रवाह – परीक्षार्थी ने कार्य से सम्बन्धित कुल कितनी अनुक्रियाएँ की है।

लचीलापन – लचीलेपन का निर्धारण दिए गए कार्य से संबंधित परीक्षार्थी द्वारा व्यक्त किए गए विचारों का कितनी श्रेणियाँ है।

मौलिकता – इसे परीक्षार्थी द्वारा प्रस्तुत की गई अनुक्रियाओं की असाधारणता के आधार पर निर्धारित किया जाता है।

विस्तारण – परीक्षार्थी द्वारा दिए गए मूल प्रश्नों में अपनी ओर से कितना विस्तार कर सकते हैं।

सृजनात्मकता से संबंधित हर क्षेत्र में शोध कार्य किए गए हैं। परन्तु डी.एड. प्रशिक्षण में सृजनात्मकता को लेकर कोई शोध कार्य नहीं किया गया। जिसे देखते हुए प्रस्तुत अध्यापन की योजना बनायी गयी। अध्ययन के उद्देश्य और परिकल्पना इस प्रकार है–

उद्देश्य – महिला एवं पुरूष डी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की सृजनात्मकता एवं उसके पक्षों की तुलना करना।

परिकल्पना – महिला एवं पुरूष डी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की सृजनात्मकता एवं उसके पक्षों में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाएगा।

प्रविधि – प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण विधि के अन्तर्गत विद्यालय सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

न्यादर्श – प्रस्तुत शोध के लिए देवास शहर के बी.सी.जी. शिक्षा महाविद्यालय में अध्ययनरत 30 डी.एड. प्रशिक्षणार्थियों को सम्मिलित किया गया।

उपकरण – प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्तों के संग्रहण हेतु डॉ. रोमापाल द्वारा निर्मित "A New test of Creativity (VERBAL)" लिया गया। परीक्षण का समय 45 मिनिट निर्धारित किया गया।

प्रदत्त विश्लेषण – प्रस्तुत शोध में डी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की सृजनात्मकता की तुलना (t) के लिए परीक्षण का उपयोग किया गया। परिणाम तालिका क्रमांक 1 में दिए गए हैं –

तालिका क्रमांक 1

डी.एड. प्रशिक्षणार्थियों के कुल सृजनात्मकता की तुलना के M, SD एवं t के मानों का विवरण

Sex	M	SD	N	t- value
पुरूष	73.72	3.14	18	8.00
महिलाएँ	83.33	3.34	12	

** 0.01 स्तर पर सार्थक

तालिका क्रमांक 1 में अध्ययन से स्पष्ट होता है महिलाएँ पुरूषों की तुलना में अधिक सृजनशील पायी गयी।

सृजनात्मकता में विभिन्न पक्षों का विवरण निम्न तालिकाओं में दिया जा रहा है –

तालिका क्रमांक 2

पुरूष एवं महिलाओं की सृजनात्मका के पक्ष प्रवाहिता की तुलना के लिए M, SD एवं t के मानों का विवरण

Sex	M	SD	N	t- value
पुरूष	47.44	11.69	18	2.08*
महिलाएँ	55.33	10.30	12	

* 0.05 स्तर पर सार्थक

तालिका क्रमांक 2 अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सृजनात्मक के पक्ष प्रवाहिता में महिलाएँ, पुरूषों की तुलना में अधिक सृजनशील पायी गई।

तालिका क्रमांक 3

महिलाएँ एवं पुरूषों की सृजनात्मकता के पक्ष लचीलापन की तुलना के लिए M, SD एवं t का विवरण

Sex	M	SD	N	t- value
पुरूष	21.05	24.49	18	1.88
महिलाएँ	23.08	12.68	12	

ताकिला क्रमांक 3 के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि महिलाओं एवं पुरूषों की सृजनात्मका के पक्ष लचीलापन में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाएगा।

तालिका क्रमांक 4

* सहायक प्राध्यापक, बी. सी. जी. शिक्षा महाविद्यालय, देवास (म.प्र.) भारत
** प्राध्यापक, बी. सी. जी. शिक्षा महाविद्यालय, देवास (म.प्र.) भारत

बालक–बालिकाओं की सृजनात्मकता के पक्ष मौलिकता की तुलना के लिए M, SD एवं t का विवरण

Sex	M	SD	N	t- value
पुरूष	5.06	1.54	18	2.04
महिलाएँ	4.83	1.14	12	

तालिका क्रमांक 4 के अनुसार पुरूष–महिलाओं की सृजनात्मकता के पक्ष मौलिकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाएगा।

निष्कर्ष –

- महिलाओं का पुरूषों की तुलना में सृजनशील का स्तर उच्च पाया गया।
- सृजनात्मकता के पक्ष प्रवाहिता में पुरूषों की तुलना में महिलाओं का स्तर सार्थक उच्च स्तरीय पाया गया।
- पुरूष एवं महिला डी.एड. प्रशिक्षणार्थियों के सृजनात्मकता के पक्ष लचीलापन एवं मौलिकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

प्रस्तुत अध्ययन डी.एड. प्रशिक्षणार्थियों की सृजनात्मकता के मापन पर केन्द्रीत है। इसके अन्तर्गत प्रशिक्षणार्थियों पर सृजनात्मकता एवं उसके नवीनता, प्रवाहिता, लचीलेपन का अध्ययन किया गया। इस अध्ययन के आधार पर प्राथमिक स्तर पर शिक्षक प्रशिक्षणों में सृजनात्मकता के विकास से संबंधित गतिविधियों का आयोजन कर अध्ययन अध्यापन की प्रक्रिया को प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. बुच.एम.बी. (1991) शिक्षा अनुसंधान, तृतीय सर्वे (1978–83) नई दिल्ली, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्।
2. बुच.एम.बी. (1991) शिक्षा अनुसंधान, चतुर्थ सर्वे (1983–88) नई दिल्ली, एन.सी.ईआर.टी.
3. जोशी, दिनेशचन्द्र (2007) शिक्षक प्रशिक्षण के सिद्धान्त और समस्याएँ। जयपुर (राज.), हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
4. कपिल, एच.के. (2007) अनुसन्धान विधियाँ, आगरा, एच.पी. भार्गव, बुक हाऊस।
5. पाठक, पी.डी. (1984) सफल शिक्षण कला, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर।
6. पुरोहित, जगदीश नारायण (2006) शिक्षण के लिए आयोजन, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
7. शर्मा एच.के. (2000) पंचम सर्वे भाग 2 (1988–92) नई दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी.।

****

उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी की अर्थशास्त्र के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन

प्रो. सरोज सिंह हाड़ा *

शोध सारांश –प्रस्तुत अध्ययन उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अर्थशास्त्र के प्रति अभिवृत्ति पर केन्द्रित है , जिसका उद्देश्य निम्नलिखित है–

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अर्थशास्त्र के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के बालक एवं बालिकाओं में अर्थशास्त्र के अध्ययन के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।
3. उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य व पिछडे वर्ग के विद्यार्थियों में अर्थशास्त्र के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना। अध्ययन की अन्तर नहीं पाया गया।

- **परिकल्पना इस प्रकार है –**

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्याथियों की अर्थशास्त्र विषय के प्रति अभिवृत्ति के अध्ययन में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य व पिछडे वर्ग के विद्यार्थियों के अर्थशास्त्र विषय के प्रति अभिवृत्ति के अध्ययन में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा। प्रस्तुत शोध सर्वेक्षण विधि पर आधारित है । इस अध्ययन हेतु कक्षा 11वीं तथा 12वीं के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा निर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया व प्रदत्त विश्लेषण t परीक्षण के द्वारा किया गया है।

- **प्रस्तुत शोध के निष्कर्ष इस प्रकार है।**

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में अर्थशास्त्र के प्रति अभिवृत्ति का स्तर सामान्य पाया गया।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य व आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों में अर्थशास्त्र के प्रति अभिवृत्ति का स्तर सामान्य पाया गया।
3. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के अर्न्तगत बालिकाओं की अभिवृत्ति बालको की अभिवृत्ति से सार्थक उच्चस्तरीय पाया गया।

- **शैक्षिक उपयोगिता –**

1. छात्रों की मानसिक योग्यता और आर्थिक महत्व के पक्ष पर बल दिया जा सकता है।
2. विद्यार्थियों में सामाजिक, आर्थिक व व्यावहारिक ज्ञान को प्रोत्साहित किया जा सकता है।
3. विद्यालयी तथा सामाजिक ज्ञान के अन्तर्गत विद्यार्थियों के जीवन में निहित आर्थिक मूल्यों से कराया जा सकता है।
4. विद्यार्थियों में व्यवहारिक तथा आर्थिक ज्ञान के प्रति रूचि उत्पन्न की जा सकती है।
5. अर्थशास्त्र के ज्ञान से विद्यार्थियों को भविष्य में जीवन निर्वहन कर अच्छे व्यवसायी के गुण उत्पन्न कर सकते है।

प्रस्तावना – शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि व्यक्ति को सामाजिक वातावरण में ही अत्यधिक लाभप्रद ढ़ग से शिक्षा दी जाती है। किसी व्यक्ति में अभिवृत्तियाँ और रूझानों का विकास समाज के जीवन की निरन्तरता द्वारा ही संभव है। इसका विकास प्रत्यक्षत: विश्वासों संवेदों तथा ज्ञान के माध्यम से ही संभव नहीं है अत: समाजिक अध्ययन पाठ्यक्रम में समेकित दृष्टिकोण जाना चाहिए और अन्य विषयों जैसे इतिहास भूगोल , नागरिक शास्त्र के साथ – साथ अर्थशास्त्र का अध्ययन भी आवश्यक होना चाहिए ।

'अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जिसमें साध्यों तथा वैकल्पिक प्रयोग वाले सीमित साधनों के मध्य पारस्परिक संबंध के रूप में मानव व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।' (राबिन्स , 1932) अर्थशास्त्र अंग्रेजी शब्द (Economic) का हिन्दी स्पान्तर है जिसे विज्ञानों की माता कहा जाता है। एड्स स्थिम को अर्थशास्त्र का जनक मानपा जाता है।

औचित्य – अर्थशास्त्र के ज्ञान से छात्र यह जानने में समर्थ होता है कि हमारे देश में किस प्रकार की आर्थिक व्यवस्था है, वह कौन सी आर्थिक व्यवस्था अपनाये और क्यों ? इसके क्रियान्वयन में किन – किन साधनों एवं प्रयासों को काम में लाया जाए। आवश्यकता पूर्ति के लिये किन संस्थाओं की स्थापना की जाये ।

अर्थशास्त्र के अध्ययन द्वारा ही छात्र अपना दृष्टिकोण व्यापक बना सकता है , विभिन्न तथ्यों के सापेक्षिक महत्व को समझ सकता है , जीवन में आने वाली जटिलताओं का निराकरण कर सकता है। अत: नवीन पाठ्यक्रम में अर्थशास्त्र का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक होता जा रहा है।

इन सभी समस्याओं को सलझाने से छात्रों में विवेक एवं नागरिकता की भावना उत्पन्न होती है। तथा एक अच्छे नागरिक होने के लिये भी अर्थशास्त्र का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

उद्देश्य –

1. उच्चतर माध्यमिक विद्यार्थियों की अर्थशास्त्र के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के बालक व बालिकाओं में अर्थशास्त्र के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य व आरक्षित वर्ग विद्यार्थियों में अर्थशास्त्र के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

* सहायक प्राध्यापक, बी.सी.जी. शिक्षा महाविद्यालय, देवास (म.प्र.) भारत

परिकल्पना – प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रस्तावित शोध कार्य निम्नांकित परिकल्पना की गई –

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के बालक व बालिकाओं की अर्थशास्त्र विषय के प्रति अभिवृत्ति के अध्ययन में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य व आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों के अर्थशास्त्र के प्रति अभिवृत्ति के अध्ययन में सार्थक अन्तर नहीं पाया जायेगा।

प्रविधि – प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोध कार्य हेतु सर्वेक्षण विधि प्रयुक्त की गई है। प्रस्तुत शोध कार्य हेतु कक्षा 11वीं तथा 12वीं के 50 विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है। प्रदत्तों का विश्लेषण मध्यमान प्रमाणीकरण का विचलन एवं t परीक्षण के द्वारा किया गया है।

'उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य वर्ग एवं आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों में अर्थशास्त्र के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन' –

तालिका क्र. – 1

क्र.	N	M	S.D.	t
सामान्य वर्ग	22	22	3.5	✲ 2.0166
पिछडा वर्ग	28	22.7	3.31	

0.05 स्तर पर सार्थक

'उच्चतर माध्यमिक स्तर के बालक एवं बालिकाओं के अर्थशास्त्र के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन' –

तालिका क्र. – 2

क्र.	N	M	S.D.	t
बालक	30	22.04	3.1	✲ 2.02
बालिकाओं	20	23.25	3.6	

0.05 स्तर पर सार्थक

निष्कर्ष –

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर के सामान्य तथा आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों में अर्थशास्त्र के प्रति अभिवृत्ति का स्तर सामान्य पाया गया।
2. उच्चतर माध्यमिक का स्तर के विद्यार्थियों के अन्तर्गत बालकिाओं की अभिवृत्ति बालकों की अभिवृत्ति से सार्थक उच्चस्तरीय पाया गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. **मितल , आर.ए. (2007) –** अर्थशास्त्र समाजशास्त्र एवं राजनीति शास्त्र , शैक्षिक अनुसंधान का पद्धति शास्त्र मेरठ आर. लाल बुक डिपो।
2. **सिंह एम.के. (2006) –** सामाजिक विज्ञान भोपाल अक्षर ग्राफिकल।
3. **त्यागी , गुरूसरन दास एवं नन्द , विजय कुमार (2006) –** अर्थशास्त्र शिक्षण आगारा।
4. **त्यागी गुरूसरन दास एवं नन्द , विजयकुमार (2006) –** शिक्षा के समाजशास्त्रीय एवं दर्शन शास्त्रीय आधार आगरा।
5. Buch , M.B. (1983 - 92) , Foulth Survey of Educational Reserch volume I-II.
   NCERT (National Council of Educational Reserch and Training). Shri Aurovindo mary New dehli .
6. Buch , M.B. (1983 - 92) , Figth Survey of Educational Reserch volume II ,

✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲✲

प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण एवं प्रवेश से परिणाम तक का परिदृश्य

प्रो. सरोज सिंह हाड़ा *

शोध सारांश – समय – समय पर चिन्ता प्रकट की गई है कि हमारी शिक्षा का स्तर उतरोत्तर नीचे गिर रहा है। इस संदर्भ में विशेषकर प्राथमिक स्कूलों को दोषी ठहराया जाता है और कहा जाता है कि इस स्तर पर बच्चों की सर्वांगीण उन्नति के लिये पर्याप्त प्रयास नहीं किये जा रहे है। इस में कोई संदेह नहीं कि जब तक नीवं दृढ नहीं होगी , भवन भी अस्थिर ही रहेगा इसलिये शिक्षा स्तर की नींव , जिसका आधार प्राथमिक स्तर पर ही निर्भर होता है , कि सुदृढ बनाये बिना शिक्षा के अन्य स्तरों में सुधार लाना बहुत ही कठिन कार्य होगा।

प्राथमिक शिक्षा में सुधार हेतु अनेक पग उठाये गये है फिर भी बहुत कुछ करना बाकी है। सदा यह स्मरण रखना होगा कि इस गतिशील संसार में ज्ञान का विस्फोट बहुत शीघ्रता से हो रहा है और इन चुनौतियों का सामना करने के लिये प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम व अध्यापन विधियां आदि में सतत् समयानुसार परिवर्तन लाना होगा।

प्रस्तावना – भारत के प्राथमिक शिक्षा का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीनकाल से ही अनेक लोग उच्च ज्ञान प्राप्त करने के बजाय दैनिक जीवन के लिये आवश्यक शिक्षा प्राप्त करने के बाद किसी व्यवसाय में प्रविष्ट हो जाते है। प्राथमिक शिक्षा के लगभग सभी केन्द्र प्राय: किसी न किसी धार्मिक स्थान से जुडे हुये थे। अंग्रेजी ने विद्यालय की इस पद्धति का पोषण करने के बजाय इसे नष्ट करने का प्रयास किया और एक नई प्रकार की प्राथमिक शिक्षा की शुरूआत की।

प्रारम्भिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण राष्ट्रीय ध्येय के रूप में स्वीकार किया गया है। 1992 में संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति में संकल्प व्यक्त किया गया है , कि 21वीं शताब्दी के शुरू होने से पहले देश में 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को नि:शुल्क अनिवार्य तथा गुणवत्ता की दृष्टि से संतोषजनक शिक्षा उपलब्ध कराई जायेगी।

1. सार्वभौम पहुँच (Universal Approach) – सन् 1950 से इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रयास किये गये है परन्तु जनसंख्या के विस्फोट ने समस्त प्रयासों एवं उपलब्धियों को अर्थहीन बना दिया है।

2. सार्वभौम नामांकन (Universal Enrolment) – सार्वभौमिक नामांकन का अभिप्राय है निर्धारित प्रवेश आयु अर्थात 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को प्राथमिक स्कूलों में प्रवेश दिलाने से है। सामान्यत: यह पाया गया है कि अनके बच्चे स्कूल में प्रवेश ही लेते है। अनुमानत: 11 प्रतिशत बच्चे विद्यालय में प्रवेश नहीं लेते है। सार्वभौमिक नामांकन से अभिप्राय है कि इस वय वर्ग के सभी बच्चे स्कूल में प्रवेश ले। परन्तु यह कार्य अभी काफी सीमा तक शेष है।

नामांकन का सार्वभौमिकरण न होने का प्रमुख कारण बच्चों की आर्थिक दशा का खराब होना है, जो अपने माता – पिता के जीविकोपार्जन में सहायता करते है। वे विद्यालय जाने के बजाय खेतों व दुकानों में काम करते है। माता – पिता की उदासीनता, नीरस विद्यालय पाठ्यक्रम और सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराएं नामांकन के सार्वभौमिकरण के मार्ग में बहुत बड़ी बाधाएँ है।

3. सार्वभौम धारणा (Universal Retention) – प्रत्येक नामांकित बच्चे को विद्यालय में तब तक रोके रखा जाये जब तक वह निश्चित आयु का न हो जाये या निश्चित पाठ्यक्रम न पुरा कर ले अर्थात बच्चा प्राथमिक शिक्षा की समाप्ति तक विद्यालय में बना रहे। इसका अभिप्राय यह है कि कक्षा एक में प्रवेश लेने वाले प्रत्येक 100 बच्चों में से 40 बच्चे कक्षा 5 में पहुँच जाते है और केवल 25 बच्चे कक्षा 8 में पहुँच जाते है व शेष बच्चे शाला का त्याग कर देते है। जिन बच्चों को स्कूल तक ला पाना संभव न हो उनके लिये अनौपचारिक शिक्षा (Non – Sormal education) था वैकल्पिक शैक्षिक कार्यक्रम तैयार किये जाये।

- **जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (District Primary Education Programme) (DPET)** – यह कार्यक्रम 1994 में शुरू किया गया। प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के अभियान पर विशेष बल देने की दिशा में नई पहल है। इसमें प्राथमिक शिक्षा के विकास के बारे में समय दृष्टिकोण अपनाया गया व जिले की विशेष आवश्यकता को ध्यान में रखकर ये नीति अपनाई गई।

1. सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना।
2. प्राथमिक शिक्षा अधुरी छोड़ देने वाले बच्चों की दर 10 प्रतिशत से भी कम करना।
3. प्राथमिक स्कूलों के बच्चों के सीखने समझने के स्तर में 25 प्रतिशत वृद्धि करना।
4. इस क्षेत्र में सामाजिक व लौगिंक भेद को 5 प्रतिशत से भी कम करना।

'प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण संबंधी प्रमुख कार्यक्रम'

1. ऑपरेशन ब्लेक बोर्ड (Operation Black Board) – राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में यह पाया गया कि स्कूली वातावरण अच्छा नहीं होना, भवनों की असंतोषजनक स्थिति व प्राथमिक स्कूलों में अपर्याप्त शिक्षण सामग्री आदि बातों , बच्चों के नामांकन तथा उन्हें स्कूलों में निरन्तर रूप से बनाये रखने में बाधक बनती है। प्राथमिक विद्यालय के स्तर को सुधारने हेतु आपरेशन ब्लैक बोर्ड ' नामक अभियान शुरू करने की बात कहीं गई , इस योजना के अंतर्गत तीन कक्षा – कक्ष तथा तीन शिक्षक उपलब्ध कराने के लिये दिया गया।

* सहायक प्राध्यापक, बी.सी.जी. शिक्षा महाविद्यालय, देवास (म.प्र) भारत

2. न्युनतम शिक्षा स्तर (..... Level of Learning) – भारत एक विकासशील देश है इसमें प्राथमिक स्तर पर प्राप्त किये जाने वाले न्युनतम शिक्षण स्तरों पर निर्धारित करने के लिये 1991 में पहल की थी।

3. मध्यान्ह भोजन स्कीम (Programm of Nutritional Spport to Primary Education) – प्राथमिक शिक्षा के लिये पोशाहार समर्थन का राष्ट्रीय कार्यक्रम , जिसे मध्यान्ह भोजन स्कीम के नाम से जाना जाता है। लगभग 12 करोड़ बच्चों को कवर करता है। यह विश्व के एक सबसे बड़े स्कूल खाद्य कार्यक्रम के रूप में उभरा है। अगस्त 1995 में शुरू की गई इस स्कीम को सितम्बर 2004 में संशोधित किया गया था।

4. जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (District Primary Education Programme) – यह कार्यक्रम 1994 में 7 राज्यों के 42 जिलों में प्रारंभ किया गया तथा धीरे – धीरे 27 राज्यों के लगभग सभी जिलों में आरंभ किया गया।

- **इसके घटक इस प्रकार है –**

1. शिक्षण कक्षाओं तथा स्कूल का निर्माण।
2. अनौपचारिक वैकल्पिक स्कूली केन्द्रों की स्थापना करना।
3. अध्यापन अधिगम सामग्री का निर्माण।
4. अनुसंधान आधारित उपाय।

5. संविधान की धारा 45 में संशोधन (Amendment of Article 45 of the Constitution) – संविधान की मूल धारा 45 के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण 1960 तक हो जाना चाहिये था परन्तु यह लक्ष्य 2000 तक भी पुरा न हो सका। ऐसा अनुभव किया गया है कि इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये प्राथमिक शिक्षा को 'भौतिक अधिकार' बना दिया जाये।

6. शिक्षा गांरटी आश्वासन योजना और वैकल्पिक तथा नवाचारी शिक्षा (Education Guarantee Scheme and Alternative and Innovative Education) – 6 – 14 आयु वर्ग के बच्चों के लिये आश्वासन योजना और वैकल्पिक तथा नवाचारी शिक्षा कार्यक्रम 1 अप्रैल 2001 में शुरू की गई। इसकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित है।

1. स्कूलविहीन बस्तियों में स्कूल खोलना (R.G.S.)
2. 'स्कूल बाह्य ' बच्चों को मुख्य धारा का अंग बनाने के लिये हस्तक्षेपणीय उपाय जैसा कि सेतु पाठ्यक्रम' वापस स्कूल चलो शिविर' आदि।

7. सर्वशिक्षा अभियान (Sarva Shiksha Abhiyan) – सर्वशिक्षा अभियान प्राथमिक स्तर पर 'सभी को शिक्षा' देने के लिये चलाया गया है। इस अभियान का आरंभ 2001 में किया गया।

- **अभियान के लक्ष्य –**

1. 2003 तक 6 – 14 वर्ष के सभी बच्चे स्कूल में हो।
2. 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चे 2007 तक पॉच वर्षो की प्रारम्भिक शिक्षा पूरी कर लें।
3. 2010 तक यह सुनिश्चित करना कि सभी बच्चे शिक्षा जारी रखे।

प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिये सुझाव – निम्नलिखित सुविधायें प्रदान की जावें।

- पाठ्यक्रम आवश्यकतानुसार व प्रभावी होना चाहिये।
- पाठ्यक्रम को ठीक ढंग से क्रियान्वित करने के लिये गतिशील शिक्षण विधियॉ हो। जो छात्र केन्द्रित हो।
- विद्यालयों में पर्याप्त भौतिक तथा अन्य सुविधाएं हो।
- उपयुक्त एवं आर्कषक पाठ्य पुस्तके हो।
- उत्साही एवं संतुष्ट शिक्षक वर्ग हो।
- लचीली तथा वस्तुनिष्ठ परीक्षा पद्धति हो।
- प्राथमिक स्तर पर अधिक व्यय करना।
- छात्रों को गृहकार्य से मुक्त रखना व बोझ कम करना।
- खेल – खेल में अध्ययन करवाना आदि।

प्राथमिक शिक्षा को प्रभावी बनाना जा सकता है।

परिणाम – छात्रों को प्राथमिक – स्तर पर नीची कक्षा से अगली कक्षा में स्वत: जाने का प्रावधान करना चाहिये। मूल्याकंन में छात्रों का केवल उनकी क्षमताओं के बारे में विवरण हो, ताकि वे तथा उनके अभिभावक त्रुटियों को जानकर उनके सुधार के लिये प्रयत्न करे। छात्रों के स्वास्थ्य , शारीरिक तौर पर व मानसिक स्तर को देखते हुये परीक्षाऐं आयोजित की जाना चाहिये। पाठ्यक्रम की पुस्तकें चित्रों से संजीव होनी चाहिये क्योंकि चित्र से बच्चे आकर्षित होते है। पाठ्यपुस्तकों में दी गई सामग्री का भी जीवन से इतना संबंध नहीं होता , जितना कि होना चाहिये। प्राथमिक शिक्षा पर कुल व्यय का 56 प्रतिशत खर्च था जो घटकर 24 प्रतिशत रह गया। प्राथमिक स्तर पर खर्च बहुत कमी आई है अत: खर्च बढाए बिना स्थिति संतोषजनक नहीं हो सकती है।

प्राथमिक स्कूल में मीडिया का अधिक से अधिक प्रयोग करके शैक्षिक स्तर को बढ़ाया जाए। भारत में प्राथमिक शिक्षा की दयनीय दशा देखकर गोखले का हृदय द्रवित हो गया। उनका विश्वास था यह बात स्पष्ट है कि एक अशिक्षित तथा अज्ञानी राष्ट्र कदापि वास्तविक उन्नति नहीं कर सकता है और जीवन की दौड में अवष्य पीछे रह जायेगा। इस संबंध में यह लिखना आवश्यक है कि केवल कानून पास करने से ही शिक्षा का प्रसार नहीं होता है उन्हें दृढतापूर्वक लागू किया जाना चाहिये। प्रान्त सरकारे इस दिशा में उदासीन रहीं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास – जे. सी. अग्रवाल
2. आधुनिक भारतीय शिक्षा समस्याएं व समाधान – रविन्द्र अग्निहोत्री
3. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं – पी.डी. पाठक
4. शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि (मानव संसाधन विकास मंत्रालय) – डॉ. लक्ष्मीलाल के. ओड़

****

प्राचीन भारत में खगोल विज्ञान

डॉ. नितिन सहारिया * डॉ. उमा शंकर पटले **

प्रस्तावना – खगोल विज्ञान को वेद का नेत्र कहा गया है क्यों कि संपूर्ण सृष्टियों मे होने वाले व्यवहार का निर्धारण काल से होता है। और काल का ज्ञान गृहीय गति से होंता है। अत: प्राचीन काल से खगोल विज्ञान वेदांग का हिस्सा रहा है। ऋग्वेद, शतपत ब्राहाण आदि ग्रंथो में नक्षत्र, चान्द्रमास, सौरमास, मल मास, ऋतु परिवर्तन, उत्तरायण, दक्षिणायन, आकाश चक्र , सूर्य की महिमा, कल्प का माप, आदि के संदर्भ में तनिक उद्धरण मिलते हैं इस हेतु ऋषि प्रत्यक्ष अवलोकन करते थे। कहते है, ऋषि दीर्घतमस् सूर्य का अध्ययन करने मे ही अंधे हुए, ऋषि गृत्स्मद ने चन्द्रमा के गर्भ पर होने वाले परिणामो के बारे में बताया यजुर्वेद के 18 अध्याय के चालीसवे मंत्र में यह बताया गया है कि सूर्य किरणो के कारण चंद्रमा प्रकाश मान है।

यंत्रो का उपयोग कर खगोल का निरीक्षण करने की पद्धति रही है। आर्यभट्ट के समय में 1500 से अधिक वर्ष पूर्व पाटलिपुत्र में वेधशाला Ovservatory थी। जिसका प्रयोग कर आर्यभट्ट ने कई निष्कर्ष निकाले।

भास्कराचार्य सिद्धांत शिरोमणि ग्रंथ के यंत्राध्याय प्रकरण में कहते है 'काल के सूक्ष्म खंडो का ज्ञान यंत्रो के बिना संभव नहीं है। इसलिए अब मै यंत्रो के बारे में कहता हूँ। वे नाड़ीवलय यंत्र, यष्टि यंत्र, घटी यंत्र, चक्र यंत्र, शंकु यंत्र, चाप, तुर्य, फलक, आदि का वर्णन करते है।'

प्रत्यक्ष निरीक्षण एवं अचूक ग्रहीय व काल गणना का 6000 वर्ष से अधिक पुराना इतिहास –

श्री धर्मपाल जी ने 'Indian Science and Technology in the Eight-eenth Century' नामक पुस्तक लिखी है। उसमें प्रख्यात खगोलज्ञ जॉन प्लेफेयर का एक लेख 'Remarks on the Astronomy of the brahimns'(1790 में प्रकाशित) दिया है। यह सिद्ध करता है। कि 6000 से अधिक वर्ष पूर्व से भारत में खगोल ज्ञान था और यहॉ की गणनाएँ दुनिया में प्रयुक्त होती थी उनके लेख का सार यह है कि सन् 1687 में एम. लॉ. लाबेट, जो स्याम के दूतावास में थे, जब वापस आये तो अपने साथ एक पंचांग लाये। दो पंचांग मिशनरियों ने भारत से भेजे, जो एक दक्षिण भारत से था और एक वाराणसी से। एक और पंचांग एम.डी लिस्ले ने भेजा, जो दक्षिण भारत के नरसापुर से था। उस समय के फ्रेंच गणितज्ञों की समझ में न आया, तो इन्हें जॉन प्लेफेयर के पास भेज दिया, जो उस समय रॉयल एस्ट्रोनोमर थे। उन्होंने जब इनका अध्ययन प्रारम्भ किया तो एक अद्भुत बात उनके ध्यान में आई कि ये पचांग अलग-अलग स्थानों के हैं, पर जिन सिद्धांतो के आधार पर ये पंचांग बने है, वे एक हैं।

एक और विचित्र बात प्लेफेयर के ध्यान में आई कि स्याम के पचांग में दी गई यामोत्तर रेखा- दी मेरिडियन (आकाश में उच्च काल्पनिक बिन्दु से निकलती रेखा) 18'-15' पश्चिम में है और स्याम इस पर सिथत नहीं है आश्चर्य कि यह बनारस के मेरिडियन से मिलती है। इसका अर्थ है, स्याम के पंचांग का मूल हिन्दुस्तान है।

दूसरी बात वह लिखता है ' एक आश्चर्य की बात यह है कि सभी पंचांग एक संवत् का उल्लेख करते हैं, जिसे वे कलियुग का प्रारम्भ मानते हैं और कलियुग के प्रारम्भ के दिन जो नक्षत्रों की स्थिति थी, उसका वर्णन अपने पंचांग में करते हैं तथा वहीं से काल की गणना करते हैं। उस समय ग्रहों की क्या स्थिति थी, यह बताते हैं तो यह बड़ी विचित्र बात लगती है क्योंकि कलियुग का प्रारम्भ याने ईसा से 3000 वर्ष पुरानी बात। इतने पहले के समय में जो यह लिखा गया कि बृहस्पति, शनि, मंगल, बुध, शुक्र, आदि कहॉ सिथत है, तो बहुत अद्भुत लगता है।' आगे प्लेफेयर काफी विस्तार से विश्लेषण करने के बाद कहता है आज उपलब्ध आधुनिक प्राचीन पंचांगो में दी गई ग्रहों की स्थिति में प्रयोगत्मक त्रुटियों की सीमा के भीतर समानता है। यह कैसे सम्भव हुआ होगा, इसका विश्लेषण करते हुए प्लेफेयर दो विकल्प सामने रखते हैं।

1. ब्राम्हाणों ने गिनती की निर्देश और अचूक पद्धति विकसित की होगी तथा ब्रम्हाण्ड में दूर और पास के ग्रहो को आकर्षित करने के लिए कारणीभूत गुरूत्वाकर्शण के नियम से ब्राम्हण परिचित थे।
2. ब्राम्हणों ने आकाश का निरीक्षण वैज्ञानिक ढंग से किया।

इन विकल्पों में प्लेफेयर दूसरा विकल्प चुनते है और स्वीकार करते हैं कि ब्राम्हणों ने भूतकाल में आकाश का स्पष्ट दर्शन व अवलोकन किया। इतने पुराने समय मे अपने सामान्य साधनो से उन्होने जो पंचाग बनाये, वे अद्भुत है। इन्हे बनाने में भूगोल, अंकगणित, त्रिकोणमिति तीनों का प्रयोग हुआ है। अंत में प्लेफेयर दो बाते कहते हैं।

1. यह सिद्ध होता है कि भारत वर्ष में एस्ट्रोनॉमी ईसा से 3000 वर्ष पूर्व से थी तथा कलियुगारम्भ पर सूर्य और चन्द्र की वर्णित स्थिति वास्तविक निरीक्षण पर आधारित है।
2. इतना शुद्ध ज्ञान विकसित होने और प्रचलित होने में 1000-1200 वर्ष लगे होंगे। अत: हम कह सकते है कि ईसा से लगभग 4300 सौ वर्ष पूर्व प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर , खगोल विज्ञान भारत में विकसित था।

एक तटस्थ विदेशी का यह विश्लेषण हमें आगे कुछ करने की प्रेरणा देता है।

श्री धर्मपाल ने अपनी इसी पुस्तक में लिखी है कि तत्कालीन बंगाल की ब्रिटिश सेना के सेनापति, जो बाद में ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य बने, सर रॉबर्ट बारकर ने 1777 में एक लेख Bramins observatory at Banaras (बनारस की वेधशाला) पर प्रकाश डाला है। सन् 1772 में उन्होंने वेधशाला का निरीक्षण किया था। उस समय उसकी हालत खराब थी क्योंकि लम्बे समय

* अतिथि विद्वान, शासकीय महाविद्यालय, कोतमा-अनूपपुर (म.प्र.) भारत
* सहायक प्राध्यापक, शासकीय नर्मदा महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.) भारत

से उसका कोई उपयोग नहीं हुआ था। इसके बाद भी उस वेधशाला में जो यंत्र व साधन बचे थे, बात यह ध्यान में आई कि ये साधन लगभग 400 वर्ष पूर्व तैयार किये गये थे। इन सभी साधनों का माप उनका जोड़ आदि एकदम निर्देश थे।

प्राचीन खगोल विज्ञान की कुछ झालकियॉ

1. प्रकाश की गति – क्या हमारे पूर्वजों को प्रकाश की गति का ज्ञान था? उपर्युक्त प्रश्न एक बार गुजरात के राज्यपाल रहे श्री के. के. शाह ने मैसूर विश्व विद्यालय के भैतिकी के प्राध्यापक प्रो एल. शिवया से पूछा। श्री शिवया संस्कृत और विज्ञान दोनों के जानकर थे। उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया हॉ जानते थे और प्रमाण में उन्होंने बताया कि ऋग्वेद के प्रथम मंडल में दो ऋचायें है। मनो न योडध्वन: सध एत्येक: सत्रा सूरो वस्य ईशे अर्थात् मन की तरह शीघ्रगामी जो सूर्य स्वर्गीय पथ पर अकेले जाते है। ऋ 1-71-9' तराणिर्विश्रदर्शतो ज्योतिकृदसि सूर्य विश्रमाभासिरोचनम्' अर्थात् हे सूर्य, तुम तीव्रगामी एवं सुन्दर तथा प्रकाश के दाता और जगत् को प्रकाशित करने वाले हो। (ऋ 1.50.9)

इन ऋचाओं के भाश्य में सायणाचार्य शीघ्रगमन का वर्णन करते हुए एक श्लोक लिखते हैं जिसमें प्रकाश गति का वर्णन है।

योजनानां सहस्त्रे द्वे द्वेशते द्वे च योजने।
एकेन निमिशार्धेन क्रममाण नमोडस्तुते।।

अर्थात् आधे निमेश में 2202 योजन का मार्गक्रमण करने वाले प्रकाश तुम्हें नमस्कार है।

इसमें 1 योजन' = 9 मील 160 गज
अर्थात् 1 योजन = 9.11 मील
1 दिन रात में = 810000 अर्ध निमेश
अत: 1 सेंकंड में = 1.42 अर्ध निमेश

इस प्रकार 2202 x 9.11 = 20060.22 मील प्रति अर्ध निमेश
तथा 20060.22 x 9.42 = 188766.67 मील प्रति सेंकड

आधुनिक विज्ञान को मान्य प्रकाश गति के यह अत्यधिक निकट है।

2. गुरूत्वाकर्षण – पिताजी, यह पृथ्वी जिस पर हम निवास करते है किस पर टिकी हुई है?

लीलावती ने शताब्दियों पूर्व यह प्रश्न अपने पिता भास्कराचार्य से पूछा था। इसके उत्तर में भास्कराचार्य ने कहा, लीलावती, कुछ लोग जो यह कहते हैं कि यह पृथ्वी शेषनाग, कछुआ या हाथी या अन्य किसी वस्तु पर आधारित है तो वे गलत कहते हैं। यदि यह मान भी लिया जाए कि यह किसी वस्तु पर टिकी हुई है, तो भी प्रश्न बना रहता है कि वह वस्तु किस पर टिकी हुई है और इस प्रकार कारण का कारण और फिर उसका कारण यह क्रम चलता रहा, तो न्याय शास्त्र में इसे अनवस्था दोष कहते हैं।

लीलावती ने कहा फिर भी यह प्रश्न बना रहता है पिताजी कि पृथ्वी किस चीज पर टिकी है।

तब भास्कराचार्य ने कहा, क्यों हम यह नहीं मान सकते कि पृथ्वी किसी भी वस्तु पर आधारित नहीं है। यदि हम यह कहें कि पृथ्वी अपने ही बल से टिकी है और इसे धारणात्मिका शक्ति कह दें, तो क्या दोश है?

इस पर लीलावती ने पूछा यह कैसे संभव है।

तब भास्कराचार्य सिद्धान्त की बात कहते हैं? वस्तुओं की शक्ति बड़ी विचित्र है।

मरूच्चलो भरचला स्वभावतो यतो
विचित्रावतवस्तु शक्त्य :।।

आगे कहते है

आकृश्टिशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं।
गुरू स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृश्यते तत्पततीव भाति।
समेसमन्तात् क्व पतत्वियं खे।।

अर्थात पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है पृथ्वी अपनी आकर्षण शक्ति से भारी पदार्थो को अपनी ओर खींचती है। और आकर्षण के कारण वह जमीन पर गिरते है। पर जब आकाश में समान ताकत चारो ओर से लगे, तो कोई कैसे गिरे ? अर्थात आकाश में गृह निरावलम्ब रहते क्यों कि विविध ग्रहो की गुरूत्व शक्तियॉ संतुलन बनाये रखती हैं।

वर्तमान में यह धारणा है कि न्यूटन ने ही सर्वप्रथम गुरूत्वाकर्षण की खोज की परन्तु उसके 550 वर्ष पूर्व भास्कराचार्य ने यह बता दिया था।

3. पृथ्वी गोल है – लीलावती अपने पिता से पूछती है कि मुझे तो पृथ्वी चारो ओर से सपाट दिखाई देती है, फिर आप यह क्यो कहते है कि पृथ्वी गोल है ?

तब भास्कराचार्य कहते है कि पुत्री, जो देखते हैं वह सदा वैसा ही सत्य नही होता।

तुम एक बड़ा वृत्त खीचों, फिर उसकी परिधि के सौवे भाग को देखो, तुम्हें वह सीधी रेखा में दिखाई देगी। पर वास्तव में वह वैसी नहीं होती, वक्र होती है। इसी प्रकार विशाल पृथ्वी के गोले के छोटे भाग को हम देखते है अत: सपाट नजर आता है। वास्तव मे पृथ्वी गोल है।

समो यत: स्यात्परिधे: शतांश:, पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान्।
नरच्श्र तत्पृश्ठगतस्य कृत्स्ना, समेव तस्य प्रतिभात्यत: सा।।

4. पृथ्वी स्थिर नहीं है – पश्चिम में 15 वी सदी में गैलीलियो के समय तक धारणा रही कि पृथ्वी स्थिर है तथा सूर्य उसका चक्कर लगाता है। परन्तु आज से 1500 वर्ष पहले हुए आर्यभट्ट, भूमि अपने अक्ष पर घूमती है। इसका विवरण निम्न प्रकार से देते है –

अनुलोमगतिर्नोस्थ: पश्यत्यचलम् , विलोमगं यद्धत्।
अचलानि भानि तद्धत् सम, पश्चिश्रमगानि लंकायामा।।

अर्थात नाव में यात्रा करने वाला जिस प्रकार किनारे पर स्थिर रहने वाले चट्टान, पेड़ इत्यादि को विरूद्ध दिशा में भागते देखता है, उसी प्रकार अचल नक्षत्र लंका में सीधे पूर्व से पश्चिम की ओर सरकते देखे जा सकते है।

इसी प्रकार पृथुद्क स्वामी ने जिन्होंने ब्रम्हगुप्त के ब्राम्हास्फुट सिद्धान्त पर भाष्य लिखा है आर्यभट्ट की एक आर्या का उल्लेख किया है।

भ पंजर: स्थिरो भू रेवावृत्यावृत्य प्राति दैवसिकौ।
उदयास्तमयौ संपादयति नक्षत्रग्रहाणाम्।।

अर्थात तारा मंडल स्थिर है और पृथ्वी अपनी दैनिक घूमने की गति से नक्षत्रो तथा ग्रहो का उदय और अस्त करती है।

अपने ग्रंथ आर्यभट्टीय में आर्यभट्ट ने दशगीतिका नामक प्रकरण में स्पष्ट लिखा है – प्राणे नैति कलां भू : अर्थात एक प्राण समय में पृथ्वी एक कला घूमती है (एक दिन में 21600 प्राण होती है)

5. सूर्योदय-सूर्यास्त – भूमि गोलाकार होने के कारण विविध नगरो मे रेखांतर होने के कारण अलग अलग स्थानो में अलग अलग समय पर सूर्योदय व सूर्यास्त होते है। इसे आर्यभट्ट ने ज्ञात कर लिया था वे लिखते हैं-

उदयो यो लंकायां सोस्तमय: सवितुरेव सिद्धपुरे।

मध्याह्नो यवकोट्यां रोमक विशयेर्धरात्र: स्यात्।।

अर्थात जब लंका मे सूर्योदय होता है, तब सिद्धपुर में सूर्यास्त हो जाता है तब यवकोटि में मध्याह्न तथा रोमक प्रदेश में अर्द्धरात्रि होती है।

6. चन्द्रसूर्यग्रहण – आर्यभट्ट ने कहा कि राहुकेतु के कारण नहीं, अपितु पृथ्वी व चंद्र की छाया के कारण ग्रहण होता है।

छादयति शशी सूर्य शशिनं महती च भूच्छाया।।

अर्थात पृथ्वी की बड़ी छाया जब चन्द्रमा पर पड़ती है, तो चंद्रग्रहण होता है इसी प्रकार चंद्र जब पृथ्वी और सूर्य के बीच में आता है, तो सूर्यग्रहण होता है।

7. विभिन्न ग्रहों की दूरी – आर्यभट्ट ने सूर्य से विविध ग्रहो की दूरी के बारे में बताया है। वह आजकल के माप से मिलता जुलता है। आजकल पृथ्वी से सूर्य की दूरी (**1.5 X108** कि.मी.**=** 15 करोड़ किलोमीटर)है। इसे एयू (खगोलीय इकाई–Astronomical Unit) कहा जाता है। इस अनुपात के आधार पर निम्नसूची बनती है।

ग्रह	–	आर्यभट्ट का मान	–	वर्तमान मान
बुध	–	0.375 एयू	–	0.387 एयू
शुक्र	–	0.725 एयू	–	0.723 एयू
मंगल	–	1.538 एयू	–	1.523 एयू
गुरू	–	5.16 एयू	–	5.20 एयू
शनि	–	9.41 एयू	–	9.54 एयू

ब्रह्माण्ड का विस्तार – ब्रह्माण्ड की विशालता का भी हमारे पूर्वजो (ऋशियो) ने अनुभव किया था। आजकल ब्रह्माण्ड की विशालता मापने हेतु प्रकाश वर्ष की इकाई का प्रयोग होता है। प्रकाश एक सेकेंड में 3 लाख किलोमीटर की गति से चलता है। इस गति से चलते हुए एक वर्ष मे जितनी दूरी प्रकाश तय करेगा उसे प्रकाश वर्ष कहा जाता है।

इस पैमाने से आधुनिक विज्ञान बताता है कि हमारी आकाश गंगा, जिसे **Milky Way** (देवयानी) कहा जाता है, इसकी लंबाई एक लाख प्रकाश वर्ष है।

इस आकाश गंगा के ऊपर स्थित एण्ड्रोला नामक आकाश गंगा इस आकाश गंगा से 20 लाख 20 हजार प्रकाश वर्ष दूर है और ब्रम्हाण्ड में ऐसी करोड़ो आकाश गंगाएँ हैं।

श्रीमद्भागवत में राजा परीक्षित महामुनि सुखदेव से पूछते है, ब्रम्हाण्ड का व्याप क्या है ? इसकी व्याख्या में सुखदेव ब्रम्हाण्ड के विस्तार का उल्लेख करते है। हमारा जो ब्रम्हाण्ड है, उसे उससे दस गुने बड़े आवरण ने ढॅका हुआ है। प्रत्येक ऊपर का आवरण दस गुना है और ऐसे सात आवरण मै जानता हूॅ। इन सबके सहित यह समूचा ब्रम्हाण्ड जिसमें परमाणु के समान दिखाई देता है तथा जिसमे ऐसे करोड़ों ब्रम्हाण्ड है,

वह समस्त कारणो का कारण है ये बात बुद्धि को कुछ अबोध्य सी लगती है। पर हमारे यहॉ जिस एक शक्ति से सब कुछ उत्पन्न– संचालित माना गया, उस ईश्वर के अनेक नामों में एक नाम अनंत कोटि ब्रम्हाण्ड नायक बताया गया है। यह नाम जहॉ ब्रम्हांडो की अनंतता बताता है, वही इस विशेषण के वैज्ञानिक होने की अनुभूति भी कराता है।

इस प्रकार संक्षिप्त अवलोकन से हम कह सकते है कि काल गणना और खगोल विज्ञान की भारत वर्ष के इतिहास में उज्जवल परंपरा रही है। पिछली सदियो में यह धारा कुछ अवरूद्ध सी हो गई थी। आज पुन: उसे आगे बढ़ाने की प्रेरणा भारतवर्ष के वैदिक वांडमय (गौरवशाली अतीत), पूर्वकाल के आचार्य आज की पीढ़ी को दे रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. गुणाकर मुले – भास्कराचार्य – पृ0 80
2. धर्मपाल – इंडियन साइंस एंड टेक्नोलॉजी इन दी एटीन्थ सेन्चुरी – पृ0 48
3. ऋग्वेद – सायाण भाश्य – 1–71–9,1–50–9
4. भास्कराचार्य – सिद्धांत शिरोमणि – पृ0 344, 346
5. गुणाकर मुले – आर्यभट्ट – पृ0 66
6. रामनिवासराय – आर्यभट्टीय – पृ0 106
7. श्रीमद्भागवत् गीता प्रेस – पृ0 249

****

मध्यप्रदेश - गरीब के घर वरदान होती बेटियाँ

नेहा चौरसिया *

प्रस्तावना – मध्यप्रदेश राज्य भारत के हृदय स्थल में बसा हुआ है। जहाँ अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण अंचलों में बसी हुई है। अनुसूचित जाति व जनजातियों का आधिक्य हमेशा ही राज्य में रहा है। राज्य को जनता पर नजर डालें तो अधिकांश गरीब और निर्धन हैं। निर्धनता और गरीबी उस समय अधिक दर्दनाक और क्रूर प्रतीत होती है जब किसी गरीब के घर 'बेटी जन्म लेती है। प्रदेश में अनेक परिवार प्राचीन काल से चली आ रहीं रूढ़ियों और बेड़ियों में जकड़े हुए हैं। जहाँ बेटी का होना अभिशाप माना जाता रहा है।

यह स्थिति प्रदेश में कुछ वर्ष पूर्व की थी। आज राज्य के हालात इस संदर्भ में अलग हैं। शिवराज सिंह चौहान (वर्तमान मुख्यमंत्री) ने समाज और परिवार में बेटियों, महिलाओं को आदर सम्मान और इज्जत दिलाने के लिए भरसक प्रयास किए हैं। मुख्यमंत्री द्वारा कई कल्याणकारी योजनायें इस दिशा में संचालित की जा रही हैं। अब प्रदेश में पुराने जैसे हालात नहीं हैं जब बेटी के जन्म लेने पर मातम मनाया जाता था। आज प्रदेश की बेटियाँ अपने परिवार के लिए किसी वरदान से कम नहीं।

उद्देश्य – प्रस्तुत शोधपत्र में मध्यप्रदेश सरकार द्वारा गरीब कन्याओं हेतु जो योजनायें संचालित की जा रही हैं, उनका वर्णन है। योजनायें अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पा रही हैं या नहीं ? उनसे कन्याओं को क्या लाभ हो रहे हैं ? आदि जानना इस शोधपत्र का उद्देश्य है।

द्वारा संकलन – शोध पत्र हेतु आंकड़ों का संकलन द्वितियक स्त्रोतों जैसे समाचार पत्र, सरकारी बेवसाइट, सरकारी पत्रिकाऐं आदि से किया गया है।

मध्यप्रदेश सरकार द्वारा कन्याओं के लिए चलायी जा रहीं योजनायें – राज्य सरकार का यह प्रयास रहा है कि राज्य में प्रत्येक बालिका, महिला को उचित सम्मान प्राप्त हो। तथा वे भी समानता के साथ प्रगति कर सकें। प्रदेश सरकार ने निर्धन वर्ग की कन्याओं एवं महिलाओं के हितों को ध्यान में रखकर अनेक योजनायें बनायी हैं तथा संचालित भी की हैं। उनमें से कुछ योजनायें निम्नलिखित हैं :-

1. **गाँव की बेटी योजना –** इस योजना का प्रारंभ 01 अप्रैल 2007 से किया गया। जिसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों की प्रतिभावान बालिकाओं को उच्च शिक्षा प्राप्त करने की ओर प्रोत्साहित करना है। जिसके लिए उन्हें आर्थिक सहायता भी प्रदान की जाएगी। वर्ष 2011-2012 के माह सितम्बर 2012 तक 33-70 हजार छात्राएँ इस योजना से लाभान्वित हो चुकी हैं। वर्ष 2012-13 में इस योजना के अंतर्गत 3100/- लाख रूपये का प्रावधान रखा गया है। वर्ष 2012-13 से इस योजना का लाभ अशासकीय महाविद्यालय की छात्राओं को भी दिया जावेगा।

2. **प्रतिभा किरण योजना –** इस योजना का उद्देश्य शहरी क्षेत्र में गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों की मेधावी छात्राओं को शिक्षा का स्तर बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन स्वरूप आर्थिक सहायता प्रदान करना है। यह लाभ उन छात्राओं को मिलता है जिन्होंने शहर की पाठशाला से 12वीं कक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की हो। परंपरागत उपाधि पाठ्यक्रम के लिए प्रतिवर्ष 300 रूपये प्रतिमाह 10 माह तक तथा तकनीकी और चिकित्सा शिक्षा पाठ्यक्रम के लिए 750 रूपये प्रतिमाह का प्रोत्साहन दिया जाता है। वर्ष 2011-12 में 02.70 हजार छात्राओं को लाभांवित किया गया है। वर्ष 2012-13 में इस योजना के लिए 150 लाख रूपये का प्रावधान किया गया है।

3. **नि:शुल्क साइकिल वितरण योजना –** यह योजना राज्य शासन द्वारा वर्ष 2004 से लागू की गई है। योजना के तहत कक्षा 09वीं से कक्षा 12वीं तक प्रवेश लेने वाली छात्राओं को दूसरे गाँव/शहर अध्ययन हेतु जाने के लिए नि:शुल्क साइकिल प्रदाय की जाती है। 2010-11 वर्ष तक 4869.66 लाख रूपये व्यय करके 2.08 लाख छात्राओं को इस योजना का लाभ दिया गया। वर्ष 2011-12 में 10766.13 लाख रूपये व्यय कर 5.06 लाख छात्राओं को इसका लाभ दिया गा। अब तक इस योजना से 16 लाख छात्राऐं लाभान्वित हो चुकी हैं।

4. **कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय –** अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्ग की छोटी-छोटी बसाहटों की बालिकाओं को माध्यमिक स्तर की शिक्षा को पूर्ण करने के लिए 207 आवासीय कस्बूरबा गांधी विद्यालय संचालित हैं। वर्ष 2011-12 में 302 बालिका छात्रावास स्थापित किए गए जिनमें प्रतिवर्ष 20 हजार बालिकाऐं लाभान्वित हो रही हैं।

5. **मुख्यमंत्री कन्यादान योजना –** राज्य शासन द्वारा गरीब, जरूरतमंद, निराश्रित/निर्धन परिवारों की विवाह योग्य कन्या/विधवा/परित्यक्ता के सामूहिक विवाह हेतु 13 हजार रूपये के सामान कन्या की गृहस्थी की स्थापना हेतु तथा 02 हजार रूपये प्रति आवेदक के नाम से दी जाती है। वर्ष 2011-12 में 38.31 हजार कन्याओं के सामूहिक विवाह संपन्न कराए गए। वहीं वर्ष 2012-13 में माह अक्टूबर तक 39.64 हजार कन्याओं के सामूहिक विवाह संपन्न कराये गए।

6. **मुख्यमंत्री निकाह योजना –** यह योजना राज्य शासन द्वारा वर्ष 2012-13 से लागू की गई है। इसके अंतर्गत निर्धन परिवारों की मुस्लिम कन्याओं/विधवा/परित्यक्ता के सामूहिक निकाह संपन्न कराये जाते हैं वर्ष 2012-13 में 126 कन्याओं के निकाह संपन्न कराये गये।

7. **लाइली लक्ष्मी योजना –** बालिका के जन्म के प्रति जनता में सकारात्मक सोच, लिंग अनुपात में सुधार, बालिकाओं की शैक्षणिक स्तर तथा स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार तथा उनके अच्छे भविष्य की आधारशिला रखने हेतु यह योजना मध्यप्रदेश राज्य शासन ने वर्ष 2007 से लागू की। योजनांतर्गत बालिका के नाम से पंजीकरण के समय लगातार 05 वर्षों तक 6000 रूपये के राष्ट्रीय बचत पत्र अर्थात कुल 30000/- रूपये के राष्ट्रीय बचत पत्र पर बालिका के नाम से क्रय किए जाऐंगे। इस योजना के अंतर्गत

* शोधार्थी, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) भारत

वर्ष 2011-12 में 3.80 लाख बालिकाओं को 694.60 करोड़ रूपये व्यय कर लाभान्वित किया गया। वर्ष 2012-13 के माह अक्टूबर तक 1.27 लाख बालिकाओं को 313.71 करोड़ रूपये व्यय कर लाभान्वित किया गया।

8. कन्या साक्षरता प्रोत्साहन - इस योजना के अंतर्गत अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं को शिक्षा के प्रति प्रोत्साहित करने के लिए कक्षा 5वीं, कक्षा 8वीं एवं कक्षा 10वीं बोर्ड परीक्षा पास कर अगली कक्षा में नियमित रूप से प्रवेश लेने पर छात्राओं को क्रमश: 500, 1000 तथा 3000 रूपये की प्रोत्साहन राशि का प्रावधान है। वर्ष 2011-12 में कक्षा 6वीं में 1.85 लाख छात्राओं को लाभान्वित कर 926.82 लाख रूपये की राशि व्यय की गयी। कक्षा 9वीं एवं 11वीं में 1.01 लाख रूपये व्यय किए गए। वर्ष 2012-13 में माह नवम्बर 2012 तक कक्षा 6वीं 1.66 लाख छात्राओं को लाभान्वित कर 969.93 लाख रूपये व्यय किए गए।

निष्कर्ष - अध्ययन से पता चलता है कि राज्य में कन्याओं की स्थिति सुधारने हेतु जो भी योजनाऐं राज्य शासन ने लागू की हैं उनसे उनका सर्वांगीण विकास हो रहा है। राज्य सरकार ने बालिकाओं में शिक्षा की अलख जगाने का जो जिम्मा लिया है वह काबिले तारीफ है। शिक्षा ही सभी सुविधाओं का आधार है। आज यदि राज्य की हर लाड़ली शिक्षित होकर अपने पैरों पर खड़ी होती है तो कहीं न कहीं यह राज्य के लिए ही हितकर होगा। आगे चलकर ज्ञान के इस दीपक से वह अपने परिवार को भी रोशन कर सकेगी। मध्यप्रदेश सरकार के इन प्रयासों से कन्या जन्म को लेकर समाज की नकारात्मक सोच, सकारात्मक हई है। कन्या को अभिशॉप मानने की प्रवृत्ति में कमी आई है और उसे बोझ मानने वाली मानसिकता भी बदली है। साथ ही साथ असमय कम उम्र में विवाह करा देने की परंपरा भी समाप्त हुई है। अधिकांशत: यह देखा जाता है कि किसी गरीब के घर बेटी हो तो उसे उसके विवाह की चिन्ता अधिक होती है वे बेटी की शादी के लिए या तो कर्ज लेते हैं या अपनी जमीन-सम्पत्ति गिरवी रख देते हैं। जो आगे चलकर उन्हें कभी वापिस नहीं मिलती। शिवराज सिंह चौहान की कन्यादान योजना ऐसे गरीब परिवारों के लिए आशा की नयी किरण बनकर आयी है। अब जरूरत है तो सिर्फ यही कि शिवराज सरकार द्वारा बेटियों के हित में किए जा रहे प्रयास समाज को भी बेटियों के प्रति जागरूक कर पायें। उन्हें भी समाज में समानता का अधिकार मिल सके। किसी बेटी को गर्भ में न मारा जाये क्योंकि 'बेटी है तो कल है।' समाज बेटा और बेटी के भेदभाव को भूलकर सरकार के इस अभियान में बढ़-चढ़कर अपनी हिस्सेदारी दें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. www.mpinfo.org
2. www.ladlilaxmiyojna.co.in
3. आर्थिक एवं सांख्यिकी संचालनालय, मध्यप्रदेश
4. आर्थिक सर्वेक्षण 2011-12
5. आर्थिक सर्वेक्षण 2012-13

****

Emblica Officinalis Medicinal plant and use

Prof. Narpat Singh Dawar * Dr. V.S. Singh **

Introduction- Amla or Emblica Officinalis is a natural, efficacious, an antioxidant with the richest natural source of Vitamin C.

Amla (or Amlaka, Amlaki, or other variants) is one of the most frequently used of the Ayurvedic herbs; it is the fruit of Phyllanthus emblica, also called Emblica officinalis. The fruit is similar in appearance to the common gooseberry (Ribes spp., a type of currant), which is botanically unrelated to amla. However, due to the similar appearance of the fruit clusters, amla is usually called the "Indian gooseberry." The plant, a member of the Euphorbiaceae, grows to become a medium-sized tree that is found growing in the plains and sub-mountain regions all over the Indian subcontinent from 200 to nearly 2000 meters above sea level.

Indian gooseberry is a wonder herbs and one of the precious gifts of nature to man. It contributes towards health and longevity.

Amla is highly nutritious and is an important dietary source of Vitamin C, minerals and amino acids. The edible fruit tissue contains protein concentration 3-fold and ascorbic acid concentration 160-fold compared to that of the apple. The fruit also contains considerably higher concentration of most minerals and amino acids than apples. Glutamic acid, proline, aspartic acid, alanine, and lysine are 29.6%, 14.6%, 8.1%, 5.4% and 5.3% respectively of the total amino acids. The pulpy portion of fruit, dried and freed from the nuts contains: gallic acid 1.32%, tannin, gum 13.75%; albumin 13.08%; crude cellulose 17.08%; mineral matter 4.12% and moisture 3.83%. Amla fruit ash contains chromium, 2.5 ppm; zinc 4 ppm; and copper, 3 ppm.

2. Healing options, Immunity booster -

- Amla protects cells against free radical damage and provides antioxidant protection
- Amla is used to treat skin disorders, respiratory infections, and premature aging
- Amla is useful in hemorrhage, diarrhea, dysentery, and has therapeutic value in treating diabetes
- Amla has anti-bacterial and astringent properties that help prevent infection and help in the healing of ulcers
- Amla is sometimes used as a laxative to relieve constipation in piles

One reason for Amla's reputation as a general energy-promoting, disease-preventing tonic may be its effect on the immune system. Multiple studies have shown significant increases in white blood cell counts and other measures of strengthened immunity in rodents given Amla.

3. Respiratory disorders - Indian gooseberry is beneficial in the treatment of respiratory disorders. It is especially valuable in tuberculosis of the lungs asthma and bronchitis.

4. Diabetes - This herb, due to its high vitamin C content, is effective in controlling diabetes. A tablespoon of its juice mixed with a cup of bitter gourd juice, taken daily for two months will stimulates the pancreas and enable is to secrete insulin, thus reducing the blood sugar in the diabetes. Diet restrictions should be strictly observed while taking this medicine. It will also prevent eye complication in diabetes.

5. Heart Disorder - Indian gooseberry is considered an effective remedy for heart disease. It tones up the functions of all the organs of the body and builds up health by destroying the heterogeneous or harmful and disease causes elements. It also renews energy.

6. Eye disorder - The juice of Indian Gooseberry with honey is useful in preserving eyesight. It is beneficial in the treatment of conjunctivitis and glaucoma. It reduces intracular tension in a remarkable manner. Juice mixed with honey can be taken twice daily for this condition.

7. Scurvy - As an extremely rich source of vitamin C, Indian gooseberry is one of the best remedy for scurvy. Powder of the dry herb, mixed with an equal quantity of sugar, can be taken in doses of 1 teaspoon, thrice daily with milk.

8. Ageing - Indian gooseberry has revitalizing effects, as it contains an element which is very valuable in preventing ageing and in maintaining strength in old age .It improves body resistance and protect the body against infection. It strengthens the heart, hair and different gland in the body.

9. Hair Tonic - Indian gooseberry is an accepted hair tonic in traditional recipes for enriching hair growth and pigmentation. The fruit, cut into pieces is dried preferably in the shade. These pieces are boiled in coconut oil till the solid matter becomes charres. This darkish oil is excellent in preventing graying .The water is which dried Amla pieces are soaked overnight is also nourishing to hair and can be used for the last rinse while washing the hair. Indian gooseberry is used in various ways. The best way to take it with the least loss vitamin C, is to eat it raw with a little salt. It is often used in the form of pickles and it is dried and powdered. The berry may also be used as a vegetable. It is boiled in a small amount of water till soft and taken with a little salt.

10. Home Remedies with Amala - Recurrent nasal infections ýÿ Consuming regularly Fresh Aamla juice mixed with fresh ginger juice, honey & a pinch of rock salt is an effective remedy to prevent frequent attacks of common cold and sinusitis.

- Hair care ýÿ Add 750 gms of Aamla fruits, after making

* Asst. Prof. (Botany) Govt. P.G. College Dhar (M.P.) INDIA
* Prof. N.R.I. College Bhopal (M.P.) INDIA

multiple pinholes in them, in 1 litre of coconut oil and keep in direct sunlight for 10 days, thereafter stored in glass containers. Applying regularly to hair & scalp is an effective remedy for preventing premature graying & falling of hair besides providing a conditioning & coolant effect to the hair.

- Oily hair - Take half cup of Aamla juice & half a cup of lime juice and dilute this with water to apply & use as an anti-oil hair wash.
- Bleeding - Drink fresh juice of Aamla fruits diluted in water, or mix 1 teaspoon of dried Aamla powder in a glass of water with some honey and drink 2-3 times a day. It helps to check bleeding.
- White spots on Nails ýÿ Aamla, being an excellent source of Vit-C, acts as an effective remedy in vitamin-deficient conditions.
- Anaemia - Add Aamla juice & honey to sugarcane juice and drink everyday.
- Bleeding Piles ýÿ Separate water from yoghurt by hanging in mustard cloth and add some Aamla juice to it. Drink this mixture 2-3 times daily to check bleeding in piles.
- Leucorrheas ýÿ 1 teaspoonful of dried & powdered Aamla fruit with seeds, mixed with honey & fennel seeds to be applied as a jam in longitudinally cut ripe banana fruit and to be eaten twice daily. It helps in checking various vaginal discharges.
- Mild abdominal pain & discomfort - Mix 1 tsp of powdered fennel seeds in half cup of Aamla juice and drink to relieve abdominal pain & discomfort.
- Hoarse voice and cough ýÿ Add one teaspoonful of dried Aamla powder in warm water and mix 1 teaspoonful of honey and drink thrice a day to relieve unpleasant throat & hoarse voice. In dry cough, add a pinch of rock salt & a decoction of fennels seeds to it.
- Diabetes - Probably the most celebrated effect of Aamla is its anti-diabetic property. Take 1 / 4 cup of amla fruit juice or a tsp of Aamla powder with a tsp of turmeric powder everyday.
- Health toner - As one of the richest sources of Vit-C, amla can be used generally to prevent infections and tone up the body.
- Rejuvenation ýÿ Take dried & powdered Aamla fruits and an equal quantity of dried dates, seedless raisins and jaggery. Roll this preparation into small pills and take 3-5 gms of such pills every day as a general rejuvenator
- Mixed with honey and taken daily has also been said to be useful in preserving eyesight and reducing intra-ocular tension in a remarkable manner. It is also beneficial in the treatment of conjuctivitis and glaucoma.
- Half to one teaspoonful of Emblica officinale mixed with two teaspoonfuls of jaggery and taken twice daily for one month is also said to be a good remedy for the management of rheumatism. The regular use of Emblica officinale prevents aging, improves body resistance and strengthens heart, hair & different glands in the body.

11. Medicinal Uses of Amala - Amalaki, either as a single herb or in combination with other herbs has been used to treat many health ailments such asýÿ Acidity, Baldness, Boils in the Mouth, Cataract, Chicken-pox, Common cough and cold, Constipation, Chronic Headache, Chronic Fever, Darkness before the Eyes, Discharge of Albumin, Dryness in the Body, Diabetes, Dyspepsia, Dysentery, Premature Ejaculation, General Debility, Gout, Hoarse Voice, Hair-Loss, High Blood Pressure, Hysteria, Indigestion, Itching on the Body, Impure Blood, Eruptions, Jaundice, Loose Motions, Menstrual Disturbance, Migraine, Nose Bleeding, Obesity, Pimples, Piles, Poisonous Insect-bite, Rashes, Restlessness,

Amalaki is one of the essential ingredients of 'TRIPHLA' choorna (powder). Which is the most important and most popular combination of Indian Herbs in Ayurvedic system of medicine. The other two ingredients are known as 'HIRADA' & 'BEHADA'. The combination of these three super herbs is so wonderful that it can create miraculous results in body and mind. It has the power to balance TRIDOSHA (VATA, PITTA and KAPHA).

Chawan prash is also an ancient most popular rejuvenator tonic of Ayurveda. Maharshi Chyavan first prepared this medicine and that is why it is known as "Chyavan-Prash". It is made by mixing the elixir of eighteen roots and herbs in the fresh Aamlaki Paste and sugarcane syrup. Chyavan-Prash enhances body metabolism and immunity and considered to be one of the most health promoting products of Ayurveda. Have a big spoonful of this Chyavanprash with milk every day morning. This diet is a powerful tonic.

References :-

1. Phyllanthus emblica information from NPGS/GRIN US Department of Agriculture. Retrieved 2008-03-06.
2. The Plant List: A Working List of All Plant Species". Retrieved 14 July 2014.
3. Lim, T.K. (2012). "*Phyllanthus emblica*". *Edible Medicinal And Non-Medicinal Plants*. Springer Netherlands.
4. Saeed S, Tariq P (Jan 2007). "Antibacterial activities of Emblica officinalis and Coriandrum sativum against Gram negative urinary pathogens". *Pak J Pharm*
5. Penolazzi, L.; Lampronti, I.; Borgatti, M.; Khan, M.; Zennaro, M.; Piva, R.; Gambari, R. (2008). "Induction of apoptosis of human primary osteoclasts treated with extracts from the medicinal plant Emblica officinalis". *BMC Complementary and Alternative Medicine*
6. Ngamkitidechakul, C.; Jaijoy, K.; Hansakul, P.; Soonthornchareonnon, N.; Sireeratawong, S. (2010). "Antitumour effects of phyllanthus emblica L.: Induction of cancer cell apoptosis and Inhibition of in vivo tumour promotion and in vitro invasion of human cancer cells". *Phytotherapy Research*
7. Sidhu, S.; Pandhi, P.; Malhotra, S.; Vaiphei, K.; Khanduja, K. L. (2011). "Beneficial Effects ofEmblica officinalisinl-Arginine-Induced Acute Pancreatitis in Rats". *Journal of Medicinal Food*
8. Ganju L, Karan D, Chanda S, Srivastava KK, Sawhney RC, Selvamurthy W (Sep 2003). "Immunomodulatory effects of agents of plant origin". *Biomed Pharmacot*

****

उपभोक्ताओं पर सांस्कृतिक प्रभाव का अध्ययन

डॉ. आलोक कुमार यादव *

प्रस्तावना – उपभोक्ता एक सामाजिक प्राणी होता है। उसका चिन्तन, मनन एवं निर्णय सदियों से प्रतिबंद्ध रहा है। यद्यपि कुछ उपभोक्ता इसके अपवाद भी रहें है। किसी भी वर्ग का उपभोक्ता अपने वर्ग के सांस्कृतिक तत्वों से बहुत अधिक प्रभावी होता है। चूकि एक जागरूक उपभोक्ता अपने समाज द्वारा स्थापित मापदण्डों की अवहेलना नही कर सकता, अत: इस प्रकार उपभोक्ता अपने निर्णयों पर अटल रहता हैं, चाहें आदर्श परिस्थिति कैसी भी हो वह सामाजिक स्तरों से जुड़ा हुआ होता है।

किसी एक समाज के लोगों के लिए जो बातें बड़ी सामान्य हो सकती हैं, वही दूसरे के लिए बिल्कुल असामान्य हो सकती हैं। किसी एक क्रियाकलाप के विभिन्न समाजों में अलग-अलग अर्थ हो सकते हैं। जैसे कि किसी मछली हो यह नहीं पता होता कि वह समुद्र के पानी में तैरती है, वैसे ही किसी समाज के सदस्य आमतौर पर इस बात से अनभिज्ञ होते है कि वे अपने व्यवहार में किन्ही मान्यताओं व रीति रिवाजों का अनुसरण कर रहे हैं। कभी-कभार ही वे इस बात पर चकित होते हैं कि वे जो कुछ मान और कर रहे हैं, आखिर वैसा वे क्यों करते हैं।

अपनी मान्यताओं और रीति-रिवाजें से, काल्पनिक तौर पर ही सही, बाहर निकलकर ही, वे इनकी वास्तविक प्रकृति जान सकते हैं। अपने अनुभवों के आधार पर लोग अपने जरूरतों को पूरा करने के लिए नियमों और तौर-तरीकों का एक संग्रह तैयार करते हैं। समर्थक विचारों और मूल्यों के संग्रह के साथ यही नियम व तौर-तरीके संस्कृति के नाम से संस्थान में लिये जाते हैं। आमतौर पर 'सुसंस्कृत' के रूप में जाना जाने वाला कोई व्यक्ति नाट्य संबंधी लयों की पहचान कर सकता हैं, एक फ्रांसीसी मीनू को पढ़ सकता है और खाने के लिए सही बर्तनों का चुनाव कर सकता है किन्तु जो लोग क्लासिक्स से ऊब गए हैं, वे सभी लोगों के बीच डकार लेते है और अभ्रद भाषा का प्रयोग करते हैं उनकी भी अपनी संस्कृति होती है। इस प्रकार संस्कृति वह संश्लिष्ट समग्र हैं, जिसमें ज्ञान, मान्यता, कला, नैतिकता, कानून, रीति-रिवाज के साथ-साथ वे सारी क्षमताएं वे आदतें सम्मिलित की जाती हैं, जिन्हें उपभोक्ता ने एक समाज के सदस्य के रूप में प्राप्त किया है। प्रस्तुत आलेख में जागरूक उपभोक्ता व्यवहार की दिशा में सांस्कृतिक प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

साधारण तरीके से कहें तो वह सब कुछ संस्कृति कहलायेगा, जो सामाजिक तौर पर सीखा जाता है और जिसमें उस समाज के सभी सदस्य साझेदार होते हैं। कोई व्यक्ति सामाजिक विरासत के एक अंग के रूप में संस्कृति को प्राप्त करता है और इसके बदले वह संस्कृति को नया आकार दे सकता है तथा इसमें बदलाव कर सकता हैं, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए विरासत का एक अंग हो जाता है।

कुछ प्रबन्धक संस्कृति को भौतिक और गैर-भौतिक संस्कृति में विभक्त करते हैं। गैर-भौतिक संस्कृति में लोगों की मान्यताएं व आदतें तथा उनके द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले शब्द शामिल होते हैं। जैसा कि नाम से ही स्पष्टहै, भौतिक संस्कृति में विनिर्मित वस्तुएं जैसे-औजार, फर्नीचर, वाहन, साबुन और कलम कोई भी भौतिक वस्तु जिसे लोगों ने परिवर्तित व इस्तेमाल किया, शामिल होती हैं। जबकि गैर-भौतिक संस्कृति में खेल के नियम, खिलाड़ियों की दक्षता, रणनीति की अवधारणा तथा खिलाड़ियों एवं दर्शकों का व्यवहार आते है। भौतिक संस्कृति हमेशा ही गैर-भौतिक संस्कृति से प्रस्फुटित होती है और उसके बिना यह अर्थहीन है। यदि क्रिकेट के खेल को भुला दिया जाता है तो बल्ला मात्र एक लकड़ी का टुकड़ा बनकर रह जाएगा। अत: समाज लोगों की ऐसे व्यवस्था है, जिनकी एक-दूसरे के साथ सहभागिता होती है। संस्कृति मानकों व मूल्यों की एक व्यवस्थित प्रणाली हैं, जिसे लोग बनाए रखते हैं। चूंकि संस्कृति उन मानकों का समावेश करती हैं, जिसके तहत कुछ किया जाना चाहिए, हम कहते हैं कि संस्कृति नियमबद्ध हैं, जिसे दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि, यह व्यवहार के स्तर को परिभाषित करती है। हाथ मिलाने के लिए हम अपना दाहिना हाथ बढ़ाते हैं पर सिर को खुजलाने के लिए हम अपने दोनों हाथों में से किसी का भी इस्तेमाल कर सकते है क्योंकि हमारी संस्कृति में सिर खुजलाने के लिए कोई प्रतिमान नहीं है।

'प्रतिमान' शब्द के दो संभव अर्थ हो सकते हैं। सांख्यिकीय प्रतिमान अपेक्षित अस्तित्व का मापक है, जबकि सांस्कृतिक प्रतिमान अपेक्षित अस्तित्व की अवधारणा है। कभी-कभी सांख्यकीय प्रतिमान को वास्तविक संस्कृति भी कहा जाता है और सांस्कृतिक प्रतिमान को एक आदर्श संस्कृति। अक्सर लोग दोनों प्रतिमानों में भेद नहीं करते।

सांस्कृतिक प्रतिमान व्यवहार अपेक्षाओं का एक समूह हैं एक सांस्कृतिक प्रतिमान यह है कि, लोगों को कैसा व्यवहार करना चाहिए ? संस्कृति ऐसे स्तरीकृत प्रतिमानों की एक व्यापक प्रणाली है, महसूस करने और व्यवहार करने का अपेक्षित तरीका है, जिसका आमतौर पर एक समाज के सदस्य पहचान करते हैं और उस पर अमल करते हैं। ये मानक विभिन्न प्रकार और अनिवार्यता के विभिन्न परिभागों के होते हैं, संस्कृति की सबसे छोटी इकाई लक्षण है। प्रत्येक संस्कृति हजारों लक्षणों से बनी होती है।

लक्षणों का पहचान करना एक पहेली जैसा अनुभव हो सकता है। उदाहरण के तौर पर नृत्य शब्द को लें। क्या इसे लक्षण माना जा सकता है ? नहीं, यह लक्षणों का समूह हैं, जिसमें नृत्य की भंगिमाओं का नर्तक के चयन के तरीकों का तथा संगीत और सुर के समन्वय का समावेश किया गया है सबसे महत्वपूर्ण बात है है कि नृत्य का एक अर्थ होता है- कोई धार्मिक उत्सव कोई जादुई अनुष्ठान, प्रेम-संबंधी कोई कृत्य, कोई उत्सव आमोद या कुछ और। ये सारे तत्व मिलकर संस्कृति की जटिलता का निर्माण करते हैं, जो सापेक्ष लक्षणों का एक समूह होता है। चीजों, कौशल और प्रवृत्तियों से बना

* प्राचार्य, शासकीय पॉलीटेक्निक महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.) भारत

दूसरा समूह तारंगित जटिलता की रचना करता है। ऐसे दर्जनों को इस तरह से जोड़ा जा सकता है।

संस्कृति सम्मिश्रण लक्षण और संस्था के बीच में मध्यवर्ती अवस्था बनती है। एक संस्था किसी महत्वपूर्ण गतिविधि के अंतर्गत सम्मिश्रणों की कड़ियों के प्रवेश के रूप में समझी जा सकती है। इस तरह से परिवार प्रेम-मुलाकात के सम्मिश्रण (खासतौर पर पश्चिमी दृष्टिकोण से) सगाई और विवाह सम्मिश्रण, मधुचंद्रिका सम्मिश्रण, बच्चों के पालन-पोषण से जुडे सम्मिश्रण और कई अन्य का समावेश करने से बनता है। कुछ सम्मिश्रण संस्थान के भागों को बनाते हैं, अन्य कुछ कम महत्वपूर्ण गतिविधियों से जुडे रहते हैं। जैसे-टिकट संग्रह इत्यादि साधारण रूप से स्वतंत्र सम्मिश्रण है।

किसी भी आधुनिक समाज में लोगों के कुछ वर्ग ऐसे होते हैं, और जो कुछ सम्मिश्रणों की साझेदारी करते हैं और समाज के बाकी लोगों द्वारा साझे नहीं किए जाते। उदाहरण के लिए, अप्रवासी वर्ग संस्कृति का एक समन्वय तैयार कर लेता हैं, जिसमें देश और उनकी मातृभूति दोनों की संस्कृतियां शामिल होती हैं। अमीर लोग गरीब लोगों से बिल्कुल भिन्न जिंदगी जीते हैं। व्यवहार, सोच, पोशाक से जुड़ी -किशोर संस्कृति की अपनी विशिष्ट शैली होती है और एक आध शब्दावली भी, जिसका अनुवाद वयस्क शायद ही कर सकें।

हर उप-संस्कृति की अपनी निजी शब्दावली होती हैं, जो बाहरी लोगों के संदर्भ में निजी शब्दों का संरक्षण करने में मदद करती है। संस्थाओं में ऐसी व्यवहार प्रणाली विकसित होती है, जो सांस्थानिक ढांचे से बाहर नहीं पाई जाती और विद्यालय-संस्कृति और कारखाना-संस्कृति व्यवहार प्रणाली के विशिष्ट समूह को दशति हैं। इसी तरह 'सैनिक-जीवन' महाविद्यालय-जीवन और 'छात्रावास-जीवन' विशिष्ठ सांस्कृतिक परिदृष्य की तस्वीरें सामने रखते हैं।

उसे हम तरह से परिभाषित करेंगे कि यउप-संस्कृति किसी सामाजिक समूह के मूल्यों, प्रवृत्तियों, व्यवहार के तरीकों और जीवन शैली की एक प्रणाली है, जो भिन्न तो हैं, पर समाज की प्रभावशाली संस्कृति से जुड़ी हुई है। जैसा कहा गया है कि, आधुनिक समाज में बहुत सी उप-संस्कृतियां मौजूद रहती हैं, पर इस अवधारणा का सर्वाधिक उपयोग युवा वर्ग और विचलन के अध्ययन में करते है। उदारण के लिए युवा संस्कृति जो पथभ्रष्ट के रूप में देखी जाती है, जो उन्हें दूसरों से भिन्न करती है।

मुंबई के झुग्गी तबके की जिंदगी का अवलोकन कीजिये। क्या आप झुग्गी निवासियों की संस्कृति को समझ सकते है ? कोई भी उनकी जीवन शैली, दैनंदिनी, शब्दावलियों और पोषाक शैली को बदबूदार फूहड़ और अष्लील समझते हुए एक नकारात्मक तस्वीर खींच लेगा। किन्तु दूसरो को इस तरह से देखने का दृष्टिकोण गलत है और उपभोक्ता अध्ययन हमें चीजों को भिन्न तरीके से समझने का नजरिया प्रदान करता है। सांस्कृतिक सापेक्षवाद की अवधारणा एक ऐसा साधन है, जो विपणन प्रबन्धकों की दूसरे में क्रिया-कलापों और व्यवहार प्रणाली को विवेकपूर्ण तरीके से देखने में मदद करता है।

अपने नजरिये और मूल्यों की कसौटी पर आंकते हुए किसी दूसरे वर्ग के क्रियाकलापों को समझना बहुत ही मुश्किल है। अगर हम वाकई उन्हें समझना चाहते हैं तो हमें उनके व्यवहार के उनके नजरिये, आदतों और मूल्यों के आधार पर आंकना चाहिए। सांस्कृतिक सापेक्षवाद का अर्थ है कि किसी भी लक्षण के कार्य और अर्थ इसके सांस्कृतिक परिदृष्य के सापेक्ष होते हैं। कोई भी लक्षण अपने आप में न तो अच्छा है और न ही बुरा। यह केवल उस संस्कृति के संदर्भ में ही अच्छा या बुरा हैं, जिसमें इसको काम करना होता है।

सांस्कृतिक सापेक्षवाद की अवधारणा का यह अर्थ नहीं है कि सारे रिवाज समान रूप से मूल्यवान हैं, न ही इसका यह मतलब है कि कोई भी रिवाज नुकसानदायक नहीं है। व्यवहार के कुछ प्रतिरूप हर जगह हानिकारक हो सकते हैं, पर फिर भी वैसे प्रतिरूप भी किसी विशेष संस्कृति में किसी न किसी उपयोगिता को ही दर्शाते हैं और जब तक इसका विकल्प नहीं मिलता, समाज को बर्दाष्त करना होगा।

निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि संस्कृति ही उपभोक्ता की आदतों का निर्धारण करती है बल्कि उपभोक्ता के सतत् विकास में सांस्कृतिक प्रभाव ही महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते है। भारतीय संस्कृति आज भी सदियों से जीवित और सन्तुलित है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव भारतीय उपभोक्ताओं पर आज भी देखा जा सकता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बहुत से प्रमुख सांस्कृतिक परिवर्तन देखने को मिल रहें है, जिनका अनेक प्रकार की वस्तुओं के क्षेत्र में प्रवेश हो रहा है। अन्ततः यह स्पष्ट है कि उपभोक्ता और संस्कृति में घनिष्ठ सम्बन्ध है और ये परस्पर एक दूसरे रक्षण, विकास एंव संवर्धन में सहयोग प्रदान करते रहते है। उपभोक्ता ही संस्कृति का पर्याय है, इसलिये प्रबन्धकों की दृष्टि में उपभोक्ता ही बाजार का राजा कहलाता है। जो बाजार का नीति नियन्ता होता है, जिसकी रूचियों एवं अरूचियों का पालन जाने अनजाने में बाजार द्वारा किया जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. उपभोक्ता व्यवहार- डॉ. एस.सी. जैन, कैलाश पुस्तक सदन भोपाल
2. प्रतियोगिता दर्पण- भारतीय अर्थ व्यवस्था सन 2011-12 नई दिल्ली
3. उद्योग व्यापार पत्रिका, मार्च 2011 ट्रेड फेयर अथारिटी ऑफ इण्डिया
4. योजना हिन्दी पत्रिका 2011 योजना भवन नई दिल्ली
5. Elementary of Marketing research – Dr. P.K. Kedar, Nath Publishers Meeruth
6. Consumer Behavior: Building Marketing Strategy. Del I Hawkins, Rager J Best, Tata McGraw Hill, 2008

****

ICT And Education In India

Durgesh Lata*

Introduction - Definitions of ICTs provided by United Nations Development Programme (UNDP): 'ICTs are basically information-handling tools- a varied set of goods, applications and services that are used to produce, store, process, distribute and exchange information.

They include the 'old' ICTs of radio, television and telephone, and the 'new' ICTs of computers, satellite and wireless technology and the Internet. These different tools are now able to work together, and combine to form our 'networked world' – a massive infrastructure of Interconnected telephone services, standardized computing hardware, the internet, radio and television, which reaches into every corner of the globe'.

Older and more familiar technologies such as the transparency and slides, tape and cassette recorders and radio; video cassettes and television etc. referred to "analogue media" while the newer computer and Internet based technologies are called the "digital media".

ICT And Education - India'sdemographic mosaic consists of anincreasing demand for education for apopulation, half of which is below 15years of age, 75 per cent rural, aliteracy rate of about 60 per cent; anda linguistic break-up of 15 different major languages. The demand foreducation far outstrips the conventionalsystem's ability to provide it, leavingno alternative to the use of technologyin education.

ICT And Higher Education - The major teaching and learning challenges facing higher education revolve around studentdiversity, which includes, amongst others, diversity in students' academic preparedness,language and schooling background.

Education is perhaps the most strategic area of intervention for the empowerment of girls andwomen in any society and the use of information and communication technologies (ICTs) as aneducational tool in the promotion of women's advancement has immense potential. Theapplication of ICTs as a tool for effective enhancement of learning, teaching and educationmanagement covers the entire spectrum of education from early childhood development,primary, secondary, tertiary, basic education and further education and training.

ICT is about the new ways in which people cancommunicate, inquire, make decisions and solve problems. It is the processes, tools andtechniques for:

1. Gathering and identifying information
2. Classifying and organizing
3. Summarizing and synthesizing
4. Analyzing and evaluating
5. Speculating and predicting

Enhancing and upgrading the quality of education and instruction is a vital concern,predominantly at the time of the spreading out and development of education. ICTs can improvethe quality of education in a number of ways: By augmenting student enthusiasm andcommitment, by making possible the acquirement of fundamental skills and by improvingteacher training. ICTs are also tools which enable and bring about transformation which, whenused properly, can encourage the shift an environment which is learner-centered.

The use of online pedagogy within universities and management institutes is increasing. Theintroduction of the Wi-Fi system too has led to the growth of hi-tech education system, whereaccessibility and accountability of subject matter is made readily available to the students. Thestudents can now study and comprehend the related information at their own convenient time.

ICT in Research - Applications of ICTs are particularly powerful and uncontroversial in higher education's researchfunction. Four areas are particularly important:

1. The steady increases in bandwidth and computing power available have made it possible toconduct complex calculations on large data sets.
2. Communication links make it possible for research teams to be spread across the world insteadof concentrated in a single institution.
3. The combination of communications and digital libraries is equalizing access to academicresources, greatly enriching research possibilities for smaller institutions and those outside the big cities.
4. Taking full advantage of these trends to create new dynamics in research requires nationalpolicies for ICTs in higher education and the establishment of joint information systems linkingall higher education institutions.

ICT in Teaching - Academics have taken to the use of computer in teaching much more readily than they adopted earlier audio-visual media. This is because the strength of computers is their power to manipulate words and symbols - which is at the heart of the academic endeavor. There is a

***Assistant Professor (Sanskrit) Govt. Girls P.G. College, Etawah (U.P.) INDIA**

trend to introduce eLearning or online learning both in courses taught on campus and in distance learning. Distance education and eLearning are not necessarily the same thing and can have very different cost structures. Whether eLearning improves quality or reduce cost depends on the particular circumstances. ICTs in general and eLearning in particular have reduced the barriers to entry to the higher education business.

ICTs are a potentially powerful tool for extending educational opportunities, both formal and non-formal, to previously underserved constituencies—scattered and rural populations, groups traditionally excluded from education due to cultural or social reasons such as ethnic minorities, girls and women, persons with disabilities, and the elderly, as well as all others who for reasons of cost or because of time constraints are unable to enroll on campus.

ICTs make possible asynchronous learning, or learning characterized by a time lag between the delivery of instruction and its reception by learners. Online course materials, for example, may be accessed 24 hours a day, 7 days a week. Teachers and learners no longer have to rely solely on printed books and other materials in physical media housed in libraries (and available in limited quantities) for their educational needs. With the Internet and the World Wide Web, a wealth of learning materials in almost every subject and in a variety of media can now be accessed from anywhere at any time of the day and by an unlimited number of people.

Effectiveness, cost, equity, and sustainability are four broad intertwined issues which must be addressed when considering the overall impact of the use of ICTs in education. The educational effectiveness of ICTs depends on how they are used and for what purpose. And like any other educational tool or mode of educational delivery, ICTs do not work for everyone, everywhere in the same way.

The growth of mass higher education has made large classes an endemic feature of several courses at higher education institutions. Large class sizes make it difficult for teachers to employ interactive teaching strategies or to gain insight into the difficulties experienced by students. Large classes pose problems for all students but students who are under-prepared are particularly affected. It is these contexts that provide useful opportunities for educational technologies.

ICTs are a prospectively prevailing tool for developing educational opportunities.

1. One important characteristic of ICTs is their capability to go beyond time and space. ICTs make it feasible to achieve learning which is exemplified by a time delay involving the deliverance of instruction and its receipt by students which is termed as asynchronous learning. Course materials can be retrieved and used 24 x 7.
2. With the advent of the internet and the World Wide Web, it is now possible to gain access to an unlimited amount of data and educational materials. Data in almost any subject and in diverse forms of media can be accessed from any place at different times of the day and by an unrestricted number of individuals
3. ICTs also enable access to the opinions of professionals, experts and researchers all over the world and allow one to be in direct communication with them.

Types of ICT - Based upon their characteristics, media technologies can be grouped into two categories, namely, synchronous and asynchronous.

1. Synchronous media require all participants to be together at the same time even though in different locations.
2. Asynchronous ICTs allow for participants in the learning process to be at "different times" and "different places".

Synchronous Media	**Asynchronous Media**
Audio-graphics	Audio and video tapes and CDs
Audio conferencing, as in a Telephone conference	E mail Computer file transfers
Broadcast radio and television	Virtual conferences
Teleconferencing	Multimedia products, off line
Computer conferencing such as chat	Web based learning formats Internet telephony

Strength - Understanding the strength will provide a clearer picture of why the use of ICT in education can be expected to continue togrow.

Integration of Multiple Media - Because of advances in digital technologies, it is now possible to integrate multiple mediainto single educational applications. Multimedia applications on CD-ROMs and websites may incorporate text, pictures, audio, graphics, animations, simulations, full-motion video,and links to other software or websites greatly enriching the learning experience.

Interactivity - Earlier technologies used for instruction were passive in nature. That is, the delivery ofinstruction required no action on the part of students beyond listening, watching, and perhaps taking notes. Such were one-way channels of instructional delivery. ICTs give the student and teacher the ability to control,manipulation, and contribute to theinformation environment. On the lowest and least valuable level, this may simply mean thestudent controls the pace and order of a presentation. But much more is possible. UsingICT students may not only make choices about the pace and order of a presentation, butmay choose topics; take notes; answer questions; explore virtual landscapes; enter, draw orchart data; run simulated experiments; create and manipulate images; make their ownmultimedia presentations, communicate with others, and more.

Flexibility of Use - ICT applications have given rise to the term "anytime anyplace,"a reflection of the flexibility possible in using ICT to support teaching andlearning.

One outgrowth of this flexibility has been the development of "virtual" educationalexperiences. A virtual experience refers to educational situations in which distance and timeseparate the teacher and students, who use ICT to interactively to share resources,communicate, and learn. Virtual education allows students to study at their own time, placeand pace. In essence, a virtual education means having educational transactions accessible from the home,

workplace, or anywhere that the student chooses to be. Virtual classrooms,schools, colleges, and universities offering classes by email, computer-mediated conferencing (CMC), videoconferencing, or websites, or combinations of these technologies, areproliferating.

Connectivity - Perhaps the most powerful feature of new ICTs is connectivity. Prior to the 1990s,computers in educational settings were seldom connected to local area networks (LANs) orthe Internet. With the widespread adoption of LANs, decreasing telecommunications costs,increasing bandwidth, and the invention of the World Wide Web, educational access to theInternet is becoming commonplace. If equipped with a computer, appropriate software, andInternet access, students and teachers have access to every other person on the planet whohas an Internet account, hundreds of thousands of information archives, and millions ofwebpages of educationally relevant.

Challenges of ICT - While using ICTs in teaching has some obvious benefits, ICTs also bring challenges.

1. High cost of acquiring, installing, operating, maintaining and replacing ICTs. While potentially ofgreat importance, the integration of ICTs into teaching is still in its infancy.
2. Using unlicensed software can be very problematic, not only legally but in the costs ofmaintenance, particularly if the pirated software varies in standard formats.
3. Even though studentscan benefit immensely from well-produced learning resources, online teaching has its ownunique challenges as not all faculties are ICT literate and can teach using ICT tools.
4. The four most common mistakes in introducing ICTs into teaching are:

i) Installing learningtechnology without reviewing student needs and content availability
ii) Imposing technologicalsystems from the top down without involving faculty and students
iii) Using inappropriatecontent from other regions of the world without customizing it appropriately
iv) Producinglow quality content that has poor instructional design and is not adapted to the technology in use.

5. The teachers need todevelop their own capacity so as to efficiently make use of the different ICTs in differentsituations. They should not be scared that ICTs would replace teachers.
6. English being thedominant language most of the online content is in English. This causes problems as people are not conversant or comfortable with English.

Conclusion - Use of ICT in education can increase access to learning opportunities. Itcan help to enhance the quality of education with advanced teaching methods, improve learningoutcomes and enable reform or better management of education systems. Extrapolating currentactivities and practices, the continued use and development of ICTs within education will have astrong impact on: What is learned, how it is learned, when and where learning takes place, &who is learning and who is teaching. The continued and increased use of ICTs in education inyears to come, will serve to increase the temporal and geographical opportunities that arecurrently experienced.

References :-

1. UNESCO's World Communication and Information Report1999 written by Prof C. Blurton from the University of Hong Kong, retrieved from internet
2. Core ICT indicators: Partnership on measuring ICT for development, retrieved from internet
3. Developing research-based learning using ICT in higher education curricula: The role ofresearch and evaluation, retrieved from internet
4. National Policy on Information and Communication Technology (ICT) In School Education by Department of School Education and Literacy Ministry of Human Resource Development Government of India 2012, retrieved from internet
5. The Role of Information and Communication Technology (ICT) in Higher Education for the 21st Century by Sukanta Sarkar, retrieved from internet
6. Role of icts in education and development:potential, pitfalls and challenges by ushavyasulureddi, retrieved from internet
7. An effective use of ict for education and learning by drawing on worldwide knowledge, research, and experience:ict as a change agent for education by syednoor-ul-amin, retrieved from internet

****

Determinants of Migration : A Case of Maharashtra

Dr. Rajendra P. Shinde*

Abstract - Motives behind migration vary from country to country and even within a country from area to area and even within area from person to person. So enquiry about determinants of migration is the most difficult part of the analysis of the process of migration. This paper discusses why migration takes place. Causes of migration are usually in terms of repulsive and attractive aspects. Repulsive aspects are those that operate in areas of out migration and compel a person or family to leave their previous residence. On the other hand attractive factors are those that operate in areas of in migration and attract the people to these areas. Repulsive factors precisely include absolute poverty, pressure on limited land resources, lack of standard education facilities etc.

Introduction - The early humans migrated due to many factors such as changing climate and landscape and inadequate supply of food and water. Since the 18th century, industrialization encouraged migration. Millions of agricultural workers left the countryside and moved to the cities causing unprecedented levels of urbanization. This phenomenon began in Britain in the late 18th century and spread around the world and continues to this day in many parts of the world. (Wikipedia-encyclopedia, 2007)

Quite a large number of scholars have written research papers and expressed their views concerning causes and consequences of migration. Ganguli holds the view that wider economic, political and cultural conditions are potent causes of migration. The improvement of transport and communication, increase in the level of literacy and general development also encourages migration. Dhekeny emphasized the cause of migration as seeking better employment, better prospect and better business etc. Pal expressed the view that relatively better conditions of living and better prospect in the cities are significant motivating factors. According to World Development Report (World Bank, 1990, p. 62) 'Poverty both absolute and relative, and income variability, which leads to greater vulnerability, causes people to move.

Causes of migration are usually in terms of repulsive and attractive aspects. Repulsive aspects are those that operate in areas of out migration and compel a person or family to leave their previous residence. On the other hand attractive factors are those that operate in areas of in migration and attract the people to these areas. Repulsive factors precisely include absolute poverty, pressure on limited land resources, lack of standard education facilities etc. It is in this context Garnier (1966) has remarked that the prime cause of migration is absolute poverty, from which man flees, driven by the simple urge to survive. Among the attractive aspects there are employment opportunities as well as educational, medicinal and other service facilities available there. It is not necessary that in an area only repulsive or attractive factor should operate. In fact on many occasions these two factors overlap and sometimes amount to merely stating the two different aspects of the same reality. It is rightly considered that a push-pull is subjective characteristic of migration (Yadav, 1989).

Determinants of Migration - However, there are numerous causes for migration, which have played a definite role in dynamics of migration from rural to urban centers and vice versa or from one region to another notable among these are as follows:

Regional Economic Constraints - In studies of migration the accent has generally been placed on the incentive provided by dissatisfaction with economic lot and indeed most writers would regard this as the essential motivation (Garnier, 1966). Economic constraint at the native place of the migrant motivates or obliges the people to leave their original places in search of livelihood or economic betterment and different destinations in urban zone. Perhaps the most critically important of these economic indicators is the unemployment rate.

India has high levels of regional disparity in population distribution, per capita income, poverty, availability of infrastructure and socio-economic development. The development policies by all the government since independence have accelerated the process of migration. Six low-income states - Bihar, Chhattisgarh, Jharkhand, Madhya Pradesh, Orrisa and Uttar Pradesh are home to more than one third of India's population (World Bank, 2009). Between 1999 and 2008 the annual economic growth rates for Maharashtra (9%), Gujarat (8.8%), Haryana (8.7%) and Delhi (7.4%) were much higher than for Bihar (5.1%), Uttar Pradesh (4.4) and Madhya Pradesh (3.5%) (The Economist,

***Assistant Professor, Govt. Vidarbha Institute of Science and Humanities, Amravati (Maharashtra) INDIA**

2008). The poverty rates in rural Orrisa (43%) and Bihar (40%) are some of the worst in the world (World Bank).

Most of the north Indian states (mentioned above) are poor in infrastructure facilities, are highly populated and have registered very low growth rate compared to the other states of India. Hence a large number of people from these states migrate to other states in search of job, because of lack of local employment opportunities. On other hand Maharashtra, Gujarat, the south Indian states and other states in northern parts of the country like Haryana, Punjab and Delhi have become attractive destination for the migrant population. Rapid industrialization in these regions have generated more employment opportunities and also created better infrastructure. Migrants migrate to these regions recognizing them as green pastures. As per 2001 census, On the basis of net migration during last decade, Maharashtra stands on top of the list with 2.3 million net migrants followed by Delhi (1.7 million), Gujarat (0.68 million) and Haryana (0.67 million). Uttar Pradesh (-2.6 million) and Bihar (-1.7 million) were the two states with largest number of net migrants migrating out of the state.

In India labor migrants are largely found in the developed states, the traditional migrant receiving states, typically, coming from under developed regions of the country. 2001 Census revealed that nearly two third of the interstate male migrants have arrived in Maharashtra only for seeking employment, relatively which is much higher than at national level (26.6%). In the Maharashtra out of total male interstate migrants stating, employment as reason for migration, about 64 percent migrants were mainly confined to the states (Uttar Pradesh, Bihar, West Bengal, Orrisa and Rajasthan) located in northern half of the country.

Rural-Urban Discrepancy - A topic that is often discussed in India across political corridors, corporate boardrooms and households is the rural-urban discrepancy and how the country's so called two economies (rural and urban) are increasingly growing apart. The popular perception is that development not only has been off-center towards urban India but also has been gained at the expense of the rural India. The motivation behind this popular notion is that soon after India won independence from Britain in 1947, at that time policy makers emphasized capita-intensive industrialization and urban infrastructure rather than agricultural investment and rural land reforms, leading to the rural-urban imbalance.

There was a concentration of capital-intensive activities in a few areas namely in Mumbai, Baroda, Kolkota and Coimbatore. These centers have taken up the majority of government expenditure for provision of water, power, transport and communication as well as food subsidies. As the cities have attracted the bulk of government expenditure while villagers continue to migrate to cities as their areas have been largely neglected. Despite resource scarcity and no available space, life in over-crowded cities even for the poor is better than living in rural areas that lack access to water and comparatively less employment opportunities (Gadgil, 1995).

In explaining migration across space, income differentials are taken as motivating factor in moving people from low-income areas to relatively high-income areas (Harris and Todaro, 1970). In the rural areas sluggish agricultural growth and limited development of the rural non-farm sector raises the incidence of rural poverty, unemployment and under-employment. Given the fact that most of the high productivity activities are located in the urban areas, the rural-urban income differentials, particularly for the poor and unemployed are enormous.

Employment growth has not taken place in a lot of parts of rural India since 1990. It is because employment means agriculture in villages. And as such there have been no agricultural reforms here. As a result between 2000 and 2005 rural agricultural employment growth was as low as 1%. This indicates that growth in the agricultural sector has not really resulted in a significant increase in jobs in the countryside. In contrast during the same period, non-farm jobs have gone up by 20%. In rural economy agriculture is growing at the rate of 3.2% on average, much of this growth is driven by the non-farm sector compared to farm sector (Purshothanan, 2008).

The 56th round of National Sample Survey reveals, in rupee terms, the all India average monthly per capita consumer expenditure (MPCE) was Rs. 495 in rural areas and 914 in urban India, Rs. 400 went for food. On the other hand, of the rural MPCE of Rs. 495, food took Rs. 279. The yearly rise in MPCE is low in rural areas: only Rs. 09 from the previous year that is a rise of two percent per year. The urban rise is seven percent of Rs. 60. A fifth of rural households live precariously; while less than one percent don't get enough to eat during some months of a year, another 19 percent get enough to eat only during the busy months, when its is lean season, they join the "chronically hungry" category (DilipRangachari, 2003). As per 2001 census 72.2 percent population resides in rural areas and agriculture, which is its main occupation, accounts for only 20 percent of the country's Gross Domestic Production (Economic Survey of India, 2006-07).

India's economy seems to be doing just fine with the estimated 6.5% GDP growth in 2009, India weathered the world recession of 2008 just fine. But for country's rural poor, the impressive GDP growth and the continuing success of Indian economy don't mean much. Cities like New Delhi, Mumbai, Bangalore, Chennai and hundreds of growing urban centers in India are developing into islands of prosperity and opportunity; little is tricking down to the poor rural areas across the country. Orissa - one of India's poorest state is experiencing acute food shortage. There are no alternative job opportunities in the rural areas, where as on the other hand overflowing cities are the places where they get all the benefits, all subsidies and infrastructure. This seems to be simple, but powerful explanation for why rural poor migrate to urban India, even if the conditions of living are bad.

Conclusion - India has high levels of regional disparity in population distribution, per capita income, poverty, availability

of infrastructure and socio-economic development.In explaining migration across space, income differentials are taken as motivating factor in moving people from low-income areas to relatively high-income areas. In rural areas, often on small family farms, it is difficult to improve one's standard of living beyond basic sustenance. Farm living is dependent on unpredictable environmental conditions, and in times of drought, flood or pestilence, survival becomes extremely problematic. Apart there is limited scope for trade in the rural areas therefore people prefer cities in search of livelihood. The role of education factor in respect of movement of individuals also reflects their urge to seek better employment opportunities. Thus the migration of resourceful and well educated people from rural zones to urban zones is favorable for urban development. As a result rural development is either hampered, remains static or may even deteriorate for want of an effective and forceful forum to raise the voice of the innocent rural people.

References :-

1 . Word Bank (2009), "Country Strategy for India (CAS) 2009-2012", Reprinted 2009-06-21
2. Yadava K.N.S. (1989), "Rural Urban Migration in India : Determinants Patterns and Consequences", Delhi : Independent Publishing Company
3. Gadgil M. and Guha R. (1995), "Ecology and Equity : the use and abuse of nature in contemporary India", United Nations Research Institute for Social Development
4. Purushothaman Roopa (2008), "Is Urban Growth Good for Rural India", Cited at www.un.org/esa/population/meeting/EGM_PopDist/P08_Purishothaman.pdf.
5. Harris J.R. and M.P. Todaro (1970), "Migration, Un-employment and Development : A Two Sector Analysis", The American Economical Review, Vol. LX, No. 1.
6 . RangachariDilip (2003), Household consumption/ consumer expenditure India, www.india.com/ civilsupplies and sonculer affairs monthly per capita consumer expenditure MPCE.

****

India : A Global Destination for Tourism

Dr. Pushpanjali Arya*

Introduction - India has a glorious past. There were times when India was known as the "Golden Sparrow". Long before Britain, U.S.A. and Western Europe came on the Industrial map of the world , goods manufactured in India were traded far and wide. The skill and efficiency of our artisans and craftsmen was recognized all over the world. India was held as the "Spiritual Guru". But the advent of the East India company in1600 AD marked the degeneration and decay of the Indian economy. After independence in 1947, we adopted Economic Planning to initiate the process of economic growth. But after 1991 economic crisis we adopted the new economic model of LPG, Liberalization, Privatization and Globalization. India turned towards a capitalist system and emerged as one of the fastest growing economies in Asia. During this period the tourism flourished into an industry and became one of the prominent sectors of the Indian economy.

Modern day India, puzzles, excites and fascinates the foreign tourists. We are the world's largest functioning democracy. We have history, culture, civilization, adventure, leisure, scene beauty, wildlife, temples, technology, deserts and mountains. In India there is so much to see, to study and to explore. The colours and sounds are indeed exotic and enchanting.

Tourism in India - India falls in the second category of tourism in the world. The second category of tourism in the world includes countries that have the rich potential and are aware of the benefits of the tourism industry, but lack full infrastructure and know. They are making beginning but the process has yet to gain momentum. India can unhesistantly be put in this category with full potential to join the front ranks.

Scope of Tourism in India - India has great potential prospects for tourism. Our unique diversification of culture and natural attractions constitute the resources for the tourism industry. India has an ancient civilization that is preserved in its religion, customs, traditions and architectures. It has a distinctive culture and a way of life. A unique asset for tourism in India is that there is no shortage of raw materials. India's unique variety of culture and natural attractions itself constitute the resources for the tourism industry. Among the various motivating factors Government travel to India "Cultural Tourism", is undoubtly the most important, Cultural Tourism has a special place in India because of its past civilization. Our historical and archaeological monuments continue to be the biggest attraction for international tourists. Infact, Indian art , culture and architecture is among the major factors influencing travel in India.

Role of Tourism in India - Tourism occupies a significant place in the Indian Economy. It is not only a means for earning foreign exchange but is also an important source of employment generation. Tourism industry employees less capital and low skilled labor and in a country like India where there is scarce supply of capital and abundant supply of low skilled labor, tourism is really significant. Tourism has enabled the economy to develop understanding within the country and with the Global World.

Types of Tourism in India - All types of tourism can be seen in India. The major types of tourism in India include:

(a) Adventure Tourism :

1. Recently growing in India
2. Ladakh, Sikkim and Himalaya, Himachal Pradesh, Jammu and Kashmir are some adventure tourism places.
3. Important adventure sports –white water rafting, skiing

(b) Wildlife Tourism :

1. Rich forest resources and exotic species of fauna.
2. Sariska Wildlife Sanctuary, Keoladeo Ghana National Park and Jim Corbett National Park –are some places for wild life tourism.

(c) Medical Tourism :

1. India known for many medicinal plants and medical treatments.
2. These provide superior quality healthcare.
3. City of Chennai attracts 45% of medical tourists from foreign countries.

(d) Pilgrimage Tourism :

1. Pilgrimage tourism is increasing rapidly.
2. Famous temples attract pilgrimage tourism.
3. Some places of pilgrimage tourism – Vaishno Devi, Golden Temple, Chardham, Mathura, Vrindavan.

(e) Eco- Tourism :

1. Growing recently.
2. Eco-tourism entails the preservation of the naturally endowed region.

***Assistant Professor (Economics) Government P.G. College Kotdwara, Pauri Garhwal (Uttarakhand) INDIA**

3. Places for eco-tourism – Kuziranga National Park, Gir National Park and Kanha National Park.

(f) Cultural Tourism/ Heritage Tourism :

1. Rich Cultural heritage in India.
2. Various Fair and festivals can be visited by tourists.
3. Places of cultural tourism – Pushkar fair, Taj Mahotsav and Suraj Kund Mela.

Kinds Of Tourists Travelling in india :

1. Young people aged between 20 to 30years.
2. Married couples.
3. Family tourists
4. Elderly people on yatra.
5. School students for picnic and study tours.
6. People from within the country and international tourists.

Present Status of Tourism in India - Tourism is the largest service sector industry in India. It is the third largest net earner of foreign exchange for the country and employes the largest number of man power. Tourism Industry contributes 6.23% to the total National GDP and provides 8.78% of the total employment in India. India witnesses more than 5 million annual foreign tourist arrivals and 562 million domestic tourists visits. In 2008, the tourism industry generated about US $ 100 Billion, and is expected that by 2018 it is expected to increase to US $ 275.5 Billion at a 9.4% annual growth rate. The Travel and Tourism Competitiveness Report 2007, ranked tourism in India 6th in terms of prices competitiveness and 39th in terms of safety and security. India has significant potential for becoming a major global tourist destination.

Steps Taken by the Government :

1. Indian Government decided to boost revenues from tourism sector by projecting India as the ultimate tourist spot.
2. Indian Government has set up the Ministry of Tourism and Culture.
3. Ministry of Tourism and Culture recently launched a compaign called “Incredible India” to encourage tourism in India.
4. New tourism secretary – 2010 Mr. R.H. Khawaja.
5. Ministry of Tourism conducted a two day National Workshop on “Sustainable Tourism Criteria for India,” in New Delhi on **27 july2010.**
6. All the stake holders in tourism of the country have agreed to adopt “Sustainable Tourism Criteria” for India.
7. GSTC – Global Sustainable Tourism Criteria
8. In order to increase the tourists in the country the Visa on Arrival Plan has been introduced.

India Shines With Multiple PATA Awards - The Pacific Asia Travel Association (PATA) announced the winners of the 2010 PATA Gold Awards sponsored by the Macau Government Tourists office. Ministry of Tourism Government of India won award in the Heritage Category for the tourism project case study Hodka Village in Kachchh district of Gujrat.

Conclusion - Thus, for India Tourism is a software product in the service sector with relatively high value addition and it needs to be nurtured to its full capacity. In a country like India, there is full potentials and capacity for tourism. Tourism would put the economy on the remarkable side. In India Tourism is not only an activity for earning foreign exchange but it is an important medium for ensuring social and cultural development of the country. It has become the prime means for developing social and cultural understanding among all the people of the World. Tourism in India would enrich and promote goodwill, friendship among the people of the country and across the country. It will serve as the best way to create international understanding between the countries.

References :-

1. Akhar, Nafees. (2001) “ Development of Tourism in India”. Anmol Publications Pvt. Ltd.
2. Bhatia, A.K. (1982), “Tourism Development: Principles and Practice,” Sterling Publisher Pvt.Ltd.
3. Karma, Krishan. K. (1997), “Tourism: Theory, Planning and Practice, “Indus Publishing company.
4. Negi, Jagmohan (1990) “ Tourism and Travel : Concepts and Principles”.
5. Singh, Ratandeep. (2007), “Infrastructure of Tourism in India”, Kanishka Publisher Destributors.
6. Wilipedia, the free encyclopedia.

****

Sacred and Ritual Plants of Shekhawati Region of Rajasthan, India

Manju Chaudhary*

Abstract - A large numbers of plants are being used for the worshiping of gods and goddesses by different indigenous communities, which serve as a useful tool for conservation of plants. An extensive survey of the Shekhawati region of Rajasthan was documented to the traditional knowledge of plants used by the tribal and folk people. In the present study 25 plant species have been recorded which are used in traditional ritual ceremonies of the area. Different plant parts or the whole plant is used for various cultural, religious and ritual purposes. The uses of such plants in various cultural and religious rites and rituals are a mode of conservation of natural wealth of earth.
Keywords: Rituals, Religious, Worships, Deities, Shekhawati region.

Introduction - Plants and trees in ancient India were described as dear to the gods,and planting them was like a ritual of worship. Rituals are part of human life since time immemorial. In the Indian traditional system of Medicine, the religious and spiritual aspects have been innately synchronized. There are specific plants used in ceremonies, as food adjuncts in medicine and for propitiating Gods, deities and even evil spirits and their use is being revealed to be based upon their potentialities as health promoters and health balancers or as purifiers of environment. India is exceptionally rich in rituals owing to its great diversity in religious cultures and traditions. Plants are important components of these traditional rituals which are used for some definite purposes. A ritual is defined as a stereotyped sequence of activities involving gestures, words and objects performed in a sequestered place and designed to influence preternatural entities or forces on behalf of the actor's goals and interests (Turner, 1973).

Tree worship is one of the earliest forms of religion in Ancient India. Sacred value of plants has been well documented by various workers (Jain, 1963; Gadgil and Vartak, 1976; Issar, 1981; Aulakh and Mukherjee, 1984; Maheshwari and Singh, 1985; Geogoi and Borthakur, 1991, Sharma, 2002; Katewa, 2009). The human culture, customs, beliefs, religious rites, myths, taboos, folk tales, songs, food as well as medicinal practices are deeply associated and these all are influenced by the plants (Badoni and Badoni, 2001).

Different plant parts (roots, stem, leaves, bark, fruits, flowers, seeds etc.) or the whole plant is used for various cultural, religious and ritual purposes. In the present study 25 plant species have been recorded which are used in traditional ritual ceremonies of the area. It is observed that these plants also have the great property of medicine to cure various ailments. So, it is necessary to conserve and promote these religious and aesthetic values to conserve biodiversity and nature, which will assuredly play an important role in the amelioration of human being.

The religious people are very much concern about the use of plants for each and every occasion from birth to funeral ceremony. But, despite of having such traditional ceremony literatures regarding these rituals is insignificant and proper scientific study in this context is very poor. Thus, the present paper attempts to emphasis on the use of plants in some common traditional worship involved in different socio-religious practices such as child birth, marriage, common worship of gods and goddesses like lord *Vishnu*, *Ganesh*, *Kali*, *Shiva*, *Hanuman* etc. in Shekhawati region of Rajasthan.

Material and Methods - Shekhawati region of Rajasthan is spread over the Jhunjhunu and Sikar districts surrounded by Haryana towards the East and the Jaipur, Nagaur and Churu dist-ricts of Rajasthan on other sides and lies between 28.06° North latitude and 75.20° East longitude. The climate of this area is generally dry except in the monsoon. It is affected by the surrounding topography and the air masses travelling over the region, which lead to a greater local variation in weather phenomenon. Winters are quite cool and summers are very hot in this area. January is the coldest month when the minimum temperature drops up to 4^0 C and the May and June are the hottest months, when maximum temperature reaches up to 47^0 C.

Study on documentation of plant species that are used in different traditional worship among Shekhawati region was carried out during 2013-2014. Different traditional socio-religious occasions and informations of plant species used in different worships, socio-religious ceremony or festival were recorded. Importance of the plant species, uses of plant parts in traditional practices, beliefs and benefits were collected through semi structured personal interview with the specialized persons like priests, who performed different ceremonies and rituals, and some knowledgeable old

*Department of Botany, Govt. College, Jhunjhunu (Raj.) INDIA

persons who are involved in different religious practices. The collected plant specimens were carefully identified with the help of relevant scientific literatures.

Table 1 (see in next page)

Results and Discussion - Living close to nature, the traditional societies have acquired unique knowledge about the use of wild flora and fauna. After years of observation trial and error experimentation, the traditional people have selected useful and harmful members of the flora and fauna. These ethnic groups have their own culture, customs, beliefs, taboos, totem, folklore, folk tales, songs, rituals, myths and medicine practices. Forest and plants play important role in their life style.

A large number of plant varieties are used in rituals which are sacred and possess properties, which purify the environment. A total numbers of 25 plant species used by the rural people in ritual ceremonies belonging to 23 genera under 18 families are reported. Among these 23 plant species are belonging to dicotyledons and 02 to monocotyledons. Details of the recorded plant species in terms of their vernacular name, scientific name, family and their uses are given in Table 1.

Plants are repeatedly mentioned in connection with customs, traditions and beliefs. In fact no ceremony was complete without some sacred plant being used. Among discussions with tribals and villagers, it has been seen that the whole plant of dry *Desmostachya bipinnata*, dry woods of *Mangifera indica* and *Prosopis cineraria* are used in *ahuti* and *havans***.** Twigs and leaves of *Mangifera indica* plant are used for all worship**.** *Prosopis cineraria* are also used to worship the lord *Agni* (fire) in the ritual ceremony of *Mundan* and *upanayan*. On the day of *Vijayadashami* Aparajita (*Clitoria ternatea*) and Shami (*Prosopis cineraria*) are worshiped. Janti or Shami (*Prosopis cineraria*) is revered in the Shekhawati region. Very often a temple is erected near it or a stone deity placed under the tree with flags and steamers adorning its branches. Kusha (*Desmostachya bipinnata*) is commonly used as floor mat to seat on during all the worshiping and other holy occasions.

There are some species related to some particular god and goddesses. *Ocimum sanctum* and *Ficus benghalensis* are used in worshipping Lord Vishnu. *Aegle marmelos*, *Calotropis procera*, *C. gigantea*, *Datura stramonium* and *Cannabis sativa* are used for worshiping Lord *Shiva*. Flowers of *Hibiscus rosa-sinensis* are used for worshiping goddesses *Kali*. *Ocimum sanctum,* a wonder herb (Sai Krishna, 2014) and *Cynodon dactylon* are the integral part of worshiping of all gods and goddesses. Without these species no worship takes place or not complete. '*Tulsi vivah*' is the ceremonial marriage of the *tulsi* and to the Hindu God *Shaligram* in the *Kartika* month. *Emblica officinalis* is also considered sacred by Hindus and worshipped on '*Amalka Ekadashi*'(Fig. 1A and 1B).

It was also reported that these plants or plant parts used in various cultural, religious rites and rituals are of medicinal uses. The conservation and protection of medicinal plants against over exploitation by domestic and foreign commercial interest without benefits accruing to the nation are clearly our priorities.

Conclusion - The present work on religious plants used in various traditional worshiping in the study area exhibits the important role of plants in human life. From the present study it is found that 25 plant species are used by local community in their religion, ceremony, rituals and festivals. It helps to understand how indigenous communities of Shekhawati region of Rajasthan are contributing towards the conservation of plants and forest in general of their own interest to safeguard their inherent socio-cultural and religious activities. The uses of such plants in various cultural and religious rites and rituals reveal a strong significance in today's concern of biodiversity conservation.

Acknowledgement - The author is highly thankful to villagers and religious headmen for their co-operation and useful information.

References :-

1. Aulakh, Gain Singh 8b Mukherjee, Tapan (1984) Plants associated with witchraff and evil eye. Ancient Set Life. 4 (1): 58-60.
2. Badoni A & Badoni K (2001) Ethnobotanical heritage. In: Kandari OP & Gusain (eds) Garhwal Himalaya: Nature, Culture and Society. Trans Media Srinagar (Garhwal). pp. 125–147. Gadgil, M. and Vartak, V.D. (1976). Sacred Grooves of the Western Ghats in India. *Eco. Bot.*, **30**: 152-160.
3. Geogoi, P. and Borthakur, S.K.(1991). Plants in religio-cultural beliefs of the Tai Khamtis of Assam (India). Ethnobotany, 3: 89-95.
4. Issar, R.K. (1981). Traditional important medicinal plants and folklore of Uttarakhand Himalaya. *J. Sci. Res. Plant Med*., **2**: 61-66.
5. Jain, S.K. 1963. Magico-religious beliefs about plants among the Adivasis of Bastar, Madhya Pradesh. *Jour. Mythic Soc*. 54(3):73-94.
6. Katewa, S.S. (2009). Indigenous people and forests: Perspectives of an Ethnobotanical study from Rajasthan (India)-Herbal Drugs: *Ethnomedicine to Modern Medicine* (Springer, Berlin), 33-56.
7. Maheshwari, J.K. and Singh J.P.(1985). Plants used in magico-religious beliefs by the Kols of Uttar Pradesh. A study. Folklore, 26(9): 170-173.
8. Sai Krishna, G., Bhavani Ramesh, T. and Prem Kumar, P. (2014). "Tulsi" – the wonder herb (pharmacological activities of *Ocimum sanctum*) *American Journal of Ethnomedicine*, 1(1): 089-095
9. Sharma, N.K. (2002). Ethno-medicoreligious plants of Hadoti Plateau (SERajasthan)-A Preliminary Survey. In: Ethnobotany, edited by PC Trivedi, (Aavishkar Publishers & Distributors,Jaipur).
10. Turner, N. J. 1973. Plant taxonomic systems and ethnobotany of three contemporary Indian groups of the Pacific Northwest (Haida, Bella Coola, and Lillooet), PhD Dissertation, University of British Columbia.

Table 1: Sacred and Ritual plants of Shekhawati Region of Rajasthan

S.	Name of Plant	Plant Part Used	Rituals
1.	*Acacia nilotica* (L.) Willd.Kikar (Fabaceae)	Whole plant	Used in sacred fire (*Havans*).
2.	*Anthocephalus kadamba* Roxb. Kadamb (Rubiaceae)	Flowers	Worshipping of Lord *Krishna*
3.	*Azadirachta indica* A. Juss.Neem (Meliaceae)	Leaves	Used in '*Bandarwal*' (string for door) on the occasion of Grih pravesh and child birth. Also used for *Neem jhuwari* marriage ceremony.
4.	*Aegle marmelos* (L.) Corr.Belpatra (Rutacae)	Leaves	Offered to Lord *Shiva*.
5.	*Butea monosperma (Lam.)*Taub Dhak (Fabaceae)	Flowers	Offered to Lord *Shiva* and in *Holi* festival
6.	*Calligonum polygonoides* L.Phog (Polygonaceae)	Twigs	Offered to *Shiv Gauri* on *Gangaur* festival
7.	*Calotropis procera* R. Br.Aak (Asclepiadaceae)	Flowers	Offered to Lord *Shiva*.
8.	*Calotropis gigantea* (L.)R.Br. Safed Aak (Asclepiadaceae)	Flowers Leaves	Offered to Lord *Shiva*.
9.	*Cannabis sativa* L.Bhang (Cannabinaceae)	Fruits	Offered to Lord *Shiva* on '*Mahashivratri*' and in festivals.
10.	*Citrullus lanatus* (Thunb.) Mats. Matira (Cucurbitaceae)	Flowers	Used in *Diwali pujan*.
11.	*Clitoria ternatea* L.Aparajita (Fabaceae)	Fruits	Offered to Lord *Vishnu.*
12.	*Cucumis callosus* (Rottl.) Cogn. Kachri (Cucurbitaceae)	Whole plant	Used in *Diwali pujan*.
13.	*Cynodon dactylon* (L.) Pers.Doob (Poaceae)	Flowers	It is used in almost all religious rituals supposed to please lord *Ganesh*a
14.	*Datura stramonium* L.Dhatura (Solanaceae)	Whole plant	Offered to Lord *Shiva*.
15.	*Desmostachya bipinnata* (L.) Stapf Dab (Poaceae)	Whole plant	Used in Sacred fires (*Havan*).
16.	*Emblica officinalis* Gaertn.Anwla (Euphorbiaceae)	Whole plant	Holy tree and ladies worships on *Aonla Navami.*
17.	*Ficus benghalensis* L.Bargad (Moraceae)	Whole plant	Holy tree, worship of *Hanuman*.
18.	*Ficus religiosa* L.Peepal (Moraceae)	FlowersLeaves	Sacred tree associated with planet Saturn and Jupiter and worshiped to need off blessing on almost all rituals.
19.	*Hibiscus rosa-sinensis* L.Gudhal (Malvaceae)	Leaves	Offered to goddess *Kali Mata*.
20.	*Lawsonia inermis* L.Mehndi (Lythraceae)	Flowers	Paste of leaves used in marriage and religious ceremony.
21.	*Mangifera indica* L.Aam (Anacardiaceae)	Whole plant	Leaves are used in making string for door on every auspicious occasion to attract positive power.
22.	*Nerium indicum* L.Kaner (Apocynaceae)	Whole plant	Used in festivals.
23.	*Ocimum sanctum* L.Tulsi (Lamiaceae)	Twigs	Sacred plant, associated with *Saligram* (Lord *Vishnu*).Worshipped daily in temples and homes due to a belief that it wards off the evil spirit from house.
24.	*Prosopis cineraria* (L.) DruceKhejri (Fabaceae)	Stem	It is worshipped on the occasion of *Dushehra* in *Ashwin* month and *Sheetla Ashtami*.
25.	*Zizyphus nummularia* (Burm.f) Wt. & Arn.Borti (Rhanmnaceae)	Twigs	Twigs are used for '*Mugdana*' in marriage ceremony of study area.Used in *havan* and *Ahuti*.Used in ritual of Hindu marriage '*Toran Puja*' particularly in Rajasthan.

Fig.1 (A): Anwla pujan on Anwla Ekadashi (B) Tulsi Vivah

****

Climate Change: Causes and Effect

Dr. Ashok Kumar* Dr. Aradhna Sharma**

Introduction - Climate change is one of the major challenges facing the world today. It is the subject of how weather patterns change over decades or longer. Climate change takes place due to natural and human influences. Since the industrial revolution, humans have contributed to climate change through the emission of greenhouse gases and aerosols. Climate change involves a variety of potential impacts.

The impacts of climate change are being felt all over the world. It is becoming warmer, rainfall is more erratic, the sea level is slowly rising and extreme weather events are becoming more frequent and intense. Prolonged periods of drought, floods and shifting climatic zones are endangering development successes. India is a large emerging economy with a great variety of geographical regions, biodiversity and natural resources. However, our country is one of the most vulnerable to climate change risks worldwide. Natural resources and environment are under pressure as a result of rapid urbanization, industrialization and economic development.

Causes of Climate Change

Deforestation

Forests provide many social, economic and environmental benefits. They also provide an important defense against climate change. They facilitate photosynthesis which produces Oxygen (O2) and consumes huge amounts of carbon dioxide (CO2) known for affecting global warming.The number of trees available to absorb CO2 through photo-synthesis has been greatly reduced through deforestation. Human beings cut down trees for timber or to clear land for farming or building. This can both release the carbon stored in trees and significantly reduce the number of trees available to absorb CO2

Greenhouse Gases - Greenhouse gases play a vital role in the earth's climate cycles. As the planet gets hit with the sun's rays, some of the energy is absorbed, and the rest of that energy and heat gets reflected into space. Greenhouse effect is the capacity of greenhouse gases (for example, water vapours, carbon dioxide, methane, nitrous oxide, ozone, chlorofluorocarbons, hydro-chlorofluorocarbons, hydro-fluorocarbons, and per fluorocarbons) in the atmosphere to trap heat emitted from earth surfaces, there by insulating and warming the planet in a blanketing manner or in a layer of green house gases in the atmosphere.While some of these greenhouse gases, such as water vapor, are naturally occurring, others, such as CFCs, are synthetic.

Global Emissions by Sector in 2005

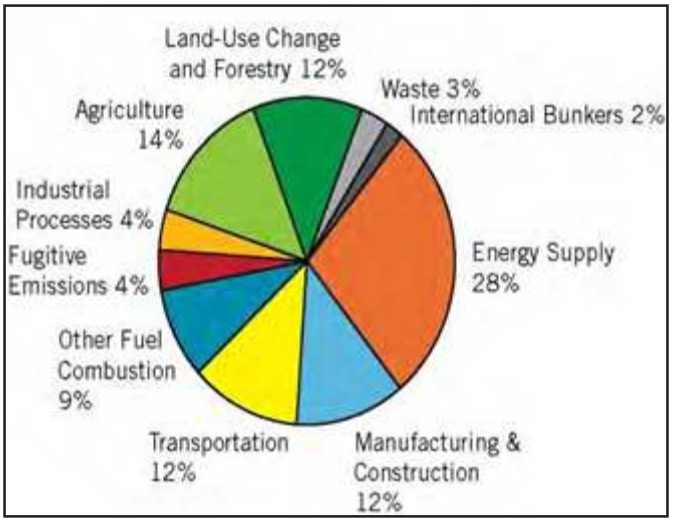

(Source-World Resources Institute, 2010)

CO_2 is released into the atmosphere from both natural and human-made causes and is one of the leading contributors to climate change. CO_2 has been increasing at an alarming rate and has the potential to stay in the earth's atmosphere for thousands of years unless it gets absorbed by the ocean, land, trees, and other sources. Fig 1. shows sector wise global greenhouse gas emissions in 2005. Energy supply has highest share of 28% followed by agriculture, transport and industry sector.

Ozone layer depletion - Ozone is both a natural and man-made gas. Ozone in the upper atmosphere is known as ozone layer and shields both plant and animal life on earth from a possible damage by the sun's harmful ultraviolet and infrared radiation. However, the ozone in the lower atmosphere is a component of smog, and is considered a greenhouse gas. The ozone layer gets depleted when the atmosphere becomes impure due to the release of dangerous gases or repellents from industries, exhaust pipes of vehicles,

*Assistant Professor (Economics) Government Degree College, Devprayag (U.K.) INDIA
**Assistant Professor (Physics) D.B.S. (PG) College, Dehradun (U.K.) INDIA

air conditioning devices and refrigerators. These materials emit substances such as chlorofluorocarbons (CFC), carbon monoxide (CO2), hydrocarbons, smoke, dust, nitrous oxide and sulphur oxide which deteriorate the ozone layer

Human Activity - Human activities such as the burning of fossil fuels and slash-and-burn farming techniques contribute additional aerosols to the atmosphere. Aerosols are air-borne particles that absorb, scatter and reflect radiation back into space.Although aerosols are not considered a heat-trapping green house gas, they do affect the transfer of heat energy radiated from earth to space.Their effect on climate change is still being debated,but climate scientists believe that light-color edaerosols have a cooling effect while dark-colored contribute to warming.

Effects of Climate Change - From melting glaciers to more extreme weather patterns, people everywhere are beginning to take notice of the real impacts of climate change. While some nations around the world are taking action, others are continuing business as usual, pumping millions of tons of carbon into the atmosphere year after year. Here we discuss some of the impacts of climate change

Extreme Weather - Changes to weather are perhaps the most noticeable effect of climate change for the average person. One reason for this is the financial impact severe weather events can have. Extreme weather influenced by climate change includes:

1. Stronger storms & hurricanes
2. Heat waves
3. Wildfires
4. More flooding
5. Heavier droughts

Health - There are many ways in which climate change could impact people's health. Depending on age, location, and economic status, climate change is already affecting the health of many and has the potential to impact millions more. The health risks may include:

1. Heat-related illness
2. Injuries and fatalities from severe weather
3. Asthma & cardiovascular disease from air pollution
4. Respiratory problems from increased allergens
5. Diseases from poor water quality
6. Water & food supply insecurities

Negative Impact on Ecosystems - Ecosystems are interconnected webs of living organisms that help support all kinds of plant and biological life. Climate change is already changing seasonal weather patterns and disrupting food distribution for plants and animals throughout the world, potentially causing mass extinction events. Some studies estimate that nearly 30% of plant and animal species are at risk of extinction if global temperatures continue to rise.

Water & Food Resources- Climate change could have a significant impact on food and water supplies. Severe weather and increased temperatures will continue to limit crop productivity and increase the demand for water. With food demand expected to increase by nearly 70% by 2050, the problem will likely only get worse.

Sea Levels Rising - Rising sea levels could have far-reaching effects on coastal cities and habitats. Increasing ocean temperatures and melting ice sheets have steadily contributed to the rise of sea levels on a global scale.

Shrinking Ice Sheets- While contributing to rising sea levels, shrinking ice sheets present their own set of unique problems, including increased global temperatures and greenhouse gas emissions. Climate change has driven summer melt of the ice sheets covering Greenland and Antarctica to increase by nearly 30% since 1979.

Ocean Acidification - The ocean is one of the main ways in which CO_2 gets absorbed. While at first glance that may sound like a net positive, the increasingly human-caused CO_2 is pushing the world's oceans to their limits and causing increased acidity. As pH levels in the ocean decrease, shellfish have difficulty in reproduction, and much of the oceans' food cycle becomes disrupted.

The Way Forward - Responding to the challenge of controlling climate change requires fundamental changes in energy production, transportation, industry, government policies, and development strategies around the world. These changes take time. The challenge today is managing the impacts that can not be avoided while taking steps to prevent more severe impacts in the future.A wide variety of adaptive actions may be taken to lessen or over come the adverse effects of climate change on agriculture.Theyinclude the following:

1. Conservation of National Resources
2. Use of alternative energy sources
3. Carbon sequestration
4. International Agreements

References :-

1. Kohli, Vikas, and Kohli, V.K., 1995, "Environmental Pollution and Management". Ambala: Vivak Publishers.
2. Nasrin, 2004; "Environmental Education". New Delhi: APH Publishing Corporation, p.34.
3. Kumar, Arvind. (2009), "Environment and Sustainable Development," Shree Publishers and Distributors.
4. Environmental Education Policy, PD 2002.
5. Sharma, R.A; 2005 "Environmental Education"; Surya Publication, Meerut.
6. Bhatia, A.L (2007), "Sustainable Environment and Impact Assessment," Avishkr Publishers Distributors

****

Novel approaches for pectin extraction : By-product utilisation

Dr. Mahendra Singh Panwar *

Abstract - Pectin is an important constituent of cell wall and middle lamellae of plants, it is a considered as a complex polysaccharide. Structure of pectin contains a backbone of α(1-4) linked D- galacturonic acid units which can be often esterified with methyl group. Based on the intensity of esterification it can be further classified as high methoxy pectin (HM) and low methoxy pectin (LM). The properties of this chemical component varies with the source from where it is derived, which governs the application of its usage. Conventionally the pectin is extracted using the conventional techniques of hydrolysis which however does not produces pectin of very good quality and is often associated with the environmental as well as economic losses. Therefore need of the hour is to look for the alternatives in the green technology like microwave and ultrafiltration techniques. The Himalayan region is the habitat to many citrus species which are very good source of the pectin and citrus fruits here are mainly used for the production of beverages like juice and squashes. The citrus fruits can be a potential source of pectin and the by-product of the citrus-juice producing industries that is the peels of the fruits can be used for the production of pectin.

Introduction - Pectin is found in the middle lamella of the plant cell wall, which acts as a cementing agent and helps in keeping together all the cell wall constituents like cellulose, hemicellulose fibrils, soluble proteins etc. (Voragen, A. *et al*). It also provides mechanical strength to the plant cell walls, though it is available in cell wall of almost all green plants yet good quality pectin extraction is difficult as different sources produces pectin of different quality due to which its application gets affected (Carpita, N., & McCann). Thus pectin extraction is a critical unit operation in itself. Conventional method of extraction produces pectin of inconsistent quality thereby it is need of the hour to switch to the novel method of extractions to obtain a pectin of consistent quality. Following their isolation, many naturally synthesized cellular components of plants, animals, and microorganisms help meet some human nutritive and functional needs.

Functional properties of pectin - Pectin has a number of functional properties, it can be used a medical adhesive as an aid for the intensive care of new born infants as they have very delicate skin, attachment of probes directly on skin may cause skin injury thus pectin is used as medical adhesive. One of the most exploited functional properties of pectin is its ability to form gel, upon which all the jam, jelly and confectionary industries are based. These products are relished all over the world (Chapman *et al*).

Pectin also has prebiotic potential it is used by bacteria like *Eubacteriumaligens* and *Rhamnococus* bacteria for the production of anti-inflammatory substances, which are beneficial for our health. Pectin is also used as a stabilizer as it is used to reduce the surface tension between two phases and helps in production of stable emulsion.

Sources of pectin

SOURCES	PECTIN CONTENT DRY WEIGHT (%)	CLASS OF PECTIN	REFRENCE
Conventional			
Citrus peel	30-35	HM	Lopes da silva and Rao, (2006)
Apple pomace	15-20	HM	Lopes da silva and Rao, (2006)
Sugar beet pulp (post sugar extraction)	15-30	HM	Miyamoto and Chang, (1992)
Sunflower seed head	5-25	LM	Miyamoto and Chang, (1992)
Unconventional			
Cranberry, onion, garlic, banana, mango, pumpkin, peach, rapeseed, papaya	0.1-28	LM and HM	Lopes da silva and Rao,(2006)

Conventional method of pectin extraction - It broadly includes a raw material pre-treatment stage, an extraction operation, and a post-extraction stage (Kratchanova*et al*). Where the pectin is subjected to hydrolysis with some strong mineral acid followed by its diffusion from cell wall to the solvent and precipitation using alcohol. However, this method has a lot of drawbacks like low yield, inconsistent quality long duration of extraction process and large volumes of

*Department of Chemistry, Government Post Graduate College, Agastyamuni, Rudraprayag (U.K.)INDIA

effluent. It is associated with the concern regarding particularlly the extraction step, whether or not the valorisation of fruit and vegetable processing by-products is really worth energy and economic demands that are currently associated with the practice. Thus with advancement of technology new methods have been explored to obtain good quality pectin.

Novel methods of pectin extraction - There are various novel methods of extraction of pectin like the microwave-assisted method, ultra sonication method, enzyme assisted methods, sub-critical water extraction method. Out of all the methods the microwave assisted method and ultra-sound method are becoming very popular because of their aid in the extraction.

Microwave assisted pectin extraction: In microwave heating, the transfer of energy follows two mechanisms: dipole rotation, involving the reversal of dipoles in polar molecules; and ionic conduction, involving displacement of charged ions present in the solvent (Fishman, M. L., Chau). Microwaves are operated at frequencies 0.915 and 2.450 GHz,Such frequency causes a disorganized rotation of the polar molecules of a microwave heated solvent which in turn creates heat and cleaves the long pectin chains (figure 1). However, heat is only generated if the material has dielectric losses which is proportional to the microwave heat kinetics.Advantages of MAE are the reduced extraction time and lower solvent requirement. The non-conventional heating principle in MAE means there is a homogeneous temperature distribution within the medium with no temperature gradient. Also, equipment size can be considerably reduced. Hence, the MAE technology is a recognized green technology.

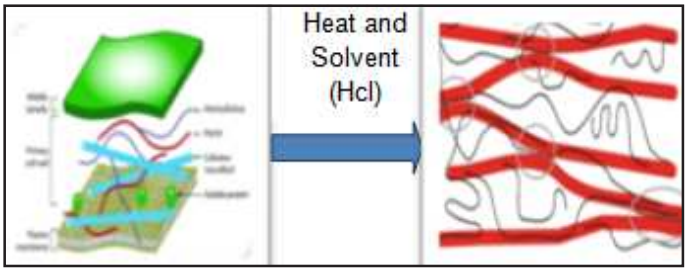

Figure1: The cleavage of pectin long chains at specific sites using microwave assisted extraction.

Ultrasound assisted microwave extraction: Sound waves with frequencies from 20 kHz (above the audible range of the human ears: 16 kHz) are referred to as ultrasound. These waves differ from electromagnetic waves in that, a medium (solid, liquid or gas) is required for their propagation, involving a series of expansion (which pulls molecules apart) and compression cycles (which pushes them together). For a liquid medium, the expansion cycle can create bubbles/ cavities which grow and subsequently experience collapse as the negative pressure exerted exceeds the local tensile strength of the liquid. This process by which bubbles form, grow and collapse is known as "cavitation", and is the basis for ultrasound-assisted extraction (UAE) (Luque-Garcýa&Luque de Castro, 2003). This cavitation helps in increasing the mass transfer of pectin from cell wall to solvent. Advantages associated with UAE is reduced extraction time, reduced energy consumption and a relatively lower use of solvent.

Conclusion - The green technologies have potential to produce homogenous pectin of good quality and chain length can therefore be used to substitute the conventional technologies of pectin extraction that will ensure not only the economic and ecological sustainability but also the by-product utilisation of the citrus peel in the Himalayan belt and thus may lead to an exclusive industrial bloom in the region. Therefore it can be considered as a dual motive process of waste utilisation and economy generation.

References :-

1. Carpita, N., & McCann, M. C. (2000). The cell wall. In B. Buchanan (Ed.), Biochemistry and molecular biology of plants (pp. 52–108).Rockville, MD: American Society of Plant Physiologists
2. Fishman, M. L., Chau, H. K., Kolpak, F., & Brady, J. (2001). Solvent effects on the molecular properties of pectins. Journal of Agricultural and Food Chemistry, 49, 4494–4501
3. Voragen, A. G. J., Schols, H. A., &Pilnik, W. (1986). Determination of the degree of methylation and acetylation of pectin by h.p.l.c. Food Hydrocolliods, 1, 65–70.
4. Chapman, H. D., Morris, V. J., Selvendran, R. R., & O'Neill, M. A. (1987). Static and dynamic light-scattering studies of pectic polysaccharides from the middle lamella and primary cell walls of cider apples. Carbohydrate Research, 165, 53–67
5. LopesdaSilva,J.A.,&Rao,M.A.(2006).Pectins: Structure,functionality,and uses.In A.M.Stephen, G.O.Phillips, & P.A.Williams (Eds.), *Food poly saccharides and their applications* (2nded.). BocaRaton,FL:CRC/Taylor&Francis.
6. Miyamoto, A., & Chang, K. C. (1992). Extraction and physicochemical characterization characterization of pectin from sunflower head residues. *Journal of Food Science, 57*(6),1439e1443
7. Kravtchenko, T. P., Arnould, I., Voragen, A. G. J., &Pilnik, W. (1992). Improvement ofthe selective depolymerization of pectic substances by chemical b-elimination in aqueous solution. *Carbohydrate Polymers, 19*(4),237e242
8. Luque-Garcýa, J. L., &Luque de Castro, M. D. (2003). Ultrasound: A powerful tool forleaching. *TrAC Trends in Analytical Chemistry, 22*(1), 41e47

****